



सिद्धान्त-उपदेश

* द्वितीय-भाग *



श्री भगवान भवन
हृषीकेश





गुरु की महिमा कथन न जाए । पारब्रह्म गुर रहिआ समाए ॥

सिद्धान्त-उपदेश

द्वितीय—भाग

ब्रह्मनिष्ठ-ब्रह्मश्रोत्रिय परमानन्द स्वरूप

—वेदान्ताचार्य—

श्री १०८ स्वा० गुरांदित्तामल जी महाराज

जिसको

उनके परम शिष्य तथा उत्तराधिकारी

श्री १०८ स्वा० भगवानसिंह जी महाराज

ने

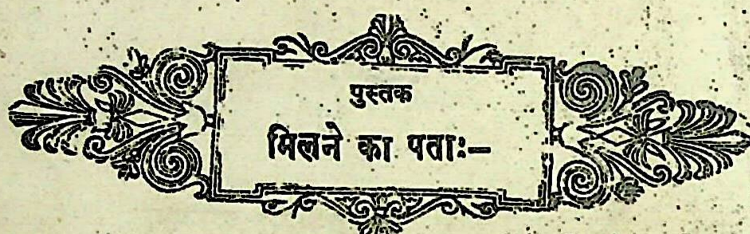
सिद्धान्तों का संग्रह करके तथा अनुभवी व्याख्यान मिलाकर अधिकारियों के लाभ हित प्रकाशित किया ।

दूसरी वार २०००] संवत् २०१२ [मूल्य ३) रु०

डाक व्यय १।-) पृथक

प्रथम संस्करण गुरुमुखी १०००
ज्येष्ठ संवत् १९९५ ।
द्वितीय संस्करण हिन्दी २०००
ज्येष्ठ संवत् २०१२

कुल ३०००



१–श्री कुन्दनलाल जी कामरेड,
मकान नं० २३५८, गली अम्बियां, कूचा चैलां
दरियागंज, दिल्ली ।

२–श्री हंसराज जी पंजाबी,
बाग़ रामसहाय, लोहामण्डी,
आगरा (यू० पी०)।

३–श्री निहालचन्द लद्धाराम जी,
साबुन वाले, बुलबुल बाज़ार
पो० पानीपत जिला करनाल
(पञ्जाब)



स्वा० भगवानसिंह जी
श्री भगवान् भवन, रेलवे रोड
पो० हृषीकेश जिला देहरादून [यू० पी०]

॥ सूचना ॥

सब सज्जनों प्रति विदित हो, कि प्रथम इस पुस्तक की एक आवृत्ति गुरुमुखी में प्रकाशित करके विना मूल्य बांटी जा चुकी है। हिन्दी प्रेमी भाइयों के आग्रह से यह हिन्दी संस्करण पाठकों के सामने है जिसका अब मूल्य रखा गया है ताकि आगे इसी प्रकार यह प्रणाली चलती रहे।

१–गुरुमुखी से हिन्दी में अनुवाद की तथा छपाई में देख रेख की सेवा श्री परमानन्द जी पाठक आगरा निवासी ने श्रद्धा और प्रेम से की है।

२–ग्रंथ हाथरस में छपवाया गया है और छपने में लग भग तीन मास लगे हैं। उस समय में श्री शामदास और गिरधारीलाल चावला जी व सर्व संगत ने संत मण्डली की सर्व प्रकार से उत्साह पूर्वक सेवा की। और सन्त मोहनदास जी तथा श्री कृष्ण कुमार पोपली ने भी ग्रन्थ की छपाई और देख रेख में प्रेम से तथा निष्काम भाव से सेवा की है।

उपरोक्त सज्जन अपनी निष्काम सेवा के लिये धन्यवाद के पात्र हैं ईश्वर उनका प्रेम और उत्साह इसी प्रकार बनाये रखे और उन का सर्वदा कल्याण हो।

इस के अतिरिक्त श्रीमान् महात्मा गोविन्द हरि जी ने ग्रन्थ की छपाई में सर्व प्रकार से विशेष यत्न किया और दिन, रात एक करके निष्काम भाव से सेवा का परिचय दिया।

प्रभु की अपार कृपा से यह ग्रन्थ जो आपके सन्मुख आरहा है इसके सम्पूर्ण होने का श्रेय श्रीमान् महात्मा आनन्द हरि जी को है। जिन्होंने अपनी विद्वता द्वारा ग्रंथ को गुरुमुखी से सुगम हिन्दी में अनुवाद किया है। अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए लिखाई, छपाई तथा संशोधन में दिन रात प्रेम भाव से निष्काम सेवा की है॥

॥ प्रस्तावना ॥

इस पुस्तक में श्री श्री १०८ स्वामी गुरांदित्तामल जी महाराज के उन विचारों, सिद्धान्तों एवं उपदेशों का संग्रह किया गया है कि जिनको मैं अमूल्य समझता हूं और जिनके जान लेने पर, जिनके पृथक्-पृथक् पहलुओं के महत्त्व को समझ लेने पर मनुष्य अपने जीवन की नैया को संसार सागर के भयंकर तूफ़ान से बचा सकता है, सत अमर है, उस अमृतत्त्व का लाभ हमें करना है। विकास की वेगवती धारा जो रोकने से नहीं रुकती है, विश्व को बहाये ले जारही है। ऐसी स्थिति में हम श्री स्वामी जी महाराज के बताये हुए शान्ति देने वाले सुगम मार्ग पर चलकर अपनी जीवन-यात्रा को पूरा करें।

इससे पहिले प्रथम भाग में लिखे गये व्याख्यान के अनुसार ही इस द्वितीय भाग में भी व्याख्यान तथा ज्ञान, वैराग्य के उपदेश लिखे गए हैं। अब इस में व्याख्यान माला को पहिले रख दिया गया है। ताकि सर्व प्रकार के अधिकारी स्व बुद्धि अनुसार लाभ प्राप्त करें। और जो प्रश्न विचार माला के प्रथम भाग से शेष बचरहे थे, वह भी इस में सम्मिलित कर लिये गए हैं।

दूसरे सर्व पाठक जनों तथा विद्वानों के आगे प्रार्थना है कि जो इस में सम्मिलित भाषाओं के शब्द, छन्द और गद्य में हैं उन में दोष दृष्टि न रखते हुए सारग्राही दृष्टि से अपने कल्याणार्थ इस का स्वाध्याय तथा वक्तव्य करें। प्रेम और श्रद्धा पूर्वक इसका विचार करने से सज्जन पुरुषों के लिये यह ग्रन्थ लाभ प्रद होगा; और जो कोई अक्षर तथा मात्रा छपवाते समय टूट फूट गई हो अथवा भूल से रह गई हो उस का सुधार करलें तथा दास को क्षमा करें। यह हमारी सविनय प्रार्थना है।

दो०—मात्राऐं पुन पंकती, न्यूनाधिक जो होइ। बुद्धिमानो स्वबुद्धि से, शुध करलेना सोइ
फूलन से भौंरा सदा, सार ग्रहण कर लेत। कांटा होइ जो फूल में, उसमें चित्त न देत
ग्रन्थ रूप यह फूल है, भूल चुक कांटा जान। जो गुरु मुख भौंरा बने, सार वस्तु ले छान
बार बार इस ग्रन्थ को, पढ़े सुने मन लाय। जिज्ञासा पुनि प्रगट होइ,सद्गुरु करे सहाय

॥ विषय--सूची ॥

पर्यांक विषय पृष्ठ

प्रथम काण्ड—व्याख्यान माला

१ जिज्ञासु के लक्षण ... १
२ दया ... १८
३ अहिंसा ... ३०
(१) मन की अहिंसा ... ३०
(२) वाणी की ,, ... ३३
(३) शरीर की ,, ... ३५
४ मांस भक्षण ... ४०
५ दान ... ४६
६ कृपण ... ६७
७ सेवा ... ७८
८ विक्षेप ... ६१
६ नाम ... १०१
१० विवेक ... १२३
११ वैराग्य ... १३७
देह से वैराग्य ... १४६
स्त्री से ,, ... १४६
पुत्र से ,, ... १५०
धन से ,, ... १५१
मन्दिरों से ,, ... १५३
१२ मन की प्रबलता ... १६०
१३ शम—मन रोकने के उपाय ... १६७
१४ काम ... १८८
१५ वस्तु विचार ... १६७
१६ ब्रह्मचर्य ... २०१
१७ पतिव्रत ... २१२
१८ क्रोध ... २२१
१६ क्षमा ... २३०
२० लोभ ... २३५

पर्यांक विषय पृष्ठ

२१ संतोष ... २४८
२२ प्रारब्ध कर्म पर संतुष्ट रहना ... २५६
२३ ईश्वर की आज्ञा मानना ... २६५
२४ ईश्वर पर भरोसा ... २७४
२५ मोह ... २८३
२६ मोह की निवृत्ति ... २६२
२७ अहंकार ... ३१२
२८ अहङ्कार की निवृत्ति ... ३२२
२६ कामादिक पाँचों की निवृत्ति ... ३२६

द्वितीय काण्ड—विचार माला

प्रश्नांक

३४ कर्म फ़िलौसफ़ी ... ३४०
(१) विज्ञान शास्त्रके अनुसार कर्म ३४३
(२) हमारे पापकर्मों का उत्तरदायी कौन है ? ... ३५०
(३) शुभ कर्मों का फल ... ३५२
(४) तीन प्रकार के कर्मों का नाश कैसे होता है ? ... ३५३
३५ मनुष्य के पास अमूल्य वस्तु क्या है ? ... ३५६
३६ मन के साथ प्रभु का सम्बन्ध क्या है और मिलाप कैसे होसकता है ३६१
३७ ज्ञान द्वारा मोक्ष होने पर शरीर क्यों दीखता है ... ३६७
३८ प्रारब्ध कर्म शेष रहते ज्ञान कैसे हो सकता है ... ३६८
३६ मोक्ष का हेतु कर्म है या ज्ञान या उपासना ... ३६६
४० जब माया अनन्त है तो मोक्ष होना असम्भव है ... ३७२

प्रश्नांक विषय पृष्ठ

४१ ज्ञानियों को छोड़कर सब लोग दुःखी क्यों हैं और संसार में दुःख क्यों बढ़ रहा है ··· ३७५

४२ अवस्तु रूप अज्ञान से दुःख कैसे होता है ··· ३७७

४३ ज्ञान अज्ञान किसको होता है ··· ३७८

४४ संसार रूप वृक्ष का वर्णन ··· ३७६

४५ परमधाम या परमपद की प्राप्ति कैसे हो ··· ३८२

४६ जीव एक बार सुषुप्ति में जाकर मुक्त क्यों नहीं होता ··· ३८५

४७ सृष्टि की भिन्न-भिन्न प्रतीति क्यों होती है ··· ३८६

४८ परमात्मदेव का देह से क्या सम्बन्ध है ··· ३८६

४६ योग किसे कहते हैं तथा उसे कैसे धारण करना चाहिये ··· ३६२

५० संसार में अनेक प्रकारके कर्म, धर्म, इत्यादि किस जगह आकर समाप्त होते हैं ··· ३६७

तृतीय काण्ड-विवेक माला

श्री १०८ स्वामी जी से श्रीमान् गोविंदहरि जी का मिलाप ··· ३६६

प्रश्नांक विषय पृष्ठ

१ देह ही आत्मा है ··· ४०१

२ इन्द्रिय ही आत्मा है ··· ४०५

३ प्राण ही आत्मा है ··· ४०७

४ मन ही आत्मा है ··· ४०६

५ बुद्धि ही आत्मा है ··· ४१२

६ आनन्दमय आत्मा है ··· ४१४

७ अरुन्धती न्याय किसे कहते हैं और पहले ही साक्षी आत्मा का कथन क्यों नहीं किया ··· ४१५

८ तीनों देहों का निर्णय ··· ४१७

६ बन्ध की निवृत्ति और मोक्ष प्राप्ति के कर्तव्य ··· ४२०

१० गृहस्थियों की मुक्ति का साधन ··· ४२१

श्री १०८ स्वामीजी से हुकमचन्द जी चीचावतनी वाले का मिलाप ··· ४२४

१ स्त्री को पति से भिन्न गुरु धारण करना चाहिये या नहीं ··· ४२४

" शुद्धि पत्र "

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	११	बेनती हरि	बेनती हरि प्रभ हरि
३	११	मेरे	मेरा
४	२०	वम्ल	वस्ल
१६	७	प्रासद्ध	प्रसिद्ध
३३	१	(१)	(२)
२३५	३	अरें	करें
२५४	६	फ़ीकरों	फ़क़ीरों
३८२	२७	स्वाभाव	स्वभाव
४२६	१४	मैत्री	मैत्रेयी

श्रीमान् १०८ श्री स्वामी भगवान सिंह जी महाराज

* श्री भगवान भवन ऋषिकेश *



परम शिष्य

ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय श्री १०८ स्वामी गुरांदित्तामल जी महाराज



॥ मङ्गलाचरण ॥

ॐ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

श्लो०–चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
नाद बिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥१॥
सर्व श्रुति शिरोरत्न विराजित पदाम्बुजम् ।
वेदान्ताम्बुज मार्तण्डं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥२॥
ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ॥३॥
एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधी साक्षी भूतम् ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं त्वं नमामि ॥४॥
नारायण नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जय मुदीरयेत ॥५॥
व्यासाय विष्णु रूपाय व्यास रूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्म हृदये वासिष्ठाय नमोनमः ॥६॥

॥ दसों सद्गुरुओं का मंगल ॥

कु०–नानक गुरु अंगद अमर, रामदास गुरु जान ।
अर्जुन हरि गोबिन्द जी, हरीराय सुखखान ॥
हरी राय सुख खान वही हरि कृष्ण स्वरूपा ।
तेग बहादुर धीर वीर गुरु दसवें भूपा ॥
एक ज्योति दस मूरती जामें नहिं आनक ।
सोई शुद्ध स्वरूप बसें मम हृद गुरु नानक ॥ १ ॥

दोहा–ब्रह्म प्रणाम प्रणाम गुरु, पुनि प्रणाम सब सन्त ।
करत मंगलाचरण शुभ, नाशत विघ्न अनन्त ॥ १ ॥

दो०—श्री सतगुरु किरपा करो, मैं अनाथ के नाथ ।
मम बुद्धी शुध कीजिये, निजकर धरिये माथ ॥ २ ॥
विराट रूप प्रभु आप हो, कहते वेद पुरान ।
सर्व शरीर हैं आपके, निश्चय कीया जान ॥ ३ ॥
काम जो करे शरीर यह, वह तेरे ही होय ।
अपन जानि पूरा करो, विघ्न न लागै कोय ॥ ४ ॥
ग्रंथ आरम्भन यह किया, तेरा सब कुछ मान ।
तेरे ही अर्पित करूं, तू दाता भगवान ॥ ५ ॥
ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तौ सह वीर्यं करवा वहै: ।
तेजस्वीनावधीत मस्तु मा विद्विषा वहै: ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

——(:)——

॥ आरती श्री गुरुदेव जी की ॥

ॐ जय गुरु अविनासी, पार ब्रह्म पुरुषोत्तम घट घट के वासी ॥
जन्म मरण के फन्द छुड़ावो, काम क्रोध नासी ॥ ॐ जय० ॥
चित्त चेतन की करूं एकता, पांच कोष नासी ॥ ॐ जय० ॥
पाँच कोष अरु तीन अवस्था, चहुँ वाणी भासी ॥ ॐ जय० ॥
तीन गुणों से न्यारा कहिये, सब जुग परकासी ॥ ॐ जय० ॥
अकार उकार मकार छोड़कर, अर्द्ध बिन्दु भासी ॥ ॐ जय० ॥
विराट हिरण्यगर्भ ईश्वर, सबके हो साक्षी ॥ ॐ जय० ॥
कर्म उपासना करूं कोटि विधि, मिले न सुख रासी ॥ ॐ जय० ॥
सद्गुरु स्वामीजीकी करूं आरती, मिले मोक्ष खासी ॥ ॐ जय० ॥

* १ ॐ कारसद्गुरुप्रसाद *

* व्याख्यान माला *

प्रश्नः-हे भगवान् जी ! जीवन चरित्र सिद्धान्त उपदेश भाग प्रथम में नरकों और जन्म मरण के दुःखों के भय की निवृत्ति का साधन आपने 'आत्म ज्ञान' वर्णन किया है, जिसको श्रवण करके चित्त बहुत प्रसन्न हुआ है। कृपा करके यह वर्णन करें कि आत्म ज्ञान के अधिकारी अर्थात् जिज्ञासु के क्या लक्षण हैं ?

उत्तरः-हे प्यारे अधिकारी ! जिज्ञासु वह है जो संसार के दुःखों से दुखी होकर दुःखों की निवृत्ति के लिए ईश्वर के आगे वा सद्गुरु देव जी के आगे इस प्रकार विनती करता हैः-

सतिगुरु आइओ सरणि तुहारी ।
मिलै सुख नाम हरि सोभा चिन्ता लाहि हमारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
अवर न सूझै दूजी ठाहर हारि परिओ तउ दुआरी ।
लेखा छोडि अलेखै छूटै हम निगुर्न लेहु उबारी ॥
सद बखसिन्दु सदा मिहरवाना सभना देइ अधारी ।
नानकदास सन्त पाछै परिओ राखि लेहु इहबारी ॥
[टोडी महल्ला ५ पृ० ७१३]

जैसे रोगी पुरुष वैद्य के आगे दीन होकर विनती करता है कि "मैं बहुत दुखी हूं, कोई दवाई ऐसी देवें जिससे शीघ्र हीमेरा दुःख दूर हो जावे " ऐसे ही जिज्ञासु सद्गुरु देव जी के आगे विनती करता हैः-

दो०-हौं अनाथ अतिशय दुखी, डरयो देखि संसार ।
डूबत हौं भवसिन्धु में, मोहिकरहु प्रभुपार ॥ (विचार माला)

भावार्थ–हे सद्गुरु देव जी ! संसार के दुःखों और दुखी जीवों को देखकर मुझे बहुत भय लगता है कि नाम से भूले हुए जीव कैसे दुखी हो रहे हैं। जैसे विचारे गधे प्रातः से लेकर सायंकाल तक बोझा उठाते हुए दुखी होते हैं वा तांगे के आगे घोड़े जुते हुए दुखी होते हैं और गाड़ियों के आगे भैंसे बोझा खेंचते हुए दुःख उठाते हैं। इनको देख कर मेरे को बड़ा भय होता है। हे प्रभो ! मैं अतिशय करके अनाथ हूं और संसार के जन्म मरण रूपी प्रवाह में डूब रहा हूं।

हे प्रभो ! आप कृपया मुझे नामरूपी बेड़े पर बिठाकर इस जन्म मरण रूप भयदायक संसार समुद्र से पार करो। अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति करादो। जैसे गुरुजी लिखते हैं:—

दीन दइआल सुणि बेनती हरि राइआ रामराजे।
हउ मागउ सरणि हरिनामकी हरि हरिमुखि पाइआ ॥
भगति वछलु हरि बिरदु है हरि लाज रखाइआ।
जनु नानकु सरणागती हरि नामि तराइआ॥
(आसा छन्द म० ४ पृ० ४४६)

और भी महात्मा इस प्रकार जिज्ञासु के लक्षण वर्णन करते हैं–

दो०–श्रद्धालू निर्मल हृदय, सतगुरु भगत सुजान।
आज्ञाकारी कुशल मन, जिज्ञासु बुद्धिमान ॥ १ ॥
गुण ग्राहक उज्वल मती, दोष दृष्टि ते रहित।
प्रेम प्रतीत भीनों सदा, ममता दृढ़ता सहित ॥ २ ॥
तन मन धन वाणी अरपि, सतगुरु सेवै नीत।
सतगुरु मूरति प्रेम युत, निशि दिन धारै चीत ॥ ३ ॥
सावधान सुमिरै सदा, सतगुरु को उपदेश।
निशि दिन पुरुषारथ करै, कटै अविद्या लेश ॥ ४ ॥

पुनः और महात्मा का भी लेख है:—

आशिक दी है एह निशानी दुनिया कोलों लुकै।
निन्द्या सुणि सुणि राजी होवै नेड़े कोई ना ढुकै ॥
दुनिया दे सुक्खाँ उत्ते, बिष जानके थुकै।
तार लगन दी खड़कै हर दम ख्याल ना जरा उकै ॥

किस प्रकार दुनियां के सुखों को जहर रूप जान कर थूकते हैं। इस पर संक्षेप से इतिहास श्रवण करो। नचिकेता की जिज्ञासा:–

नचिकेता नाम करके एक उद्दालक मुनि का पुत्र हुआ है। जिस समय नचिकेता पांच साल की अवस्था का हुआ उसके पिताने सर्वस्व दान करना चाहा। क्योंकि उसके पास गोधन ही था। उसने सोचा कि आधा धन तो मेरे पुत्र का है इससे मैं अपनी आधी गोएं दान करूं। तब उसने पुत्र से अधिक स्नेह होने के कारण ऐसा किया। कि जो अच्छी गोएं दूध देने वाली, हृष्ट पुष्ट और सुन्दर थीं वह तो पुत्र के वास्ते छोड़दीं और जो बृद्ध गोएं दूध देने में असमर्थ थीं उन को अपने वास्ते रखकर ब्राह्मणों के ताईं दान करना चाहा। इस प्रकार पिता का विचार देखकर नचिकेता ने विचारा कि मेरे पिता मेरे मोह के वश होकर ऐसा अशुभ काम करने लगा है, और नियम भी है कि जो किसी को सुख पहुँचाता है उसको जरूर सुख मिलता है और जो दुःख देता है उसको अवश्य दुःख ही प्राप्त होता है। इसी आशय पर गुरुजी लिखते हैं:–

'जेहा बीजे सोलुणे कर्मा संदड़ा खेतु'। (माझ मः ५ पृ० १३४)

फिर इस बात के ताईं निश्चय करने लगा कि मेरा पिता यह पुण्य नहीं करने लगा किन्तु पाप करने लगा है। क्योंकि यह गोयें बृद्ध हैं, सन्तान देने से रहित होचुकी हैं। और तृण आदिकों को भी भली प्रकार नहीं चर सकतीं। इस वास्ते इससे ब्राह्मणों को सुखकी जगह उल्टा दुःख होगा। ताते ऐसा विचार कर अपने पिता से कहने लगा "हे पिताजी! जैसे यह गोएं आपका धन हैं वैसे मैं भी तो आपका ही धन हूं। आप मेरे को किस ब्राह्मण के प्रति दोगे।" तब पिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। नचिकेता का अन्तरीव भाव यह था कि जब मेरा पिता मेरे से पूछेगा तब मैं पिता से कहुँगा। इसलिये फिर दोबारा पिता से कहा। तब उदालकने अप्रसन्न होकर कहा तेरे को यमराज के ताईं दूंगा"। ऐसा बचन पिता का सुन कर नचिकेता ने विचारा कि

मेरा पिता मेरे साथ बहुत मोह करता है। अगर मैं जाऊंगा तो मेरे को अवश्य पुण्यफल की प्राप्ति होगी ही परन्तु इसको बहुत दुःख होगा। इसलिये ऐसा काम हो जिससे पिता का सत्य बचन रूपी धर्म रहजावे। ऐसा विचार कर नचिकेता ने कहा "हे पिताजी! आपकी कुल में आपके पिता पितामह सत्यवादी हुए हैं और आपने भी कभी मिथ्या संभाषण नहीं किया। इससे आप अपना बचन पूरा करें, अर्थात् मुझे यमराज के पास भेज देवें। यह सुन कर उदालक ऋषि अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये आज्ञा देता भया जब नचिकेता अपने पिता को भक्ति के बल से तथा अपने तपके प्रभाव से स्थूल शरीर सहित गमन करता भया तब यमराज नचिकेता का आगमन जान कर दूतों को इस प्रकार कहने लगा कि हे दूतो! नचिकेता नाम करके ब्राह्मण आरहा है। तुम उस से यह कहना कि अभी तुम्हारी आयु बहुत है, इससे यमराज तुम को ग्रहण नहीं करेंगे, तुम वापिस चले जाओ। ऐसे कह कर यमराज आप कहीं बाहर चले गये"

जब नचिकेता यमपुरी में पहुँचा तब दूतों ने नचिकेता के प्रति समझाया तब नचिकेता ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण रखते हुए वापिस जाना स्वीकार न किया। और धरना मार कर ऐसे बैठ गया जैसे कि किसी प्रेमी ने कहा है।

हम यहाँ पर बैठे हैं कुछ करके हटेंगे।
या वस्ल हो जायगा या मरके उठेंगे॥

इस प्रकार दूतों से कह कर नचिकेता वहाँ पर बैठ गया। तीन दिन तक भूखा ही बैठा रहा। तीसरे दिन यमराज जब वापिस आये तो दूतों ने विनती करी कि हे महाराज आपके दरवाजे पर यह अतिथि तीन दिन का भूखा बैठा हुआ है। आप इसकी पूजा आदि से प्रसन्नता प्राप्त कीजिये वरना डर है कि आपके शुभ गुणों का कहीं नाश न हो जावें। क्योंकि उपनिषद् में ऐसे लिखा है कि अतिथि अग्नि रूप से गृहस्थ के घर में प्रवेश करता है। यदि उसका अन्न जल से आदर

सत्कार न किया जावे तो गृहस्थी के शुभ गुणों का नाश हो जाता है। ऐसे दूतों की विनती को सुन करके यमराज अति भयभीत हुए नचिकेता के पास जाकर बोले कि हे नचिकेता! मेरे घर में तीन रात्रि अतिथि होकर भोजन आदि को तुमने ग्रहण नहीं किया इस लिये तुम मेरे पर कृपा करो, जिस से मेरे शुभ गुण बने रहें। आप अपनी इच्छानुसार तीन वर माँगो। जो तुम माँगोगे सो मैं दूंगा, यह मैं सत्य कहता हूं। ऐसे जब यमराज ने कहा तब नचिकेता ने तीन वर मांगेः—

(१) प्रथम पिता की प्रसन्नता, अर्थात् मेरे आने से पिता को जो शोक हुआ है वह न रहे और जब मैं उसके पास जाऊं, तो वह अविश्वासी न हो पूर्ववत् हो। तब धर्मराज ने कहा तथास्तु यानी ऐसा ही होगा।

(२) दूसरा वर अग्नि विद्या जिससे स्वर्ग सुख आदिकों की प्राप्ति है। तब धर्मराज ने कहा कि एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। जब नचिकेता को अग्नि विद्या सुनाई गई तो नचिकेता ने ज्यों की त्यों सब विद्या सुनादी जिससे यमराज नचिकेता की ऐसी बुद्धि देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और कहा कि इसके बदले एक वर मैं तुमको और देता हूँ कि जब तक पृथ्वी पर सूर्य चन्द्र रहेंगे यह अग्नि विद्या तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध रहेगी। फिर अपने गले की मूल्यवान् माला उतार कर नचिकेता के गले में डाल दी और कहा कि अब तीसरा वर मांगो। तब नचिकेता बोलाः—

हे भगवन्! जितना भी अनात्म जगत है। सो सम्पूर्ण मृत्यु से युक्त है। परन्तु मेरे को यह संशय है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा रहता है या नहीं क्योंकि चारवाकादिक (नास्तिक) मतवाले कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा होता ही नहीं और फिर उसमें यह युक्ति बताते हैं कि यदि आत्मा देह से भिन्न हो, तो मस्तक को जब काट दिया जाता है तब जैसे ग्रीवा से रुधिर निकलता दृष्टि आता है तैसे आत्मा भी निकलता दृष्टि आना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं। इसलिये यही

जाना जाता है कि देह से भिन्न और कोई आत्मा नहीं है। (और भी नास्तिकों की युक्तियाँ अनन्त हैं परन्तु जिज्ञासु पुरुषों के लिये परमार्थ में योग्य न जानकर नास्तिकों की युक्तियाँ नहीं लिखीं हैं।) और दूसरे वेद को मानने वाले जो आस्तिक हैं वह देह से भिन्न आत्मा को मानें हैं, जैसे चित्र से भिन्न चितरेला होवे है। मेरे को दो प्रकार के मत सुन कर यह संशय उत्पन्न हुआ है कि देह से भिन्न आत्मा है या नहीं। इससे आप कृपा करके मेरे को ऐसा उपदेश करो कि जिस को सुन-कर मैं संशय रहित होकर आत्मा को जानलूँ। यह मैं तीसरा वर माँगता हूं। इस प्रकार नचिकेता के बचन को सुनकर यमराज अपने हाथ की उंगली कोभ्रमाते हुए नचिकेता की परीक्षा के लिए ऐसे बोले कि हे नचिकेता! यह जो सूक्ष्म आत्मा है। इसे देवताओं को भी जानना कठिन है। ऐसे संशय ग्रस्त वर के माँगने से तेरे को क्या लाभ? इससे तुम और कोई सुन्दर वर माँगो। इस कठिन वस्तुके पूछने से तुम को क्या मिलेगा? अर्थात् कुछ भी नहीं, इस लिये तुम इस हठ को छोड़ दो। मैं तो वर रूपी रस्सी के बन्धन से बाँधा हुआ हूं मेरे को क्लेश मत दो और इसके बदले कोई और वर माँग कर मुझे इस बन्धन से मुक्त करो।

नचिकेताने कहा "हे भगवन्! आपकहते हैं कि इस आत्म ज्ञान में देवताओं को भी संशय है और आप भी कठिन कहते हैं। फिर आप जैसा वक्ता इस संसार में दूसरा प्रतीत भी नहीं होता, जिससे मैं अपने संशयों को निवृत करूं। और इस वर से कोई दूसरा अधिक श्रेष्ठ वर भी मैं नहीं देखता हूं" जो मांगू। अब यमराज नचिकेता के वैराग्य की परीक्षा करते हैं। हे नचिकेता! तुम इस प्रकार के सुन्दर वरों में से एक वस्तु माँगलो। सो वस्तुएं यह हैं। सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र तथा पौत्र तथा पशु तथा सुन्दर हाथी व सुवर्ण व घोड़े व त्रिलोकी का राज्य व चिर जीवन व धन व अपनी स्थिर जीविका व दिव्य मनुष्य लोक में कामना की सत्य प्राप्ति व सुन्दर स्त्रियां व तिन की दासियाँ नृत्य करने वालीं, व वाजे आदिक बजाने में कुशल,

इत्यादिक वस्तु माँग लो। मैं तुझे देता हूं। और मैंने दिव्य अप्सरादिक जो भोग तुमको देने वास्ते कहे हैं तिन से आनन्द को प्राप्त हो। हे नचिकेता! बुद्धिमान वह है जो सुख देने वाली वस्तुओं को माँगे। आत्मज्ञान तो किंचित् मात्र भी सुखदेने वाला नहीं है। इससे तुम पूर्व कहे सुख के देने वाले पदार्थों को माँगो और "आत्मा मर गया है या नहीं मरा," ऐसा प्रश्न मत करो।

नचिकेता बोला हे भगवन्! जो आपने पूर्वोक्त वस्तुएं देने को कहा है सो इनमें कोई भी वस्तु स्थिर रहने वाली नहीं है। भगवान् के चरण कमलों की प्रीति अथवा ज्ञान बिना यह मनुष्य त्रिलोकी में भी दौड़ता फिरे तो भी कहीं सुख नहीं। इस पर भावरसामृत में लिखा है।

सवैया— वर कौन मंगो तुमते हरि जी थिर नाहिं रहै जग भीतर कोई।
नहिं गज रहै गज बाजि रहै तन लौं मिटिजाय पिखों जगजोई॥
बिन ते पद कंज लहे न कहूं सुख जो नर दौरि फिरै तिहुँलोई।
पद मंजुल जो सनकादि भजें तिनकी प्रभु सेव दिजै मम सोई॥

इससे यह वर नहीं माँगता, क्योंकि पूर्वोक्त वस्तुएं परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में रुकावट डालने वाली हैं। इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं:—

कुं:— राह सत्य के चलन में प्रति बन्धी बहु जान।
पुत्र स्त्री आदि धन लोक लज्जा मान॥
लोक लज्जा मान और निर्वाह का भय।
कबहूं निन्दा होइ कबहूँ होय जय जय॥
पर जिज्ञासू सत्य न राखैं इनकी चाह।
अच्छी बुरी ना सुने चले आपने राह॥

गज़ल—पिला सत गुरु नशा ऐसा जिसे दिलका बुखल१ जाये।
रहै ना होश दुनियां की पिये पाबन्द २ खुल जाये॥ १॥
फिरूं मैं मस्त मस्ताना शराबे शौक़ मस्ती में।
लगे जब वायु वहदत की ज़िकर दूई का भुल जाये॥ २॥
कहूँ मैं खुद खुदा ज़ाहिर क़तल तलवार जब चमके।
रहै नहिं खौफ़ मरने का चाहे तन खाक रुल जाये॥ ३॥
शरा पाबन्द को कट कर फिरूं आज़ाद मैं हरदम।

१ अहंकार
२ मोह की सांकल

कहे काफ़िर३ ख़लक़ मुझको मेरा मत जीव डुल जाये ॥ ४ ॥ ३ नास्तिक
श्री सतगुरु करो किरपा चमन जग खिल रहा सारे ।
बक़त है सैर करने का मत यह बाग़ गुल४ जाये ॥ ५ ॥ ४ शून्य
करो ना देर सतगुरु जी तेरा मैखाना है जारी ।
पिला भर जाम टुक जल्दी मेरा शकशुबा कुल जाये ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! यह विषय पदार्थ अनित्य हैं, दूसरे इनमें सुखकी भ्रान्ति मूर्खों को होरही है। जैसे पित्त दोषकर दूषित नेत्र वालों को सफेद शंख भी पीला प्रतीत होता है, तैसे कामी पुरुषों को दुःख रूप विषय पदार्थों में सुख प्रतीत होवै है। हे भगवन् ! स्त्री आदि भोग तो कूकर सूकर आदिक योनियों में भी प्राप्त होवें हैं, और यही भोग पुरुष की इन्द्रियों के तेज को नाश करने वाले हैं और धर्म के व मोक्ष के महान् विरोधी हैं। हे भगवन् ! मैं तो चिरकाल जीवन भी नहीं माँगता, काहेते, यह मुझे पूर्ण निश्चय है कि अति दीर्घायु वाला जो ब्रह्मा है वह भी अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है, और गाने बजाने वाली स्त्रियों की दासीगण तथा अप्सरा व पुत्र, पौत्र, हाथी, चिर-जीवन, चक्रवर्ती राज्य, धन, स्थिर जीविका आदिक पदार्थ जो आपने कहे हैं सो सर्व अपने पास रक्खो, मेरे को उनकी किंचित् मात्र भी इच्छा नहीं है। और जो आपने मेरे ताईं धन देने को कहा है सो धन से पुरुष कदापि तृप्त नहीं होता। जैसे घृत करके अग्नि और जल कर के समुद्र तृप्त नहीं होवै है, तैसे ही तृष्णालु पुरुष की तृष्णा धन करके निवृत्त नहीं होती। इसी आशय पर गुरुजी कहते हैं:—

सहस खटै लख कउ उठि धावै। तृपति न आवै माइआ पाछै पावै ॥

[गउड़ी०मः ५ पृ० २७८]

प्रथम तो आप जैसे महान् पुरुषों की प्राप्ति होनी दुर्लभ है। कदा-चित् दैवयोग से प्राप्ति हो भी जाय तो बुद्धिमान को चाहिए कि जरा मरण आदिकों से रहित वस्तु को ही माँगे। यह जो तुच्छ स्त्री सुख तथा जीवन धन आदिक हैं उनको माँगै नहीं याते इन वस्तुओं को मैं भी नहीं माँगता, क्योंकि यह स्वरूप की प्राप्ति में प्रति बन्धक हैं।

इसी आशय पर जगद्गुरु जी कहते हैं:-

जउ मागहि तउ मागहि बीआ। जाते कुसल न काहू थीआ॥
मागनि मागत एकहि माग। नानक जाते परहि पराग॥

[गउड़ी मः ५ पृ० २५८]

भावार्थ—जगद्गुरु जी उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! तेरा कल्याण इसलिये नहीं होता कि जो तू माँगता है वह झूठे स्त्री, धन पुत्र आदिक पदर्थों को ही मांगता है। यदि तेरे को मांगने की इच्छा ही है तो एक परमेश्वर की प्राप्ति को ही मांग, जिस परमेश्वर की प्राप्ति से तू संसार समुद्र से पार हो जावे"। इस प्रकार से यमराज ने नचिकेता को चलायमान किया, परन्तु फिर भी नचिकेता चलायमान न हुआ, और वह बोला कि हे भगवन् ! यामें यदि देवताओं को भी संशय है, तो ऐसी कठिन जो वस्तु आत्म ज्ञान है, उसी के सम्बन्ध में मेरा प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर रूपी वर से भिन्न तो मैं कुछ भी नहीं मांगता हूं। ऐसे योग्य अधिकारी नचिकेता को जानकर यमराज ने कहा हे नचिकेता ! या सन्सार में दो प्रकार का फल है, एक श्रेय दूसरा प्रेय। अर्थ यह है कि ज्ञान कर प्राप्त होने वाला जो नित्य फल है ता को "श्रेय" कहे हैं और मूढ पुरुषों की इच्छा का विषय तथा क्षण भगुर जो विषयानन्द है ताको "प्रेय" कहे हैं। ऐसे दोनों भिन्न भिन्न हैं, परन्तु श्रेय और प्रेय अविवेकी पुरुषों को एक रूप प्रतीत होते हैं और विवेकी को वास्तव रूप से भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार हंस पक्षी अपनी चोंच से क्षीर नीर को भिन्न भिन्न कर देवेहै तैसे विवेकी पुरुष विवेक से श्रेय प्रेय को भिन्न भिन्न जानें हैं और जानकर श्रेय रूप मोक्ष की प्राप्ति वास्ते साधन को सम्पादन करें हैं और अल्प बुद्धिवाला जो अविवेकी है सो शरीरादिकों की वृद्धि के लिये तथा भोगों की प्राप्ति के लिये कर्मों को करे है। तुमको मैंने अनेक दिव्य स्त्री, पुत्रादिक भोग देने को कहा, परन्तु तुमने अनित्य जानकर स्वीकार नहीं किये और या लोक में सर्व पुरुष धन की इच्छा रूपी जेवरी से

बाँधे हुए हैं। ता धन की इच्छा रूप जेवरी से तुम मुक्त भये हो। हे नचिकेता ! या सन्सार में कर्म तथा ज्ञान रूपी दो मार्ग हैं। उनमें से जीव कर्म से अनित्य स्वर्गादिक लोकों को प्राप्त होवें हैं। ज्ञान से नित्य मोक्ष रूपी फल को प्राप्त होवें हैं। तुमतो केवल ज्ञान को चाहते हो और भोगें में लुभायमान नहीं हुए। याते तुम धन्य हो। मैं आपकी स्तुति नहीं कर सकता। कर्म भी दो प्रकार के हैं। एक विहित, जिस को शास्त्र सुख प्राप्ति के लिये कहें हैं, दूसरा निषिद्ध कर्म, नर्क आदिकों को देने वाला है। विहित कर्म भी दो प्रकार के हैं। एक सकाम और दूसरा निष्काम। सकाम से आगे जन्म धरकर सुख की प्राप्ति होवे है और निष्काम से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होवै है। सकाम कर्मकरने वालों को आत्मा काश्रवण भी दुर्लभ है, और बहुत पुरुष भूत, भावी और वर्तमान प्रतिबन्ध सहित हुए आत्मा के श्रवण को करते हुए भी यथार्थ ब्रह्मबोध को प्राप्त नहीं होते। मन वाणी का अविषय या आत्मा का उपदेश करने वाला वक्ता भी दुर्लभ है और या आत्मा का अपरोक्ष निश्चय वाला ज्ञानवान् भी दुर्लभ है, तथा ता अपरोक्ष ज्ञानी से शिक्षा को प्राप्त हुआ जो शिष्य है सोभी दुर्लभ है। सो ऐसा शिष्य ही आत्मा के यथार्थ रूप को जाने है। ब्रह्मज्ञानी गुरु के बिना तो बहुत वार उपदेश करा हुआ भी आत्मा नहीं जाना जाता है। जैसे पत्थर को लोहे के साथ अनेक वार स्पर्श कराने से भी लोहा सोना नहीं होता तैसे अज्ञानी गुरु द्वारा अनेक बार भी उपदेश किये हुए जिज्ञासु को आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं होता। याते अज्ञानी गुरु को त्याग कर ज्ञानी गुरु से उपदेश ग्रहण कर ज्ञान का सम्पादन करना चाहिये। यह दुर्विज्ञ आत्मा अपनी तर्कों से स्वतंत्र जाना जावे नहीं। जैसे अपने मुख को देखने के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है:—

(१) शीशा, (२) प्रकाश, (३) नेत्र। इन तीनों में से एक वस्तु भी न होवे तो अपना मुख दीख नहीं सकता। तैसे वेदान्त शास्त्र, सद्गुरु तथा जिज्ञासु की शुद्ध बुद्धि रूपी नेत्र करके आत्मा जाना जावे है, और

इस आत्मा के ज्ञान से ही जन्म मरण की निवृति होवै है।

हे नचिकेता ! श्रुति विरुद्ध तर्कें तो उलटा ज्ञान में प्रतिबन्धक हैं। तिन शुष्क तर्कों से आत्मा जानना अति कठिन है। याते श्रुति भगवती बारम्बार ब्रह्मवेत्ता आचार्य की शरण को ही ज्ञान प्राप्ति के लिये कथन करे है। हे नचिकेता ! जैसे तुम अपने पुण्यों के प्रताप से धैर्य को प्राप्त भये हो तैसे किसी पुरुष का तीन काल यानी भूत, भविष्य और वर्तमान में होना दुर्लभ है। देखो, मैंने अनेक प्रकार के पदार्थ तुमको देने चाहे, परन्तु तुमने सर्व का त्याग कर दिया। ताते तुम्हारे जैसा शिष्य होना अति दुर्लभ है। यह ही जिज्ञासु के लक्षण हैं। इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं:—

कु०— आशा एकहिं ब्रह्म की, जिसे मिलन की होइ।
और आश राखै नहीं, जिज्ञासू है सोइ॥
जिज्ञासू है सोइ प्रेम जिहि आठों याम।
और चाह नहिंउठै, चाहराखे एकह राम॥
श्रद्धा प्रेम संयुक्त, जाइ सतगुरु के पासा।
सुन धारै उपदेश तभी ह्वै पूरन आसा॥

हे नचिकेता ! दूसरे पुरुषों की तो क्या वार्ता है, मुझ में भी तेरे जैसा धैर्य नहीं है। काहे ते मेरे हृदय में स्थित जो ब्रह्मानन्द है उसको नित्य अपरोक्ष जानता हूं और कर्मों के फलरूप सर्व पदार्थ अनित्य हैं, ऐसे भी जानता हूं; परन्तु मेरे में तेरेजैसी पदार्थों में त्याग बुद्धि नहीं है। यह पुरुष तो यज्ञ आदिक कर्म करके मोक्ष रूपी नित्य फल को प्राप्त होवै नहीं, ऐसे जान करके भी मैंने अग्नि साध्य यज्ञ आदि अनेक कर्म करे, और तिन कर्मों कर के इस लोकपाल पदवी को और सर्व ऐश्वर्य को पाप्त हुआ हूं और सर्व जगत का नियंता हुआ हूं और अभय रूपी पदवी को तथा अणिमादिक सिद्धियों को प्राप्त हुआ हूं। सो सर्व पदार्थ तुम को मैं ने दिये भी, परन्तु तुमने सर्व पदार्थों को अनित्य जानकर उनका त्याग ही किया है। ताते तुम्हारे धैर्य की स्तुति मैं नहीं कर सकता। हे नचिकेता ! जिस आत्मा के जानने के लिये तुमने सर्व

पदार्थों का त्याग किया है उस आत्मा को श्रवण करो। यह जो अति सूक्ष्म आत्मा है इसका प्रत्यक्ष करना अति कठिन है और बाह्य पदार्थों के ज्ञान से आत्मा नहीं जाना जाता। सर्व की बुद्धि रूपी गुहा में स्थित है और बुद्धि भी तो इस शरीर में ही है. याते शरीर में स्थित है। ऐसे आत्मा के ज्ञान से ही स्वयंप्रकाश आत्मा को विवेकी पुरुष जानता हुआ हर्ष शोक आदिकों की निवृत्ति करे है। या आत्मा को सत् शास्त्र तथा महात्माओं के उपदेश से श्रवण करके शरीर आदिकों से भिन्न जाने। साक्षी को ब्रह्म रूप से जानते हुए अधिकारी परमानन्द को प्राप्त होवे है। ऐसे ब्रह्म रूपी मन्दिर की प्राप्ति के लिये हे नचिकेता! तुम्हारे को हम खुलाद्वार मानते हैं। भाव यह कि तुम मोक्ष के योग्य हो। यह नचिकेता व यमराज का प्रसंग संक्षेप में प्रमाण रूप से जिज्ञासा सिद्ध करने के लिये वर्णन किया है। विस्तार से देखना हो तो आत्म पुराण में देखो। जिज्ञासा के लक्षण और महात्मा भी लिखते हैं:—

दो०— शिष्य उसी को जानिये, मन की मैल हटाय।
शिक्षा गुरुकी धारके, निशिदिन ध्यान लगाय॥ १॥
सुनै जभी उपदेश गुरु, करै मनन निदूध्यान।
गुरु की आज्ञा सिर धरै, शीघ्र होइ कल्यान॥ २॥

आसावरी— हे मन ग़ाफ़ला विचग़फ़लत सुत्तों, इसग़फ़लत भला न करना।
साईं नालों पाय विछोड़ा, जनम जनम बिच मरना॥
सन्तां वालियाँ रहितां रह कर, इस मारग को तरना।
सेवादास भगति अद्भुत पाई, मिलिके सतगुरु चरना॥

प्रभु के आगे विनती करते हैं:—

पकड़ उठाल असानूं साईं असी सुत्ते नींद कुवल्ली।
निद्रा बिन निद्राकुल होइ मत असाडी छल्लीं॥
ठगां चोरांनूं मित कर जाता, वस्तु खोहाई भल्ली।
जिना कोलों नित नसना बणदा, सुरति तिना नाल रल्ली॥

परमेश्वर प्राप्ति की इच्छावाले विषयों को ठग जान कर भली वस्तु (शुभगुणों) का नाश नहीं करते, किन्तु नित्य प्रति बढ़ाते हैं, जिससे

उनका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है। अन्तःकरण शुद्ध होने से उनको वैराग्य होता है और ऐसे शुभ विचार पैदा होते हैं जैसे इतिहास में लिखा है:—

एक शुभ संतति नाम करके राजा हुआ है। उसको पूर्व पुण्यों के प्रताप कर, जब जिज्ञासा हुई तो यह सोचने लगा कि मैंने बाल्यावस्था तो खेलों में गँवा दी है और युवा अवस्था विषय भोगों में गँवाई है। अब मेरे सफ़ेद बाल हो चले हैं, इसलिये अब तो अवश्य मृत्यु होगी। यदि मैं अब भी ग़फ़लत में रहा तो पछताना होगा। जैसे सन्त वचनः—

सवैया—संत सदा उपदेश बतावत केश सबै शिर श्वेत भये हैं।
तू ममता अजहूँ नहिं छोड़त मौतने आय संदेश दये हैं॥
आजुकि कालि चलै उठि मूरख तेरेही देखत केते गये हैं।
सुन्दर क्यों नहिं राम सम्हारत या जगमें कहु कौन रहे हैं॥

इससे राज्य को त्याग करके अपने निज स्वरूप को जानूँ और तीन लोक का राज्य अपने तीनों पुत्रों को बांट दूं।

चौ०—अस विचार शुभ संतति कीना। मंत्रि पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना॥
देश इकान्त समीप बुलाये। निज विराग के वचन सुनाये॥
भाषेउ पुनि यह राज सँभारहु। इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु॥
अपर बसहु काशी श्रुति स्वामी। रहत जहाँ शिव अन्तर्यामी॥
जिहिं मरतहिं सुनि शिव उपदेशा। अनयासहिं तिहि लोक प्रवेशा॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकाशै। उतरवाहिनी अधिक उजासै॥

सवैया—राज समाज तजौं सब मैं, अब जानि हिये दुःख ताहि असारा॥
और तु लोक दुःखी अपने दुःख, मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा॥
जे भगवान प्रधान अजान, समान दरिद्रन तें जन सारा॥
हेतु विचारि हिये जग के भग, त्यागि लखूँ निज रूप सुखारा॥

टीका—अब जितना राज समाज है तिसको मैं अपने हृदय में दुःखरूप और मिथ्या जानके त्याग करताहूं। और लोक तो अपने-अपने दुःखों करके दुःखी हैं; परन्तु मैं जगत के अपार क्लेशों को भोग रहा हूं। जो पुरुष भगवान् प्रधान कहिये ऐश्वर्य वानों के मध्य मुख्य हैं और

अजान कहिये अज्ञानी हैं। "ते सारा जन" कहिये वे सर्व जन दरिद्री जनों के तुल्य अन्तर से दुःखी हैं। इसलिये मैं अपने हृदय में इसहेतु को विचार कर संसार के तुच्छ आनन्द दायक भोगों का त्याग करता हूं, जिससे अपने स्वरूप को जान जाऊं जो श्रेष्ठ सुखों का कारण है।

सवैया–वाक्य अनन्त कहे इमतात, सुने तिहुँ भ्रात सुबुद्धि निधाना।
बैठि इकन्त विचार अपार, भनें पुनि आपस माँहि सुजाना॥
दे दुःख मूल समाज हमें यह, आपु भये चह ब्रह्म समाना॥
सो जन नागर बुद्धि को सागर, आगर दुःख तजै जो जहाना।

टीका–इह प्रकार शुभ संतति राजा ने अनेक वाक्य अपने पुत्रों के ताईं कहे सो श्रेष्ठ बुद्धि के भंडार जो तीन भाई हैं तिन्होंने सुने। तब एकान्त स्थान में बैठकर पहिले अकेले अकेले ने विचार किया, पुनः आपस में बैठकर तीनों ने विचारा कि यह हमारा पिता दुःखों की मूल राज्य सामग्री हमें देकर आप ब्रह्मरूप होना चाहता है। जो पुरुष दुःख आने से पहिले दुःखों का जो घर संसार है तिसको त्याग देवे सो पुरुष बुद्धि का सागर और चतुर होवै है। जैसे लिखा है:–

दो०–दुख की खानि संसार है, ताप पाप भण्डार।
जो इसमें आसक्त रहि, पावै कष्ट अपार॥
है जग दुख की खान ही, पुण्य करै नर जोइ।
ब्रह्म रूप सुख विषय में, हेरत है जन सोय॥

इसी आशय पर वैराग्य शतक में लिखा है:–

चौ०–तीन अवस्था तीन काल में। नहिं अवलोकत सुख कतहूं में।
अज चींटी ते ले भव जेतो। सर्व दुःख कर संयुत तेतो॥
सुख स्वरूप है एक निजातम। इतर दुःख मय सर्व अनातम॥
तांसुख अते किते सुख जोलव। तौतुम भनो जनो निज अनुभव॥
जो तुम सुखके प्रापति कारण। सहो दुःखते दुख तर दारुण॥
मरण प्रयन्त कष्ट अति पावो। सुखी स्वसुखते कभी न गावो॥

दो०–जेते सुख सत लोक लौं, तेते देत कलेश।
आतम सुखते अने सुख, किने नहीं लवलेश॥

इस प्रकार विचार कर तीनों भाई दुःखों के मूल रूप इस राज्य को त्यागकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति रूप अपना काम करने को घर से निकल गये। क्योंकि दुःखों में प्रवृत्त होकर पीछे छोड़ना बुद्धिमानी नहीं, इसलिये वह पहिले ही छोड़ कर चले गये। जैसे हाथों को कीचड़ में भर कर फिर धोना पड़ता है, इससे पुरुष को चाहिये कि अपने हाथों को कीचड़ में पहिले ही न भरे; क्योंकि जिज्ञासु को यह विचार होता है कि विषय सुख अनित्य है। जब तक विषय सुख होवे है तब तक कोई न कोई दुःख अवश्य रहे है और परिणाम में यह विनाशी सुख 'दुःख का हेतु' है और वर्तमान काल में भी नाश के भय से दुःख का हेतु है। इसरीति से विषय सुख, दुःख से ग्रसा हुआ है, याते दुःखरूप है। दुःखों की निवृत्ति लौकिक उपाय से होवै नहीं; काहेते जो उपाय करते हैं तिन के भी सारे दुःख निवृत्त होते नहीं, और निवृत हुए भी फेर होवे हैं। और जब पर्यन्त शरीर है तब पर्यन्त दुःख की निवृत्ति होती भी नहीं; क्योंकि जो शरीर हैं सो सारे पुण्य और पाप से होवें हैं। मनुष्य शरीर तो मिश्रित कर्म का फल प्रसिद्ध है और देव शरीर भी मिश्रित कर्म का ही फल है:–

१–जो केवल पुण्य का फल देव शरीर होवे तो अपने से अधिक अन्यदेव की विभूति को देख के जो देवन को ताप होवे है और अपने से न्यून देवताओं को देखकर अभिमान होवे है सो नहीं हुआ चाहिये। और होवे है।

२–इन्द्र आदिकें की पराधीनता रहे है।

३–पुण्यक्षीण होने पर नीचे गिरने का भय होवै है सो नहीं हुआ चाहिये। और सर्व देवन में प्रधान जो इन्द्र है ताको भी अनेक दैत्यों का भय रहे है, यह शास्त्र में लिखा है।

जो देव शरीर केवल पुण्य का ही फल होवे तो देवन को दुःख नहीं हुआ चाहिये। याते देव शरीर भी पुण्य और पाप का ही फल होता है। जो शास्त्रों में कहा है कि देवता पाप रहित हैं ताका यह

अभिप्राय है कि कर्म का अधिकार केवल मनुष्य शरीर में है, और शरीर में नहीं; याते देव शरीर में किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ-कर्म है तिसका फल देवन को होवै नहीं। देव शरीर से पहिले शरीर में किये हुए जो शुभ और अशुभ कर्म हैं तिनका फल तो देवन को भी होवै है। इस रीति से देव शरीर मिश्रित कर्म का फल है। और तिर्यक् पशु पक्षी का शरीर भी मिश्रित कर्म का फल है। काहेते जो तिनको प्रसिद्ध दुःख है सो तो पाप का फल है और जो किंचित् सुख मैथुन आदिक का है सो पुण्य का फल है। उदर से जो गमन करें हैं सो तिर्यक् कहिये हैं, पंख से जो गमन करें सो पक्षी कहिये हैं और जो चार पाद से गमन करें सो पशु कहिये हैं। कहीं पशु पक्षी भी तिर्यक् ही कहे हैं। इस रीति से सर्व शरीर पुण्य और पापों से रचित हैं। कोई शरीर तो थोड़े पाप और अधिक पुण्यों कर रचित हैं; जैसे देव शरीर में पुण्यों की विशेषता है, इस कर के देव शरीर पुण्यों कर रचित कहे हैं। जैसे बहुत ब्राह्मण जिस नगर में होवें तिस को ब्राह्मण ग्राम कहिये है, तैसे अधिक पुण्य का फल देव शरीर होने से देव शरीर पुण्य का फल कहिये है, केवल पुण्यों का फल नहीं। तिर्यक् पशु पक्षी का शरीर अधिक पाप और न्यून पुण्य से रचित है। जो उत्तम मनुष्य हैं तिन के पुण्य अधिक हैं। तिनकी देवन के समान रीति है और नीचन की रीति सर्पादिकों के समान है। इस रीति से सर्व जीवों के शरीर पुण्य पाप से रचित हैं। पापों का फल दुःख है, याते जब पर्यन्त शरीर रहे तब पर्यन्त दुःख की निवृत्ति होवै नहीं। सो शरीर धर्म और अधर्म का फल है; पाप पुण्य की निवृत्ति बिना शरीर की निवृत्ति होवे नहीं। क्योंकि वर्तमान शरीर के दूर हुए भी पुण्य और पाप से पुनः शरीर प्राप्त होवेगा, याते पुण्य पाप की निवृत्ति बिना शरीर की निवृत्ति होवै नहीं। सो पुण्य पाप राग द्वेष के नाश बिना दूर होवै नहीं। यदि वर्तमान पुण्य पाप भोगने से निवृत्ति हो भी जावे तो भी राग द्वेष से और पुण्य पाप होजावेंगे। याते राग द्वेष की निवृत्ति बिना पुण्य पाप

दूर होवे नहीं। सो राग द्वेष 'अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान' से होवे हैं। जहाँ अनुकूल ज्ञान होवे तहाँ राग होवे है और जहाँ प्रतिकूल ज्ञान होवे तहाँ द्वेष होवे है। याते अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान की निवृत्ति बिना राग द्वेष की निवृत्ति होवे नहीं। सो अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान 'भेद ज्ञान' से होवे है; क्योंकि जिस वस्तु को अपने स्वरूप से भिन्न जाने है ताके विषे अनुकूल ज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवे है। अपने स्वरूप में अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान होवे नहीं। सुख के साधन का नाम अनुकूल ज्ञान है और दुःख के साधन का नाम प्रतिकूल ज्ञान है। अपना स्वरूप सुख अथवा दुःख का साधन नहीं। यद्यपि सुख स्वरूप तो है तथापि सुख का साधन नहीं। याते स्वरूप से भिन्न जो वस्तु जानी है तिस विषे अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान होवे है। सो अनुकूल प्रतिकूल ज्ञान अविद्या करके है; क्योंकि सम्पूर्ण प्रपंच और उस प्रपंच का ज्ञान स्वरूप के अज्ञान काल में है। यह सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों का ढिंढोरा है।

इस रीति से सम्पूर्ण दुःखों का हेतु स्वरूप का अज्ञान है। सो स्वरूप का अज्ञान 'स्वरूपज्ञान' बिना दूर होवे नहीं; क्योंकि जा वस्तु का अज्ञान होवे है सो ता वस्तु के ज्ञान से दूर होवे है। जैसे रज्जु का अज्ञान रज्जु के ज्ञान से ही दूर होवे है, और से नहीं। याते स्वरूप का ज्ञान ही अज्ञान निवृत्ति द्वारा दुःख की निवृत्ति का हेतु है। और स्वरूप ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति होवे है। सो ब्रह्म नित्य है, आनन्द स्वरूप है और दुःख सम्बन्ध से रहित है। इसरीति से दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति का हेतु स्वरूप का ज्ञान ही है। याते स्वरूप का ज्ञान होना ही अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा जिसको विवेक होवे सो जिज्ञासु कहिये है। ताते सिद्ध हुआ कि जिसने सन्सार के विषय पदार्थों को असार जान के दुःखरूप समझा है और उससे वैराग्य धारण किया है वही जिज्ञासु है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

दया

शास्त्रों में जिज्ञासु के लक्षण इस प्रकार भी वर्णन किये गये हैं कि "जिसके अन्तःकरण में मल और विक्षेप दोष नहीं हैं, केवल आवरण ही है और चारों साधन सम्पन्न है; वह जिज्ञासुज्ञान का अधिकारी है।"

प्रश्नः–हे भगवन् जी! मल, विक्षेप, आवरण और चार साधनों का स्वरूप आप भिन्न भिन्न करके वर्णन करें। और 'मल विक्षेप की निवृत्ति कैसे हो सकती है,' कृपया यह भी कहें।

उत्तरः–हे प्यारे! मल नाम पापों का है। जैसे जल में गदला पन हो तो सूर्य का आभास नज़र नहीं आता, तैसे ही जब तक पापों से अन्तः करण मलिन है तब तक आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु उस मलिनता की निवृत्ति निष्काम कर्म, दया, दान, परोपकार और सेवादि से हो सकती है।

शास्त्रों में लिखा है कि डेढ़ ही पाप है और डेढ़ ही पुण्य है। आत्मा का न जानना ही सारा पाप है और आत्मा का जानना ही सारा पुण्य है। आधा पाप 'जीवों को दुःख देना' है और आधा पुण्य 'जीवों को सुख देना' है। गुरुजी लिखते हैंः–

अठ सठि तीरथ सगल पुंन, जीअ दइआ परवानु।
जिसनों देवै दइआ करि, सोई पुरखु सुजानु॥ [माँझ मः ५ पृ० १३६]

भावार्थ–मुख्य जो अठसठ तीर्थ हैं तिन सब का फल एक ओर और जो जीवों पर दया करनी है वह एक ओर। किन्तु तीर्थों से भी

'जो जीवों की रक्षा करनी है' उसका अधिक फल होता है। इस पर इतिहास वर्णन करते हैं।

एक महात्मा की कुटिया के पास पानी का भरा हुआ एक कच्चा तालाब था। एक दिन वहां पर एक धीवर ने मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल डाला। महात्मा नें देखकर कहा कि हे पापी! यह पाप क्यों कर रहा है? तब उसने कहा कि पेट ही सब पाप कराता है। महात्मा ने कहा, "पेट की पालना अन्न से होती है"। उसने कहा "मुझे अन्न ही नहीं मिलता, तभी तो यह जीव पकड़ कर और इनको बेचकर निर्वाह करता हूं"। महात्मा ने कहा, "अन्न हमारे से ले लिया कर और इन जीवों को मारना छोड़दे"। तब उसने जाल फैंक दिया और वहां ही रहने लगा। वहां पर सेवा व सत्संग करते करते कुछ समय बीत गया। एक दिन विनती करी कि हे महाराज! और लोगों को आप उपदेश मंत्र देते हैं मुझपर भी आप कृपा करें। तब महात्मा ने सोचा कि इसने पाप कर्म बहुत किये हैं, जब तक इससे बहिरंग साधन न कराये जावें तब तक नाम जपने में इसका मन नहीं लगेगा; दूसरे इसको श्रद्धा भी देखनी आवश्यक है। यह विचार कर महात्मा ने कहा कि हे प्यारे! प्रथम तुम तीर्थ यात्रा कर आओ, साथ ही हमारी लष्टिका को भी स्नान कराना। जिस स्थान पर यह लष्टिका हरी हो जावे वहां से वापिस आजाना। फिर हम तुमको उपदेश मंत्र देंगे। उसने "सत्य वचन" कहा और लष्टिका लेकर चल पड़ा। चलते चलते रात पड़गई तो किसी गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो रहा। कुछ रात्रि व्यतीत होने पर उसी वृक्ष के समीप दो पुरुष आये और परस्पर इस प्रकार से बातें करने लगे। "इस गांव को हम इस ओर से आग लगावें, क्योंकि इस समय वायु भी तीव्र चल रही है, इससे सारा गांव जल जावेगा। आज हमको बहुत अच्छा अवसर मिला है। यह हमारे शत्रु हैं।" इन बातों को वह धीवर सुन रहा था। उसने विचार किया कि यह अत्याचारी बहुत बुरा विचार कर रहे हैं। इस गांव में अनेक ही जीव, मनुष्य और पशु

आदिक हैं। इस अग्नि के लगने से सब ही जलकर मर जावेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। परन्तु, फिर विचारा, कि मेरे कहने से तो यह मानेंगे नहीं। चलो पहले भी मैंने अनेक पाप किये ही हैं, यह भी उनके साथ ही सही, इस समय इनको मारकर गाँव के अनेक जीवों को बचालूं। ऐसा विचार कर चुपके से पीछे को ओर से आकर उनको उस लष्टिका से मार डाला और लष्टिका को अपने पास रख कर सो रहा। जब प्रातःकाल उठकर देखा तो उस लष्टिकासे शाखें निकली हुई पाईं। अब विचारने लगा कि महात्माजीने कहा था कि जिस स्थान पर लष्टिका हरी हो जावे, वापिस आजाना। इससे अब मेरी आगे जाने की कोई आवश्यकता नहीं रही। यह विचार कर उसी स्थान से लौट आया और महात्मा के पास आकर लष्टिका रखदी और दण्डवत् प्रणाम कर के बैठगया। तब महात्मा ने कहा कि तुझको तीर्थ यात्रा के लिये भेजा था, तू वापिस क्यों आगया? तो उसने कहा, "महाराज जी! आपने कहा था कि जिस स्थान पर लष्टिका हरी होजावे वहाँ से लौट आना" सो लष्टिका हरी होगई है। महात्मा ने पूछा "कैसे हरी हुई है।" तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। महात्मा ने कहा, "तेरे पापोंसे यह पुण्य बढ़गया है, इससे लष्टिका हरी होगई है; क्योंकि तूने दो अत्याचारी पुरुषों को मार कर अनेक जीवों की रक्षा की है, इससे तेरा पुण्य बढ़ गया है।" तब उसको उपदेश दिया। देखो, यह सब दया का ही प्रताप है। धर्म करने के लिये अनेकों साधन किये जाते हैं; परन्तु धर्म का मूल यह "दया" ही है। इस पर गुसाईं जी भी कहते हैं:—

दो०—दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घटमें प्रान॥

चौ०—उपजै धर्म वाक्य सत कर अति। दया दान कर धर्म बढै निति॥
इस्थिति धर्म क्षमा के संगा। धर्म क्रोध करि होत विभंगा॥

क्रोध करने से कैसे धर्म का नाश होता है और दया करने से कैसे धर्म बढता है, इस पर संक्षेप से इतिहास लिखते हैं।

एक राजा शिकार के लिये जंगल में गया। आगे एक साधु धूनी तपा कर भजन कररहा था। राजाने घोड़े से उतर कर नमस्कार की और बैठ गया; फिर पूछा, "महाराज जी ! आप कबसे यहाँ बैठे हैं और कब तक बैठना है ?" उसने कहा, "सात वर्ष होगये हैं, पाँच वर्ष और बैठने का विचार है। मैंने प्रण करके यह सूखा खूँटा गाढ़ा है, कि जब यह हरा होगा तो मैं समझ लूँगा कि अब मेरी भक्ति ईश्वर को स्वीकार होगई है।" राजा ने पूछा, "कुछ हरा भी हुआ है ?" साधू ने कहाकि उंगली के पोटे समान शाखा निकली है। यह सुनकर राजा को भी भक्ति करने की इच्छा हुई। फिर उस साधु से कहने लगा, "मैंने दुनियाँ के बहुतेरे सुख भोगे हैं, अब मेरा भी विचार होगया है कि मैं भी ईश्वर का भजन करके अपना जन्म सफल करूं।" ऐसे कहकर वह राजा भी आध मील की दूरी पर अपनी बर्छी गाढ़कर यह प्रण करके बैठ गया कि जब यह हरी होगी तब मैं उठूँगा और यह समझूँगा कि अब मेरी तपस्या ईश्वर को स्वीकार होगई है। जब भक्ति करते आठ दिन बीत गये तो रात के समय आँधी और वर्षा आरम्भ होगई। कुछ यात्री मार्ग भूलकर दुःखी हुए उस ओर भटक रहे थे कि उनकी दृष्टि एक चमकती हुई धूनी पर पड़ गई। यात्रियों ने वहां पहुँचकर विनती करी कि हे महाराज हम यात्री मार्ग भूल गये हैं और शीत से बड़े दुःखी हो रहे हैं। आप इस स्थान से परिचित हैं; कृपा करके हमें किसी ग्राम का मार्ग बता दीजिये। यह सुनकर साधु बड़े क्रोध से बोला "क्या हम तुमको मार्ग बताने के लिये यहाँ बैठे हैं ! हमारे भजन में तुमने विघ्न डाला है, अभी यहाँ से चले जाओ।" यह सुनकर उन यात्रियों को आगे से भी अधिक दुःख हुआ और निराश हो गये। इतने में उस राजा की धूनी चमकी; तब यात्रियों ने सोचा कि अब दूसरी ओर चलें, कदाचित् उसके मनमें ही दया आजावे और हम को मार्ग बतलादे। चलते चलते वहाँ पहुँचे और विनती की कि हे संत जी महाराज ! हम यात्री हैं, शीत से बड़े दुःखो होरहे हैं; और मार्ग भूल गये हैं; आप कृपा कर

के हमको किसी ग्राम का मार्ग बता दीजिये। तब राजा ने (जो संतरूप में था) सत्कार से कहा, "आओ मित्रो! मैं आप के साथ जाकर पहुँचा आता हूं।" क्योंकि ईश्वर भक्तों के ऐसे लक्षण कहे हैं। जैसे लिखा है:—

दोहा— हसि बोले आदर करे, आवत देखि अतीत।
तुलसी ताहि पिछानिये, परमेश्वर की प्रीत ॥ १ ॥
परमेश्वर के भगत की, प्रथमै यही पिछान।
आप अमानी ह्वै रहै, देत और को मान ॥ २ ॥

ऐसे प्रेम मय वचन सुनकर उनका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और आधा दुःख उनका उसी समय दूर होगया। राजा (सन्त) उनके साथ चल पड़ा और शहर में मुसाफिर खाने के अन्दर ले गया; फिर उनको आग जलादी और उनके कपड़े भी सुखादिये। इस प्रकार की सेवा हुई देख वह बड़े प्रसन्न हुए। इतने में प्रातःकाल होगया तो राजा (सन्त) उन यात्रियों से आज्ञा लेकर जब लौटकर अपनी धूनी पर आया तो क्या देखता है कि बर्छी हरी भरी होकर लहलहा रही है। वह सोचने लगा कि आज रात को अमृत वर्षा हुई है जिससे यह बर्छी हरी भरी होगई है। चलें उस महात्मा का खूँटा भी देखें। वह भी तो हरा होगया होगा। राजा (सन्त) ऐसा विचार कर उस साधु के पास गया और जाकर कहा कि महाराज! आप को खूँटा हरा होने की बधाई है। आगे से साधु ने कहा कि मेरे से विलास क्यों करते हो? क्या तुम्हारी बर्छी हरी होगई है? उत्तर में राजा ने कहा, "हाँ महाराज जी! इसी लिये तो मैंने आपको बधाई दी है, परन्तु आपने इस बात को विलास समझा है; आप अपना खूँटा देखिये तो सही। मेरा विचार है कि आपका खूँटा भी अवश्य ही हरा होगया होगा, क्योंकि रात को अमृत की वर्षा हुई है। उस साधु ने जब कपड़ा उठा कर देखा तो जो शाख पहिले हरी भरी निकली हुई थी वह भी जल करके राख हो गई है। ऐसा देख कर वह साधु रुदन करने लगा और राजा (सन्त) से कहा कि तुमने

आज ऐसा कौनसा काम किया है जिससे तुम्हारी बर्छी हरी भरी होगई है। तब राजा (सन्त)ने रात्रिके यात्रियों वाला सारा प्रकरण सुनादिया। यह सुनकर वह सन्त बोला कि वह यात्री पहिले मेरे पास आये थे। मैंने उनके ऊपर क्रोध किया। तब राजा (सन्त) बोला कि तेरे तप के नाश होने का यही कारण है, जो तुमने उनका दिल दुःखी किया महापुरुषों का यह लेख है:—

दिल में अगर रहम नहीं सारी इबादत बेकार ।
दिल में अगर रहम नहीं सारी रिआज़त* बेकार ॥
कभी रहमत और बरकत नहीं पायगा ।
जो किसी का दिल दुखायगा तो सज़ा पायगा ॥
पुनः— दरद बन्द दरवेश है बेदरद कसाई ॥

* तप

गुरु जी लिखते हैं :—

दइआ जाणै जीअ की किछु पुंन दानु करेइ ॥ [आसाकी वार पृ० ४६८]

एक समय योगियों ने गुरु नानक देव जी से प्रश्न किया कि हमारे मत में भण्डारिन होती है जो बने हुए भोजन को बांटती है; आपकी भण्डारिन कौन है ? इस पर गुरु महाराज जी कथन करते हैं:—

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि ॥ (जपुजी साहिब पृ० ६)

हे योगियो ! तुम्हारे मत में बने हुए भोजन को "भुक्त" कहते हैं और हमारे अन्तःकरण की वृत्ति जो ब्रह्माकार हुई तथा 'सर्वत्र में परिपूर्ण देखना' यही ज्ञान रूपी भुक्त करी है। अर्थात् हम आत्म सुख कर के तृप्त हुए हैं, और सबको प्रभु का स्वरूप जानकर सर्व भूत प्राणियों पर दया करनी, यही हमने भण्डारिन बनाई है। भाव—दया ही ज्ञान आदिक गुणों और भोग आदिकों के देने वाली है। कैसे ? दया करने से भोग और मोक्ष प्राप्त होवें हैं। इस पर इतिहास वर्णन करते हैं:—

अलप्तगीन बादशाह ग़ज़नी वाले के एक गुलाम सुबुक्तगीन को दया करने से बादशाही प्राप्त हुई। एक दिन सुबुक्तगीन शिकारके लिये जंगल में गया। एक मृगी व उसके बच्चे के पीछे उसने अपना घोड़ा छोड़ा। मृगी तो छलांगें मारती हुई कुछ दूर निकल गई, परन्तु बच्चे को

सुबुक्तगीन ने पकड़ लिया मृगी ने जब पीछे देखा तो उस को मालूम हुआ कि शिकारी ने बच्चे को पकड़ लिया है। ममता की मारी शिकारी के पीछे पीछे चल पड़ी। उधर सुबुक्तगीन उस बच्चे को अपनी काठी पर रखकर ले जारहा था तो पीछे मुड़ कर देखा कि पीछे पीछे ममता की मारी मृगी भी आरही है और दीन दृष्टि से बच्चे को छुड़ाने की याचना कर रही है। कभी पास आजाती है और कभी भय से भाग जाती है। मृगी की ऐसी अवस्था देखकर उसको विचार हुआ कि जैसे हमको अपने बच्चे प्यारे हैं वैसे इसको भी अपना बच्चा प्यारा है। देखो इस को अपने मरने का विचार भी नहीं। ऐसा दृश्य देखकर उसको दया आगई और बच्चे को नीचे छोड़ दिया। तब मृगी अपने बच्चे को लेकर चल पड़ी। वह उस समय शिकारी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती थी और बारम्बार पीछे मुड़ कर उसकी ओर देखती थी। ऐसा देखकर सुबुक्तगीन ने भी समझा कि ईश्वर की कृपा से आज मेरे द्वारा यह शुभ कार्य हुआ। जब रात्रि को अपने घर आकर सोगया तो उसको स्वप्न में एक दिव्य मूर्ति का दर्शन हुआ। उसने कहा कि मृगी के बच्चे पर दया करने के बदले तुमको ग़ज़नी का राज्य मिलेगा। वह गुलाम (सेवक) नमक हलाल (स्वामी भक्त) के कारण बादशाह को पहिले ही प्यारा था दूसरे दिन दया धर्म के प्रताप से बादशाह ने अपना सेनापति बना दिया। कुछ समय के उपरान्त लड़की से उसका विवाह भी कर दिया। दया के प्रतापसे ही उसको ग़ज़नीका राज्यभी प्राप्त हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि दया सांसारिक आनन्दको भी देने वाली है। इसीलिये महात्मा दया करने के लिये बारम्बार उपदेश करते हैं:-

भजनः- आगे समझ पड़ेगी भाई, आगे समझ पड़ेगी ॥ टेक ॥

यहाँ अहार उदर भर खाये बहुविधि मास बढ़ाई।
तुम पर दया कहाँ से होगी तुमको दया न आई ॥
यहाँ तो पर धन लूटि लेत हो गलबिच फाँसी पाई।
साधु संगत की निंदा कीती अपना जनम गँवाई ॥
पैर पैर पर काँटा लगत है यह फल आगे आई।

कहत कबीर सुनो भाई साधो यह दुनियाँ दुचिताई ॥
साँच कहें तो मारे जावें झूठे जग पत्याई ॥

दो०— अपनाहित सबको चहै, परहित चहै न कोय ।
परहित जो चाहै सदा, मुक्ति तिसी की होय ॥

दया धर्म द्वारा चित्त शुद्धि होने पर ज्ञान द्वारा मोक्ष होती है:—

जैसे रूम देश के बसरा नामी शहर में किसी एक धनी के घर में एक लड़की पैदा हुई जो इतनी सुन्दर थी कि जिसकी उपमा नहीं हो सकती । पिताने उसका नाम राब्या रक्खा । कर्मकी गति बड़ी विचित्र है; एक क्षण में सुख होता है और दूसरे क्षण में विपत्ति । बाल्यावस्था में ही राब्या के माता पिता मृत्यु को प्राप्त होगये । तब एक दाई ने अनाथ राब्या का पालन किया । चन्द्रकला की नाईं राब्या का शरीर भी बढ़ता हुआ सोलह वर्ष की आयु को प्राप्त हुआ, जिसकी सुन्दरता को देखकर देवता भी मोहित होजाते थे । वह मन वाणी शरीर करके कभी किसी को दुःख नहीं देती थी और सदा संतोषादिक गुणों से तृप्त और परमात्मा के प्रेम में मग्न रहती थी । इसी से कभी चिन्ता या काम आदि विकार उसको स्पर्श नहीं कर सकते थे । एक दिन एक वैश्या ने उसको देखा और देख करके मोहित होगई । मन में विचारा कि यदि यह लड़की किसी प्रकार से हमको मिलजावे तो बड़े बड़े धनाढ्य लोगों से बहुत धन का लाभ हो सकता है । यह दुष्ट संकल्प मन में धारण कर एक दिन उस दाई को एकान्त में बुलाकर कहने लगी कि एक हज़ार अशर्फ़ी तुम मेरे से लेलो और यह जो लड़की है इस को मुझे देदो । तब लोभ ने दाई के शुभ विचार को ढाँपलिया और राब्या को देने पर तैयार हो गई । एक हज़ार अशर्फ़ी लेकर उसको उसके घर पहुँचा दिया वह वैश्या के घर अपना बिकना जानकर भी दुःखी न हुई; परन्तु अपने प्रभु की आज्ञा को सिर पर माना और वहां भी अहिंसा वृत्ति में परिपक्व रही । वैश्या अनेक प्रकार से वस्त्र, भूषण और आहारादिकों द्वारा उसकी सेवाकरे; परन्तु उसके चित्त में कोई हर्ष तथा विषाद न होवे । एक दिन किसी धनी ने राब्या को देखा और देखते ही मोहित होगया

और काम बाण से अत्यन्त पीड़ित हुआ २ उस वैश्या के पास पहुँचा और कहा कि जितना धन तुमको लेने की आवश्यकता हो वह ले लो और इस सुन्दरी से एक रात्रि के लिये मिलाप करादो। वैश्या पहिले से ही चाहती थी; बहुत प्रसन्न हुई और मन माना द्रव्य उस धनी से लेकर एक रात्रि नियत की। वह धनी उसके पास उस नियत की हुई रात्रिको चल कर (जिस मन्दिर में उसका निवास था) उसके द्वार पर पहुंचा। उस कमरे के भीतर प्रवेश करने ही लगा था कि उसका सारा शरीर जड़ता को प्राप्त हुआ। जैसे हिमालय पर्वत पर जाकर पुरुष के सब अंग जड़ होजाते हैं, तैसे ही वह धनी होगया और व्याकुल होकर बाहर निकल आया। परन्तु बाहर आते ही फिर कामाग्नि से जलने लगा तो फिर भीतर गया। फिर उसी दशाको प्राप्तहुआ। जब ऐसे तीन चार बार उस धनी ने किया तब उसके चित्त में विचार हुआ कि यह कोई अद्भुत शक्ति वाली स्त्री है; क्योंकि भीतर जाते ही मेरे काम का संकल्प दूर होजाता है। इसलिये मालूम होता है कि यह कोई परमात्मा के साथ प्रेम करने वाली भक्तिनी है। आज मैंने बड़ा अपराध किया है। 'अब मैं दुष्ट संकल्प का त्याग कर इसकी शरण में जाऊं और अपना अपराध क्षमा कराऊं ऐसी शुभ भावना करके वह फिर कमरे के भीतर गया और राब्या के चरणों पर जाकर अपना सिर रक्खा और हाथ जोड़कर बहुत नम्रता से कहा कि हे माता! मैंने आपका बहुत अपराध किया है। आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये। इस प्रकार की आधीनता को देखकर उसने कहा हे भाई! तू सावधान हो चिन्ता न कर, मेरा अपराध तूने कुछ नहीं किया; क्योंकि जब मैं कभी किसीके प्रति दुष्ट संकल्प नहीं करती हूं तो मेरा अपराध कोई कैसे कर सकता है? तब उस धनी ने वैश्या को बुलाकर कहा कि जितना द्रव्य तू चाहती है सो लेले और इसको मुझे देदे। वैश्या ने द्रव्य लेकर उसे धनी के हाथ बेच दिया। वह उसे घर ले आया और अलग एक सुन्दर मन्दिर में निवास करा कर माता की नाई प्रति दिन उसकी सेवा करने लगा॥

एक दिन धनीने उससे कहा कि हे माता ! तुम अपने मन में यह विचार मत करना कि मैं इसके बन्धन में हूं; क्योंकि मैं तो अपनी भलाई के लिये आप की सेवा करता हूं, आपका दास हूं, आप जैसी मुझ को आज्ञा करें वैसाही मैं करने को तैयार हूं। तब राब्या ने कहा, हे भाई ! यदि तेरा ऐसा शुभ संकल्प है तो मुझको निर्बन्ध करदे। जहाँ मेरी इच्छा हो वहाँ मैं चली जाऊं।" धनी ने कहा, "मेरा तो यह संकल्प था कि आयु पर्यन्त आपकी सेवा करके अपने जन्म को सफल करता, यदि आपकी इच्छा ऐसी ही है तो आप जहाँ चाहें वहाँ निवास करें।" तब राब्या धनी के घर से निकल कर बन को चली, और मनमें मक्के की यात्रा का संकल्प करके शनैः शनैः मार्ग में चलने लगी। जब साठ कोस पर मक्का रह गया तो वहाँ एक बन में एक कूप देखा। उस के किनारे एक कुतिया प्यास से आतुर हुई चिल्ला रही थी और कूप के चारों ओर भटक रही थी। राब्या ने उसकी व्याकुल दशा को देखा तो हृदय में दया आगई, और चाहा कि इसको किसी प्रकार जल पिलाऊं, क्योंकि यह प्यास से तड़फ रही है। परन्तु यह विचारा कि जल निकालने का कोई साधन मेरे पास नहीं। बहुत विचारने के उपरान्त उसने अपने सिर के केश उखाड़े और उनकी रस्सी बनाकर अपना अंचल (कपड़ा) उससे बाँधकर कूप जल में भिगो कर बाहर निकाला और उसको निचोड़ कर उस कुतिया को जल पिलाया, जिससे उसका चित्त शान्त हुआ। फलस्वरूप प्रभु की कृपा से उसी काल उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हुई जिससे उसको साठ कोस दूर मक्के का दर्शन वहीं हुआ इस पर एक कवि ने लिखा है:-

दो०—सिर की शोभा दूर कर, चीन्हों आतम राम।
साठ कोस मका मिले, देखि दया के काम ॥

तब राब्या ने चित्त में विचारा कि अब मक्के जाने का मेरा कोई काम नहीं, क्योंकि मक्के के दर्शन के लिये ही जाना था, सो तो यहां ही होगया है। अब इसी स्थान पर बैठकर मैं ईश्वर के गुणानुवाद

गाऊं । तब वहीं एक छोटी सी पत्तों की कुटिया बनाकर रहने लगी। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की चांदनी दशों दिशाओं में फैल जाती है तैसे उसकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई । किसी एक साधू ने भी लोगों से उसका यश सुना और उसका चित्त दर्शन करने को चाहा । तब वह चलता चलता प्रातः काल में उसके पास पहुँचा और वहां एक अद्भुत कौतुक देखा कि बनके सकल विरोधी जीव अर्थात् सिंह, चीते, मृग, गौ बकरी आदि उसके चारों ओर बैठे हुये हैं । जब साधु को उन्होंने देखा तब सब बन में भागकर चले गये । वह फ़क़ीर इस कौतुक को देखकर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुआ और राज्या के पास पहुँचा । जब राज्या ने उस साधु को देखा तो अतिथि जानकर उसका यथा योग्य सत्कार किया और बैठाया । तब साधु ने कहा, "हे माता ! मुझको एक संशय है । यदि आप कहें तो पूछूं ?" वह बोली, " आप बड़ी प्रसन्नता से पूछ सकते हैं । जैसे मेरे अनुभव में आवेगा मैं आपको बता दूंगी । साधु ने कहा कि जब मैं आप से कुछ दूर आकर ठहरा तो बन के सिंह, मृगादिक आप को घेर कर बैठे हुये थे । परन्तु मेरे आते ही सब बन को भाग गये । इसका क्या कारण है ?" तब वह बोली, "हे महात्मन् ! आपसे मैं जो कुछ पूछूँ सत्य २ कहना । कल रात्रि को आपने किस वस्तु का भोजन किया था ?" वह बोला, "हे माता ! रात्रि को मैंने माँस भक्षण किया था ।" तब वह बोली, " उनके भागने का यही कारण है; क्योंकि अपने प्राण सबको प्यारे होते हैं । उन्होंने जाना कि यह हमारे को भक्षण करने वाला आया है । इनको भी इष्ट अनिष्ट का ज्ञान है । इसीलिये वह अपना अनिष्ट जानकर भाग गये । मैंने बाल्यावस्था से लेकर मन, वाणी, शरीर करके कभी भी किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं किया । इसी कारणसे मुझको अपने अनुकूल जानकर मेरे पास वह सभी आनन्द पूर्वक बैठे रहते हैं । आपभी ऐसा चाहते हो तो मन, वाणी, शरीर से हिंसा का परित्याग करो और भगवान् के गुण गान करो ।" ऐसे वचन सुन कर साधु ने नमस्कार करी और उन्हें हृदय में धारण कर

स्वस्थान को गया और राब्यां अपने भगवान् के प्रेम में मग्न होगई। तातें राब्या वत् जिज्ञासु पुरुषों को यह अहिंसा और दया धर्म अवश्य धारण करने योग्य हैं, जिससे वह शीघ्र ही चित्त को शुद्ध करके ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त करें। इसी आशय पर गुरुजी फरमाते हैं:-

हिंसा तऊ मनते नहि छूटी जीअ दइआ नही पाली।
परमानंद साध संगति मिलि कथा पुनीत न चाली॥

[राग सारंग पृ० १२५३]

पुनः- मनि संतोखु सरब जीअ दइआ। इन बिधि ब्रत संपूरन भइआ॥

[गउड़ी मः ५ पृ० २६६]

श्री गीता में भी लिखा है:-

सर्वशास्त्र मयी गीता, सर्व धर्म मयोदया।
सर्व तीर्थ मयी गंगा, सर्व देव मयो हरिः॥

इसी आशय पर फ़रीद जी लिखते हैं:-

जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ नहि ठाहे कहीदा।

और कवि भी लिखते हैं:-

सौ बन्दगी एक रज़ामंदगी॥

पुनः-खलक खालक दी जानकर खलक दुखावै नाहि।
खलक दुखे जब नन्दजी खालक कोपै ताहि॥

सारांश यह कि दया करने से भोग और मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं। इससे जिज्ञासु को चाहिये कि मन, वाणी, शरीर करके किसी जीव जन्तु को दुःख न देवे॥

भजनः- दया नहिं छोड़ो तुम सुजान दया नहिं छोड़ो जी॥ टेक॥
दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान॥ दया०॥
दया धर्म विन सिद्ध कसाई गावै वेद पुरान॥ दया०॥
पुण्य किये का फल नहिं लागै दया बिना जो दान॥ दया०॥
दौलत दुनियाँ इज्ज़त पाकर नहिं कीजै अभिमान॥ दया०॥
दया नाथ को छोड़ो नाहिं जब लग देह में प्रान॥ दया०॥



अहिंसा

प्रश्नः—भगवन् जो! आपके मुखारविन्द से दया का प्रभाव सुनकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपने वर्णन किया है कि अहिंसा मन, वाणी, शरीर करके तीन प्रकार की है। इस का स्वरूप और इस में जो दृष्टान्त प्रमाण हैं वह वर्णन करें॥

उत्तरः—अहिंसा का स्वरूप :—

चौः— मनते बुरा किसी कौ चहै। वाणी ते चित्त वाको दहै॥
हाथ पाँव से करै प्रहार। सो यह हिंसा है तीन प्रकार॥

(१) मन की अहिंसा का स्वरूप

"मन करके किसी का बुरा चिन्तवन न करना", यह मन की अहिंसा है। जो मन करके किसी का बुरा चिन्तवन करता है उसका अपना ही बुरा होता है और भला चिन्तवन करने वालेका भला होता है। यह संसार गुम्बद की तरह है। गुम्बद में जैसी वाणी बोलें वैसी ही प्रतिध्वनि होती है व जैसे रंग वाला चशमा लगाया जावे वैसा ही रंग प्रतीत होता है। ऐसे ही जैसा हमारा मन होगा वैसा ही आगे से भासेगा। अगर हमारा मन शुद्ध है तो सर्व सन्सार भला भासेगा। यदि हमारा मन मैला है तो सारा संसार बुरा भासेगा। इस पर इतिहास श्रवण करो:—

एक राजा अति रोगी होगया। जब वैद्यों ने जवाब देदिया तो एक सेठ वहां सुन रहा था। उसने सोचा कि राजा के मरने पर इनको

चन्दन की आवश्यकता पड़ेगी। यदि मैं चन्दन मँगवा रक्खूँ तो मुझ को बहुत लाभ होगा। उसने बहुत सा चन्दन मँगवाकर रखलिया। परन्तु दैवयोग से राजा धीरे धीरे निरोग होगया। वह साहूकार ऐसे मन में चिन्तवन करने लगा कि राजा मरे तो मेरा चन्दन बिके। एक दिन राजा बाहर शिकार को जा रहा था। उसके मकान को देखकर मंत्री से कहा, "यह मकान बहुत ऊंचा है; ऐसा न हो कि दूसरे साथ के मकानों पर गिर कर उनकी भी हानि करे। इसलिये इसको गिरवादो।" यह सुन कर मन्त्री मनमें सोचने लगा कि राजा का ऐसा विचार क्यों है? क्योंकि इससे भी बहुत ऊंचे २ मकान शहर में खड़े हैं। ऐसा विचार कर मकान को न गिरवाया। कुछ दिन के उपरान्त जब राजा फिर शिकार को निकला तब मंत्री से पूछा कि उस दिन यह मकान गिराने को कहा था, क्यों नहीं गिरवाया? मंत्री ने कहा "आपने साहूकार के मकान को गिरवाने की आज्ञा तो अवश्य दी थी; परन्तु यह नहीं कहा था कि इसका सामान भी लुटवादो। सो जिस समय सामान निकाल कर खाली कर देगा तब मैं गिरवा दूंगा।" ऐसा कह कर टाल दिया। जब शिकार से वापिस आये तब मंत्री ने उस साहूकार को अपने पास बुलाकर पूछा कि सत्य कहो तुम्हारे मन में राजा के प्रति कैसे विचार हैं? क्योंकि राजा तुम्हारा बुरा चाहता है। तो साहूकार ने अपने मनके सारे विचार सच्चे २ कह सुनाये। तब मंत्री ने कहा कि तेरे मकान के गिरा देने की राजाज्ञा में तेरा विचार ही कारण है। फिर कहा कि तुमने जितना मूल्य चन्दन का दिया है उतना हमारे से लेलो और राजा का भला चिन्तवन करो। तब साहूकार ने चन्दन मंत्री के घर पहुँचा दिया और मूल्य ले लिया। उस दिन से वह राजा का भला चिंतवन करने लगा। जब कुछ दिन के बाद राजा फिर शिकार को निकला तब उस मकान को देखकर मन्त्री से कहा, "अभी तक यह मकान नहीं गिरवाया?" मन्त्री ने कहा कि अभी गिरवा देता हूं। ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि इस मकान को मत गिरवाना क्योंकि ऊंचा

होने से शहर का शृंगार है। इससे सिद्ध हुआ कि जब तक साहूकार के दिल में राजा के प्रति बुरे विचार थे तब तक राजा के मन में भी उसके प्रति बुरे ही विचार थे। परंतु जब साहूकार का मन बदल कर राजा के प्रति शुभ चिंतवन करने लगा तब राजा के मन से भी साहूकार के प्रति बुरे विचार हट गये। इसपर गुरु प्रमाण और इतिहास को श्रवण करें:-

नानक हुकमी लिखिऐ लेखु। जेहा वेखहि तेहा वेखु।

(आसाकी वार मः १ पृ० ४६६)

एक माई जिसके साथ उसकी एक कन्या भी थी, वह दोनों रास्ते में चलीं जा रहीं थीं। पीछे से एक घोड़ सवार आगया। उसको देखकर माई कहने लगी "हे भाई! लड़की चलती हुई थक गई है। थोड़ी दूर तक इसको अपने पीछे बिठाले।" वह कहने लगा माई! तुम्हारा हमारा क्या साथ? तुम धीरे धीरे पैदल चल रही हो और मैं घोड़े पर सवार हूं। इतना कहकर चल दिया। आगे जाकर यह विचार उठा कि मैंने भूल की है। यदि लड़की को घोड़े पर बिठा लेता तो माई पीछे रह जाती। मैं घर जाकर लड़की का अपने लड़के के साथ विवाह कर देता। ऐसा खोटा संकल्प करके घोड़े को ठहराया। इधर मांई अपने मनमें विचारने लगी कि मैं बड़ी मूर्खता करने लगी थी, जो अनजान पुरुष के साथ अपनी बेटी बिठाने लगी थी। अगर वह लेकर चला जाता तो मैं क्या कर सकती थी। जब माई पहुंची तब उस पुरुष ने कहा, माई! मैं लड़की को अपने घोड़े पर बैठा लेता हूं। यह सुनकर माई कहने लगी, "जो तुमको समझा गया है वह मुझे भी समझा गया है। जब तेरे मनमें बुराई न थी तब मैंने भी कहा था कि लड़की को अपने पीछे बिठाले। जब तेरे मन में बुराई आई तो मुझको भी विचार आगया। अब मैं नहीं बिठाती।" इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि हम किसी का बुरा चिंतवन करेंगे तो दूसरे के मन में भी अवश्य बुराई आ जावेगी। यदि हम सब का भला चिंतवन करेंगे तो हमको भी कोई दुःख नहीं दे सकेगा।

(१) वाणी की अहिंसा का स्वरूप ॥

वाणी करके किसी का चित्त न दुखाना । इसी विषय पर गुरुजी लिखते हैं:–

होइ सगल की रेणुका हरि संगि समावउ ।
दूखु न देई किसै जीअ पति१ सिउ घरि जावउ ॥ (गउड़ीमः ५ पृ० ३३२) १सन्मान
पुनः– नानक फिकै बोलिऐ, तनु मनु फिका होइ । फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ । फिकामूरख आखीऐ *पाणा लहे सजाइ ॥ *जूते
(वारआसा मः १ पृ० ४७३)

दो०– कुबुध कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन के तीर ।
भर भर मारे कान में, छाले सकल शरीर ॥ १ ॥
कटू बचन सबसे बुरा, जारि करै तन छार ।
साधु बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥ २ ॥
तोप तीर तलवार को, मिटि है घाव तुरन्त ।
जिह्वा अस्तर जो कटै, मिलि है आदि न अन्त ॥ ३ ॥
तुलसी तिनकी कौन गति, बोलें बिन बीचार ।
हतें पराई आतमा, जिह्वा की तलवार ॥ ४ ॥

बिना विचार के बोलने पर इतिहास श्रवण करें:–

एक राजा ने रात्रि को स्वप्न में देखा कि मेरे दाँत झड़गये हैं, केवल एक दाँत बचा है । राजा ने पंडित से स्वप्न का विचार पूछा, तब पंडित ने कहा, "हे राजन् ! इस स्वप्न का आशय यह है कि आपके सारे मित्र आपके सामने ही मर जावेंगे ।" राजा ने सुनकर पण्डित को कैद कर दिया । फिर राजा ने मंत्री से कहा । उसने कहा, हे स्वामिन् ! स्वप्न का आशय यह है कि आप अपने मित्रों के पीछे बहुत दिनों तक जीते रहेंगे और राज्य का आनंद भोगेंगे । यह सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मंत्री को बहुत पारितोषक (इनाम) दिया । पण्डित ने राजा से कहा कि मेरे और मंत्री के कथन का एक ही भाव है, फिर मेरे को दण्ड और उसको इनाम क्यों ? राजा ने उत्तर दिया कि हे पण्डित जी ! आपके और मन्त्री के शब्द उच्चारण में भेद है:–

दो०- शब्द बरोबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल ।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल ॥ १ ॥
शीतल बचन उचारिये, अहं आनिये नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुझ में, दुश्मन भी तुझ माहिं ॥ २ ॥

इसपर इतिहास श्रवण करो:-

एक गांव में श्वपच और उसकी स्त्री की परस्पर लड़ाई रहती थी। श्वपच ने एक दिन उसको मारा तो गांव के लोगों ने उसकी स्त्री का पक्ष लेकर श्वपच पर न्यायालय में अभियोग (मुकद्दमा) चलवा दिया। जब निश्चित तिथि (तारीख़) पर हाज़िर हुए तब श्वपच ने न्यायाधीश से कहा "श्रीमान् जी ! सारा गाँव भंगिन का होगया है तुम भंगी के बनो"। ऐसा सुनकर के न्यायाधीश ने कर्म चारियों को आज्ञा दी कि इसको खूब मारो और इसको कैद करदो। इससे यह सिद्ध हुआ कि उसका अपना बोल ही दुश्मन हुआ। मीठे वचन बोलने पर जगद्गुरु का वचन है:-

निवणु सु अखरु खवणु गुणु, जिहवा मणीआ मंतु ।
ए त्रै भैणे वेस करि ता वसि आवी कंतु ॥ (श्लोक फ़रीद पृ० १३८३)
पुनः-जेको जीउ कहै उना कउ जम की तलब न होई (प्रभाः मः १ पृ० १३२८)

जो "जी" करके बोलते है उसपर इतिहास श्रवण करें :-

एक साईं जल्हण जी परमात्मा के बहुत प्यारे हुये हैं। उनका यह नियम था कि मजदूरी ही करके गुज़ारा करते थे। एक राजा का महल बन रहा था। उसपर साईं जल्हण जी भी मज़दूर बनके जा लगे। जब प्रति दिन मज़दूरी लेने के लिये जावें तो मज़दूरी देने वाला मुन्शी सत्कार पूर्वक कहै, "आओ जी ! बैठिये, दर्शन दीजिये, मैं आपको जल्दी ही मज़दूरी देता हूं।" इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होगया तो उस मुन्शी का अन्तिम समय आगया। यमदूत उसको धर्मराज के पास ले गये। जब उसका हिसाब देखा तो उसका कोई पुण्य कर्म न निकला। केवल यही एक शुभ कर्म था जो साईं लोक को 'जी' करके बिठाता था। उसका फल, धर्मराज ने कहा कि, इसको नरकों का दुःख

नहीं देना। 'जो' करने के बदले में इसे स्वर्ग का सुख दिया जावे। इस से सिद्ध हुआ कि मीठा बोलना भी संसार में एक तप के सदृश है।

दो०—तुलसी या संसार में, तीन वस्तु हैं सार।
मीठा बोलन निवचलन, करना परउपकार ॥ १ ॥
तुलसी मीठे वचनते, सुख उपजत चहुँ ओर ।
वशीकरन यह मंत्र है, परिहरु वचन कठोर ॥ २ ॥

मीठे वचन बोलने वाले को कैसे सुख की प्राप्ति होती है सो सुनो:-

एक साहूकार के लूटने के लिये दस डाकुओं ने सलाह करी। उस साहूकार को भी किसी प्रकार से पता चल गया कि आज हमारे लूटने के लिये डाकू आरहे हैं। तब उस साहूकार ने १० कुर्सियां व १० मेज़ें मँगवाईं और अच्छे अच्छे भोजन तैयार कराकर रख दिये। जब संध्या के समय वह डाकू लूटने को आये तब वह आगे से खड़ा होगया और हाथ जोड़कर आदर और सत्कार पूर्वक उनको कुर्सियों पर बैठाया और नौकरों को शीघ्रता से भोजन लाने की आज्ञा दी। स्वादिष्ट भोजन खिलाकर उनके चित्त को अत्यन्त प्रसन्न किया। तब डाकू भोजन कर के चल पड़े और जाते समय यह कह गये कि हम तो तुमको लूटने आये थे, परन्तु तुम्हारी मीठी वाणी तथा आदर सत्कार ने हमारे स्वभाव को उलटा दिया। इससे सिद्ध होता है कि मीठी वाणी से शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। और ईश्वर भक्तों के लक्षण भी यही बतलाये हैं:—

आसावरी— रब वार्ल्यां दी एहा निशानी, ओह दिसदे खरे निमाणे।
भंदा किसेनू आखण नाहीं, ओह सभसे दे मनभाणे ॥
मिट्ठा बोलण ते निंवचलणा, ओह दिल न किसेदा रंजाणे।
आख गुवालाखुदी तकब्बरी ओना उड़गई वाँग टिटाणे ॥

(३) शरीर की अहिंसा का स्वरूप ॥

शरीर करके किसी जीव का घात न करना व किसी को मार पीट करके उसका दिल न दुःखाना व अभिमान में आकर शासन द्वारा किसी को दुःख न देना जो शरीर करके दुःख देते हैं उनको क्या फल होता है इस पर इतिहास श्रवण करें:—

एक दिन फ़रीद कहीं जारहे थे। मार्ग में नवाब के महलों की चुनाई होरही थी और उसको मजदूरों की आवश्यकता थी। नवाब ने आज्ञादी कि कोई भी मिल जावे उसे कामके लिये पकड़ लो। तब फरीद जी को भी बलात्कार (ज़बरदस्ती) से काम पर लगा लिया। जब फ़रीद जी ने देखा कि कई ग़रीब और परमेश्वर के प्यारे आगे पकड़े हुए हैं तब वह सहन न कर सके। जब नवाब घोड़े पर सवार हो कर शिकार को जाने लगा तो मार्ग में महल को देखने के लिये आया। फ़रीदजी ने क्रोधित होकर ऐसे श्लोक उच्चारण किया:—

फ़रीदा भंनी घड़ी सवंनवी टूटी नागर लजु।
अजराईलु फरेसता कै घर नाठी अजु॥ (श्लोक फ़रीद जी पृ० ३८१)

भाव—वहाँ से नवाब शिकार को चला गया तो जगल में जाने पर नवाब के आगे शिकार निकला। उसने उसके पीछे घोड़ा दौडाया। ज्योंही घोड़े के ठोकर लगी नवाब सिर के भार गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राण निकल गये। पीछे से साथी भी पहुँच गये। नवाब को मरा हुआ देख उठा कर शहर में ले आये। उस समय सारी नगरी में रोना पीटना शुरू हो गया। नवाब की बेगमों को किसी ने कहा कि जब नवाब शिकार को जाने लगा था तो एक फ़कीरने (जो ज़बरदस्ती पकड़ कर मज़दूरों में लगाया गया था) क्रुद्ध होकर कुछ वचन कहा था। इस लिये तुम उससे क्षमा माँगो, शायद वह जिला दे। तब नवाब के संबंधी व बेगमें तथा वज़ीर अमीर सब फ़रीदजी की शरणी आ पड़े और सब क्षमा मांगने लगे। तब उस समय फ़रीद जी ने दूसरा श्लोक उच्चारण किया:—

फ़रीदा भंनी घड़ी सवंनवी टूटी नागर लजु।
जो सजण भुइ भारु थे से किउ आवहि अजु॥ (पृ० १३८१)

और महात्मा ने भी कहा है:—

मैं उस ज़ालिम को कभी नहीं जिवाता।
जो ज़ालिम ग़रीबों को है सताता॥
ज़ुल्म करना छोड़दे ज़ालिम ख़ुदा के वास्ते।

है ये हरकत नागवार अहले ख़ुदा के वास्ते ।
सब बनाये हैं उसीके जिस ने तुम्हें पैदा किया ।
क्यों सताता है किसी को दो दिनों के वास्ते ॥
होगी ख़ुदग़रज़ी इस से बढ़कर और क्या ॥
लेते हो औरों की जां अपने मज़े के वास्ते ।
काटकर औरों की गर्दन चाहे अपनी खैर तू ।
दे जगह इंसाफ़ दिलमें ऐ ख़ुदा के वास्ते ॥

पुनः—ज़ालिम ग़रीब को मत सता ग़रीब रो देगा ।
सुनेगा जो उसका मालिक तो जड़से खोदेगा ॥

इस पर इतिहास श्रवण करें:—

जब रावण ने अतिशय करके अत्याचार करने आरम्भ कर दिये तो ऋषियों मुनियों को भी दुःख देनेलगा कि तुम मेरी प्रजा हो, तुम भी मुझे कर (टैक्स) दो । तब ऋषियों ने कहा " हम तो फल फूल खाकर गुज़ारा करते हैं, हमारे पास देने को क्या है ?" तब उसने बलात्कार ऋषियों का खून निकलवा लिया और उन के खून को घड़े में डालकर जमीनमें गढ़वा दिया तब ऋषियों ने शाप दिया कि इससे ही तेरी मृत्यु होगी । एक वार राजा जनक की नगरीमें वर्षा न हुई । प्रजा बड़ी दुःखी होने लगी । तब राजा ने ज्योतिषियों से कहा कि कोई उपाय बताओ । ज्योतिषियों ने कहा कि सोने का हल बनवाकर तुम और तुम्हारी रानी मिल कर पृथ्वी में चलावो । जब हल चलाने लगे तब पृथ्वी में से वह घड़ा निकला जिस में रावण ने ऋषियों का रुधिर निकलवाकर गाड़ा हुआ था । जब खोला तो उसमें से एक सुन्दर कन्या निकली । उसका नाम राजा ने सीता रक्खा । उस सीता के द्वारा ही रावण के सारे कुल का नाश हुआ इसी आशय पर कबीर जी ने भी कहा है:—

दो०— दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की साँस सों, सार भसम ह्वै जाय ॥

इस पर एक और कवि लिखते हैं:—

आह का तीर खता हो यह कब मुमकिन है॥
किसी ज़ालिम का भला हो यह कब मुमकिन है॥
जुल्म की खो कब खुदा को पसन्द होती है॥
जड़ सितमगर की ज़मीन से बालिश्त बुलन्द होती है॥

ऐसे अत्याचारियों पर ईश्वर प्रसन्न नहीं होता जैसेः—

एक राजा के घर में लड़का पैदा हुआ। लोग भेंट सहित आकर बधाइयाँ देने लगे। उस शहर में डाकू भी रहते थे सो वह भी यह विचार कर भेंट लेकर बधाई देने के लिये आये कि राजा से हमारा परिचय हो जावेगा तो हम को कुछ न कहेगा। जब भेंट राजा के आगे रक्खी तब राजा ने कहा कि हम तुम्हारी भेंट पर प्रसन्न नहीं हैं। यदि तुम हमारी प्रजा को दुःख देना छोड़दो और भेंट न दो तोभी हमारी प्रसन्नता है। यदि प्रजा को दुःख दोगे तो भेंट चाहे कितनी ही लाओ फिर भी हमारी प्रसन्नता नहीं होगी। तैसे ही जो हमेशा ग़रीबों को दुःख देकर पुण्य दान करके परमेश्वर की प्रसन्नता लेना चाहता है उसपर ईश्वर की कभी प्रसन्नता नहीं होती, चाहे कितना ही दान क्यों न करे। परन्तु जो किसी को दुःख न देवे और दान करे तब परमात्मा उस पर प्रसन्न होगा। जैसे लिखा हैः—

कबीर जोरु कीआ सो जुलमु है, लेइ जबाब खुदाइ।
दफतर लेखा नीकसै, मार मुहै मुहिखाइ॥[पृ० १३७५]

जैसे एक महात्मा अपने भजन सुमिरण में बैठे थे। एक सिपाही वहाँ पर आगया। उसने उनको धक्के मार कर उठादिया। तब महात्मा ने कहा "जा, तू थानेदार होजा।" कुछ दिन पीछे उस सिपाही को थानेदार की पदवी मिलगई। तो उसको अफ़सरों की ओर से आज्ञा हुई कि एक मटकी बिच्छुओं की जल्दी से भेजो। तब वह सोचने लगा कि बिच्छुओं की मटकी में इतनी जल्दी कहां से पैदा करूं। फिर उसको विचार हुआ कि जिस महात्मा के आशीर्वाद से मेरे को यह थानेदार की पदवी मिली है उसी से जाकर पूछूँ, क्योंकि महात्मा सत्यवादी और

त्रिकाल दर्शी होते हैं। तब महात्मा के पास आकर हाथ जोड़ नमस्कार कर के विनती करी कि आपकी कृपा से मुझे थानेदारी तो मिल गई; परन्तु अब आज्ञा मिली है कि एक मटकी बिच्छुओं की जल्दी भेजो। सो इतने बिच्छू जल्दी मिलने कठिन हैं। आप कृपा करके कोई उपाय बतायें। महात्मा बोले, "कोई कठिनाई नहीं, पता करो, यदि कोई थानेदार थोड़े दिनों का मरा हुआ हो तो उसकी क़बर खोदो, उसमें से जितने बिच्छू चाहो लेलो।" तब उसने पता लगाकर थानेदार की क़बर खोदी तो बहुत बिच्छू मिल गये। यह देखकर वह बहुत भय को प्राप्त हुआ और थानेदारों की ऐसी दुर्गति देखकर महात्मा के पास हाथ जोड़ नमस्कार कर विनती करी कि मैंने तो समझा था कि आपकी कृपा से थानेदारी प्राप्त हुई है, परन्तु थानेदारों की क़बर में बिच्छू होने से मेरा हृदय काँप गया है। आप कृपा करके इसका कारण बतावें महात्मा ने कहा कि थानेदार अत्याचार से जिन गरीबों का रुधिर निचोड़ते हैं वही बिच्छू बनकर उसके शरीर को काटते हैं। इसपर एक कवि लिखता है:—

जो औरों को मारें छुरी उसको लगता है छुरा।
जो औरों का चाहे बुरा उसका होता है बुरा॥



" मांस भक्षण "

जीवों का मांस खाने वालों पर भाई गुरुदास जी लिखते हैं:-

शींह पजूती बकरी मरदी होई खिड़ खिड़ हस्सी ।
शींह पुच्छै विस्समाद होय इत अउसर कित रहस रहस्सी ॥
बिनउं करेंदी बक्करी पुत्र असाडे कींचन खस्सी ।
अक्क धतूरा खाँदिआँ करिकरि खल्ल उखल्ल बिनस्सी ॥
मांस खान गल वड्ढ के हाल तिनाड़ा कउण होवस्सी ॥

(भाः गुरुदास वार २५ पउड़ी १७)

भावार्थ—एक वार सिंह ने बकरी को झपट कर अधमरी कर डाला तब बकरी मरती हुई खिलखिला कर हंस पड़ी। ऐसा आश्चर्य देखक सिंह ने पूछा, " हे बकरी ! इस समय तेरे हंसने का क्या कारण है ?' तब बकरी विनय पूर्वक कहने लगी, " हे बनराज ! मैंने यह विचा किया है कि हमारे पुत्र खस्सी किये जावें तो अच्छा है ताकि आगे लिये हमारी सन्तान पैदा होनी ही बन्द हो जावे। जो आक धतूरा खाने वाले जीवों को काट कर उनकी खाल उतार लेते हैं तो भगवा जाने मांस खाने वालों की क्या गति होगी। इस लिये अपना भला चाहते हो तो जीवोंको मारना छोड़दो। जैसे एक कवि ने लिखा है:-

दोस्तो होगा भला तुम मांस खाना छोड़दो ।
इस पवित्र पेट में क़बरें बनाना छोड़दो ॥
खाके तिनके रूखे सूखे इवज़ में जों दूध में ।
दूध के बदले में उनके खूं बहाना छोड़दो ॥
जीना इस दुनियां में मित्रो है क़यामत तक नहीं ।
चार दिन की ज़िंदगी में जीव सताना छोड़दो ॥

शेर को मारो तो खाओ मुंह की उसके हाथ से।
बेज़बाँ को मारना और मरवाना छोड़ दो ॥
जो मरै उसके हुकम से उसको कहते हैं हराम।
गर है खाना माँस तो इन्साँ कहाना छोड़ दो ॥

दूसरों के पुत्र मार कर खाने वालों पर एक कवि लिखता हैः—

दूसरों के पुत्र खोस के खाते हो जो तुम कबाब।
तेरा भी पुत्र खोस के खावें तो तुमें आवै सवाद ॥

पुनः— ला तजालू उल तून कुल कबूरुल हैवानात। (कुरान शरीफ़)

भावार्थः—हे लोगो, अपने पेट में पशुओं की क़बरें न बनाओ।

शंकाः—दुनियाँ में सभी पदार्थ भोगने के लिये हैं; यदि वह न भोगे जावें तो क्या वह निरर्थक न होजावेंगे ?

समाधानः—हे प्यारे ! कई वार सिंह मनुष्य को खा जाता है। सिंह के लिये मनुष्य सबसे अधिक मन भाता खाना है। तो क्या मनुष्य इसलिये है कि उसे सिंह खाजावे ? यदि यही बात है तो हे न्याय की मूर्ति ! अपने आपको सिंह के अर्पण करदो; क्योंकि तुम्हारा शरीर सिंह के लिए ही बना है। फिर यदि सिंह किसी कारण से मनुष्य को खाना छोड़ देवे तो क्या मनुष्य निरर्थक हो जावेगा? यदि गौ भक्षक गौ भक्षण करना छोड़दे तो क्या गौं निरर्थक हो जावेगी ? हे प्यारे ! तुम्हारे अन्दर तो यह भाव व्यर्थ घुसा हुआ है। तुमको सत्शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि मनुष्य इस सृष्टि में श्रेष्ठ (अशरफ़ुल मख़लूक़ात) है। तुम सब सृष्टि के स्वामी हो। सब सृष्टि तुम्हारी आज्ञा में है। जैसे गुरुजी लिखते हैंः—

अवर जोनि तेरी पनिहारी। इस धरती महि तेरी सिकदारी ॥ आसा० मः५ पृ० ३७४

सो तुम अपने स्वामीपन को छोड़कर अनेकों नीच कर्म करते हो; अर्थात् इसके अर्थ और भाव को न समझकर तुम अनेक जीवों का घात कर रहे हो और पुकार २कर कहते हो कि यह सब कुछ हमारे लिये ही बना है। यह तुम्हारी भूल है। जैसे सम्पूर्ण प्रजा राजा के लिये होती है, राजा सब प्रजा में श्रेष्ठ होता है; तो क्या फिर उसका यही धर्म होता

है कि प्रजा में जिसको चाहे लूटले या घात करदे ? नहीं, उसका धर्म यह है कि प्रजा से कर लेकर भली प्रकार रचा करे। ऐसे ही यदि तुम सृष्टि में श्रेष्ठ हो तो उनसे सेवा लो, उनका दूध पियो, उन पर सवारी करो; परन्तु उनकी सेवा और रचा करना तुम्हारा धर्म है। अशरफुल मख़लूक़ात (सृष्टि में श्रेष्ठ) होकर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं कि तुम किसी प्राणी को दुःख दो। फिर सोचो तुम्हारी श्रेष्ठता किसमें है ? किस बात के कारण तुम्हें श्रेष्ठ माना गया है ? तुम्हारे अन्दर विशेषता किस बातकी है ? किंचित् विचारो तो ज्ञात होजायगा कि विशेषता केवल बुद्धि की है; और बुद्धि कर्म, भक्ति और आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये है। खान पान का प्रबन्ध तो पशु-पची सबही करलेते हैं; परन्तु तुम्हारा धर्म(Duty) कर्म, भक्ति, द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त करना है। तब तुम्हारी श्रेष्ठता है, नहीं तो नहीं। इस लिये सृष्टि में श्रेष्ठ होने का तात्पर्य समझो और आत्मज्ञान प्राप्त करके श्रेष्ठ बनकर दिखलाओ। यदि पशु पची मारने में ही श्रेष्ठता होती तो सिंह सबसे अधिक पशु मार सकता है, उसे श्रेष्ठ कहना चाहिये। जिन जीवों को परमात्मा ने माँस खाने के लिये बनाया है उन्हें सामान भी वैसा ही दिया है। सिंह, भेड़िया, चीता, माँसखाने वाले प्राणी हैं। उनके नाख़ून तेज़ और दांत कड़े और नोकदार बनाये गये हैं, जिससे माँसनोच नोचकर खासकें। हे प्यारे ! यदि मनुष्य को भी माँसखाने के लिये ही बनाया जाता तो उसके दांत भी वैसे ही होते। क्या हुआ यदि तुम कई घंटे माँस को पानी में पकाकर खाने के योग्य बना लेते हो ? इससे सिद्ध होता है कि यह अप्राकृतिक भोजन है। जिनका प्राकृतिक भोजन है वह तो कच्चा ही खाजाते हैं। इसलिये हे प्यारे ! अपने अन्दर से इस भ्रान्ति को दूर करो और यह निश्चय करो कि माँस मनुष्य के लिये नहीं है। जैसे लिखा है:-

कबीर खूबु खाना खीचरी जामहि अमृतु लोनु।
हेरा रोटी कारनै, गला कटावै कउनु ॥ (पृ० १३७४)

एक कवि भी लिखता है:-

अन्न छड के मांस खांदां तैनूं शरम न आई ।
तैनूं भी कोई मारै छुरियां तो जानै पीर पराई ॥
जिमें मुरदे दे नाल लग के सणे कपड़े नहावे ।
उसे नूं चा ला मसाले, नाल ख़ुशी दे खावे ॥

जो मांस खाते हैं उनको इस पाप के बदले परलोक में उत्तर देना पड़ता है। और नरकों के दुःख उठाने पड़ते हैं:—

दो०—रक्त विन्दु कर संभवै, जो नर भुंचत मांस ।
नरक परे निकसे नहीं, यावत इन्दु विभास ॥

भावार्थ—जो पुरुष मांस खाते हैं सो खून और वीर्य कर उत्पन्न होता है। सो जबतक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा हैं अर्थात् संसार की स्थिति रहेगी तबतक मांस खाने वाले पुरुष नरकों में से नहीं निकलेंगे। पुनः जैसे लिखा है:—

कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि ।
तीरथ बरत नेम कीये ते सभै रसातल जांहि ॥ (पृ० १३७७)
कबीर जोगी कीये जुलमु है, कहता नाउ हलालु ।
दफतरि लेखा मांगियै, तब होइगो कउनु हवालु ॥ पृ० (१३७४)

इसी विषय पर श्री मद्भागवत् में लिखा हैः—

पूर्व प्राचीन वर्हिष नाम के एक राजा ने बहुत काल सांसारिक सुख व राज भोग कर यह विचार किया कि धन सम्पदा तथा राज्य विभूति प्राप्त करके इसे सांसारिक सुखों में खर्च न करना चाहिये, किन्तु इस को यज्ञ, दान, तथा परोपकार के अर्थ लगाना चाहिये जिससे अपना लोक तथा परलोक सुधरे। ऐसा विचारकर राजा ने यज्ञ, दान करना आरम्भ किया और शास्त्रानुसार भरत खण्ड में जिस जिस स्थान पर यज्ञ करना उचित था, किया। परन्तु राजा का मन विरक्त न होकर इन्द्रादिक लोकों के सुखों की इच्छा करने लगा। इस प्रकार राजा की अवस्था देखकर नारद जी ने विचारा कि राजा की विशेष आयु यज्ञ करते करते व्यतीत होगई, परन्तु इसने परलोक नहीं सुधारा। यह धर्मात्मा पृथु राजा की संतान है, अतःइसे कुछ ज्ञानोपदेश कर भवसागर से

पार उतारना चाहिये। यह विचार कर राजा के पास आये। राजा ने मुनि को देख अति हर्ष से दण्डवत् प्रणाम करके बैठाया और हाथ जोड़ कर विनती की, "महाराज जी ! मेरा भाग्य उदय हुआ जो आपने कृपा करके मुझे दर्शन दिया।" नारद जी हंसकर बोले, "राजन ! सत्य बात तो यह है कि तेरा ही बड़ा भाग्य था जो तू मनुष्य तन पाकर भरतखण्ड का राजा हुआ और इस कर्म भूमि में यज्ञादिक बहुत श्रेष्ठ धर्म रूप कर्म किये। परन्तु मनुष्य को चाहिये कि जहाँ की इच्छा करके चले उसी ठिकाने पर पहुँचे। कदाचित् मार्ग में रुक जावे और स्वस्थान पर न पहुँचे तो मार्ग में चलने से सिवाय थकावट के और क्या लाभ होगा?" यह वचन नारद मुनि का सुनते ही राजा ने आश्चर्य मान कर कहा, भगवन् ! वेदों और पुराणों में यज्ञ दान करने का बड़ा पुण्य वर्णन किया है। इससे अधिक दूसरा कोई धर्म नहीं लिखा। नारद जी बोले, कि वेदों और पुराणों के आशय को अपने आप समझा नहीं जा सकता। वास्तव में वेदों और पुराणों का आशय जीवों के बध करने से हटाने का होता है। भगवान् कृष्ण के आशय को लेकर ही एकादश में एक महात्मा ने लिखा है:-

चौ०-जब जग में बहु हिंसा देखी। हने हने जीवों को पेखी।
तिन के हित कही यह बानी। हिंसा यज्ञ के मांहिं बखानी॥
ते मो बिन मो मता न जानें। हत्या जीव यज्ञ में ठानें॥
ते फिर तिनैं हनैं परलोका। जनम २ पावहिं बहु शोका॥

भावार्थ-जब भगवान् ने संसार में बहुत जीवों की हत्या होती देखी, तब केवल यज्ञ में हिंसा करनी कही। भगवान् ने विचारा कि उन पुरुषों ने मेरे आशय को महात्मा बिना न जाना और जीवों की हिंसा जगत में आरम्भ करदी। वह मरे हुये जीव परलोक में जाकर अपने मारने वालों को मारते हैं, जिससे वही पुरुष जन्म जन्मान्तरों में अत्यन्त कष्ट को पाते हैं॥

एक समय कबीर जी चले जारहे थे, तो क्या देखते हैं कि एक मुल्ला मुर्गी को मार रहा है। उसको डाटकर कहा कि जीवों की हत्या

मत किया करो। तब उस ने उत्तर दिया कि कुरान शरीफ़ में कुर्बानी लिखी है और तुम्हारे वेदों पुराणों में यज्ञ के समय जीवों का वध करना लिखा है। इसलिये हम कोई उसके विरुद्ध काम तो नहीं कर रहे। कबीर जी बोले:—

वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै। जउ सभ महि एक
खुदाइ कहित हउ तउ किउ मुरगी मारै॥ १॥ मुलां कहहु निआउ
खुदाई॥ तेरे मनका भरम न जाई॥ २॥ [प्रभ.: कबीर पृ० १३५०]

जो लोग यज्ञ में जीवों को मारकर धर्म मानते हैं, उन पर बोले:—

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरम कहहु कत भाई।
आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई॥

(मारू कबीर पृ० ११०३)

जपजी साहब की अठारहवीं पउड़ी में नीचों का वर्णन:—

असंख गल वढ हतिआ कमाहि। असंख पापी पापु करि जाहि॥
असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि। असंख मलेछ मलुभखि खाहि॥

माँस खाने वाले को कलगीधर महाराज जी ने भी दण्डदिया है:-

एक समें श्री गुरुजी, धर्म परीक्षा हेत।
करेउ यज्ञ निउता दिया, भोजन कर संकेत॥
ऐसा कहेउ सुनाय के, मास खाय द्विज जोइ।
अशर्फी एक दक्षिणा तिसे, ऐसे कहेउ सोजोइ॥
खीर खाँड़का भोगता, एक रुप्या दिया ताहि।
जब खाइचुके बहु लोभकर, मांस अहारी आइ॥
खीर अहारी मोहर कर, माँस रुपैया इक।
बचन दिया श्री गुरुजी, यह लोभीधरम न सिक॥
यह साधू जिन लोभ नहिं धरम कमायेउ सच।
माँस खाये विप्र कहाँ, सो चण्डाल का मिच॥
पीछे सतगुरु यों कहा, सुनौ सिक्ख चितलाइ।
मेरा सिख सो जानियेउ, माँस खाय द्विज नाइ॥

ऐसा सुनकर राजा चिन्तातुर होकर मनमें विचारने लगा। नारद जी ने राजा के मनकी बात अपने ज्ञान से समझ कर विचार किया कि जबतक में राजा को यज्ञ में पशुओं के बध करने का प्रत्यक्ष भय न

दिखाऊंगा तबतक इसका मन यज्ञ की ओर से नहीं फिरेगा। ऐसा विचार कर नारद जी ने अपने योग बलसे (जितने पशु राजा ने यज्ञ में मारे थे) उन सबको आकाश में राजा के सामने कर दिया। जब सब जीव राजा को घूरने लगे, तब नारदजी बोले, "हे राजन्! यह सब जीव आपको कैसे देख रहे हैं?" जब राजा ने आकाश की ओर आँख उठा कर उनको क्रोध युक्त दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए देखा तब मारे डरके काँपता हुआ नारदजी से बोला, "हे मुनिनाथ! मैंने इन सब जीवों का यज्ञ में हवन किया है, फिर यह मुझको क्रूर दृष्टि से किस लिये देखते हैं? आप कृपया वर्णन कीजिये जिससे मेरा भय और संदेह दूर हो जावे।" यह बचन सुनकर नारद जी बोले, "हे राजन्! जिस प्रकार तुमने इन जीवों को मारकर यज्ञ में हवन किया है इसी प्रकार तुमको भी सबजीव प्रत्येक जन्म में मारकर अपना बदला लेवेंगे।"

कुरान शरीफ़ के सिपारे ६ वें पाद तीसरे में भी लिखा है:-

(१) अन्न नफ्फ़सा बिननफ्फ़से—भाव—प्राण के बदले प्राण देने पड़ेंगे।

(२) वल ऐना बिल ऐने—भाव—जो किसी की आँख निकालेगा उसके बदले उसे आँख निकलवानी पड़ेगी।

(३) वल अनफ़ा बिल अनफ़े—भाव—जो किसी के कान काटेगा उसके बदले उसे कान कटवाने पड़ेंगे।

(४) वल उज़ना बिल उज़ने-भाव-जो किसी के हाथ काटेगा उसके बदले उसको हाथ कटवाने पड़ेंगे—

(५) वसिन्ना बिसन्ने—भाव—जो किसी का पांव काटेगा उसको अपने पांव कटवाने पड़ेंगे।

(६) वल जरूहा किसास--भाव--इस बात को सत्य कर मानों कि बदले का बदला देना पड़ता है। इस पर इतिहास श्रवण करें:-

एक सधना नामका पुरुष कसाई का काम करता था। एक दिन की बात है कि रात्रि के समय बादशाह को मांस की आवश्यकता पड़ी, तो उसने सधने के पास अपने नौकर को भेजा कि मांसले आओ। परन्तु

उस समय सधने के पास से सब माँस विक चुका था। उसने अपने मन में विचारा कि बादशाह का सेवक है, यदि लौटा दिया तो न मालूम इसका परिणाम क्या होगा। यदि इस समय बकरे को मारता हूं तो रात्रि भर माँस पड़ा रहने से खराब हो जावेगा, ऐसा विचार कर सधने ने बकरे के अण्डकोष काटने के लिये छुरी हाथ में ली जब काटने को तैयार हुआ तो बकरा पहिले रो पड़ा और फिर हंसा। सधने ने बकरे से रोने और हंसने का कारण पूछा तो उसने कहा कि हे सधना! कई बार तू बकरा बना और मैंने कसाई बनकर तेरा गला काटा और तूने मेरा कई बार गला काटा यह बदला तेरा और मेरा चिरकाल से चला आता है; परन्तु यह अण्डकोष काटने वाला काम तू नया करने लगा है। तब सधने ने छुरी फैंकदी और भयभीत होकर ईश्वर भक्ति में लग गया। इस इतिहास और प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जब तक ज्ञान न हो तब तक जन्म जन्मान्तरों में बदला लेना देना पड़ता है। ऐसे वचन सुनते ही राजा बड़ा चिन्तातुर हुआ कि जितने जीव मैंने मारे हैं उतने जन्म मुझे लेने पड़ेंगे तब उनके बदले से उऋण होऊंगा। मैंने बड़ी भूलकी जो इतने जीवों को मारकर हवन किया। ऐसा विचार कर राजा बोला, "हे महाराज! जितने पण्डित और प्रोहित व मन्त्री लोग जो मेरी सभा में बैठे हैं इन सबने मुझे यही शिक्षा दी थी कि यज्ञ से उत्तम दूसरा और कोई धर्म नहीं है और आपने मुझे इसमें प्रत्यक्ष भय दिखलाया है। यह भेद क्यों?" उस समय राजा के निकट एक पिंजरे में मैंना और एक पिंजरे में तोता था। उसको देखकर नारद जी बोले, "हे राजन्! तोता मैंना से वारम्वार कहता है कितू मुझे इस पिंजरेसे निकालदे तो मैं बन्दिसे छूटकर बनके पक्षियोंसे मिलकर स्वतंत्र विचरूं। उधर मैंना कहतीहै कि मैंभी चाहतीहूं कि यदि मुझेकोई पिंजरे से निकाल दे तो मैं मैंनाओं में जाकर आनन्द से रहूं। दोनों आपस में एक दूसरे से कहते हैं कि पहले तुम उड़ो, परन्तु उड़ने की सामर्थ्य कोई नहीं रखता; न एक दूसरे को पिंजरे से ही निकाल सकते हैं। इसी

प्रकार पंडित व प्रोहित तथा मन्त्री लोग भी संसार रूपी माया जाल के पिंजरे में पड़े रहकर क्या सामर्थ्य रखते हैं जो तुम्हें इस संसार रूपी जाल से बाहर कर सकें?" यह बात सुनकर राजा ने समझा कि आज तक ऐसा ज्ञानी मुझे कोई नहीं मिला जिसका वचन सुनकर मुझे ज्ञान प्राप्त होता। फिर विनती करी, "हे मुनिराज! आप कोई ऐसा उपाय बतलादें कि जिससे उन जीवों के हाथ से बचकर मोक्ष पदवी को प्राप्त करूं।" तबनारदजी ने राजा को ज्ञानोपदेश किया जिससे राजा जन्म मरण के दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हुआ। ताते सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु तीन प्रकारकी हिंसा का त्यागकर ज्ञान के साधनों को संपादन करो॥

॥ भजन ॥

जीवन को मत मार छुरी से, मारन हार खड़ा सिर तेरे॥ टेक॥
मांस खाय कछु अमर न होवे, क्यों करता फिर पाप घनेरे॥
मांस खाय तन मांस बढ़ावै, सो तनु जाय संग नहिं तेरे॥
ईश्वर के सब पुत्र बराबर, ऊंच नीच नैनन मत हेरे॥
ब्रह्मानन्द दया धर मन में, जानन हार जानि प्रभु नेरे॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः



दान

प्रश्नः—हे भगवन् जी ! मल की निवृत्ति अर्थ आपने दया, दान, परोपकार और सेवा का वर्णन किया है। सो दया का प्रसंग सुनकर मेरा चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ है। अब आप कृपया दान का भी प्रसंग सुना कर कृतकृत्य करें॥

उत्तरः—हे प्यारे ! हम तुम्हारे प्रश्न के अनुसार पहिले दान का वर्णन करते हैं, फिर नाम और स्नान का वर्णन भी करेंगे। गुरु प्रमाणः-

गुर मुखि नामु दानु इसनानु। गुरु मुखि लागै सहज धिआनु॥

(राम० सिध० पृ० ६४२)

दान के बिना चित्त मलिन रहता है। जैसे हम शरीर को अन्न, भोजन, तथा जल देते जावें और मल मूत्र न आवे तो नाड़ियाँ गन्दीं हो जातीं हैं और शरीर रोगी हो जाता है; फिर कोई कार्य नहीं हो सकता। दृष्टान्तः—

चौ०– भूमी बीज करे सौगुना। प्रभु अरपण होवे बहुधना॥
ग्रहण त्यागबिन दुःखकी खान। तन तेरा इसमें परमान॥

फिर देखो, अन्तर्यामी ने मनुष्य के लिये कैसी कैसी दैन यानी दातें दीं हैं जिससे हम सुख भोगते हैं। जैसे शीतल और स्वच्छ वायु में जीवन निर्वाह करते हैं, अग्नि से भोजन के पदार्थ बनाते हैं और सर्दी में सूर्य की धूप तापते हैं और उसके प्रकाश में सर्व व्यवहार करते हैं, पीने को शीतल जल बनादिया है, जिससे वस्त्र धोते हैं, स्नानकरते हैं, खेतियाँ हरी भरी करते हैं। धरती पर चलते फिरते आनन्द मनाते

अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अनेक प्रकार के फल पृथ्वी से प्राप्त होते हैं जिनको हम खाते भोगते हैं। पुनः उस अन्तर्यामी ने हमारी आवश्यकता तथा दुःखों में सहायता देने के लिये सम्बन्धी बनादिये हैं। फिर इसके अतिरिक्त ऐसी अमूल्य वस्तुएं हमको प्रदान की हैं जिनका हम वर्णन भी नहीं कर सकते। इसी आशय पर गुरु प्रमाणः-

इसु पानी ते जिनि तू घरिआ। माटी का ले देहुरा करिआ॥
उकति जोति लै सुरति परीखिआ। मातु गरभ महि जिनि तू राखिआ॥
राखन हारु समारि जना। सगले छोडि बीचारि मना॥ १॥ रहाउ॥
जिनि दीए तुधु बाप महितारी। जिनि दीए भ्रात पुत हारी॥
जिनि दीए तुधु बनिता अरु मीता। तिसु ठाकुर कउ रखिलेहु चीता॥ २॥
जिनि दीए तुधु पवनु अमोला। जिनि दीआ तुधुनीरु निरमोला॥
जिनि दीआ तुधु पावकु बलना। तिसु ठाकुर की रहु मन सरना॥ ३॥
छतीह अमृत जिनि भोजन दीए। अन्तरि थान ठहिरावन कउ कीए॥
बसुधा दीउ बरतनि बलना। तिसु ठाकुर के चिति रखु चरना॥ ४॥
पेखन कउ नेत्र सुनन कउ करना। हसत कमावन बासन रसना॥
चरन चलन कउ सिरु कीनो मेरा। तिस ठाकुर के पूजहु पैरा॥ ५॥
अपवित्र पवित्र जिनि तू करिआ। सगल जोनि महि तू सिरि धरिआ॥
अब तू सीझु भावै नही सीझै। कारजु सबरै मन प्रभु धिआईजै॥

(रामकली मः ५ पृ० ९१३)

ताते ऐसे प्रभु की दैन पाकर मनुष्य का कर्तव्य है कि प्रभु के नाम पर यथा शक्ति दान अवश्य करे। जो दान न देवेगा उसका चित्त मलिन होजावेगा। कवि वाक्यः-

बू फ़साद की आती है बन्द पानी में॥

जैसे जिस कुएं से जल न निकाला जावे उसमें कीट पड़ जाते हैं और दुर्गन्धि पैदा हो जाती है। यदि पानी निकलता रहे तो उसका जल शुद्ध और पीने के योग्य बना रहता है। तैसे गृहस्थी के घर से अन्न, वस्त्र और माया का दान होता रहे तो उसका अपना खाना पीना भी सफल होकर चित्त शुद्ध होता है; परन्तु जिस घर से कोई अतिथि सन्तुष्ट न हो वह घर मसान के तुल्य है। जैसे लिखा हैः-

कबीर जा घर साध न सेवीअहि, हरि की सेवा नाहि ।

ते घर मरहट सारखे, भूत बसहि तिन माहि ॥ (श्लोक कबीर पृ० १३७४)

दान के बिना धन व्यर्थ जाता है और दुःख की प्राप्ति होती है:–

चौ०–दब्बे अन्न को दीमक खाय । दब्बा धन किसी काम न आय ।

दब्बा फल जैसे गल जाय । दब्बा धन भूमि रल जाय ॥

दब्बा धन सुख नहिं पहुँचाय । दब्बा धन विष घर हो आय ।

दान चित्त कंवल विगसाय । यश कीरति को दान बढ़ाय ॥

भावार्थ–दबा हुआ धन मिट्टी हो जाता है, और किसी काम में नहीं आता । या तो दीमक खा जाती है या गल जाता है, अर्थात् भूमि में मिल जाता है । वह धन सुख नहीं देता किन्तु रखवाली करने में दुःख पहुँचाता है और वही धन विषधर अर्थात् सांप की योनि में डालता है । गुरु प्रमाणः–

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।

सरप जोनि वलि वलि अउतरै ॥ [गूजः त्रिलोः पृ० ५२६]

दान करने से चित्त प्रसन्न होता है और यश कीर्ति बढ़ती है । दान के बिना परमात्मा रूपी वस्तु की प्राप्ति भी नहीं होती । घर में रक्खी हुई वस्तु भी दीपक के प्रकाश बिना नहीं मिल सकती । जैसेः–

दो०–दादू दीया भला है, दिया करो सब कोइ ।

तब लगि वस्तु न पाइये, जब लगि दिया न होय ॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिये एक शिष्य भाई सहिला गुरु अंगद देव जी के पास उपस्थित हुआ और विनती करी, "हम गृहस्थी हैं, आप ऐसा उपदेश करें जिससे हमारा कल्याण हो ।" सम्वाद इस प्रकार हैः–

गुरु अंगद दे चरनाँ अन्दर सहिला आके डिग्गा ।

कहो गुरू जी पार लँघावो मैं मूरख हाँ ढग्गा ॥

दिल टुट्टे मुख विनै अलावे रो रो हाल वंजावे ।

सच्चे दिल से यह अरजोइआँ बिहवल होय अलावे ॥

गुरु दयालू दया वाले होए प्रसन्न प्रसीजे ।

बोले सहिले जाओ घरानूँ सहजै कारज कीजे ॥

वाणी पढ़ो विचारो वाणी येही धारना धारो ।

बाहिर जाँदा बरजि रहाओ इस करणी को धारो ॥

बुद्धी देश्रो वाहि गुरु ताईं मन सतगुरु तों वारो ।
तन संगति दी सेवा लाश्रो धन दुखिश्राँ प्रति पारो ॥
ऐ कर गंड करो सब कुछ ही जो अपना है भासे ।
भासन वाला जद वख होवे तो निज आपालासे ॥

हे प्यारे ! जिस समय तू संगति की सेवा में अपने तनको और अर्थार्थियों अर्थ अपने धनको लगायेगा तो इसका फल तुमको प्राप्त होगा ।

तद सुखिया तूँ तरें जगत तूँ सहज अवस्था पावें ।
जनम मरन दे दुःखों छूटें फिरि न जूनी आवें ॥
सेवा करें करी नहिं जाने मैं हाँ सेव करेंदा ।
सेवा करें जरें जी अन्दर दूई दूर रखेंदा ॥

जिस समय महाराज जी का उपदेश सुनकर सहिला अपने घर में आगया ।

सहिले लङ्गर कीता जारी, लस्सी नाल बनावे,
जो आवै सो रोटी दाला लस्सी नाल पिलावै ॥
सहिलादे हजाराँ ताईं दे दान मुकचावे,
मथे कदेन तीउड़ी पावै दे न आप गनावे ॥
रोटी दिती किसेनूँ सहिले कंढा सीगा सड़िश्रा,
रोटी सड़ी देखके मंगते सहिले ताई फड़िया ॥
दो हूरे दो हुज्जां लाइयां दस वीह दितियां गालां,
सहिले मार मठिश्राइयां जाती गालां घिश्रोदिश्राँ नालाँ ॥
चरन पकड़के कहिंदा साईं मैं भुला तूँ पाइश्रा,
भुलेताईं सूधे रसते तूं उपकार कमाइया ॥
मेरी ग़फ़लत कारन पके कई सड़े परशादं,
खाधे होसन कँइश्रां भाइश्रां दुःख पाए इस खाधे ॥ (गुरु सिख वाड़ी)

जो दान निरहंकार होकर किया जाता है वही फली भूत होता है।

दो०—सम्मन ऐसी प्रीति कर, जैसी बिरिच्छ करै ।
धूप सहे सिर आपने, औरों छाश्रों करै ॥

इसी आशय पर एक वार अर्जुन ने श्री कृष्ण भगवान् से प्रश्न किया कि महाराज ! आपका सब से प्यारा भक्त कौन है ? तो भगवान्

कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण का रूप धार कर भक्त के घर चले गये और चारों दरवाज़ों पर जाकर याचना करी। उसने चारों दरवाज़ों से दान दिया, एक बार भी नहीं पूछा कि तुम पहिले या दूसरे दरवाज़े से अभी लेकर आये हो। तब श्री कृष्णजी बोले:—

यह चतुराई कहाँ से सीखे, चारों ओर से दैन।
भाव भगत पूछा नहीं, कर कर नीचे नैन॥
उ० भक्त जी—दैनहार समरत्थ है, देता है दिन रैन।
लोक नाम मेरा करें, इस से नीचे नैन॥

इतना सुनकर भगवान् अति प्रसन्न हुए और अर्जुन को शिक्षा दी कि भक्त ऐसा होना चाहिये। इसी आशय पर और सुनो:—

सब वस्तू बाँटकर खाओ। यथा शक्ति अर्थी परचाओ॥
हो उदार करो विद्यादान। यही दान सब में परधान॥
निराधार आधार बनाओ। धन हीनन को कार में लाओ॥
रखिआकर अनाथ बालकी। विधवा और वृद्ध साल की॥
क्षुधावान की क्षुधा मिटाओ। पियासे ठंडा जल पिलाओ॥
घट घट में नारायण जान। नहीं दुखाओ धर अभिमान॥
सब को सुख पहुंचाओ नीत। मानुष जनम सफल होय मीत॥
तन निष्फल बिन पर उपकार। भसम होवे या जगत मँझार॥

मनुष्य जन्म की सफलता हरि की भक्ति, शूरवीरता और दान इन तीनों के बिना नहीं हो सकती। इनके बिना नर कीट के समान है:—

कै पदवी हरि भगत है, कै अरि को दल नास।
कै सिर लौं धन दान है, इन बिन कृमि समवास॥

'सिर लौं धन' दान पर एक इतिहास श्रवण करें:—

महाभारत के युद्ध में सुवांक नाम का एक राजा आया। भगवान् कृष्ण ने ब्राह्मण के वेष में उससे पूछा "तुम किस की सहायता करोगे?" राजा बोला, जिस की हार होगी उसी की। भगवान् ने पूछा "तुम में कितनी शक्ति है?" उसने कहा "मैं एक बाण में सारी सेना का नाश कर सकता हूं।" भगवान् ने कहा, "इस बात का निश्चय कैसे हो?" उसने कहा, " यह जो सामने वृक्ष है इसके सब पत्ते एक बाण से

वेध सकता हूँ।" भगवान् ने वृक्ष से एक पत्ता तोड़कर अपने पैर के नीचे दबा लिया और सर्व पत्र वेधने को कहा। तब राजा ने एक ही बाण चलाकर सब पत्तों को वेध दिया। जब भगवान् ने अपने पैर के नीचे का पत्ता देखा तो उसको भी विंधा हुआ पाया। तब भगवान् ने सोचा कि मुझे पांडवों की जीत करानी है और कौरवों की हार। यदि यह राजा कौरवों की ओर होजावेगा तो पांडवों की जीत कठिन है। यह विचार कर भगवान् कहने लगे, "आपकी शूरवीरता तो हमने देखी, परन्तु आप दान कहां तक कर सकते हो?" राजा ने उत्तर दिया, "मैं सिर तक दान कर सकता हूं।" तब भगवान् ने उसका सिर दान में माँगा। राजा कहने लगा, "हे भगवन्! मुझे सिर देने में कोई आपत्ति नहीं; परन्तु मेरे चित्त में यह युद्ध देखने की तीव्र इच्छा है, यदि आपको सिर दे दूं तो कैसे देखूँ?" भगवान् ने कहा, "हम आपका सिर ऐसी जगह रक्खेंगे जहाँ से आप सम्पूर्ण युद्ध देख सकेंगे।" यह सुन उसने सिर दान दे दिया। इससे सिद्ध हुआ कि भगवान् के भक्त सिर तक भी दान कर देते हैं॥

संसार में चार प्रकार के पुरुष होते हैं—उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अति नीच; जैसा कि भावरसामृत में लिखा है:—

अपने हित त्याग करे परको हित ते नर उत्तम है जग माहीं।
अपने हित संग करे पर को नर आहि समान वही भवमाहीं॥
अपने हित नाश करे पर को हित राक्षस है नर ते जगमाहीं।
बिन ही अपने हित नाश करे पर को हित ते नर कौन कहाहीं॥

अर्थ—जो पुरुष दूसरे के सुख के लिये अपने सुख का त्याग करता है सो पुरुष संसार में उत्तम है, इस पर इतिहास श्रवण करें:—

एक समय राजा विक्रमादित्य ने ज्योतिषियों से पूछा कि मैंने ऐसा कौनसा कर्म किया है जिससे मुझे एकतो राज्य मिला, दूसरा लोग मुझे "धन्य धन्य राजा विक्रमादित्य" कहते हैं? सभाके ज्योतिषी राजाके प्रोहित से ईर्षा रखते थे, उन्होंने मनमें विचारा कि जब राजा ने कुछ पूछा

होता है तो हमारे से ही पूछता है, परन्तु विशेष दान अपने प्रोहित को ही देता है; इससे अब समय है, राजा को कहदें कि वह इस प्रश्न का उत्तर उससे पूछे। जब ज्योतिषियों ने राजा से यह बात कही तो उसने प्रोहित से कहा। कि तुम इन बातों का उत्तरदो। प्रोहित ज्योतिष नहीं जानता था। उसने कहा मुझे कुछ समय मिलना चाहिये। राजा ने एक महीने का समय दे दिया। जब एक महीने का समय लेकर घर में गया तो सोचने लगा मुझे तो कुछ नहीं आता और ज्योतिषी बताते नहीं। अब क्या किया जाय। इसी चिंता में हर समय रहने लगा। खाना पीना भी छूट गया। एक दिन उसकी लड़की ने पूछा, "पिताजी! घरमें किसी वस्तु की कमी नहीं, फिर क्या बात है कि आप कई दिनों से न तो अच्छी प्रकार से कुछ खाते हैं न बात चीत करते हैं। हर समय चिंता ग्रस्त रहते हैं, इसका क्या कारण है?" तब प्रोहित ने सब समाचार लड़की से कहा। उसने कहा आप चिंता का त्याग कर देवें। मैं जिन संतों के पास सत्संग के लिये जाया करती हूं उनकी दृष्टि अभ्यास के बल से खुली हुई है। वह सब कुछ बता देंगे। तब प्रोहित ने कहा अभी जाकर पूछो ताकि हमारा सन्मान बना रहे। लड़की ने जाकर संतों से विनती की तो उन्होंने कहा; "अपने पिता से कहदो कि जाकर राजा से कह देवे कि आपके प्रश्न का उत्तर अमुक संत देंगे। लड़की ने सब समाचार पिताजी को सुना दिया, और प्रोहित ने जाकर राजा से कहदिया। तब राजा और प्रोहित दोनों संतोंके पास गये और नमस्कार कर के बैठ गये। सन्तों ने कहा, "हे राजन्! पूर्व की ओर जाकर देखो, एक मील की दूरी पर एक अन्धा पुरुष बैठा हुआ है।" राजा ने जाकर देखा और लौटकर बताया "जी हाँ महाराज! बैठा हुआ है।" फिर संतों ने कहा, "अमुक चांडाल के घर एक लड़की है, उसको बुलाओ।" लड़की भी बुलवाई गई। जब वह आगई तो सन्तों ने उस के सिर पर छड़ी रखदी। उसकी दिव्य दृष्टि होगई। सन्तों ने राजा से कहा, "इस लड़की से पूछो।" राजा ने लड़की से अपने पूर्व

जन्म का हाल पूछा। उसने कहा, हे राजन्! आप पिछले जन्म में मे
पिता थे। राजा बोला कैसे? लड़की बोली राजन्! पिछला जन्
हमारा ब्राह्मण का था और हम सब पाँच जने थे। एक समय अकाल
पड़ा, कितने ही दिन तक अन्न न मिला और उपवास होने लगे। उ
समय आपने सोचा कि परदेश में जाकर माँगकर या मज़दूरी कर
निर्वाह करें। ऐसा विचार सब लोग घरसे चलपड़े। कोई मनुष्य अनाज
की बोरियाँ लेकर उधर से निकला था और दैवयोग से किसी फ
बोरी से दाने फैलते गये थे। हमने वह बीन लिये। इस प्रकार डेढ़ द
सेर दाने एकत्र हो गये। एक गाँव में आने पर आपने कहा, "हे पुत्री
बहुत दिन भूखे रहने से इन दानों को पीसकर पकाने की किसी में शक्ति
नहीं है। तुम इनको भुनवा लाओ। फिर खाकर और पानी पीकर आग
चलेंगे"। मैंने वह दाने गाँवमें जाकर भुनवाये और विचारा कि पाँचव
भाग मुझे मिलना है;इससे पाँच भाग किये। एक भाग अलग करके चा
मिला दिये। भूख से व्याकुल होने के कारण वह पाँचवाँ भाग मैंने रास्
में ही खालिया और शेष दाने आपके आगे लाकर रखदिये। त
आपने उनके पाँच भाग करके सबको बाँट दिये। इतने में एक मनुष्
भूख से अति व्याकुल ऐसे पुकारता हुआ आरहा था कि कुछ खाने लाय
हो तो मेरे लिये भी रखना। भूख के मारे अच्छी प्रकार उसके मुंह
शब्द नहीं निकलता था। मैंने खाने आरम्भ कर दिये। जो मैं पीछे
खा आई थी वह भी न बताया और आपसे भी ले लिया। आपकी
बहिन ने, यह सोच कर कि कहीं इसको कुछ देना न पड़े, उनको जूठा
कर दिया। इतने में वह पुरुष सामने आगया और आपके पिता से
याचना की तो उन्होंने उसकी आखें चुभाते हुए कहा, "हम कब के भूख
से व्याकुल हैं, ऊपर से तू माँगने आगया। फिर उसने आप से याचना
की। आपने दयावश मेरी माता से कहा, हे शुभे! यह अति भूखा है
और मेरा भाग थोड़ा है। यदि तू भी अपना भाग देदे तो दोनों को
मिलाकर इसको देदें. जिससे इसका पेट भरजावे। हमको अन्तर्यामी

देगा तो खालेवेंगे, नहीं तो एक दिन प्राण निकलेंगे ही। इसके प्राण बच जावेंगे।" मेरी माता स्वयं भूख से व्याकुल होरही थी। उसका विचार नहीं था, परन्तु आपका वचन न टाल सकी और दे दिया। तब आपने दोनों भाग बड़ी प्रसन्नता से दे दिये। वह खाकर अति प्रसन्न हुआ और जाता हुआ दूर तक कहता गया, "हे पुरुष! तू धन्य है !! तू धन्य है !!! जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की है।" हे राजन्! आपने अपने प्राणों की चिन्ता न कर के उस याचक के प्राण बचाये। उसके बदले में ईश्वर कृपासे इस जन्म में आपको राज्य व धन्यता प्राप्त हुई है। आपके पिताने जो उसको कुछ न देते हुए आँखें कुचाईं थीं उसके बदले इस जन्म में उनको अन्धा होना पड़ा, जिसको पूर्व दिशा में वृक्ष के नीचे बैठा हुआ देख आए हो; और आपकी बहिन जिसने मन मैला करके दाने जूठे कर लिये थे उसको पच्छिम की ओर धोबिन रूप में तालाब पर कपड़े धोते देखलो—मन मैला करने से अब लोगों की मैल धोरही है। ऐसे ही, दुःखों से इकट्ठे किये हुए दाने मैंने चोरी से खालिये और फिर अपना भाग भी ले लिया; उसके बदले में मुझे चाण्डाल के घर जन्म लेना पड़ा है। हमारी माता ने आपके माँगने से वह दाने दियेथे, वह इस जन्ममें आपकी प्रोहितानी है; उसको अब धन का कोई घाटा नहीं। उसने माँगने पर दिया था, अतः इस जन्म में उस को माँगने से ही मिलता है। ऐसा सुनकर राजा ने मनमें निश्चय किया कि दूसरे की रक्षा से सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये मैं अब भी सुख पहुँचाऊं, जिससे आगे भी महान् सुख की प्राप्ति हो। फिर नियम कर लिया कि आज से जो कोई याचक मेरे द्वार पर आवेगा पहले उसकी प्रसन्नता लूंगा फिर अन्नजल करूंगा। उसने इस प्रण को आजीवन, जैसे भी हो सका, पूरा किया। इसके दान तथा परोपकारों को देखना हो तो बैताल पच्चीसी में देखो। ऐसे पुरुष संसार में विरले ही हैं जैसे नीति में लिखा है:—

दो०—अर्थी प्रश्नी जगत में, सुलभ अगार अगार।
दाता उत्तर वन्त दो, दुर्लभ यह संसार॥

जिस पुरुष का नित्य प्रति दान करना स्वभाव है उसके बारे नीति में लिखा है। कि वह पृथ्वी पर रहता हुआ भी स्वर्ग में निवास करता है:—

सवैया—दान प्रसङ्ग सदैव करे परमातम देव भजै चितलाई।
जासुगिरा मधुरी अतिशय नित सेवत जो धर्मी नरु ताई॥
जा जन के मनमें नित ही गुण चार विराजत ए सुखदाई।
ते नर भूमि विराजत ही स्वर्गे बसिहै संशय नहिं राई॥

इसलिये राजा विक्रमादित्य का नाम आज तक भी लिया जाता है, उनको धन्यता प्राप्त है और उनके नाम का संवत् चला आरहा है॥

इसलिये माता ऐसा पुत्र उत्पन्न करे कि जो हरि भक्त, शूरवीर अथवा दाता हो; इनके बिना मनुष्य जन्म सफल नहीं होगा। इन तीनों में से एक भी गुण न हो तो माता ऐसा पुत्र उत्पन्न ही न करे; इस पर कबीर जी कहते हैं:—

दो०—जननी जने तो भगत जन, कै दाता कै सूर।
नाहिं तो जननी बाँझ रहे, काहि गवावै नूर॥

दाता का और इतिहास श्रवण करें:—

एक वार महाराजा दशरथ ने ज्योतिषियों से पूछा कि मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा शुभ कर्म किया था जिससे एक तो मुझे राज्य की प्राप्ति हुई दूसरा भगवान् राम ने मेरे गृह में अवतार लिया है और तीसरा पूर्ण ब्रह्मज्ञानी वसिष्ठ गुरु की प्राप्ति हुई। तब ज्योतिषियोंने ज्योतिष द्वारा यह कहा हे राजन्! आपने पूर्व जन्म में राजा रघु के नाम से बड़ी भक्ति और दान किया था जिसके कारण तुमको अब इस उत्तम सामग्री की प्राप्ति हुई है। अब पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनो। पूर्व जन्म में तुम्हारा यह प्रण रहा कि बारह वर्ष तपस्या करनी और बारह वर्ष राज्य; और राज्य में रह कर बहुत दान करना। इसी प्रकार चिरकाल व्यतीत होगया। एक वार वन में तपस्या करने गये तो बारह वर्ष से अधिक ही व्यतीत होगये। आपकी पटरानी ने विचार किया कि आगे महाराज जी बारहवर्ष व्यतीत होनेपर लौटकर आजाते थे, इस वार नहीं आये; न जाने क्या कारण है। इससे प्रोहित को बुलवाकर पूछा। तब प्रोहित

का मन वश में न रहा। रानी प्रोहित की ऐसी दशा देख कर बोली, 'प्रोहित जी! आप जाइये, फिर किसी समय आपसे पूछूँगी।' ऐसे कहकर रानी ऊपर की मंजिल में चली गई और प्रोहित जी घर को चले गये। परन्तु मन रानी में लग जाने से खाना पीना अच्छा नहीं लगता था। फिर सोचा कि रानी तो प्राप्त हो नहीं सकती, इससे मरना ही भला है। तब बाहर जाकर अपने हाथ से चिता बनाई और ऊपर बैठ गया और जो कोई पथिक उधरसे निकले उसीसे कहता कि चितामें आग लगादो। परन्तु कोई भी इस अशुभ कार्य को नहीं करता था। इतने में, हे राजन्! उधर से आपका आना हुआ। वह आपको न पहचान सके क्योंकि बारहवर्ष वन में रहने से केश और नख बड़े २ हो गये थे, आपका रूप बदला हुआ था और शरीर भी दुर्बल होगया था। तब आपसे कहा, "इस चिता को आग लगादो।" आपने पूछा, "हे भले पुरुष! ऐसा काम क्यों करते हो?" वारम्बार कहने से उसने सब वार्ता सुनादी तो आप उसकी भुजा पकड़ कर अपने महल में ले गये और रानी को संकल्प कर उसके अर्पण कर दिया। रानी का नियम था कि गौ दान कर के अन्नजल लेना। दो तीन दिन ही प्रोहित गौ दान करा सका। चौथे दिन वह गौ दान कराने के लिये न देसका तो रानी ने अन्न जल न लिया। वह मरने को तैयार होगई। जब राजा ने सुना कि रानी भूख प्यास से मर जावेगी तब मनमें सोचा कि प्रोहित इस प्रकार नित्य प्रति गौ दान कराने में असमर्थ है। इसलिये प्रोहित को बुलवा कर सारा राज्य संकल्प कर दिया और वन में जाकर अपनी शेष आयु को व्यतीत किया॥

एक दिन आप वृक्ष के नीचे सोरहे थे। अचानक उस के ऊपर पक्षी कोलाहल करने लगे। आपने देखा कि एक बड़ा सर्प वृक्ष के ऊपर जारहा है जिसके भय से पक्षी दुःखी हो कर कोलाहल कर रहे हैं। आपने सर्प को मारडाला। प्रातःकाल हंस और हंसिनी ने आकर देखा कि उनके बच्चे जीवित हैं, पहिले नित्य प्रति मारे जाते थे। उन्होंने

बच्चों से पूछा कि तुम किस प्रकार बचे हो ? वह बोले कि जो पुरुष नीचे बैठा है उसने हमारे शत्रु सर्प को मार डाला है। हंस और हंसिनी बहुत प्रसन्न हुए, जो अमृत फल स्वर्ग से बच्चों के लिये लाये थे वह आपकी भेंट किया और कहा कि आपने हमारे पर बड़ी कृपा की है, हमारे बच्चों को बचा लिया है। इस अमृत फल के खाने से आपकी तरुणावस्था हो जावेगी। आप ने फल लेकर सोचा कि हमने अधिक जी कर क्या करना है, रानी तरुण है और प्रोहित वृद्ध है; यह फल प्रोहित को देदें जिससे वह सांसारिक सुख भोग सके। यह विचार नगर में आकर अमृत फल प्रोहित को दे वन में लौट गये। उसको शंका हुई कि यह कहीं विष फल न हो जिसे खिला कर राजा मुझे मारना चाहता हो। यह विचार कर उसने उसे न खाया, माली को बाग़ में बोने वास्ते देदिया; उसने उसे बाग़में बोदिया। फल लगने पर प्रसिद्ध कर दिया कि यह विष फल है, इसको कोई न खावे। उस नगर में एक स्त्री पुरुष लड़ पड़े। स्त्री ने विचारा कि नित्यप्रति की लड़ाई से तो मर जाना ही अच्छा है। मृत्यु तो आती नहीं, बाग़ में जाकर विष फल खालूं। वह क्रोध से भरी हुई बाग़ में गई और विष फल तोड़कर खा लिया। फल यह हुआ कि वह युवावस्था को प्राप्त हो गई। माली ने जाकर प्रोहित(राजा) से कहा कि वह विषफल नहीं था, अमृत फल था। तब उसने बहुत पश्चात्ताप किया क्योंकि उस वृक्ष को केवल एक ही फल लगा था। प्रोहित (राजा) सेना साथ लेकर आपके पास वन में गया और कहा, "मैंने अभाग्य वश आपका दिया हुआ फल नहीं खाया, कृपया एक और फल मुझे दें।" आपने कहा अब मेरे पास फल नहीं है, वह तो स्वाभाविक ही मिलनेपर आपको देदिया था। मनोरथ सफल न होने पर प्रोहित मरने को तैयार होगया। तब आप उसी हंस और हंसिनी के पास गये और विनती करी कि इस प्रोहित ने हमको बहुत विवश किया है,आप एक अमृत फल और ला दीजिये। उन्होंने कहा कि आपने हम पर बहुत उपकार किया है। आप हमारे साथ स्वर्ग में चलें

और एक क्या कई फल ले आवें। प्रोहित ने भी साथ चलने का आग्रह किया। आप दोनों हंस हंसिनी पर सवार होकर स्वर्गमें पहुँचे और अलग अलग विचरनेलगे। प्रोहितने वहाँ एक बहुत सुन्दर मन्दिर बनते देखकर पूछा कि यह किस धर्मात्मा के लिये बनरहा है ? उत्तर मिला कि मृत्यु लोक में राजा रघु है, उसके लिये बनरहा है। वह आपको वहां लेगया और पूछा, "आपको पता है यह मन्दिर किसके लिये बनरहा है ?" आपने कहा हमें क्या, किसीका हो। प्रोहित के दोवारा पूछने पर सेवकों ने कहा, "राजा रघु का है।" प्रोहितने कहा, "यह आपका है, अब हमें देदो।" आपने कहा कि जब हमें मिला ही नहीं तो दें क्या ? प्रोहित बोला कि यदि न दोगे तो शाप दे दूंगा और शरीर छोड़ दूंगा। आपने उसी समय वह महल संकल्प कर दिया। आपके इस दान को देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवके आसन डोल गये और धन्य २ होने लगी। इस प्रकार दान के प्रताप से आपको यह सब सामग्री मिली है। धर्म पूर्वक कमाये हुए धनको धर्म में लगाने का महान् फल है,और कपट से कमाये हुए धनको कुकर्मों में लगाने से पुरुष यम दण्ड का भागी होता है। जैसे महात्मा लिखते हैं:—

दो०—छल अरु कपटहिं त्यागकर, धनहित उद्यम ठान।
ईश अर्थ जो लाय है, पावे सुख सु महान ॥ १ ॥
धनहिं कमावै कपट सों, लावे बुरे जु काम।
यम कर शासन सहै सो, संतन कह्यौ बखान ॥ २ ॥

कुं०—खाया जाय सो खायले दिया जाइ सो देह।
इनसे पाछे जो बचे, सो तुम जानो खेह ॥
सो तुम जानो खेहकिसी पुनिकाम न आवै।
हर्ष शोक का बीज पुनः पुन तुझे रुआवै ॥
कह गिरधर कविराय चरन त्रय धनके गायो।
दान भोग पुनि नाश होत जो दियो न खायो ॥

इससे सिद्ध होता है कि सुख का सबसे उत्तम साधन दान है जैसे:—
एक छोटी आयु का साधु गांव में भिक्षा के लिये गया। उसका शब्द

सुन कर एक देवी भोजन देने के लिये आई उसने पूछा "आप इतनी छोटी अवस्था में साधु क्यों बने ?" साधु ने कहाकि मुझे काल का भय है। गुरु प्रमाणः–

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बन्धु।
उह बेरा नहि बूझीऐ जउ आइ परै जम फन्दु॥
[गउड़ी ५२ अखरी मः ५ पृ० २५४]

साधुने पूछा, "तुम घर कौन आचार"। वह बोली "हम घर बासी खात हैं।" जब यह बात उसकी सासुने सुनी तो उसने अपने पति को पुत्र बधू की बात कहदी कि यह कहती है हम बासी खाते हैं और दूसरे पुरुषों से बातें करती है। इसलिये इसे पूछाजावे कि हमने कब इसको बासी रोटी दी है। साहूकार ने उसे बुलाकर समझाया और कहा, "हे पुत्री ! एक तो तुमको अन्य पुरुष से बात नहीं करनी चाहिये, दूसरी घर की निन्दा नहीं करनी चाहिये। वह बोली, हे पिताजी ! मेरे माता पिता के यहाँ साधुओं की बड़ी सेवा होती है और मुझे भी यही शिक्षा मिली है कि साधु को परमेश्वर रूप जानना। इस विचार को सन्मुख रखकर मैंने साधु से पूछा था कि आप छोटी अवस्था में साधु क्यों बने। उसने मुझे उत्तर देकर फिर पूछा कि तुम्हारे घर का चलन व्यवहार कैसा है ? मैंने जो उत्तर दिया था उसका तात्पर्य यह था कि मैं जबसे आई हूं यह देख रही हूँ कि जो धन हमारे घर में आता है सो पिछले कर्मों का फल है, आगे के लिये हम कुछ दान नहीं करते हैं, अर्थात नया बीज नहीं डाल रहे; क्योंकि मैंने ऐसे सुना है:–

आसावरी– पीछे तप करके जो आवन सो हुण सुख अघावन।
पिछला बीज्या खाइ रहे अब आगे बोझ उठावन॥
तिसका बदला दुःख भोगसन फिर रोवन ते कुरलावन।
जेहड़े वन्ड के खाँवदे सोई रब नूं भावन॥

ताते पिछली कमाई का खाना "बासी खाना" है। इसलिये मैंने कहा था कि "हम घर बासी खात हैं।" साहूकार ने पूछा कि इस समय हमें क्या करना उचित है ? वह बोली, इसी आशय पर मैं एक

कवित्त सुनाती हूँ जिससे आपको वर्तमान् और भविष्य की स्थिति का समाचार ज्ञात हो जावेगाः–

कवित्त-पूरव की कमाई पश्चिम में बैठ खाई, आगरे की खेप तैं ने कभी न चलाई ए।
दिल्ली के दलालों ने सौदा ही बिगाड़ दीना, पटियाले की लूट में जगाधरी न पाई ए॥
नाभे के लोग तो पुकार ही पुकार कहें, सहारन के रास्ते हरिद्वार जाइए।
संग के संगोटी तो लाहौर ही लाहौर कहैं, तज बैरोवाल चित अमृतसर लाइए॥

यह सुनकर साहूकार ने कहा, हे पुत्री! इसका अर्थ मेरी समझ में नहीं आया; यह तो शहरों के नाम हैं। वह बोली इसका तात्पर्य यह है कि पिछले जन्म की कमाई पश्चिम (इस जन्म) में बैठकर खाई है, आगरे (आगे) के लिये कोई दान नहीं किया जो फिर प्राप्त हो सके। दिल्ली (दिल) की दलीलों ने ईश्वर मिलाप के सौदे को बिगाड़ दिया। पटियाले (अपने पेट) की लूट अर्थात् स्वार्थ ने जगाधरी (जगत के आधार हरि) को मिलने नहीं दिया। वहतो बाँट कर खाने से ही मिलता है। गुरुजी ने कहा हैः–

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ॥
[सारंगकीवार श्लोक मः १ पृ॰ १२४५]

"वन्ड खाणा बन्दगी," "दिखाखाणा शरमिन्दगी," "लुका खाणा गन्दगी,"।

नाभे के (निर्भय पद में रहने वाले) लोग अर्थात् 'ब्रह्म पदमें वृत्ति को जोड़ कर रखने वाले साधु' पुकार पुकार कर कहरहे हैं कि सहारनपुर [वाक्य कुवाक्य के सहन करने] के रास्ते ही हरि का द्वार जो ज्ञान है तिस से अपने निज स्वरूप को जानलेते हैं। इसी आशय पर लिखा हैः–

वेद पुराण सभै कुछ पढ़िओ इक न पढ़िओ हारन।
हारन बाझों जनम गवाइओ एह की कीता कारन॥
हारन दी जिन्हां अटकल आई सो आप तरे कुल तारन।
केवल हउ मैं रोग भरेरा मिल सतिगुर रोग निवारन॥

संग के संगोटी (इन्द्रिय) जो तेरे साथ आये हैं ये भी भोग पदार्थों से तृप्त नहीं होते और ही और माँगते हैं–जो तेरे सम्बन्धी हैं वह भी कपड़ा, खाना, पीना, सदैव मांगते हैं। इसलिये वैर भाव को छोड़ कर

अमृत रूप आत्मा में चित्त लगाने से ही मुक्ति होती है। यह बात सुनकर साहूकार ने पुत्रवधू से कहा कि तुम चने भुनाकर और चने की रोटियां पकाकर ग़रीबों को बांटदिया करो। उसने सोचा कि आज चने देने के लिये तैयार हुए हैं, कुछ दिनों पीछे गेंहूं देने को भी कहेंगे। उस दिन से ग़रीबों को प्रतिदिन चने की रोटियां देनी आरम्भ करदीं। एक दिन सास किसी कार्य के लिये बाहर गई पीछे पुत्र वधू ही घर थी। उसने श्वसुर के आगे चने की रोटी रखदी जैसी कि साधारण ग़रीबों को बांटती थी। सेठ पहिले गेहूं के छोटे फुलके खाता था; जिस समय चने की रोटी खाने लगा तो गले से न उतरे। पुत्र वधू से पूछा हमारे घर में ग़रीबी आगई है, जो मेरे लिये चने की रोटियां ही बनाई हैं? वह बोली, "नहीं पिताजी, घर में तो सब कुछ है, परन्तु चने की रोटी आपको खाने के लिये इस कारण दी है कि आपका स्वभाव बन जावे; क्योंकि मैंने यह सुना है कि जो जैसा यहां बीजता (दान देता) है वैसा ही उसको आगे फल मिलता है।" जैसे गुरु प्रमाणः—

जेहा बीजे सो लुणे करमा संदड़ा खेत ॥ [बारह माह० माझ० म०५ पृ० १३४]

सेठ बोला यह सच्ची बात है, जैसा दिया जावे वैसा ही मिलता है। वह बोली कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो कुछ पृथ्वी में बोया जावे वही प्राप्त होता है; अर्थात् गेहूं बोया जावे तो गेहूं ही प्राप्त होता है और चने बोये जावें तो चने। यह कर्म भूमि है, जैसा दान करोगे वैसा ही फल मिलेगा। सेठ बोला कि गेहूं के पराँवठे पकाकर और खूब दाल साग बनाकर ग़रीबों को खिलाया करो॥

सारांश यह कि जैसा कर्म करोगे वैसा ही उसका फल भोगोगे। सकाम कर्म करोगे तो सांसारिक सुख, जैसा चाहोगे, मिल जावेगा; परन्तु निष्काम कर्म करने से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान होने पर जन्म मरण के दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होगी॥

जैसे कोई न्यायाकारी, धर्मात्मा तथा परोपकारी राजा को बन्धन में डाल रक्खे तो बन्धन में डालने वाले को शास्त्र कारों ने 'पापी'

कहा है। तैसे जो पुरुष धन को गाड़कर रखता है, दान नहीं करता, सो भी पापी है। परलोक में उसका मुंह काला होगा। जो स्वर्ण चांदी के बर्तन बनाकर घर में रखता है, पुण्य दान नहीं करता वह ऐसा है जैसे कोई किसी श्रेष्ठ पुरुष को नीच सेवा में लगादे।

जैसे अजगर सर्प में विष और मणि दोनों रहें हैं। विषकरके लोगोंको दुःख देता है तो उसके बदले में मार खाता है; और मणि देकर सुख पहुँचाने पर दूध पीता है, पूजा करवाता है; अर्थात् सुख भोगता है। ऐसे ही धन सम्पन्न पुरुष यदि किसी को धन करके दुःख देता है तो वह इस मृत्युलोक तथा परलोक में दुःख उठाता है। परन्तु जो शुभ कार्य में धन व्यय करताहै वह अवश्य ही "लोक सुखी परलोक सुहेला"होता है॥

जैसे पतिव्रता स्त्री और वैश्या के पञ्च तत्त्व का शरीर एक जैसा ही होता है; परन्तु पतिव्रता तो पति की सेवा और आज्ञा पालन करने से इस लोक में यश और परलोक में सुख उठाती हैं और वैश्या पर पुरुषों से व्यभिचार करके इस लोक में अपयश और परलोक में नर्कों के दुःख उठाती है। तैसे धर्मात्मा और अधर्मी पुरुष का धन एकसा ही है; परन्तु धर्मात्मा धनको धर्म कार्य में लगाकर इस लोक में यश और परलोक में सुख पाता है और अधर्मी उसी धन को जुआ वैश्यादि (खोटे कर्मों) में लगा कर इस लोक में अपयश और परलोक में नर्कों का पात्र बनता है :-

दो०-माया दो परकार की, दोइ चलावै राहि।
इक लैजावै नर्क को, एक स्वर्ग लैजाहि॥

जैसे लड़की को विवाह के समय दहेज में अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण, बर्तनादिक दिये जाते हैं; यदि वह विवाह से पहिले ही उसी लड़के (भावी पति) के घर अपने आप चली जावै तो दुःख और अपयश होता है। देखो, लड़की को देना तो अवश्य ही था; परन्तु प्रसन्नता पूर्वक देनेसे यश और सुख,और वह अपने आप गई तो निन्दा और दुःख हुआ। तैसे धनादि पदार्थों को जाना तो अवश्य है, परन्तु

प्रसन्नता से शुभ कार्य में देने पर यश तथा सुख और अपने आप (चोर तथा राज दण्डादि द्वारा) जाने पर निन्दा और दुःख होता है:-

स्वतः जब जावें तो मन को तपावें भारी ।
मोचे तिने आप ताप मोचे तिने च्छण में ॥ (वैराग्य शतक) ॥

जैसे कोई पुरुष परदेश से धन कमाकर अपने घर में आकर एक तो सुख भोगता है दूसरा लोग बड़ाई करते हैं; और जो परदेश में जाकर मूल को भी नष्ट कर आता है वह एक तो घर में दुःख पाता है दूसरा लोग भी निन्दा करते हैं। तैसे ही जो पुरुष इस मृत्यु लोक रूपी परदेश में आत्म प्राप्ति रूपी धन कमाता है एक तो वह सच्चे सुख को पाता है दूसरा उसका यश होता है; और जो अपने श्वास रूपी धन को खोटे कर्मों में व्यर्थ खोता है वह नर्कों के दुःख भोगता है और लोक में उसका अपयश होता है। तातें सिद्ध हुआ कि दान करने से अंतः करण की शुद्धि, सुख वा यश की प्राप्ति होती है। इसलिये जिज्ञासु निष्काम दान अवश्य करे:-

भजन- भूखे दान न दीना तैं नर किआ पुरान सुन कीना ॥ टेक ॥
तैं नर किआ पुरान सुनिकीना ॥ अन पावनी भगति नहीं
उपजी भूखैं दानु न दीना ॥ रहाउ ॥ तैं नर १ ॥
काम न बिसरिउ क्रोधु न बिसरिउ लोभुन छूटिउ देवा ॥
पर निंदा मुख ते नही छूटी निफल भई सब सेवा ॥ तैं नर० ॥
बाट पारि घरु मूसि बिरानो पेटु भरै अपराधी ॥
जिहि परलोक जाइ अप कीरति सोई अबिद्या साधी ॥ तैं नर० ॥
हिंसा तौ मनते नहिं छूटी जीअ दया नहिं पाली ।
परमानन्द साधु संगति मिलि कथा पुनीत न चाली ॥ तैं नर०॥
(सारंग मः १ पृ० १२५३)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



कृपण

प्रश्नः—हे भगवन् जी ! दानका प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। जो दान नहीं करते अर्थात् कृपण (सूम) हैं उनको क्या फल होता है ?

उत्तरः--हे प्यारे ! दान न करने वालों के सम्बन्ध में दृष्टान्त प्रमाण एकाग्रचित्त से श्रवण करो। गुरु प्रमाणः—

जिउ मधु माखी संचै अपार ॥ मधुलीनो मुख दीनी छारु ॥
गऊ बाछ कउ संचै खीरु ॥ गला बांधि दुहिलेइ अहीरु ॥
माइआ कारन स्रम अति करै ॥ सो माइआ लै गाडै धरै ॥
अति संचै सूझै नही मूड़ ॥ धन धरती तन होइ गइउ धूड़ ॥
(सारंग नामदेव पृ० १२५२)

भावार्थ—जैसे मधुमक्खियां शहद को एकत्र करती हैं तो शहद के उतारने वाले उनको धुआं देकर शहद निकाल लेते हैं वा जैसे गऊ बछड़े के लिये दूध एकत्र करती है,परन्तु बछड़ेका गला बांध कर अहीर दूध दुह लेते हैं। तैसे ही कृपण धनके अर्थ श्रम अर्थात् अनन्त कठिनाइयां उठाकर धन एकत्र करता है फिर उसको पृथ्वीमें गाड़ देता है। इसका फल यह होता है कि अन्त में वह धन पृथ्वी में ही गड़ा हुआ रहजाता है और मिट्टी के साथ मिट्टी ही हो जाता है। एक महात्मा कथन करते हैं:--

आसवारीः—जग विच धूम पई शुमांदी कोई कंम न भला कीतोने ॥
अपने आपनूं दुख दे दे के धन इकट्ठा की तोने ॥

ज़िउ मखिआँ माखी बहु जोड़न कोई आके घिनगिओने ॥
शूम मरके सरप होए बिहारी, एह फल पले पइओने ॥

गुरुजी लिखते हैं:—

अंतिकालि जो लच्मी सिमरै ऐसी चिंता महिजे मरै ॥
सरप जोनि वलि २ अउतरै ॥ (गुजःश्री त्रिलोचन पृ० ५२६)
पुनः सूमहि धनु राखन कउदीआ मुगधु कहै धनु मेरा ॥
जम का डंड मूंडमें लागै खिन महिकरै निबेरा॥ (आसा कबीर पृ० ४७६

जैसे एक कृपण न आप खाता था न दान देता था। उसके पुत्र सत्संग में जाने लगे तो कुछ दिन पीछे उनको विचार हुआ कि हमारा पिता धन के साथ अति प्यार करता है, पुण्य दान कुछ करता नहीं; यह इसके किस काम आवेगा। पिता से बोले, आपको ईश्वर ने इतना धन दिया है, इससे कुछ लाभ उठाना चाहिये। उसने कहा कि क्या लाभ उठाएं ? लड़कों ने कहा कुछ पुण्य दान तथा ईश्वर भजन किया करो, जिससे परलोक सुधरे और मनुष्य जन्म सफल हो। ऐसेही उन्होंने कईवार कहा, परन्तु उसका चित्त न तो दान करने को चाहे न भजन करने को। लड़कों ने विचार किया कि पिता का चित्त तो दान करने को नहीं चाहता; परन्तु फिर भी यह हमारे पिता हैं, इस लिये हमें चाहिये कि किसी न किसी प्रकार इनके धन को अच्छे काम में लगायें। एक दिन कुछ रुपये पृथ्वी पर रखकर, ऊपर एक बोरी गेहूं की डालकर कहा, "पिताजी! आज शुभ दिन है, इस गेहूं का संकल्प करदें।" वह गेहूं के दानों पर बैठकर कहने लगा कि यह कैसे सुन्दर दाने हैं, घरके खाने के योग्य हैं। कहते कहते उसका हाथ नीचे रुपयों पर जा पड़ा तो वह क्रोधित होकर लड़कों को गालियां देने लगा और कहने लगा, "तुमको कमाना पड़े तो पता चले, मेरे कमाये हुए धनको लुटाने लगे हो।" ऐसे ही गालियां देते हुए दुकान पर चला गया। अभी दो दिन हुए थे कि वह निमोनिए से बीमार होकर मर गया। उसके सत्संगी लड़के विचार करने लगे कि हमारा कर्तव्य है कि

इनकी गति वास्ते हरिद्वार में जाकर इनका दाह संस्कार और कुछ पुण्य दान करें। उन्होंने अति सुंदर विमान बनवाया और उसमें मृत देह को लेकर चलपड़े; सामान के लिये एक घोड़ी साथ लेली। रात्रिको एक गांव के समीप की धर्मशाला में विश्राम किया। उसी रात्रि को गांव का एक पागल मनुष्य सर्दी से पीड़ित हो धर्मशाला में आया। अंदर घुसा ही था कि उसके पांव के साथ विमान का स्पर्श हुआ। उसने कपड़ा हटा कर देखा तो मुर्दा पड़ा है। उसको बाहर फैंककर आप उसकी जगह विमान में सो रहा। जब प्रातःकाल लड़के उठे तो उन्होंने जल्दी से विमान अपने कन्धों पर उठा लिया। अँधेरे के कारण उन्हें कुछ पता न लगा और पागल को ही उठाकर ले चले। वह झोंकों के सुख में बीच ही पड़ारहा। जब लड़कों ने विमान को गंगा तट पर जाकर रक्खा तो पागल उठकर बैठ गया। लड़के बोले, "तू कौन है?" उत्तर में वह बोला, "तुम कौन हो?" इतना कहते ही उठकर चला गया। लड़कों ने सोचा कि हमारे पिता ने ही यह रूप धारण किया है या कोई और कारण है? धर्मशाला में चलकर देखें। तब एक लड़का घोड़ी पर सवार होकर वापिस गया तो क्या देखता है कि मृत देह वहां ही पड़ी हुई है और दुर्गन्ध आरही है। पूछने पर मालूम हुआ कि वह मनुष्य इस शहर का एक पागल था। तब वह मृत देह को घोड़ी पर बाँध कर ले चला जब हरिद्वार के पास पहुँचा तो घोड़ी डरी और सवार को गिरा तथा मृत शरीरको लेकर घर पहुँचगई। उसके भाई बंधुओंने सोचा अब हरिद्वार ले जाने में कठिनाई होगी और दुर्गन्धि भी बढ़ जावेगी; इस लिये यहाँ ही इसका दाह संस्कार करदिया जावे तो अच्छा है। उन्होंने उसी स्थानपरदाह संस्कार करके फूलचुनकर रख लिये। लड़के भी हरिद्वार से आगये। उन्होंने विचारा व्यवहार की प्रबलता से अब हमारा जाना कठिन है; इन फूलों को अपने प्रोहित के हाथ हरिद्वार भेज देवें। वही हमारे पिताजी के फूलोंको गंगाजी में प्रवाह करके भंडारा करा आवेंगे। प्रोहितजी को बुलवा कर कहा कि यह पाँच हजार रुपया है। इनसे

हमारे पिताजी के नाम पर भंडारा करादेना और यह सौ रुपया तुम अपने दान पुण्य खर्च के लिये भी लेजाओ। प्रोहितजी रुपया और फूल लेकर जब गांव के बाहर निकले तो मन में सोचा कि हमारे घर में धन की आवश्यकता है इससे यह सौ रुपया घर दे जाऊँ; अपना खर्च इस पांच हज़ार में से ही निकाल लूंगा। उसने फूल तो एक वृक्ष के साथ लटका दिये और आप घर चला गया। उस गांव का एक हरिजन उस रास्ते से निकला। उसने एक रूमाल वृक्ष के साथ लटकता हुआ देखा खोला तो उसमें अस्थियां थीं उन को फैला दिया और रूमाल घर लेजा कर अपने लड़के के सिर पर बांध दिया। जब प्रोहित जी घर रुपये देकर लौटे तो फूलों वाला रूमाल वहां नहीं पाया। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और सोचा, "यदि मैं लौटकर यह बात बतला दूं अप्रसन्नता होने का भय है; इससे हरिद्वार चलकर भंडारा ही करा लौट कर कहदूंगा कि फूल प्रवाह करदिये हैं।" यह विचार कर हरिद्वार चले गये। दूसरे दिन बच्चे सहित वह उस साहूकार के घर सफाई करने को गया तो उन्होंने अपना रूमाल पहिचान लिया। भंगी से पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया। तब उनको बड़ा खेद हुआ और प्रोहितजी के आने पर पूछा कि फूल कैसे पहुँचाये। वह जान गया कि इनको पता लगगया है। उत्तर दिया "हे यजमान्! जब आठ दस मनुष्यों से आपके पिता हरिद्वार न पहुंचे तो मैं कैसे पहुँचा सकता था।" उन्होंने विचार किया कि इसमें किसी का दोष नहीं हमारे पिताजी ने अपने हाथों से ही दान पुण्य नहीं किया, इसीलिये उनका मृत शरीर भी ख़राब हुआ। इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि वह आगे भी दुःखही पावेंगे। इस पर अन्त समय में धनी और माया का सम्वाद श्रवण करें:—

धनी— वाह दुनियाँ तू वाह दुनियां, तू डाढी वे परवाह दुनियाँ।
तेरे क़ारन पाप अनेक किए, दिलदर्द ग़रीबां छेकक़िये ॥
मैं कभी ख़याल ना नेक किए, किया तुझसे प्यार अथाह दुनियां ॥वाह॥

इक पल में मुझसे जुदा हुई, नहिं मित्र से कोई खता हुई।
तू ऐसी बेपरवाह दुनियां ॥ वाह दुनियां तू वाह दुनियां ॥

कुल आलम दुनियां सारी दे, मेरे नौकर खुदु अख्तियारीदे।
सब रोंदे ज़ारोज़ारी दे, तेरे मुख से न निकली आह दुनियां ॥ वाह ॥

जो तुझसे प्रीति लगाते हैं, तुझे जोड़ जोड़ मरजाते हैं।
वह कौन गती को पाते हैं, तू मुझसे दे बतला दुनियां ॥ वाह ॥

माया—तू अपना आप संभाल शाह, क्यों होता मुझसे लाल शाह।
तू दिल में नहीं विचार किया, क्यों मुझसे तू तकरार किया।
नहिं कीया दिल हुशियार शाह ॥ तू अपना० ॥
जो नेक कमाई करते हैं, मुझे खाते और खरचते हैं।
मैं चलां तिना के नाल शाह ॥ तू अपना० ॥
जो मुझसे प्रीति लगाते हैं, मुझे जोड़ जोड़ मरजाते हैं।
वह आखिर को पछताते हैं, बुरा होवे तिनका हाल शाह ॥ तू अप०॥

दो०—कृपण केर गृह जायके, बहु दुख पावै लाछ।
किसी काम ना आवही, ज्यों कुष्टी की छाछ ॥

कृपण (सूम) की माया किसी काम नहीं आती। एक कृपण के पास बहुत माया थी। वह अपना निर्वाह भी कंजूमी से करता था और माया से ऐसे कहता था:—

कवित्त— दाता के गृह जाती तो कदर हूं न पाती,
हुन मेरे गृह आई हैं वधाई बांट बावरी।
खाने दर खाने बीच तुझको निवाम देऊं,
होइ न उदास एहो मेरे मन चाओरी ॥
खाऊं न खिलाऊं मर जाऊं तो सिखा जाऊं,
पुत्र और नाती को आपने सुभाउ री।
चमड़ी उतारै तो भी दमड़ी न देऊं किसे,
शूम भाषे माया को तू बैठी गीत गाउरी ॥

जब उसका शरीर शान्त हुआ तो लोगों ने सोचा कि इसने अपने हाथ से दान नहीं किया, इसके धनको हम दान करदें। उन्होंने साधु ब्राह्मणों को न्योता देकर बड़ा भारी कड़ाह तस्मै बनाने को रक्खा।

एक चील मृत सर्प को पकड़े हुए आकाश में उड़ती हुई निकली तो उसके पंजे से सर्प निकल कर कड़ाह में जा पड़ा। तस्मै तैयार होने पर साधु तथा ब्राह्मणों को भोजन खिलाने के लिये पंगत बैठाई गई परोसते परोसते उस कड़ाह में से मरा हुआ सर्प निकल आया। तब वह तस्मै किसी ने न खाई। सबकी सब पृथ्वी में गाड़ दी। ताते सिद्ध हुआ कि जो सूम पुरुष अपने हाथ से दान पुण्य नहीं करता उसका धन मरने के पीछे भी व्यर्थ ही जाता हैः—

आसावरी—माया संच मुए हंकारी कुछ दान न कीता सरद्यां।
घाल घाल कर कीती कट्ठी दुःख पाया बहु जरद्यां॥
जिनस्यों खसी तिन फिर फड़िआ, बहुरुना लेखा करद्यां।
न एत्थे पकरी न ओत्थे पकरी, न पकरी है मरद्यां॥

देखो सूम पुरुष किस प्रकार दुःख पाते हैंः—

एक धनी पुरुष एक बार जंगल में गया। वहाँ पर फल सहित खजूर का पेड़ देख कर विचार किया कि शहर में तो इन पर पैसे खर्च करने पड़ते हैं, यहाँ से मुफ़्त तोड़कर खालूं और कुछ बच्चों के लिये घर ले जाऊं। वह खजूर पर चढ़कर फल तोड़ तोड़कर खाने लगा। पेट भरने पर जब नीचे पृथ्वीपर दृष्टि पड़ी तो ऊंचाई देखकर चित्तमें भय हुआ कि कहीं गिर न पड़ूं। ऐसा सोच कर अपने मनमें संकल्प किया कि हे देवी माता! यदि मैं इस पेड़ से सकुशल नीचे उतर गया तो आपको सौ रुपये भेंट करूंगा। नीचे आने पर विचार आया कि सौ रुपये का बहुत बड़ा संकल्प कर बैठा हूं। ऐसी चिन्ता करता हुआ घर आ रहा था कि मार्ग में उसे एक सूम मित्र मिला। उसके पूछने पर उसने सब समाचार खजूर के पेड़ पर चढ़ने का और संकल्प करने का कह सुनाया। तब उसने कहा कि देवी को प्रसन्न करना सुगम है, एक नारियल लाल कपड़े में लपेट कर देवी की भेंट करदो वह प्रसन्न हो जावेगी। सूम बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि हे मित्र! आपने मुझे बहुत अच्छी बात बताई है, ऐसा ही करूंगा। दूसरे दिन प्रातःकाल

उठकर वह बाज़ार में नारियल ख़रीदने गया। दुकानदार से नारियल का मोलपूछा। उसने तीन पैसे कहे। सूम बोला कि ठीक ठीक कहो,मुंह मांगे तौ मौत भी नहीं मिलती। जब बहुत झगड़ा करने लगा तो दुकानदार ने कहा कि शहर के बाहर हमारी दुकान है। वहां दो पैसे को मिल जावेगा, तुम वहां से लेलो। सूम ने कहा, कोई बड़ी बात नहीं, यहां से एक मील का ही अन्तर है; मैं वहां से ले लूँगा। वाहर की दुकान पर पहुँचा और कहा, "नारियल का क्या लोगे?" दुकानदार बोला, "दो पैसे"। उससे भी कहा कि कुछ कम करो। दुकानदार उसका परिचित था। उसने सोचकर कि यह सिर खपाई करेगा कहा कि हम बाग़ में से उठाकर लाते हैं, यदि मद्दा लेना है तो वहां चला जा। वहां हमारा साथी है वह एक पैसे में देदेगा। तब बाग़ में पहुँचकर उससे नारियल का मोल पूछा, उसने एक पैसा कहा। फिरसूमने कम करने को कहा। वह बोला कि वृक्षपर चढ़कर तोड़लो तो पैसेके दो मिल जावेंगे। सूमने सोचा कि ऊपर चढ़कर तोड़लेने में क्या हानिहै? एक देवीकी भेंट चढ़ाऊंगा और एक बालबच्चों के लिये घर लेजाऊंगा। वह पेड़ पर चढ़ गया, देखा कि एक ओर छोटे २ और दूसरी ओर बड़े बड़े नारियल हैं; परन्तु जिस ओर बड़े बड़े हैं उनके नीचे कुआं है। जब और आगे बढ़ा तो नीचे की शाख़ टूटगई, ऊपर की टहनी जिसको नारियल तोड़ने के लिये पकड़ा था वह हाथ में रहगई। तो वह तोरई की नाईं लटकने लगा और उसी मनुष्य से कहा, "हे भाई! मेरी सहायता कर।" उसने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं, मेरा हाथ वहां तक नहीं पहुँच सकता। सूम ने कहा सौ रुपया लेले और किसी प्रकार मुझे नीचे उतारले। तब वह बोला, "भाई मुझसे तो यह काम नहीं हो सकता।" सूम ने बढ़ते बढ़ते पांचसौ तक कहा। तब उसके मनमें भी लोभ जागा और विचारने लगा कि यहां से कोई आदमी बुला कर इसे उतारदूं। जब बाग़से बाहर निकला तो एक ऊँट वाले को देखा और उससे कहा हे भाई! एक साहूकार नारियल लेने के लिये वृक्ष पर चढ़ा हुआ है; परन्तु जिस

शाख पर चढ़ा था वह टूट गई है। अब वह टहनी के साथ लटकता हुआ प्रार्थना कर रहा है। यदि हम उसे उतारलें तो ५००) रु० तक दे देगा। वह रुपये हम आपसमें आधे२ बांट लेंगे। ऐसा सुनकर उसने ऊंट को लाकर कुएँ के पनघट पर खड़ा कर दिया और उसका पांव बाँध कर दोनों उस पर चढ़गये। जब सूम को हाथ डाला तब ऊंट को मक्खी ने काटा तो वह कूद पड़ा और सब ऊंट समेत कुएँ में गिर पड़े—सूम और दोनों लोभियों की मृत्यु हुई। एक महात्मा लिखते हैं:—

दो०— मक्खी बैठी शहद पैं, पंख गये लपटाय।
उड़ने की चिन्ता पड़ी, लालच बुरी बलाय॥

सूम और लालचियों का स्वभाव ऐसा ही हुआ करता है। चाहे कितना ही धन होवे, वह दुःखों को ही सहन करते रहते हैं; परन्तु धन खर्च करने को उनका चित्त नहीं चाहता। एक कवि ने लिखा है:—

इह भी इह भी बहुती कीती याद न कीता उह भी।
अन्दर दा खुह साफ़ न कीता ना लवाई टोभी॥
लख करोड़ जोड़ जोड़ मर गये दान न कीती कौडी।
साधु संगति हरि भजन न कीता रह्यौ होडी का होडी॥

एक सूम अपने पुत्र और स्त्री को समझाता है:—

कवित्त— पन्द्रह करोड़ दस लाख ते हज़ार बाराँ,
इतना धन हुंदे शूम आखे किरथों खावाँगे।
पुत्रांनूं आखे लौ मुंज अते वटो वाण,
रात दे गुज़ारे जोगा मुल वट लिआवाँगे॥
कल इक दाना कीड़ी लै गई सी मल्लो मल्ली,
उसदे अन्देशे से रोटी ना पकावांगे।
डुल्ह गया तेल शूम दाहड़ी नूँ घसावे उत्ते,
लोको! इतना नुकसान असी किकूं जर जावांगे।
शूमनी नूँ शूम आखे दस तू शिताबी मैनूं,
दीवे दे उकासने दा ढंग तेरा केहड़ा नी॥
लगदा ए तेल जिस नाल दीवा सोखनी ए,
उजड़े गा घर नाले उजड़े गा वेहड़ा नी।

दिने दिने रोटी खाके मैं पैणा चंगा हुंदा,
चन्द दी चांनणी नूं कत लईं बतेरा नी।
तेल बाजे वाला ना मुकाईं किते छेती छेती,
अधा मासा पाके तू चक देईं अन्धेरा नी ॥

सो इतना धन पाकर भी सूमन आप सुख भोग सकता है और न किसी दूसरे को सुख पहुंचा सकता है। सूम के धनकी निष्फलता पर नीति में भी लिखा है:—

सवैया—सिन्धु अगाध अहे लवणोदक तद्यपि क्या कहूं प्यास न टारै।
जानु प्रमाण जु वारि सुचारु तृषा नर नारि मृगादि की हारै॥
नैक धनाढ्य तथापि बड़ो अरथी व्यर्थो जिहिं जात न द्वारै।
जां धनरास निरासक भिक्षुक सो धन क्या चुवती छत धारै॥

भावार्थ—यद्यपि खारी जल का समुद्र बड़ा गहरा होता है तो क्या? भाव—निष्फल है, क्योंकि किसी की प्यास दूर नहीं कर सकता। जो नदी चल रही है, यद्यपि उसका जल घुटने प्रमाण है, वह श्रेष्ठ है, क्योंकि स्त्री, पुरुष, मृगादिकों की तृषा निवृत्त कर सकती है। तैसे दान करने वाला चाहे छोटा धनी पुरुष है तो भी बड़े धनी से श्रेष्ठ है; क्योंकि उसके द्वारे से याचक ख़ाली नहीं जाता है। जिस पुरुष के पास धनका ख़ज़ाना है और भिक्षुक ख़ाली जाते हैं वह धन क्या चुवाती छत पर धरना है अर्थात् वह धन दान के बिना निष्फल है॥

सवैया— है सरिसो सिंधुते सरसो रतनोदक खान न भी सब भावै।
प्यास श्रमी पथिकी जनके श्रम नाशन मों समरथ दरसावै॥
सो सरि ज्यों धन नैक धनी जिहिं द्वारहिते सब को वरसावै।
सिन्धु धनी कहूं दे न कनी किधौं पक्व व्रणीपर पीस लगावै॥

भावार्थ—सो घोंटू प्रमाण जल वाली नदी समुद्र से अधिक श्रेष्ठ है।

शंका—समुद्र में रत्न होते हैं, नदी के जल में रत्नों की खानि नहीं। इसलिये उसकी बराबरी कैसे हो सकती है?

समाधान—यद्यपि नदी में रत्नों की खानि नहीं होती तो भी उसका जल सब को अच्छा लगता है; क्योंकि थके और प्यासे पथिकों

के श्रम और प्यास को दूर करने में समर्थ है। नदी थोड़े धनी पुरुषों के समान है, जिसके द्वारे पर सब कोई लाभ उठाता है अर्थात् ख़ाली नहीं जाता। और समुद्रके समान जो धनी पुरुष है वह रंचक मात्र भीं अपने धन का दान न करे तो क्या वह पके हुए घात्र पर पीस के लगावेगा? अर्थात् वह धन निष्फल है। गुरु प्रमाण:-

सिंमल रुखु सराइरा अति दीरघ अति मुचु।
उइ जि आवहि आसकरि जाहि निरासे कितु॥ १॥
फल फिके फुल बकबके कंमि न आवहि पतु।
मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु॥ २॥
[वार आसा मः १ पृ० ४७०]

भावार्थ–सेमल का वृक्ष बड़ा सीधा, ऊंचा और मोटा होता है। परन्तु उस पर जो पक्षी फल की आशा करके आते हैं वह निराश ही चले जाते हैं; क्योंकि उसके फल फीके और फूल नीरस होते हैं, पत्ते भी उसके काम में नहीं आते। बेरी यद्यपि नीची है तद्यपि उस के फल में मीठे पन का गुण है, और छाया भी है; इससे जो पक्षी आते हैं वह उसके फल पत्तों को खाकर प्रसन्न होते हैं। तैसे ही जो पुरुष बड़ा लम्बा, सुन्दर, जवान और धनी है, परन्तु उसके पास से याचक निराश जाते हैं तो उसका धनी होना व्यर्थ है; क्योंकि एक तो उसकी वाणी में रस न होने से किसी का सत्कार नहीं करता दूसरा वह किसी को दान भी नहीं देता है। इस से तो वह किंचित् सम्पति वाला ही अच्छा है जिसमें नम्रता और मीठा स्वभावादिक गुण हैं, और बाँट कर खाता है; अर्थात् जो याचक आता है ख़ाली नहीं जाता। जैसे एक कवि ने लिखा है:-

दो०– बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे बड़ी खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

पुनः– आँख शर्म ज़ब गई, तो ऐसी नार क्या।
अपना मतलब किया, तो ऐसा यार क्या॥
रण में कतल ना किया, तो हाथ तलवार क्या।
मोहन दान ना किया, ऐसा धन भार क्या॥

इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:-

करि करि अनरथ विहाझी संपै सुइना रूपा दामा ॥
भाड़ी कउ उहु भाड़ा मिलिआ होरु सगल भइउ बेराना ॥
[गुज: मः ५ पृ० ४९७]

जो सूम धन को एकत्र करके बिना दान किये मर जाते हैं वह दुःख पाते हैं, और जो धन कमाकर शुभ कार्य में खर्च करते हैं, वह आनन्द लेते हैं:-

खोजत खोजत मूसा मर गिआ, मौज लई भुजंगे ने ।
दुनियाँ धंधे पच पच मरगई, मौज लई सत संगे ने ॥
संचित संचित माली मरगिआ, मौजलई भौरंगे ने ।
जोड़त जोड़त किरपन मरगया, मौज लई वरतंगेने ॥

ग़ज़ल- आदमी को चाहिये दुनियाँ में रहना किस तरह ।
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कंवल ॥
साहिबे ज़र मुफलिसों पर ज़र लुटाये किस तरह ।
जिस तरह सूखी ज़मीं पर अबर बरसाता है जल ॥
पाके दौलत बशर को रहना है वाजिब किस तरह ।
जिस तरह झुक के रहे वह शाख आये जिसमें फल ॥
आदमी अपने इरादे का हो पक्का किसतरह ।
जिस तरह क़ानून है कुदरत का दुनियां में अटल ॥
रंजो ग़म दुनियां के इंसाँ भुलाये किस तरह ।
जिस तरह वह शख्स जिसके ज़हन में आये खलल ॥
आदमी जाए मुसीबत के मुक़ाबिल किस तरह ।
जिस तरह है शेर जाता सैल* में सीने के बल ॥ * पानी

ताते सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु कृपणता का त्याग करके उदारता को धारण करे ॥

धारना—नित मिलन उलाहनें जी नाम नहिं जपिआ दान नहिं कीता ।
सउ उल्हामें दिनै के राती मिलनि सहंस ॥ नाम नहिं० ॥
सिफति सलाहणु छडि कै करंगी लगा हंसु ॥ नाम नहिं० ॥
फिटु इवेहा जीविआ जितु खाइ वधाइआ पेट ॥ नाम नहिं० ॥
नानक सच्चे नाम बिन सभो दुशमन हेत ॥ नाम नहिं० ॥

(वार सूही पृ० ७९०)

" सेवा "

प्रश्नः--हे भगवन् ! दया का प्रसंग श्रवण कर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। अब सेवा का प्रसंग वर्णन करें ॥

उत्तरः--हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। गुरु प्रमाणः-

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥ ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥ (सिरीराग मः १ पृ०२६)

भावार्थ--संसार में आकर जो पुरुष सेवा करता है उसको परलोक में सुख प्राप्त होता है। गुरुजी कहते हैं कि जैसे स्वतंत्र मनुष्य भुजाओं को निर्भयता से हिलाता हुआ चलता है वैसे ही सेवा करने वाला बुद्धि को निर्भय करलेता है, और जो सेवा नहीं करता उसको परलोक में सुख प्राप्त नहीं होता। इस पर दृष्टान्तः--

एक पुरुष के तीन लड़के थे (१) अन्धा, (२) लूला लँगड़ा, (३) सर्व अंगों से पूर्ण। जो अन्धा था वह पिता की सेवा नहीं कर सकता था, इस लिये वह पिता के धन का अधिकारी न बन सका। जो दूसरा लूला लंगड़ा था वह भी सेवा नहीं कर सकता था, इस लिये उसको भी पिता ने अनधिकारी समझकर धन न दिया; परन्तु जो तीसरा लड़का सर्व अंगों से पूर्ण था उसने भली प्रकार पिता की सेवा की जिससे पिता ने प्रसन्न होकर उसे अधिकारी समझ कर अपना सर्वधन देदिया। तैसे परमात्मा रूपी पिता के तीन प्रकार के पुत्र हैं--(१) अंधे सदृश अज्ञानी (२) लूले लंगड़े के सदृश आलसी (३) सर्वांग पूर्ण के सदृश आलस्य से रहित पुरुषार्थी, जो सत्संग में आकर भली प्रकार सेवा

करते हैं। इसी से वह (सेवा करने वाले) ही ज्ञान के अधिकारी होते हैं और उनको ही सत्संग से ज्ञानरूपी धन शुभ गुणों सहित प्राप्त होता है। इससे पुरुष को चाहिये कि आलस्य को त्याग कर भली प्रकार सेवा करे। गुरु प्रमाण:-

छोछा छोहरे दास तुमारे॥ दास दासन के पानी हारे।
छोछा छारु होत तेरे संता॥ अपनी कृपा करहु भगवन्ता॥

(गउड़ी बावन अखरी पृ० २५४)

इसपर एक और महात्मा भी लिखते हैं:-

कुं०-परमारथ के राह में पुरषारथ है मुख।
स्वास स्वास चिन्तन करे तोही पावे सुख॥
तोही पावे सुख भरोसा छडदे भाग॥
करना है सो कर खाय सत्तू अर साग॥
देहिबुध संग शुध भाग फल जानि यथारथ।
तजें भाग को नाम पुरुष जो चाहि परमारथ॥

भावार्थ-यह कि पुरुषार्थी पुरुष ही सत्संग में जाकर साधु संगत और सद्गुरु की सेवा करके उनकी प्रसन्नता द्वारा परमार्थ की प्राप्ति कर सकता है।

एक वार संगतों ने आकर गुरु रामदास जी के आगे विनती करी कि हम गृहस्थी हैं, हम को मुक्ति का कोई सरल उपाय बतावें जिससे हमारा उद्धार होजावे। महाराज जी बोले:-

चौ०-राम दास सत गुरू उचारा। प्रथम तजो मनको अहंकारा॥
गहो नम्रता त्यागो मत्सर। करो न निन्दा औगुण परिहरि॥
जो घर आया सिख निहरीए। निज-निज घरते सेवा करिए॥
जो सिख को होइ काज बडेरो। बिन धन सरै न जे असहेरो॥
तो सब मिल कर करो अरदास। निज-निज बलको करो प्रकास।
जहिं सत संगति को समुदाइ। कथा कीरतन करे बनाइ॥
तहां जाइ सन्ध्या और प्राती। प्रीति धरो होवे कुशलाती॥
इक सिख की सेवा सफल महां। साधु संगति सेवा पाइये कहां॥
जिस पर सत गुरु होइ दयाल। निज दासों की दें तब घाल॥

इसी आशय पर भाई गुरुदास जी कथन करते हैं:-

सुण परताप कबीर दा दूजा सिख होआ सैण नाई ॥
प्रेम भगति राती करे भलके राज दुआरै जाई ॥
आए सन्त पराहुणे कीर्तन होआ रैण सबाई ॥
छड न सके सन्त जन राजदुआर न सेव कमाई ॥
सैण रूप हरि होइके आया राणे नों रीझाई ॥
साध जना नों बिदा कर राज दुआर गया शरमाई ॥
राणे दूरहुँ सदके गलहु कवाइ खोल्ह पहनाई ॥
वस कीता हउ तुध अज बोले राजा सुणा लुकाई ॥
परगट करे भगति वडिआई (भाः गुः वार १० पउड़ी १६)

कबीर जी का प्रताप सुनकर सैन नाई भी रामानन्द जी का शिष्य बनगया, जो रात को प्रेमा भक्ति करता था। प्रभात समय राजा की मालिश करने के लिये राज दरबार में जाया करता था; क्योंकि राजा को कोई रोग था। एक दिन सैन भक्त के घर सन्त पाहुने आगये, सारी रात हरि का यश और कीर्तन होता रहा; सैन प्रेम वश होकर सन्तजनों को छोड़ न सका और सेवा करने के लिये राजा के पास जाना भूल गया। उधर हरि सैन का रूप धारकर राजा के पास आये और राजा की मालिश करके उसे बड़ा प्रसन्न किया। उस मालिश की कृपा से ही राजा का रोग भी नाश होगया। उधर जिस समय बहुत सा दिन चढ़ आया तो सैन भक्त सन्त जनों को विदा करके लज्जित हुआ राज दरबार में गया और चित्त में जाना राजा आज मुझे दण्ड देगा। राजा ने सैन को दूर से देखकर बुला लिया और अपने गले का बहु मूल्य आभूषण उतार कर सैन भक्त को पहना दिया और कहा हे सैन! आज तुमने बड़े प्रेम से सेवा कर के मुझे अपने आधीन कर लिया है; क्योंकि आज की मालिश से मेरा रोग निवृत्त होगया है। इस बातको सब लोगों ने सुना। भगवान् अपने भक्तों की बड़ाई जगत में स्वयं प्रगट कर देते हैं।

पुनः-गुरमुख हथ सकथ हन साधु संगत गुरु कार कमावै ।

पाणी पखा पीहणा पैर धोइ चरणामृत पावै ॥
गुरुबाणी लिख पोथियां ताल मृदङ्ग रबाब बजावै ॥
नमस्कार डंडौत कर गुरु भाई गल मिल गल लावै ॥
किरत विरत कर धर्म दी हथहुं देके भला मनावै ॥
पारस परस अपरस होय परतन परधन हथ न लावै ॥
गुरुसिख गुरुसिख पूजके भाइ भगति भये भाणा भावै ॥
आपु गवाइ ना आप गणावै ॥ (भाई गुरुदासजीवार ६ पउड़ी १२)

इसी पर गुरुजी भी कथन करते हैं:—

पाणी पखा पीसु दास कै तब होहि निहालु ॥
राज मिलख सिकदारीआ अगनी महि जालु ॥
संत जना का छोहरा तिसु चरणी लागि ॥
माइआ धारी छत्र पति तिन्ह छोडउ तिआगि॥ (रागविला०म०५पृ०८११)

गुरु मुख जन को जैसी प्रसन्नता साधु संगत की पंखा तथा जलादि से सेवा कर के होती है वैसी राज्यादि पाकर भी नहीं होती। इस पर इतिहास श्रवण करें :—

एक ख्वाजा नाम करके मुसलमान गुरु हरिगोविन्द साहब जी के तबेले में घोड़ों की बड़े प्रेम से निष्काम सेवा करता रहा। जब बहुत काल सेवा करते करते व्यतीत हो गया तो एक दिन श्री सद्गुरुजी शिकार को गये तो ख्वाजाजी भी साथ ही दौड़ते चलेगये। उनकी सेवा और प्रेम को देख कर महाराज जी बड़े प्रसन्न हुए और कहा:—

फिर सतगुरु ने किरपा करके, पुछिआ ऐ प्यारे।
मंगो जो कुछ मंगना, मैं देऊं सवारे॥
हथ जोड़ के आखदा, हे सतगुरु साईं।
सेवा मैनूँ जो मिली, हे दात गुसाईं॥
मिली रहे निष्काम इम, मैं खीवे* रहावां। *प्रसन्न
दरशन करदा आपदे विच दरस समावां॥
सुणकर हस्से सतगुरु येह बैन अलाए।
उच्ची पदवी सेव की निश्काम कमाए॥
मिली रहे एह तुधनूं तैं पार लंघाए।
अरुलों होवें उच्च तूं विच रूप समाए॥

सुणकर बचन सतिगुरू दे खुशहोइया ख्वाजा।
अर्लां अगे रखदा सतिगुर गुरु राजा॥

अब श्री गुरु अर्जुन देवजी का शिक्षा रूप इतिहास वर्णनः—

एक समय काबुल की संगत चलती२ जब वडाली में पहुँची तो अति थकित और भूख से व्याकुल होने के कारण अमृतसर तक न पहुंच सकी। तब महाराज गुरु अर्जुन देवजी ने अपनी अन्तर्यामिता से संगत का सारा समाचार जान लिया और अपने महल (धर्मपत्नी) गंगा जी से कहा कि बहुत सी रोटियाँ और दाल तैयार करो। जब सब कुछ तैयार होगया तो महाराजजी ने एक टोकरा रोटियों का स्वयं उठालिया, दाल की देग गंगाजी से उठवाली और वहां जाकर संगत को भोजन से तृप्त करके मुट्ठी चापी करने लगे। जब संगत आराम से सो गई तो महाराज जी स्वयं पंखा करने लगे। क्योंकि संगत बहुत थकी हुई थी और गर्मी के दिन थे, इसलिये महाराज जी प्रातःकाल तक सेवा ही करते रहे। जब संगत उठने लगी तो महाराज जी वहां से चलकर श्री अमृतसरजी हरि मन्दिर साहिब में पहुँचकर अपने स्थानपर विराजमान् होगये। जब संगत श्रीअमृतसरजी पहुंची और जाकर गुरु महाराज जी के दर्शन किये तो देखकर संगत हैरान होगई कि महाराज जी तो आप ही रात को वडाली में हमारी सेवा करते रहे हैं। तब उन्होंने मन में विचार किया कि गुरु महाराजजी ने यह शिक्षा दी है कि हमारी इस सेवा को देखकर संगत भी भली प्रकार से सेवा किया करे। तात्पर्य यह कि जब तक अहंकार को त्यागकर नम्रता के भाव को धारण न करे तब पर्यन्त सेवा नहीं हो सकती। गुरुजी आप कथन करते हैं:—

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु॥ (आसावार म० २ पृ० ४७४)

जो मनुष्य सेवा से रहित है उसका सारा शरीर निष्फल है। जो साधु संगत में सेवा नहीं करता और थोड़ा बहुत भजनादि करता है उस पर गुरु और ईश्वर की प्रसन्नता नहीं होती। इस पर इतिहास श्रवण करें :—

गुरु अमरदेव जी के द्वार पर एक माहणा नाम करके पुरुष रहता था। वह थोड़ा सा समय तो अपने नित्य नियम में व्यतीत किया करे और शेष समय में बैठा ही रहा करे; परन्तु साधु संगत की सेवा न करे और जो कोई उसको सेवा के लिये कहे तो कह देवे कि यदि गुरुजी स्वयं मुझसे कहेंगे तो सेवा करूँगा और किसी के कहने पर नहीं। एक दिन भाई बुड्ढा जी ने भी कहा हे भले पुरुष! तेरी युवावस्था है, कुछ सेवा किया कर, इस देही को तो काग और कुत्ते भी नहीं खावेंगे; इससे कुछ लाभ उठाना चाहिये। परन्तु उसने उनको भी यही कहा कि हमतो वह काम करेंगे जो स्वयं गुरु साहब करने की आज्ञा देंगे। एक दिन गुरु साहब जी से कहने लगा हे महाराज जी! मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूं कि जब आप सेवा बताएँ तब मैं करूं। अन्तर्यामी महाराजजी ने सोचा कि कई बार हमारे शिष्यों ने इससे सेवा के लिये कहा, परन्तु इसने नहीं की। हमारा कौनसा काम इसके बिना रुका पड़ा है जिसके लिये हम इसे कहें। यह विचार कर श्री सद्गुरुदेव जी ने कहा, "जाओ चिता बनाकर जल मरो।" उसने जंगल में जाकर चिता बनाकर आग लगाई; परन्तु कूदने का साहस न हुआ। इतने में एक चोर चोरी करके आया और उससे पूछा कि क्या कारण है जो तुम इस चिता के चारों ओर फिर रहे हो? उत्तर में सब समाचार बता कर उसने कहा कि मेरा मन जलने को नहीं चाहता। चोर ने कहा यह रुपयों की थैली मुझसे लेलो और सद्गुरुदेवजी का वचन मेरे को बेच दो। उसने चोर को वचन देकर रुपये लेलिये। चोर चिता में कूद पड़ा। तब उसके देखते ही उस चोर के लिये स्वर्ग से बड़ा सुन्दर विमान आया जिसमें बैठ कर वह स्वर्ग में चलागया। इतने में जिनकी चोरी हुई थी उन्होंने आकर माहणे आलसी को पकड़ लिया कि तुम चोर हो। वह बहुतेरा कहने लगा, मैं चोर नहीं हूं; परन्तु कौन मानता था, क्यों कि चोरी का माल उसके पास था। इसलिये उसको पकड़ कर थाने में ले गये। अन्त में उसको चोरी और झूठ के बदले में शूली का दंड मिला,

और श्री सद्गुरु जी की आज्ञा का उल्लंघन करके नर्कों का अधिकारी हुआ। ताते गुरुमुखों को चाहिये कि आलस्य का त्याग करके (जो लूला लंगड़ा और भूखा प्यासा हो उसकी) तन, मन, धन से बड़े प्रेम व श्रद्धा से सेवा करें; फिर साधु संगति में जाकर पंखे झलने वा जल पिलाने की सेवा बड़े प्रेम से करें। तब कल्याण के अधिकारी होंगे, नहीं तो माहयो की तरह दुर्गति होगी। जैसे भाई गुरुदासजी लिखते हैं:-

होर सुख किते न लभदा जी, सुख सतगुराँ दी शरणी ॥ टेक ॥
धृग सिर जो गुरु ना निवें गुरु लगै न चरणी ॥
धृग श्रवणन उपदेश बिन सुण सुरति न धरणी ॥
धृग लोइन गुरु दरस बिन पेखै पर तरणी ॥
धृग जिह्वा गुरु शबद बिन होर मंत्र सिमरणी ॥
बिन सेवा धृग हथ पैर होर निहफल करणी ॥
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सुख सतिगुरु शरणी ॥ (भाई गुरुदास वार २७ पउड़ी१०)

जो पुरुष सेवा करता है उसपर परमेश्वर बड़ा प्रसन्न होता है। जैसे किसी पुरुष के बच्चों की कोई सेवा करे अर्थात् खिलावे पिलावे तो उसके माता पिता को वह पुरुष बड़ा प्रिय लगता है। तैसे ही ईश्वर के जो प्राण धारी पुत्र हैं, जो उनकी सेवा करता है वही ईश्वर को प्यारा लगता है। इसपर दृष्टान्त श्रवण करें:—

अबूबन आज़म एक पवित्र जीवन वाला मनुष्य था। एक रात जब वह गहरी नींद में सोया हुआ था उसके कमरे के भीतर प्रकाश हुआ और उसकी आँख खुल गई। उसने क्या देखा कि एक देवदूत खड़ा हुआ है, उसके हाथ में एक सुनहरी पुस्तक है और वह उस पर कुछ लिख रहा है। अबूबन ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? देवदूत ने उत्तर दिया कि मैं उन मनुष्यों की सूची बना रहा हूं जो ईश्वर का भजन करते हैं। अबूबन ने कहा मैं ईश्वर भजन तो नहीं करता; यदि तुम चाहो तो एक कोने में मेरा नाम उन लोगों की सूची में लिखलो जो ईश्वर सृष्टि की सेवा करते हैं। मेरे जीवन का तो उद्देश्य यही है कि मैं ईश्वर की सृष्टि की तन,मन, और धनसे सेवा करता रहूं। देवदूत

सूची के एक कोने में नाम लिखकर चला गया। दूसरे दिन फिर आधी रात को वह अबूबन के कमरे में आया। उसके हाथ में पत्र था। अबूबन ने देवदूत को पहिचान लिया और पूछा, यह पत्र कैसा है। उसने उत्तर दिया कि यह उन मनुष्यों की सूची है जिनकी सेवा ईश्वर के दरबार में स्वीकृत होचुकी है। अबूबन ने पूछा, "क्या मेरा नाम इस सूची में है?" देवदूत ने प्रसन्नता से उत्तर दिया कि आपको बधाई है! आपका नाम सबसे प्रथम है। आपकी सेवा को ईश्वर ने सबसे उत्तम समझा है और उसने आपको सब भजन पूजन करने वालों से उत्तम घोषित किया है। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर की सृष्टि की सेवा करनी सब से ऊंची श्रेणी की भक्ति है।

सेवा के बिना तीर्थ और भजन भी सफल नहीं हो सकते; क्योंकि भजन सुमिरण करने में सबसे पहला साधन सेवा है। सेवा करने से ही तीर्थादि सब सफल होते हैं।

आसावरीः— रब भुलिआं नूं तीर्थ बहुते, कर पैंडे थींवे फावे।
सच्चा तीरथ जिन्हां पछाता, लग बैठे सतगुरु पावे॥
भट्ठ सिजदा जे दिल नहीं भिजदा, ओ सिजदा कम न आवे।
चूहड़ लख निमाज़ां सौ रोज़े सदके कीते जेइक सूरत वरसावे॥

पुनः— जप तप तीरथ दान पुन, गुरु सेवा सम नांहि।
सेवा बाझों कुछ नहीं, सब सेवा के माहिं॥

गुरुजी भी लिखते हैं:—

गुरु सेवा तपां सिरि तपु सारु।
हरि जीउ मनि वसै सभ दूख विसारणहारु॥ [आसाम: ३ पृ० ४२३]

प्रश्नः--हे भगवन् जी! आप कृपया तप का भी कुछ वर्णन करें?

उत्तरः--हे प्यारे! तप तीन प्रकारका है तामसी, राजसी और सात्विकी तामसी तप वह है जो मन इन्द्रियों को कष्ट देकर किया जाता है अग्नि तापना, जल में खड़े रहना, इत्यादि जो किसी शत्रु को हानि पहुँचाने वास्ते तप करना है यह तामसी है। राजसी तप वह है जो मन इन्द्रियों को रोक कर अन्तः करण की शुद्धि के लिये साधु संगत की

सेवादि की जाती है। सात्विकी तप उसको कहते हैं जो निष्काम होकर सद्गुरु की सेवादि करना है और ब्रह्माकार वृत्ति रखना। इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं:-

चेतन देव की सेव करो नर जनम सफल हो जाइ तुम्हारो।
घट घट पूरन एक निरंजन, द्वैत भाव सब दूर निवारो॥
हिरदे अन्दर मन्दिर माहीं जगमग जोति जगै उजियारो।
प्रेम पुष्प से पूजन कीजै मन दीपक धर ध्यान विचारो।
ब्रह्मानन्द उलट सुरति को कर दर्शन भव बन्धन टारो॥

भावार्थ-चैतन देव जो परमात्मा है पुरुष को उसकी ही सेवा करनी योग्य है। आज कलके सत्संगी तो शुष्क वेदान्ती हैं। जब कुछ पूछा जाता है, झट विवेक लक्षणों पर जोर देकर अपनी उत्कृष्टता मानलेते हैं। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का आशय इस भजन में यह है कि हे मनुष्य! भूला मत फिर। जो मन्दिर में मूर्तियों के आगे और मढ़ी, मसान, कबरिस्तानों में और पीपलादि वृक्षों तथा झाड़ियों के आगे पदार्थ रख कर नमस्कार करके वर मांगता फिरता है, यह सेवा तेरी निष्फल है।

गुरु प्रमाणः-ना पाथरु बोलै ना किछु देइ। फोकट करम निहफल है सेव॥
[राग भैरउ कबीर पृ० ११६०]

हे प्यारे सत्संगियो! यदि कहो कि "चेतन देव में तो खाना, पीना पहनना है नहीं, उसकी सेवा कैसे करें; क्या खाना, पहिरना फिर जड़ पदार्थों में मानना होगा?" शोक! हा शोक!! यह तो कदापि नहीं हो सकता। इस लिये मानना होगा कि चेतन देव ही विशेष रूपधार कर सर्व में भोग लगा रहा है। आप इस बातको निश्चय करो कि:-

जे को मूं उपदेश करतु है ता वणि तृणि रतड़ा नाराइणा [सिरी राग त्रिलोचन पृ० ९२]
शेर आरफां- जो देखना हो खुदा को मैं देखता हूँ तुमको॥

जब सर्व रूप वही है तो जो जीव प्राण धारी हैं उनका जीवन बिना खान, पान, पहरान के नहीं रह सकता। इसलिये ऐसी धारणा करो कि मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों तथा चींटियों में (बिना किसी भेद भाव के) जिसको भूखा, प्यासा, नंगा, रोगी देखो, सामर्थ्यानुसार अपना आप चैतन देव निश्चय करके सब की बड़े प्रेम के साथ सेवा करो।

गुरु प्रमाणः- सेवा करत होइ निहकामी । तिसकउ होत परापति सुआमी ॥

(गउड़ी सुखमनी मः ५ पृ० २८६)

निष्कामता से प्रभु की प्रसन्नता होती है । कवि वाक्यः-

खुदा रहम करता नहीं उस बशर पर । न हो दर्द की चोट जिसके जिगर पर ।
किसी को गर आफ़त गुज़र जाये सरपर । पड़े ग़म का साया न उस बेअसर पर ॥
करो मिहरबानी तुम अहले ज़मीं पर । खुदा मिहरबां होगा अर्शेबरीं पर ॥

सेवा करने वाले की प्रसन्नता के साथ, जिसकी सेवा होती है उस की तथा देखने वालों की भी प्रसन्नता होती है । (१) ननकाना साहिब व श्री अमृतसर जी में गुरु साहब जी के लंगर में देखो-आटा, दाल, आदि की बोरियोंके अम्बार तथा सब्जी के ढेर लगे पड़े रहते हैं । जब लंगर खुलता है तो नगाड़ा बजाया जाता है, और अन्नजल वितरित किया (बांटा) जाता है । कई वितरण करने (बांटने)वाले,कई जल पिलाने वाले औरकई पंखा करने वाले हैं । कैसे प्रेम से प्रेमी सेवा कर रहे हैं, कीर्तन का कैसा आनन्द है । परमेश्वर की सेवा करने वाले धन्य हैं, उनकी बलिहारी है । अमृतसर में गुरु रामदास जी की सराय में अनाथों की अच्छी सेवा होरही है, । (३) गांव के छोटे २ गुरुद्वारों में भी हर प्रकार की सेवा होती है । (४) कई स्थानों पर गौशालाओं में रोगी, अंग भंग, बूढ़ी, निर्बल, दुग्ध रहित, (जिन की अपने घरों में कोई सेवा नहीं कर सकता) ऐसी जो गौएँ हैं उनकी सेवा धर्मात्मा पुरुष चैतन देव की सेवा जानकर कर रहे हैं (५) हृषीकेश, हरिद्वार, आदि तीर्थों में धर्मात्मा पुरुषों ने चेत्र लगा रक्खे हैं । (६) बड़े २ शहरों में धर्मात्मा पुरुषों की कृपा से धर्मार्थ असतालों में दवाई, दूध, चाँवल; नर्म फुलका तथा आवश्यकतानुसार हर प्रकार की सेवा होती है ॥

(मूल) घट घट पूरन एक निरंजन द्वैत भाव सब दूरि निवारौ ॥

भाव-एक तो पशु-गाय, बैल, घोड़ा, ऊँट, गधा व कूकर इत्यादि को अन्य जानकर डंडादि मत मारो । देखो, कूकर बेचारा भूखा तुम्हारे भोजन करते समय इस आशा से सामने बैठ जाता है कि भोजन करने के उपरान्त एक आध टुकड़ा मुझे भी मिलेगा । पास बैठा हुआ हो या

दूर उसका तिरस्कार करतेहुए सोटा मत मारो;यदि मारोगे तोवह बेज़ुबान बिल बिलाता चिल्लाता भाग जावेगा,जिसकी पुकार प्रभुके बिना कोईभी सुनने वाला नहीं ।दूसरे बेपरवाही से मत चलो क्योंकि बेचारा कीट पांव के तले आकर अधमरा न होजाय; मरजावे तो दुःख से छूट जावे है, परन्तु जिसकी कमर टूट जावे उसके दुःख को देखो; बेचारा कैसा दुखी होता है। इसलिये तुम को उचित है कि उनकी सेवा करो । अपने हाथों से उनके रहने की जगह (बिलों) के पास दाने रखदो । तीसरे पक्षियों को कङ्कड़, धनुषबाण, बन्दूक चलाकर भयभीत मत करो । अपने हाथों से कोठे पर दाने और जल रक्खो । इस प्रकार पशु पक्षियों, कीड़ों मकौड़ों और सब योनियों के जीवों को चेतन देव जानकर सामर्थ्यानुसार उनके दुःख दूर करने और सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिये । चौथे मनुष्यों में किसी को शत्रु मतबनाओ । गुरुजी कथन करते हैं:—

रोसु न काहू संग करहु, आपन आपु बीचारि ।

होइ निमाना जगि रहहु, नानक नदरी पारि ॥(गउड़ी बावन अखरीं म०५पृ० २५६)

पुनः— पर का बुरा न राखहु चीत । तुम कउ दुखु नही भाई मीत (आः मः ५ पृ० ३८६)

(मूल) हिरदे अन्दर मन्दिर माहीं जगमग जोति जगै उजियारी ॥

भावार्थ—जैसे मन्दिर में दीपक, तेल, बत्तीपर अग्नि लाट प्रकाश मन्दिर को शोभायमान करदेता है; तैसे देह मन्दिर में इन्द्रिय और प्राण दीपक, अन्तःकरण तेल और बुद्धिरूपी बत्ती पर चेतन देव (ज्योतियों की ज्योति) का प्रकाश होता है जिसकी बाहरी ज्योतियां नकल हैं। शरीर के भीतर ही नहीं किन्तु त्रिलोकी के पदार्थों को अपने प्रकाश और आनन्द से शोभायमान व आनन्दरूप कर रक्खा है ॥

(मूल)— प्रेम पुष्प से पूजन कीजै मन दीपक धर ध्यान विचारो ॥

जैसे पतिव्रता चिरकाल के बिछुड़े हुए पति का मार्ग देख रही है कि कब मिलाप होता है । उसको किसी प्रकार के भी वस्त्र, आभूषण, रसदायक पदार्थ देकर प्यारे पति की ओर से प्रेम निवारण करो, तो नहीं मानती और न किसी पदार्थ की इच्छा करती है । दर्शन के लिये ऊँचे श्वास लेती है,नेत्रों से छम छम रुदन करती है, पति मिलाप के लिये

प्रेम बढ़ाती है और सर्व पदार्थों का तिरस्कार करती है। तैसे सच्चे पति परमात्मा के वियोग में जो प्रेमी अनेक जन्मों से बिछुड़ कर दुःखी हो रहे हैं तिन को भी असार संसार के पदार्थ, दीखने को तो दीख रहे हैं परन्तु वह आत्म ज्ञान को छोड़ कर और कुछ नहीं चाहते। मन रूपी दीपक द्वारा विचार कर लेते हैं कि जैसे हमें जब भूख प्यास का दुःख सताता है तब हम यही चाहते हैं कि कोई अन्न जल देवे;यदि मिलता है तो मन प्रसन्न, नहीं मिलता तो दुःखी होता है। तैसे ही सब प्राणियों की दशा है। ताते हमें चाहिये कि सब के चित्तों की प्रसन्नता लेवें जिससे हमें सुख हो ॥

(मूल) ब्रह्मानन्द उलट सुरति को कर दरशन भव बंधन टारौ ॥

भाव—जैसे अमृतसर स्टेशन से मालगाड़ी चलकर कुरुक्षेत्र के रास्ते दिल्ली होती हुई आगरा छावनी तक जाना चाहती है। पड़ाव के बीच में चलती को देखकर फाटक वाले ने लाल झण्डी देकर रोक दिया कि आगे लाइन टूटी हुई है, तो ड्राइवर ने कला पीछे मोड़ कर फिर श्री अमृतसर लाकर खड़ी करदी। अब शान्ति से खड़ी है। यदि रुकावट न होती तो कुरुक्षेत्र और दिल्ली होती हुई स्टेशन २ पर सीटी देती (चिल्लाती) और तपती हुई आगरा छावनी दुःखी होकर पहुंचती; और इसी प्रकार चक्करमें लगी रहती। तैसे वृत्ति रूपी गाड़ी अनेककर्म रूपी पुण्य पाप से भरी हुई अनेक युगों से अनादि काल की 'आत्मा' अमरपद से बिछुड़ी हुई स्थूल और सूक्ष्म संघात रूपी कुरुक्षेत्र से मानसिक दलील रूप दिल्ली के रास्ते आगरे (अगले जन्मों की ओर) जा रही है, जिससे अनेक युगों तक चौरासी चक्कर योनियों में दुःख उठा रही है। जब पूरे सद्गुरु देव जी ने दयालु होकर महावाक्य रूप लाल झण्डी इस जीव रूप ड्राइवर को दी तो जीवने जाना कि संसारके पदार्थ असार और मिथ्या हैं, इनकी ओर चलने से सदैव के लिये दुःख ही होगा तो उस (जीव रूपी ड्राइवर) ने पीछे कला मरोड़नी आरम्भ की अर्थात् वृत्ति को पीछे उलटा कर अपने वास्तव स्वरूप 'आत्मा' अमर

पद सर्व प्रकृति का प्रकाशक जो पूर्ण सत्‌चित् आनन्द है उसको निश्चय किया। सद्‌गुरु के उपदेश से सर्व संसार को आत्मरूप जानकर स्थितिपाई, जिससे संसार के बन्धन निवृत्त हुए और परमानन्द की प्राप्ति हुई। ताते सिद्ध हुआ कि सेवा करने से ही अन्तः करण की शुद्धि होकर ज्ञान द्वारा जिज्ञासु परम पद पा सकता है॥

धारणाः—(पखा फेरां ते पाणी ढोवाँ गुरुजी तेरियाँ संगतां दा)

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु पिआरा हउ तिसु पहि आपु वेचाई॥ पखा०॥
दरसनु हरि देखण कै ताई॥
कृपा करहि ता सति गुरु मेलहि हरि हरि नामु धिआई॥ १॥ रहाउ॥ पखा०॥
जे सुखु देहि त तुझहि अराधी दुःख भी तुझै धिआई॥ पखा०॥
जे भुख देहि त इति ही राजा दुःख विच सूख मनाई॥ पखा०॥
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी विचि अगनी आपु जलाई॥ पखा०॥
पखा फेरी पाणी ढोवां जो देवहि सो खाई॥ पखा०॥
नानकु गरीबु ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लेहु वडिआई॥ पखा०॥

(सूही मः ४ पृ ७५७)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



विक्षेप

प्रश्नः--हे भवगन् ! मल की निवृत्ति के उपाय दया, दान, सेवा, आदि श्रवण करके मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ है। कृपया विक्षेप का स्वरूप और विक्षेप की निवृत्ति का उपाय वर्णन करें॥

उत्तरः--हे प्यारे ! विक्षेप का स्वरूप 'मन की चंचलता' है। जब तक चंचलता दूर न होवे आत्म ज्ञान होना कठिन है। जैसे जब तक शीशा या जल हिलता हो तो सूर्य का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दृष्टि नहीं आता। जैसे जलको वायु आदिक हिलाते रहते हैं ऐसे ही मनको तृष्णा, विषयों की इच्छा और काम आदि विकार चञ्चल करते रहते हैं, और एकाग्र नहीं होने देते। इस पर गुरु प्रमाणः-

साधो एहु मनु गहिउ न जाई॥ चंचल तृसना संगि बसतु है याते थिरु न रहाई॥
कठन करोध घट ही के भीतरि जिहि सुधि सभ बिसराई॥
रतन गिआन सभको हिरि लीना ता सिउ कछुन बसाई॥ (गउड़ी मः ९ पृ २१९)

जैसे बन्दर टहनी को हिलाता रहता है तैसे तृष्णा मनको चंचल करती रहती है। जब तक बन्दर टहनी से नहीं उतरता तब तक टहनी हिलती रहती है, ऐसे ही जब तक तृष्णा निवृत्त नहीं होती तब तक मन एकाग्र भाव को प्राप्त नहीं होता। गुरु प्रमाणः-

मनरे कहा भइओ तै बौरा॥ अहि निसि औध घटै नही
जानै भइओ लोभ संगिहौरा॥ (गौड़ी मः ९ पृ २२०)

जैसे मिट्टी सूर्य की धूप से सूखकर हलकी होने के कारण वायु के साथ उड़ती है और कई प्रकार के दुःख पहुंचाती है फिर वर्षा होने से बैठ जाती है। तैसे ही मन लोभ के साथ हलका होकर दशों दिशाओं

में भटकता है और कई प्रकार के विकारों से दुःख उठाता है, कभी शान्त नहीं होता। परन्तु जब यही मन सद्गुरु देव द्वारा लोभ निवृत्ति के उपदेश सन्तोष रूप वर्षा को धारण करता है तो शान्त हो जाता है। लोभ और तृष्णा का परस्पर स्त्री-पुरुष भाव वाला सम्बन्ध है। यह दोनों मनकी स्थिति होने नहीं देते। लोभी और तृष्णालु पुरुषों का हृदय पदार्थों से नहीं भरता। इस पर गुरु प्रमाणः—

भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार (जपुजी पृ० १)

भावार्थ—तृष्णालु पुरुषों की मायिक पदार्थों की भूख नहीं जाती, अर्थात् तृष्णा निवृत्त नहीं होती। यदि इन्द्रादिक पुरियों के सब पदार्थों का भार बांध कर देदीजिये फिर भी तृष्णालु पुरुष की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। इस पर गुरुजी कथन करते हैं:—

सहस खटे लख कउ उठि धावै। तृपति न आवै माइआ पाछै पावै॥ ॥

(गउड़ी० सुखः मः ५ पृ० २७८)

पुनः— बिरथा कहउ कउन सिउ मनकी। लोभ ग्रसिउ दसहू दिस धावत आसा लागिउ धन की॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुख के हेत बहुतु दुखु पावत सेव करत जन जन की। दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की॥ १ ॥ मानस जनमु अकारथ खोवत लाज न लोक हसन की। नानक हरि जसु किउ नही गावत कुमति बिनासै तनकी॥ २ ॥ (आसा मः ९ पृ० ४११)

नौवें पातशाह (गुरु तेग बहादुर साहिब) अपने मनको उपदेश करते हुए सर्व संगत प्रति उपदेश करते हैं कि संसारी जीवों के मन की दशा मैं किससे कहूं, क्योंकि लोभ से ग्रसे हुए जीवों के मन दशों दिशाओं में धनकी आशा करके दौड़ते फिरते हैं। धनको सुख का कारण समझकर उसकी प्राप्ति के लिये जिन नीच पुरुषों की सेवा करनी अयोग्य है उनकी भी सेवा करतेहैं और उनके कुवाक्य सुनकर दुःखी होते हैं। जैसे श्वान द्वारे २ डोलता है तैसे लोभी पुरुष धन के लिये द्वारे २ भटकते हैं और अनमोल जो मनुष्य जन्म है उसको व्यर्थ खो देते हैं, क्योंकि ईश्वर प्राप्ति वास्ते महात्माओं से मिलकर भजन भी नहीं करते। और यह भी विचार नहीं कर सकते कि इस धन के लोभ से जिन नीच पुरुषों की

सेवा करते हैं वह लोग हमको देख कर हंसेंगे। सद्गुरुजी कथन करते हैं, हे शिष्यो! लोभ को त्यागकर हरि के यश को क्यों नहीं गायन करते जिससे तुम्हारी लोभादिकों वाली खोटी मति निवृत्त होजावे॥

तृष्णा कैसे मनको चंचल करती है और निवृत्त कैसे होती है, इस आशय पर एक कवि लिखता है:-

तृष्णा मन को चंचल करे। और विचार तृष्णा को हरे॥
जिउं जिउं तृष्णा बढ़ती जाइ। तिउं तिउं मन चंचलता पाइ॥

और एक कवि का कथन है:-

कुं०- आशा मनसा डोर है पंछी सकल जहान।
कोई २ विरला तोड़के चढ़ ग्या धुर असमान॥
चढ़ ग्या धुर असमान वही जो आशा छोड़े।
आशा छुटेगी तबी जु विषयों से मुह मोड़े॥
कह शहिनशाह जान नरक में तिसका वासा।
जो मरने से पहिले तजे न मनसा आसा॥
दो०- चित की जो एकाग्रता, सोई आनँद मान।
होवै दृढ़ अभ्यास ते, चित एकागर जान॥

भावार्थ-जिस पुरुष का चित्त एकाग्र होजाता है उसको पूरा आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु चित्त की एकाग्रता दृढ़ अभ्यास और ध्यान से होती है।" चित्त एकाग्र होजाने से फिर विषय सुख की इच्छा नहीं रहती। इस पर दृष्टान्त श्रवण करें:—

एक राजा के महलों में प्रतिदिन एक भंगिन झाड़ू लगाने आया करती थी। एक दिन वह बीमार हो गई तो उसने अपने पति को राजा के महलों में सफ़ाई करने को भेजा। जब भंगी सफ़ाई करने को गया तो उस की दृष्टि रानी पर जा पड़ी, जिससे उसका मन चलायमान होगया। तब घर आकर रोगियों वत् सोगया और खाना पीना छोड़ दिया। भंगिन ने जब इसका कारण पूछा तो उसने सारी बात कह सुनाई। भंगिन ने बहुत समझाया, "कुछ होश की बात करो और अपनी योग्यता को देखो; भला तुम्हारा मिलाप रानी से कैसे हो सकता है?"

परन्तु उसका मन रानी में लगा हुआ था, इस लिये भंगिन की शिक्षा का प्रभाव न पड़ा। वह कहने लगा कि यदि रानी से मिलाप नहीं होगा तो मैं अपने प्राणोंको त्याग दूंगा। दूसरे दिन जब भंगिन राजाके महलों में सफ़ाई करने को गई तो उसका मुंह बहुत ही उदास था और रो रही थी। उस समय रानी अकस्मात ही बाहर निकली तो उसकी दृष्टि भंगिन पर पड़ गई; उसकी दशा देखकर मनमें दया आगई और रोनेका कारण पूछा। भंगिन ने कहा कि मैं कह नहीं सकती, मेरा दुःख दूर होने वाला नहीं। रानी ने फिर दूसरी बार कहा "कह तो सही, यदि हो सका तो मैं तेरा दुःख दूर करूंगी।" तब भंगिन ने सब वृत्तांत कह सुनाया और कहा कि मैंने उनको बहुत समझाया है, परन्तु वह नहीं मानते हैं। इससे मैं समझती हूं कि मेरा भाग्य ही फूट गया है। यह सुन कर रानी मनमें विचारनेलगी कि ऐसा कामहो जिससे इसका पतिभी बचजाए और मेरा धर्म भी रहे यह विचार कर उसने भंगिनसे कहा, तू अपने पति से जाकर कहदे कि वह साधुका वेष बनाकर नदीके किनारे जा बैठे। खाये, पीये कुछ नहीं; किन्तु समाधिमें स्थित होकर मेरा ध्यान करे। कोई पदार्थ धर जावे या उठा लेजावे, किसीसे न बोले और न किसीकी ओर देखे। कुछ दिनों के उपरान्त मैं उसको वहां पर जा मिलूंगी। भंगिन ने जाकर सारा समाचार भंगी को कह सुनाया। वह चित्तमें बड़ा प्रसन्न हुआ और साधु का वेष बनाकर नदी के तट पर जा बैठा, और रानी के ध्यान में स्थित हुआ। जो मनुष्य नदीपर स्नान करने जातेथे उन्होंने एक साधुको बैठे देखा तो वह खाने पीने के अनेक पदार्थ ले जाने लगे; परन्तु न तो वह पदार्थों को देखे, न ही किसी से बात चीत करे। कोई पुरुष उसके आगे कुछ रख जावे या उठाकर लेजावे तो वह कुछभी ध्यान नहीं करे। इस प्रकार उसके त्याग की बात राजा तक भी जा पहुँची। तब राजा ने विचारा ऐसे त्यागी महात्मा का दर्शन अवश्य करना चाहिये। तब राजा अपने मंत्रियों समेत एक थाल अशर्फ़ियों का भरकर लेगया और महात्मा (भंगी) के आगे रख कर नमस्कार की परन्तु उसने न आंख खोली न

कोई बातचीत ही की। मंत्रियों ने उससे कहा महाराजा साहिब आये हैं, आप कुछ बात चीत तो करें, और यहजो माया(आपकी भेंट)लाये हैं इसको आप किसी शुभ कार्य में लगावें। यह सुन कर भी वह साधु वेषधारी भंगी नहीं बोला तो राजा व मन्त्री अशर्फ़ियों का थाल वापिस लेकर आगये। जब रात को राजा अपने महलों में गया तो रानी से उस साधु के सम्बन्ध में कहा। रानी ने कहा, "यदि आप की आज्ञा हो तो मैं भी ऐसे त्यागी महात्मा का दर्शन करआऊँ।" राजा ने कहा बहुत अच्छी बात है, कल महलों से लेकर नदी तक कनातें लगवादी जावेंगी; तुम दर्शन कर आना। दूसरे दिन राजा की आज्ञानुसार मार्ग में कनातें लगवादी गईं। रानी अपनी दासियों को साथ लेकर महात्मा के दर्शनार्थ गई। जब वहाँ पहुँची तो दासियों से कहा कि तुम यहाँ पर ठहर जाओ, मैं अकेली ही जाऊँगी। वह उसके पास गई और कहा कि जिस का तू ध्यान कर रहा है वह (रानी) तेरे पास आगई है। वह बोला कि इस ध्यान के प्रताप से मेरा चित्त ऐसा एकाग्र हो गया है कि तेरे जैसी अनेक रानियां मेरे आगे हाथ बांधे खड़ी रहें, तोभी चलायमान नहीं हो सकता क्योंकि अब मुझे वह आनन्द प्राप्त हुआ है जिसको पाकर इस विषयानन्द को तुच्छ और विष्टा समान समझता हूं। मैंने निश्चय किया है कि तू मेरी उपदेश दाता माता है। अब तू अपने घर जा और मैं अपनी शेष आयु इसी आनन्द में व्यतीत करूंगा। इससे सिद्ध हुआ कि मन पदार्थों की इच्छा करके चंचल होता है परन्तु ध्यान अभ्यास से चित्त एकाग्र हो जाता है। और विषय पदार्थों की इच्छा निवृत्त हो जाती है। इसी से शास्त्रकारों ने मनका विक्षेप दूर करने को (१) जप, (२) ध्यान, (३) आचार (४) विचार, कथन किया है। जैसे फोटो ग्राफर जब फोटो खींचने लगता है तो वह ध्यानको सब ओर से रोककर केवल (जिसका फोटो खींचता है) उसकी ओर ही दृढ़ करता है, तब फोटो ठीक आता है; यदि रंचक मात्र भी चलायमान हो जावे तो खराब हो जाता है। ऐसे ही जो सब ओर से वृत्ति को हटाकर ध्येय

रूप परमात्मा का ध्यान करता है वही पुरुष परमात्मा का दर्शन कर लेता है ॥

वा जैसे गवर्नमेंट जब रंगरूट भरती करती है तो पहिले उनको कुछ काल चांदमारी सिखलाई जाती है। जब वह रंगरूट निशाना लगाने में पास होजाते हैं तब उनको लड़ाई पर भेजते हैं। फिर वह शत्रुओं को मारकर विजयप्राप्त करके अपने अफ़सरों की प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। तैसेही मनकी चंचलता दूर करने के लिये पहिले सगुणमूर्ति का ध्यान करना पड़ता है। जब इसमें चित्त एकाग्र हो जाता है तो काम क्रोधादि शत्रुओं को जीत लिया जाता है। तब परमात्मा की प्रसन्नता होती है। इस पर नामदेवजी लिखते हैं:—

आनीले कागदु काटी ले गूडी आकास मधे भरमीअले ॥
पंच जना सिउ बात बतऊआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥ १ ॥
मनु राम नामा बेधीअले जैसे कनिक कला चितु मांडीअले॥१॥रहाउ॥
आनी ले कुंभु भराई ले ऊदक राज कुआरि पुरंदरीए ॥
हसत बिनोद बीचार करती है चीतु सु गागरि राखीअले ॥ २ ॥
मंदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावन छाडीअले ॥
पांच कोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥ ३ ॥
कहत नाम देउ सुनहु तिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥
अंतरि बाहरि काज बिरूधी चीतु सुबारिक राखीअले ॥४॥ (रामः नामदेव पृ०९७२)

उत्थानिका—नामदेवजी को गृह कार्य में व्यस्त देखकर त्रिलोचन ने कहा, "तू राम नाम क्यों नहीं भजता, और धंधो में फंसा रहता है।" नामदेव जी बोले हे त्रिलोचन ! हमारा मन काम काज करते हुए भी परमात्मा के चरणों में ऐसे लगा रहता है जैसे बालक बाज़ार से काग़ज लेकर उसे काटकर गुड्डिया बनाता है फिर उसको आकाश में उड़ाता है। और बालकों के साथ बातें करता हुआ भी ध्यान उसका डोर और गुड्डी में ही रहता है। अथवा जैसे सुनार का मन सोने के भूषण की चित्रकारी में लगा रहता है और पास बैठे हुए मनुष्यों के साथ बात भी करता रहता है। फिर जैसे राजा की दासियां जल के घड़े भर कर

ले आतीं हैं तो मार्ग में परस्पर हास विलास की बातें भी करती आतीं हैं; परन्तु उनका ध्यान गागर में ही रहता है। फिर जैसे एक मन्दिर के दस दरवाज़े हैं उनमें से किसी द्वार से निकली हुई गौ बाहर पांच कोस तक चरने को जाती है। तब भी उसका ध्यान अपने बछड़े में ही रहता है। नामदेवजी कहते हैं। हे त्रिलोचन! जैसे माता बालक को पालने में सुलादेती है और आप अन्दर बाहर घरके कार्य में लगी रहती हैं; तोभी उसका चित्त बालक में ही रहता है। तैसे ही हमारा मन सांसारिक कार्य करता हुआ भी प्रेम होने के कारण रामजी के चरणों में लगा रहता है॥

विषयों की इच्छा कैसे मन को चंचल करती है? जैसे नाव को प्रबल वायु हिलाती है तो नाव में बैठे हुए पुरुष घबराते हैं और अपनी रक्षा के लिये ईश्वर के आगे प्रार्थना करते हैं। ऐसे ही विषय पदार्थ जब जिज्ञासुओं के हृदय को चंचल करते हैं तो वह भी परमात्मा के आगे प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! इनसे हमारी रक्षा करो; जैसेः—

किसी राजा के लड़के को चोर घरसे उठाकर बन में लेजावें और उसके बहुमूल्य आभूषण उतार कर उसके नेत्र बन्द करके बन में छोड़ देवें, तो वह बन में ठोकरें खाकर दुखी होता है तैसे इस जीवात्मा रूपी राजकुमार को शब्दादिक विषय रूपी चोर संसार रूपी बन में लेजा कर उसके दैवी सम्पदा वाले गुण रूपी भूषण उतार लेते हैं और श्रुति स्मृति के विचार रूपी नेत्र बन्द करदेते हैं; जिससे यह जीव जन्म जन्मान्तरों की ठोकरें खाकर दुःखी होता फिरता है। वा जैसे किसी मेले पर लड़के रहँट पर बैठकर झूलते हैं। जब नीचे उतरते हैं तो उनके सिर और मस्तिष्क को ऐसा चक्कर चढ़ा हुआ होता है कि उनको सब कुछ घूमता हुआ ही दृष्टि आता है। यद्यपि चक्कर उनके सिर और मस्तिष्क में चढ़ा हुआ है तथापि उनकी यह अवस्था भ्रान्ति से होती है। तैसे ही विषय रूपी रहँट के साथ जो प्रीति करते हैं उनका मन कभी भी स्थिर भाव को प्राप्त नहीं होता और उस विषयी पुरुष को सारा संसार विषयी

प्रतीत होता है; परन्तु उसको भी ऐसा भ्रान्ति से प्रतीत होता है। इस लिये मनकी एकाग्रता के लिये एक महात्मा लिखते हैं:-

मन निग्रह की उत्तम रीती। विषयों से तू रख विपरीती॥

काम आदिक कैसे मनको चंचल करते हैं? जैसे गुरु प्रमाण:-

पापी हीऐ कामु बसाइ। मनु चंचलु यातै गहिउ न जाइ॥

[बसन्त मः ६ पृ० ११८६]

जैसे वायु जल को हिलाती है तैसे काम अथवा अनेक प्रकार की कामना मनको चंचल करती हैं, एकाग्र नहीं होने देतीं॥

क्रोध से चंचलता-जैसे जल के नीचे आग जलाई जाती है तो जल खौलता है जब तक अग्नि उसके नीचे से दूर न हो तब तक वह स्थिर भाव को प्राप्त नहीं होता। ऐसे ही जो पुरुष क्रोध करके दूसरों से वैर भाव रखता है उसका मन भी एकाग्र नहीं होता। इस पर गुरु प्रमाण:-

जब धारै कोऊ वैरी मीतु। तब लगु निहचलु नाही चीतु॥

(गउड़ी सुखः मः ५ पृ० २७८)

लोभ से चंचलता-जैसे जल ऊंचे स्थान से नीचे गिरता है तो बड़ा फैन उठता है और जल में हल चली मची रहती है। तैसे ही जो ऊंचा पद आत्मा है उससे जो पुरुष गिरकर विषय पदार्थों का लोभ करता है उसके मनमें भी हलचली अर्थात् विक्षेपता ही रहती है॥

मोह से चंचलता- जैसे बाल्टी के गले में रस्सी बांधी हुई होती है तो वह कभी कुएं में जाती है कभी बाहर आती है; जब रस्सी खुल जाती है, तब उसका आना जाना बन्द हो जाता है। तैसे मोह रूपी रस्सी से बांधा हुआ यह जीव ऊंच नीच योनियों में भ्रमता फिरता है। जब तक मोह रूपी रस्सी न काटी जावे तब तक यह पुरुष कभी भी स्थिति को प्राप्त नहीं होता।

अहंकार से चंचलता- जैसे फुटबौल में जब तक फूंक भरी रहती है तब तकवह खेलने वालों की चोटें और ताड़ना सहन करती रहती है। तैसे ही जब तक मनुष्यों के अन्दर अहंकार है तब तक यह

जीव जन्म-मरण को चोटें और यमकी ताड़ना (शासन) सहन करता रहता है ॥

यह कामादिक बड़े प्रबल हैं। परन्तु इनका नाश करने वाला परमात्मा का नाम अति प्रबल है। इस पर एक महात्मा लिखते हैं:—

खुदी रहित ते रहे खुदा बाक़ी, कीता खुदी ने बहुत खुआर डाढा ॥
रावण जेहां दा खुरा ना खोज दिसे, पंजा वैरिया विच अहङ्कार डाढा॥
कोई कहे तलवार दी मार डाढी, ऐ पर काम कलङ्क दा वार डाढा ॥
पलविच उमर दी बंदगी रोढ़ छडे, नहीं विषय जेहा कोई विकार डाढा ॥
कई आखदे लोभ है बड़ा पापी, पाया इसने अपना भार डाढा ॥
कई सैंकड़े खून करवा सट्टे, मुंह विच कुत्यां लिया मुरदार डाढा ॥
विच २ कहन क्रोध तों बचेरहिये, लोकां विच करदा मारा मार डाढा ॥
विना शान्ती नहीं हवाल कोई, देइ खलक नूँ दुःख अज़ार डाढा ॥
बहुते आखदे मोह है दुःखदाई, पाया आपस दे विच प्यार डाढा ॥
किसनूं वध कहिये किसनूं घट कहिये, वडा इकतों इक है यार डाढा ॥
कालीदास कर छडदा नास पंजे, भाई फिर भी नाम करतार डाढा ॥

जैसे हिंसक जानवर सिंह, चीतादिक शस्त्र रहित पुरुष को मार लेते हैं और जिस के पास शस्त्र हो वह उनको मार लेता है। तैसे नाम से रहित पुरुषों को काम आदिक दुःख देते हैं और नाम रूपी शस्त्र जिस पुरुष के मनरूपी हाथ में हर समय सम्मुख रहता है वह काम आदिकों को वश कर लेता है। उसको यह दुःख नहीं दे संकते। इस पर गुरुजी कहते हैं:—

प्रभ कै सिमरनि त्रिसना बुझै। प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै ॥
(गउड़ी सुखमनी मः ५ पृ० २६३)
पुनः—गुरप्रसादि आपन आप सुझै ॥ तिसकी जानहु त्रिसना बुझै ॥
(गउड़ी सुखमनी मः ५ पृ० २८१)

सांसारिक धन आदिकों करके लोभ, तृष्णादि की निवृत्ति नही हो सकती; जब नामरूपी धन प्राप्त होता है तब निवृत्त होजाती है। जैसे अग्नि घी व तेल डालने से शान्त नहीं हो सकती, जल डालने से शीघ्र ही शान्त हो जाती है। तैसे ही तृष्णालु पुरुषों की सांसारिक पदार्थों

से तृष्णा निवृत्त नहीं हो सकती, नाम रूपी जल से ही तृष्णा तथा विक्षेप दूर हो जाते हैं। ताते सिद्ध हुआ कि प्रभु का नाम सुमिरन करने से ही विक्षेप, तृष्णा और लोभादिक दूर हो जाते हैं। इसलिये जिज्ञासु नाम का स्मरण अवश्य करे। इस पर गुरुजी कहते हैं:—

धन पायो हरिनाम माई मैं धन पायो ॥ टेक ॥
माई मैं धनु पायो हरि नामु ॥
मनु मेरो धावन ते छूटिउ करि बैठो बिसरामु ।१। रहाउ ॥ माई०
माया ममता तनते भागी उपजिउ निरमल गिआनु ॥
लोभ मोह एह परसि न साकै गही भगति भगवान ॥ २ ॥ माई०
जनम जनम का संसा चूका रतनु नामु जब पाइआ ।
तृसना सकल बिनासी मनते निज सुख माहिं समाइआ ॥ ३ ॥ माई०
जाकउ होत दइआलु किरपानिधि सो गोविंद गुन गावै ।
कहु नानक एह बिधि की संपै कोऊ गुरमुखि पावै ॥ ४ ॥ माई०

[बसंत मः ९ पृ० ११८६]

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः





प्रश्नः--हे भगवन् ! विक्षेप की निवृत्ति का उपाय श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपजी ने दान के प्रसंग में कहा है कि:–

गुरमुखि नामु दानु इसनानु। गुरमुखि लागै सहिज धिआनु॥
गुरमुखि पावै दरगह मानु। गुरमुखि भउ भंजनु परधानु॥
(रामः सिधः पृ० ९४२)

और इस विक्षेप की निवृत्ति में जप, ध्यान, आचार तथा विचार भी वर्णन किया है। सो अब कृपा करके बतलावें कि नाम जप किस प्रकार से किया जावे, जिससे शीघ्र फलदायक हो?

उत्तरः--हे प्यारे ! नाम का जाप शीघ्र फलदायक होने में शास्त्र कारों ने छः साधन वर्णन किये हैं (१) संतोष, (२) शौच, (३) सावधानता, (४) मौन, (५) बहुत देर तक सत्कार सहित मंत्र का जाप करना, (६) मन में मंत्र के अर्थ का चिन्तनकरना । अब इनका स्वरूप भिन्न २ वर्णन करते हैं। (१) संतोष–यथालाभ में संतुष्ट रहना, अर्थात् प्रारब्धानुसार खान पहरान जैसा प्राप्त हो उसमें प्रसन्न रहना। अपने से ऊँचों को देखकर उनकी होड़ न करनी और न उनके साथ ईर्षा चुगली आदि करना, और नीचे वालों को देख कर अपनी अवस्था में संतुष्ट रहकर परमात्मा को धन्यवाद देना। (२) शौच – दो प्रकार का है। अन्तः करण का रागद्वेष से रहित होना और बाहर से जल मृत्तिकादि से पवित्र रहना, इसकानाम शौच है। (३) सावधानता–यह भी दो प्रकार की है। अर्थात् जिस समय अभ्यास में बैठे तो डंडेवत् सीधा होकर बैठे, दूसरा मनके सँकल्पों का ध्यान रखना ताकि मन खोटे संकल्पों

से रहित होवे। (४) मौन–यह भी दो प्रकार का है; वाणी का मौन–सिवाय मतलब के किसीसे न बोलना और दूसरी मन की मौन है जो व्यर्थ सङ्कल्पों को रोक रखना अर्थात् बाहर विषयों से उपराम होकर अन्तर्मुख वृत्ति को धारण करना, इसका नाम मौन है । (५) गुरु मंत्र का जाप प्रेम सहित बहुत देर तक करना, क्योंकि बहुत देर तक बैठने से मन एकाग्र होता है। (६) मन में मंत्र के अर्थ का चिन्तन करना। इन छः बातों के मिलने से जपा हुआ नाम बहुत शीघ्र फल देता है। जैसे जल के पात्र को हिलाने के बाद जल एक दम नहीं ठहरता, धीरे धीरे ठहरता है। तैसे व्यवहार से विक्षिप्त हुआ मन अभ्यास में बैठते ही नहीं ठहरता, अधिक देर तक बैठने से ही एकाग्र होता है। फिर जैसे चिड़िया बाज़ से भयभीत हुई मन्दिर के अन्दर आजाती है तो कुछ काल उसको भय के मारे बैठने के लिये कोई स्थान दृष्टि नहीं आता; परन्तु जब कुछ देर होजाती है तो उसको अनेक खूँटियां आदि बैठने को मिलजातीं है, जो पहिले से ही मौजूद थीं। तैसे ही मन व्यवहारों से विक्षिप्त हुआ अभ्यास में बैठते ही एकाग्र नहीं होता; किन्तु कुछदेर उपरान्त बैठे रहने से, एकाग्रहोजाता है। जैसेः-

दो०–चित की जोइ एकाग्रता, सोइ आनन्दमान।
होवे दृढ़ अभ्यास से, चित्त एकागर जान ॥

पुनः दो०–वारम्वार अभ्यास से, दुर्मति होत सुजान।
रस्सी आवत जात ही, सिल पर करत निशान ॥

पुनः–दो०–नित प्रति करत विचार जो, थिरता पावै चित्त।
बोध उदय छिन छिन करे, जाने नित्त अनित्त ॥ (विचार माला)

शङ्काः--हे भगवन्! आपने देरतक अभ्यास करने को कहा है सो व्यवहार में से अधिक समय नहीं निकल सकता; क्योंकि सम्बन्धियों का भय बना रहता है, ऐसा न हो कि वह अप्रसन्न हो जावें ॥

समाधानः--हे प्यारे! ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाला पुरुष ही अधिक देर तक अभ्यास कर सकता है। और इसमें सम्बन्धी भी कोई बाधा नहीं कर सकते। इसी लिये प्रातःकाल उठने के लिये गुरुजी कहते हैं:-

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरि नामु धिआवै ॥
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अमृतसरि नावै ॥
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहिजावै ॥
फिरि चड़ै दिवसु गुर बाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरिनामु धिआवै॥
जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुर सिखु गुरू मनि भावै ॥
जिसनो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुर सिख गुरू उपदेसु सुणावै ॥
जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुर सिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥

इसी शब्द के आशय पर एक कवि ने भी लिखा है:–

कवित्त–उठके झालागे सदाशौच असनान कर, लाइके वृत्ती हरिनाम मन गावणा ।
गावणा प्रेमनाल फिर गुरुबाणी ताई, हरि हरिनाम मन सदा ही धिआवणा ॥
जाइ गुरुद्वारे माहिं सुनणा सुजसहरि, हत्थीं कारकर सदा छक्क के छकावणा ।
गुर सिखा वागू सदा उठणा सवेरे भाई, अमृत वेले जनम सफल करावणा ॥

इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:–

झालाघे उठि नामु जपि, निसि बासुर आराधि ।
काड़ा तुझै न विआपई, नानक मिटै उपाधि ॥ १ ॥
(गउड़ी बावन अखरी मः ५ पृ० २५५)

पहिले पहिरै फुलड़ा, फलु भी पछाराति ।
जो जागनि लहन से, साई कनो दाति ॥(श्लोक फ़रीदजी पृ० १३८४)

प्रातःकाल उठने के यह लाभ हैं:– प्रथम तो शौच स्नान करने से आलस्य दूर हो जाता है, दूसरे वह समय शान्तिमय होता है, वृत्ति भली प्रकार एकाग्र हो जाती है, फिर दिन चढ़े जैसे सूर्य की किरणें फैलती हैं वैसे ही वृत्तियां अनेक प्रकार के व्यवहारों में फैल जाती हैं ॥

इसलिए गुरुमुखों को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर शौच स्नान करें और अपने मन की वृत्ति को एकाग्र करके नाम का सुमिरण करें और सूर्य निकलने तक अपने नित्य नियम से निवृत्त हो जावें । जो प्रातःकाल नहीं उठते उनके लिए शास्त्रकारों ने बहुत दोष बताये हैं:–

कबीर सूता किआ करहि, उठि कि न जपहि मुरारि । इकु दिन सोवनु होइगो, लांबे गोड पसारि ॥ १२८ ॥ (श्लोक कबीर० पृ० १३७१)

पुनः– दो०–रात गंवाई सोइके, दुध मलाइआं पी ।
जम जद लेखा मंगसी, उसनूं दस्सें की ॥

पुनः—फैलाकर पांव जो सोता है, वह सिर पर हाथ धर रोता है ।
चलते हाथसे कुछ कमाले ऐ ग़ाफ़िल,किउ उमर अज़ीज़ अज़ाइया खोता है।
जो सोया है वह रोया है, जो जागा है तिस पाया है।

आसावरी—हे मन गाफ़ला विच गफ़लत सुतों इस गफ़लत भला न करना।
साईं नालो पाय विछोड़ा जनम जनम फिर मरना ॥
संतां वालिआं रहितां रहिकर इस सागर से तरना।
सेवादास भगति अद्भुत पाई मिलि के सतगुरु चरना ॥

पुनः—समझ सोच तू मन मेरे प्रेमी हो सुख सोना क्या ।
जिन नैनों ने नींद गंवाई तकिया और बिछौना क्या ॥
जैसा मिल जाइ तैसा खाना चिकना और सलौना क्या ।
कहत कमाली प्रेमके मारग सीस दिया फिर रोना क्या ॥

इसी आशय पर गुरु जी कथन करते हैं:—
रैनि गवाई सोइकै दिवसु गवाया खाइ ।
हीरे जैसा जनमु है कौड़ी बदले जाइ ॥ (गउड़ी वैरागण म:१पृ० १७६)

मधुभार छन्द— पहिरे कुचैल । धृत दन्त मैल ॥
तपतान प्रीत । मधुरो न गीत ॥
रवि अन्त भोर । जेहि नींद घोर ॥
अब लचकन्त । तेहि श्री तजन्त ॥

भावार्थ—जो पुरुष मैले कपड़े पहनता है, दातौन नहीं करता-दांतों पर मैल रखता है, अतिशय करके गर्म अन्न खाता है, कड़ुआ बोलता है अर्थात् मीठा नहीं बोलता, रात होते ही शीघ्र सो जाता है और दिन निकलने तक सोया रहता है, अतिशय कर के बेसुध सोता है, वह बहुत धनवान् होते हुए भी दरिद्री है, और लक्ष्मी भी उसको त्याग देती है अर्थात् वह पुरुष कंगाल हो जाता है, जिससे उसकी शोभा नहीं रहती । ताते हे प्यारे ! जो बहुत सोता है वह व्यवहार और परमार्थ में दुःख पाता है । इसलिए जिज्ञासु को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर अपना नित्य नियम करे । देखो, मनुष्य के जो जो वैरी हैं उनमें से धर्मात्मा पुरुषों ने निद्रा को भी मनुष्य का वैरी ही बतलाया है:—

पहिला वैरी मन है, दूजा वैरी शैतान । तीजा वैरी धियां पुत्तर, जेहड़ा मंगन पहनन खान।
चौथी वैरन स्त्री जेहड़ी खोहलैंदी ईमान । पंजवां वैरी माल धन,जिस विच अट्ठ पहर गलतान।

छेवां वैरी हुसन है, जिस विच नज़रगई असमान। सतवां वैरी काल है, जेहड़ा सिरते रहंदा आन॥
अठवीं वैरण नींद है, जेहड़ी जपन न देंदी नाम। इतने वैरीहोंदिआं, तेरा किसविधि होय कल्यान॥

इसी आशय पर एक कवि लिखता हैः—

बैंत—बालमीक न सुत्ता बेगिणत बरसाँ, हुकम गुरांदा खूब निभाउण वाला।
गोरखनाथ ने जित्ता निद्रा नूं, इक अख निशंग गवाउण वाला॥
सुती सस्सी नूं छडके गया पुन्नू, देखो सउण विछोड़े दे पाउण वाला।
अमर होई न गौरवाँ पई सुत्ती, आँडा अमर है नींद भुलाउण वाला॥
ऐ मन गाफ़ला देख विचार करके, बड़ा सउण नुकसान पहुंचाण वाला।
ज़रा सँभके शरीर नूँ करीं हौला, वकत हई गोविंद दे गाउण वाला॥

भजनः—उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है जो सोवत है सो खोवत है॥
उठ नींदसे अखियाँ खोल ज़रा और अपने प्रभुसे ध्यान लगा।
यह प्रीति करन की रीति नहीं प्रभु जागत है तू सोवत है॥
जो कल करना सो अज करले जो अज करना सो अब करले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया फिर पछिताये क्या होवत है॥
नादान देखि करनी अपनी ऐ पापी पाप में चैन कहाँ।
जब पापकी गठरी शीश धरी फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है॥

नित्य नियम किये बिना भोजन करना जगद्गुरु जी दोषरूप कहते हैंः-

अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवां पाया घिरतु॥
ता होआ पाकु पवितु॥ पापीसिउ तनु गडिआ थुका पइया तितु॥
जितु मुखि नामु न उचरहि बिनु नावै रस खाहि॥
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि॥ १॥ [आसादीवार पृ० ४७३]

भावार्थ—देखो अन्न कैसा पवित्र होता है; परन्तु इस शरीर के साथ मिल कर विष्टा रूप होने से उस पर थूकें ही पड़ती हैं। तैसे ही जो पुरुष अच्छे अच्छे रसदायक भोजन खाता है और मुख से नाम नहीं जपता, गुरुजी कथन करते हैं कि उस मनुष्य के मुख पर परलोक में (अपवित्र जानकर) थूका जाता है अर्थात् उसकी ओर कोई देखना ही नहीं चाहता।

पुनः—धृगु धृगु खाइया धृगु धृगु सोइया धृगु धृगु कापड़ अंगि चढ़ाइआ।
धृगु शरीरु कुटंब सहित सिउ जितु हुणि खसमु न पाइआ॥ (बिलावलु मः३पृ०७९६)

भावार्थ–जो पुरुष प्रातःकाल उठके एकाग्रचित होकर एक परमात्मा का चिन्तन नियम से करता है और ब्रह्मानन्द में लीन होता है उसका खाना, पीना और पहिरना सब सफल है। परन्तु जो पुरुष ऐसा नहीं करता और आठों पहर खाने पहरने में ही लगा रहता है उसको धिक्कार है; अर्थात् उसका यह मनुष्य जन्म ही निष्फलहै। तातें विक्षेप दोष की निवृत्ति के लिये प्रेमियों को चाहिये कि आप नित्य नियम करें और अपने बाल बच्चों से भी करावें। नित्य नियम करने से ही मन की शुद्धि होती है। जैसे (१) हम शौच के लिये बाहर जाते हैं और स्नान करते हैं तो शरीर शुद्ध रहता है। यदि आलस्य करके ऐसा न करें तो शरीर अन्दर बाहर से मैला हो जाता है। (२) जिस मकान में प्रति दिन झाड़ू न दिया जावे वह मकान साफ़ नहीं रहता और मकान में रहने वाले भी रोगी हो जाते हैं। ऐसे ही प्रति दिन नित्य नियम न करने से मन शुद्ध नहीं रहता, किन्तु मैला हो जाता है। और मनके मलीन होने से नित्य नियम प्रेम पूर्वक नहीं हो सकता। जब प्रेम से नित्य नियम ही न हुआ तो फिर फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है। अर्थात् नहीं हो सकती। इस पर इतिहासः–

उत्तरा खण्ड में एक गांव के बाहर कुछ दूरी पर शिवजी का मन्दिर था और एक प्रेमी नियम पूर्वक प्रतिदिन वहां जाकर स्नान कराकर धूप, दीप, पुष्पादि से पूजन किया करे। एक दिन एक कोरी (जुलाहे) ने उसको देखा और मन में विचारा कि मैं भी कुछ नियम रक्खूं। जब वह पुरुष पूजा करके चला जावे तो उसके उपरान्त वह शिवजी की पिण्डी को पत्थर मार आया करे। इसी प्रकार बहुत काल व्यतीत होगया और वह दोनों अपना२ नित्य नियम करते रहे। एक दिन शीत का समय था, बड़ो भारी वर्षा और शीतल वायु चलरही थी। भक्त जी ने तो आलस्य करके अपने घर पर ही पूजा पाठ करलिया और जुलाहे ने सोचा कि वह भक्त पूजा करके आया होगा, इसलिये मैं भी अपना नित्य नियम कर आऊं। तब वह जुलाहा वहां पर गया और जाकर

पत्थर मारा। तब शिवजी प्रसन्न हुए और कहा, वर मांगो। जुलाहे ने मन में सोचा मैं बहुत हाथ पांव मागूं जिससे बहुत बुनाई कर सकूं। ऐसा विचार कर कहा कि मेरे बहुत हाथ पैर हो जावें। शिवजी ने कहा 'तथास्तु' अर्थात् ऐसे ही होगा। उसके बहुत हाथ पांव होगये। जब लौटने लगा तो मार्ग में लड़के खेल रहे थे। उन्होंने देखा कोई निशाचर आ रहा है, ऐसा न हो कि हमें मार जावे। सबने पत्थर मारने आरम्भ करदिये और मार मार कर उसके प्राण निकाल दिये। इस प्रसंग का सिद्धान्त यह निकला कि नित्य नियम का फल तो अवश्य मिलता है परन्तु जैसा कर्म होता है वैसा ही फल, जैसे जुलाहे ने पत्थर मारे थे तो पत्थर ही लगे। नित्य नियम करने वाले अपने प्राणों तक की भी चिन्ता नहीं करते। इस पर इतिहासः-

कबीरजी के पास सन्त महात्मा आते रहते थे और ढोलक मंजीरा आदिक बजाकर कीर्तन किया करते थे परन्तु यह बात पड़ोसियों को अच्छी नहीं लगती थी; क्योंकि रात्रि को या प्रातःकाल जब भी कीर्तन होता तो उनकी नींद में विघ्न पड़ता था। एक दिन कबीर जी के घर में पड़ोसी ने आग लगादी और बाहर जहां पर कबीर जी नित्य नियम कर रहे थे वहाँ पर जाकर सूचनादी कि तुम्हारे घरमें आग लग गईहै। उस समय कबीरजी अपने आत्मिक आनन्दमें मग्न हुए २ कहने लगे।

आपे पावकु आपे पवना ॥ जारै खसमु त राखै कवना १॥ ॥ राम जपत तनुजरि की न जाइ ॥ राम नाम चितु रहिआ समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काको जरे काहि होइ हानि ॥ नटवट खेलै सारिग पानि ॥ कहु कबीर अखर दुइ भाखि हुइगा खसमु त लेइगा राखि ॥ ३ ॥ ३३ ॥ (गउड़ी कबीर पृ० ३२९)

भावार्थ-(अपने निश्चय को कबीर जी प्रगट करते हैं कि) हे भाई! आपही परमेश्वर ने अग्निरूप धारा है और आप ही अग्निको प्रज्वलित करने वाला वायुरूप है। फिर जब वह मालिक आपही जलाने वाला है तो उससे रक्षा कौन कर सकता है? तुम तो कहते हो कि घर की आग बुझाओ। परन्तु मेरा तो यह निश्चय है कि नित्य नियम के समय इस देह रूपी घर को भी अग्नि लग जावे तो भी नहीं उठना

क्योंकि हमको मरने का भय नहीं है:-

कबीर जिसु मरनैते जगु डरै मेरे मन आनंदु ।
मरने ही ते पाइऐ, पूरनु परमानंदु ॥ २२ ॥ [श्लोक कबीर पृ० १३६५]

ताते हमारा मन तो राम नाम में स्थित हो रहा है। जैसे अगाध समुद्र जल में मछली को ऊपर की धूप दुःख नहीं दे सकती, तैसे हमारा मन ब्रह्मानन्द रूप समुद्र में स्थित है; इससे शरीर का दुःख हमको कुछ नहीं। किसका घर जलता है और किसकी हानि होती है? इस बात का मुझे कुछ पता नहीं; अर्थात् परमेश्वर तो मदारीवत् आप ही खेल कर रहा है। घर भी उसका है, जलाने वाला भी वह आप ही है। मेरा घर हो तो मैं जाकर आग बुझाऊं। इससे हे प्यारे! तुम भी बैठो और राम नाम का जाप करो। यदि वह हमारा सच्चा प्रेम देखेगा तो स्वयं ही रक्षा करेगा। कबीर जी का इतना कहना था कि उसी समय अन्तर्यामी ने वर्षा द्वारा अग्नि बुझादी। इससे यह सिद्ध हुआ कि सच्चे दिल से नित्य नियम वालों की परमात्मा आपही परीक्षा के उपरान्त रक्षा करता है और हरि के नाम से सदा सुख की प्राप्ति होती है। गुरु प्रमाण:-

हरि को नामु सदा सुखदाई ॥ जाकउ सिमरि अजामलु उधरिउ
गनका हू गति पाई ॥१॥रहाउ॥ पञ्चाली कउ राज सभा मै राम
नाम सुधि आई ॥ ता को दूखु हरिउ करुणामै अपनी पैज बढ़ाई ॥
जिह नर जसु किरपा निधि गाइउ ताकउ भइउ सहाई ॥
कहु नानक मै इही भरोसै गही आन सरनाई ॥ २ ॥ १ ॥ (मारू मः ९ पृ० १००८)

"जाकउ सिमरि अजामलु उधरिउ"

इस पंक्ति का टीका भाई गुरुदास जी संक्षेप से वर्णन करते हैं:-

पतित अजामिल पापकर जाइ कलावतणी दे रहिआ ॥
गुर ते बेमुख होइ के पापु कमावै दुरमति दहिआ ॥
बृथा जनमु गवाइनु भवजल अन्दर फिरदा बहिआ ॥
छिअ पुत जाइ वेसवा पापां दे फल इच्छे लहिआ ॥
पुत्र उर्पना सतवां नाउं घरन नूं चित्त उमहिआ ॥
गुरुद्वारे जाइकै गुरमुख नाउ नारायण कहिआ ॥
अन्त काल जमदूत वेख पुत्र नराइण बोलै छइआ ॥

जमगण मारे हरिजना गइआ सुरग जम दण्ड न सहिआ ॥
नाइ लए दुःख डेरा ढहिआ(भाई गुरुदास वार १० पउड़ी२०)

भावार्थ—पापी अजामिल विषयों की वासना के आधीन हुआ कलावतिनी (वैश्या) के घर रहने लगा। गुरु और धर्म से विमुख होकर पाप करने लगा। वह जाति का ब्राह्मण था; परन्तु पाप करने से उसने अपने जन्म को निष्फल गंवादिया। इसको विषयों की इतनी तीव्र इच्छा थी कि इसने वैश्या द्वारा छः पुत्र उत्पन्न किए। और उन मन-इच्छित पापों के फल भी भोगने लगा। जब सातवां पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके नाम करण के लिए उत्साह जागा। गुरुद्वारे ले गया। उसका नाम गुरु ने नारायण रक्खा। जिस समय अजामिल का अन्त समय आया तो यमदूतों को देखकर बहुत भयभीत हुआ और ऊंचे स्वरों से कहने लगा, "हे पुत्र नारायण ! मुझे यमदूतों से आकर छुड़ादे।" इसप्रकार कईवार नारायण, नारायण कहकर पुकारा तो नारायण चाहे पुत्र का नाम ही था, परन्तु फिर भी परमात्मा ने अपने नामकी लज्जा रखने अर्थ अजामिल को लेनेके लिए पार्षद भेज दिए जो यमगणों को हटाकर, उसको विमान में बिठला कर स्वर्ग में लेगये और उसे यम दंड नहीं सहन करना पड़ा।

पुनः— "गनका हू गति पाई" (मारू मः ६ पृ० १००८)

धारना— (पाप कलेवर धोता गनिका पापिन ने)

गनिका पापिन होय के पापाँ दा गल हार परोता ॥
महा पुरुष अचाणचक गणिका वेहड़े आइ खलोता ॥
दुरमति देखि दयालु होइ हथहुं उसनों दितोस तोता ॥
राम नाम उपदेश कर खेल गइआ दे वणज सौता ॥
लिव लागी तिस तोतअहु नित पढ़ाए करै असोता ॥
पतित उधारण राम नाम दुरमति पाप कलेवर धोता ॥
अन्तकाल जम जाल तोड़ नरकै विच न खाधुस गोता ॥
गई वैकुण्ठ विमाण चढ़ नाउ नाराइण छोत अछोता ॥
थाउ निथावे माण माणोंता ॥ (भाई गुरुदास वार १० पउड़ी २१)

भावार्थ—एक वैश्या पापनी ने अनेक पाप किये। मानो उसने अपने गले में पापों का हार ही पिरोकर पहिन लिया। अर्थात् वे अन्त पाप

किये । स्वतः स्वभाव ही एक पूर्ण महात्मा पुरुष अपने हाथ में तोता पकड़े हुये उस वैश्या के आंगन में आकर खड़े हो गये । उन महात्माने वैश्या को खोटी बुद्धिवाली देखकर विचार किया कि यह नाम की अधिकारिणी नहीं । कोई ऐसी बात हो जिससे इसको नाम जपाइये । यह विचार कर हाथ वाला तोता उस वैश्या को दे दिया और कहा कि इसको राम नाम पढ़ाया कर । यह लाभदायक सौदा है । ऐसे कह कर महात्मा चले गये और वैश्या का उसको पढ़ाने में प्रेम जगा जिससे नित्य प्रति प्रातःकाल उसे पढ़ाने लगी । भाई साहिबजी कहते हैं कि राम का नाम पापियों का भी उद्धार करने वाला है । इसीलिए वैश्या के शरीर से दुर्मति और समस्त पाप नष्ट हो गये । जैसे गुरु प्रमाणः—

कउन को कलंकु रहिउ राम नामु लेत ही ॥
पतित पवित भये रामु कहत ही ॥ (टोडी नाम देव पृ० ७१८)

वह वैश्या राम नाम के प्रताप से अन्त समय यमों की फांसी को तोड़ कर विमान पर चढ़ वैकुण्ठ को चली गई और नरकों के गोते खाने से बच गई । क्योंकि राम नाम पापों को निकाल कर पवित्र करने वाला है और जो मान से रहित पुरुष है उसको मान देने वाला और विपत्ति काल में सहायता करने वाला है । जैसे गुरुजी कहते हैंः—

पञ्चाली कउ राज सभा मै राम नाम सुधि आई ।
ताको दूखु हरिए करुणा मै अपनी पैज बढ़ाई ॥ (मारू मः ६ पृ० १००८)

धारणा— (मेरी कृष्ण बिना पत जांदीए मेरी ॥)

अन्दर सभा दुसासनै मत्थेवाल द्रोपती आँदी ॥
दूतांनो फरमाइआ नंगी करहु पञ्चाली बाँदी ॥
पञ्जे पाँडो वेखदे अउघट रुधी नार जिन्हाँदी ॥
अक्खीं मीट धिआन धर हाहा कृष्ण करे बिललाँदी ।
कप्पड़ कोटि उसारिउनु थक्के दूत न पार वसाँदी ॥
हत्थ मरोड़न सिर धुणनि पच्छोतान करन जाहजाँदी ।
घर आई ठाकुर मिले पैज रही बोले शरमाँदी ॥
नाथ अनाथां बाण धुराँदी ॥ (भाई गुरुदास जी वार १० पउड़ी ८)

इसी आशय पर एक कवि लिखता हैः—

चीर सभी उतारो यह हुक्म हुआ, तदों द्रोपतां मनों घबरावन्दी ए।
दीनानाथ द्याल नूँ याद करदी, गीत पई गोविन्द दे गावन्दी ए।
ज़रा तरस न आया ज़ालमानूं, हाथ जोड़ के वास्ते पावन्दी ए।
हथ गऊ कमाई दे जिवें आई, बंसी वाले नूं पई ध्यावन्दी ए।
दीनानाथ द्याल है नाम तेरा, इस नाम नूं पई लजावन्दी ए।
प्यारे सज्जनों! नाल ध्यान सुनना, सच्चे साहिब दे किवें मन भावंदी ए।
जदों चीर उतारने आवण लगा, तदों द्रोपदा अंत यह वचन कहिआ।
मेरी रक्षा कोई ना करन वाला, अते ना कोई मेरा वसि रहिआ।
नाम अपने दी स्वामी लाज रक्खो, वेले आखर दे किथे छप रहिआ।
उधर रुकमणीनाल भगवान कृष्ण, पासा खेलदे नाल प्यार देजी।
पहुँची जदों पुकार द्रोपती दी, उसे वक्त ही डाला नूं मारदे जी।
अरब खरब दा दितोने वर ओथे, उची धुन से मुखों उच्चारदे जी।
दीनानाथ द्याल कृपाल स्वामी, अपने दासां दे काज सवारदे जी।
पासा खेलदे रुक्मणी कहण लग्गी, स्वामी एह की खेलिआ खेल हैजी?
मुखों अरब ते खरब उच्चारदे हो, पासे विच इसदा की मेल है जी?
मुर दैतदे शत्रु कहण लगे, मैनूं याद कीता विच जेल है जी।
विच सभा दे चीर उतारदेनी, अरब खरब कीता उस वेल है जी।
दरस दिता भगवान जब द्रोपतांनूं, द्रोपतां कहे किउं प्रभु अज़माउ देहो?
जेकर जाणदे हो दरस देवणा है, दिल मेरेनूं किउं तड़फ़ाउन्दे हो?
जब स्वास लबां ते आवन्देने, वेले आखिरनूं कंढे लगावन्दे हो।
दास तेरे ते दासां दा तूं वाली, चित दासांदा किउं घबरावन्दे हो?
प्रभु हस के कह्या द्रोपदी नूं, मेरी नहीं अवल्लड़ी चाल कोई।
दास मेरे ते दासांदा मैं वाली, नहीं कर सकै विंगा वाल कोई।
जिस भावना से दास ध्यान मैनूं, हाज़र होवनां हां तिसे हाल सोई।
ब्रज वासीआ रखिया करो मेरी, ऐसी कूक तेरी इस्तेमाल होई।
विच ब्रज दे स्वांग जा धारिआमैं, इसलई तू हालों वे हाल सोई।
घट २ वासीआनाल जो ध्यान मैनूं, प्रगट होवना हाँ उसी हाल सोई।
श्रद्धा प्रेम से जो ध्यान मैनूं, फांसी पांवदा नहीं यम काल कोई।

नाम हर स्थान पर सहायता करता है। इस पर गुरु प्रमाणः—

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥ मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई ॥
जह महा भइआन दूत जम दलै ॥ तह केवल नामु संगि तेरै चलै ॥
जह मुसकल होवै अति भारी ॥ हरि को नामु खिन माहि उधारी ॥
अनिक पुनहचरन करत नही तरै ॥ हरिको नामु कोटि पाप पर हरै ॥

गुर मुखिनामु जपहु मन मेरे ॥ नानक पावहु सूख घनेरे ॥
(गउड़ी सुखमनी म० ५ पृ० २६४)

पुनः—दुख हरता हरि नामु पछानो ॥
अजामल गनका जिह सिमरत मुकति भए जीअ जानो ॥ १॥ रहाउ ॥
गज की त्रास मिटी छिन हू महि जबही रामु बखानो ॥
नारद कहत सुनत ध्रुअ बारिक भजन माहि लपटानो ॥ १ ॥
अचल अमर निरभै पदु पाइओ जगत जाहि हैरानो ॥
नानक कहत भगत रछक हरि निकटि ताहि तुम मानो ॥२॥ (बिलावल मः ९पृः ३०)

जिस पुरुष के चित्त में परमात्मा का भजन स्मरण होता है उसको किसी प्रकार की तत्ती वायु यानी कष्ट प्राप्त नहीं होता। गुरु प्रमाणः—

जाकउ मुसकलु अति बणै ढोई कोइ न देइ ॥
लागू होइ दुसमना साक भि भज खले ॥
सभो भजै आसरा चुकै सभु असराउ ॥
चिति आवै उसु पारब्रहमु लगै न तती वाउ॥१॥(सिरी राग मः५पृ०७०)

भावार्थ— जिसको अतिशय करके कोई कठिनाई आ बने, उसकी सहायता करने वाला कोई न होवे, शत्रु भी उसको घेर लेवें, सम्बन्धी भी जवाब देजावें, फिर उसे धन और सम्बन्धियों का भी कोई आसरा न रहा हो और सब प्रकार से निराश होजावे, ऐसे पुरुष को यदि पारब्रह्म परमेश्वर स्मरण हो आवे अर्थात् जब वह पुरुष परमात्मा की शरण को प्राप्त होजावे, तब वह निश्चय करले कि, उसको कोई भी तत्ती वायु नहीं लग सकती। अर्थात् कोई जीवजन्तु क्या, उसको तो यमदूत भी दुःख नहीं दे सकते। गुरु प्रमाणः—

जह साधू गोबिंद भजनु कीरतनु नानक नीत ॥
णा हउ णा तूं णह छुटहि निकटि न जाईअहु दूत ॥ १ ॥
(गउ० वा० अ० म० ५ पृ० २५६)

भावार्थ—महाराजजी कहते हैं हे शिष्यो! यमराज अपने दूतों से कहते हैं जो साधु पुरुषों की संगत में नित्यप्रति गोविन्द का भजन और कीर्तन करता है उसके समीप तुम मत जाना। यदि जावोगे तो न मैं छूटूँगा और न तुम ही छूटेगे और न ही यह यम पुरी छूटेगी॥

एक सेठ जहाज़ से उतरकर शहरमें आया औरसज्जन पुरुषों सेकहा कि मुझे कोई मज़दूर ढूँढदो जो मुझे अपने गाँव में पहुँचादे। उन्होंने एक मज़दूरी करने वाले को (जो सत्संगी और सत्पुरुष था) उसके साथ भेजदिया। जब वह शहर से बाहर निकला तो उसको ध्यान आया, मैं तो भूल गयाहूं; क्योंकि अब मेरे सत्संग का समय था, मैंने वहां जाना था; मेरा नित्य नियम टूट जावेगा। यह विचार कर उससे कहने लगा, मेरा तो सत्संग का समय हो गया है, मैं तुम्हारे साथ अब नहीं जा सकता। तब साहूकार कहने लगा, "भाई! तुमने हमारे साथ वचन किया है।" उसने उत्तर दिया कि वचन तो ठीक ही किया है; परन्तु मैं तुम्हारे साथ इस प्रतिज्ञा से जाताहूं कि मुझे तुम हरी का यश सुनाओ या सुनो। तब वह बोला हमतो कभी सत्संग में गये ही नहीं और ना ही हमें कोई कथा वार्ता आती है; तू ही हमको सुनाता जा और हमारे साथ चल। तब वह सत्संगी सुनाता गया और वह सुनता गया। जब घर पहुँचे तो सत्संगी सोचने लगा कि गुरु साहिबजी कहते हैं:-

"बिरथा न साध मिलाप"।

इसने हमारे साथ संग किया है, इसे कुछ लाभ पहुंचना चाहिए। तब उसे कहने लगा हे भले पुरुष! तुमने ना ही कभी जाप किया है और ना ही सत्संग। इससे तुम्हें निश्चय ही नर्क की प्राप्ति होगी। परन्तु हमें तेरे ऊपर दया आती है, इस लिये यह बात बताते हैं कि आज से आठवें दिन पीछे तेरी मृत्यु हो जावेगी। जब तुमको यम दूत यमराज के पासले जावेंगे तब तुमसे यमराज यह कहेंगे कि "हे मूर्ख! तूने मनुष्य जन्म पाकर न तो परमेश्वर का नाम जपा, न कुछ दान किया और न सत्संग ही किया। आठों पहर खोटे कर्मों के करने में ही प्रवृत्त रहा है। इससे तेरे लिये नर्क तैयार है। परन्तु जो दो घड़ी तुमने सत्संग किया है और चलते २ हरि सम्बन्धी कथा वार्ता श्रवण करी है उसका फल पहले लेना है या पीछे?" तब तुम यह कहना हमको सत्संग का फल पहले मिले। यह कहकर वह सत्संगी चलागया। पीछे उसने सात दिन बड़े

कष्ट के साथ बिताये, आठवें दिन दुःख पाकर मरगया। जब उसको यम दूत मारते पीटते यमराज के पास लेगये तब उन्होंने उसको धिक्कारें दीं और कहा तुमने आयु पर्यन्त कोई शुभ कर्म नहीं किया, इसलिये तुम को नर्क ही भोगने पड़ेंगे; परन्तु जो दो घड़ी तुमने सत्संग किया है उसका फल तुम्हारे लिये सुख अर्थात् वैकुण्ठ की प्राप्ति है। अब यह बताओ कि वह फल पहले लेना है या पीछे ? तब उस साहूकार को सत्संगी का वचन याद आगया और कहा कि हमको पहिले सत्संग का ही फल मिले। तब यमराज ने दूतों से कहा इसको पहिले वैकुण्ठ सुख भुगाकर पीछे नर्कों में डालदेना। आज्ञा पाकर यमदूत उसको लेकर चलपड़े और डांट कर कहा, जल्दी लौट आना, यदि जल्दी न आया तो हम तुझे बहुत मारेंगे। जब यह वैकुण्ठ में पहुँचा तो वहाँ सत्संग हो रहा था। जितना समय उसे दिया गया था उससे पहिले ही जब वह तैयार होने लगा तब जिस मनुष्य ने उसका बोझा उठाकर सत्संग कराते हुए घर पहुँचाया था (और वहीं बैठा हुआ था) वह कहने लगा, "क्या देखता है ?" उसने कहा, "तुम्हारी कृपा से हम को दो घड़ी के लिये यहां का सुख प्राप्त हुआ है। अब बाहर यमके दूत संकेत कर रहे हैं, इस लिये मैं जाता हूं।" तब सत्संगी कहने लगा, "हे भले पुरुष ! हमने तुमसे इसीलिये पहिले सत्संग का फल माँगने को कहा था कि फिर तुमको न जाने देंगे। अब तुम यहां साधु संगत की सेवा करो अर्थात् पंखा करो पानी पिलाओ यहाँ से तुमको कोई नहीं ले जा सकता।" जिस समय यम दूतों ने देखा कि यह तो साधु संगत की सेवा करने लगा है और बाहर नहीं आता तब वह प्रतीक्षा (इंतज़ार) करके कुछ देर के उपरान्त चले गये और सब समाचार यमराज को जाकर कह सुनाया। तब यमराज ने कहा; "हे दूतो ! वहाँ मत जाना !! अगर जाओगे तो न तुमही बचोगे और न मैं ही और न हमारी यह पुरी ही बचेगी।" ताते सिद्ध हुआ कि परमेश्वर के भजन और सत्संग के करने से कोई यम आदि, भी दुःख नहीं देसकते। ताते सबको

चाहिये कि जिस ईश्वर के नाम से हमारे सब दुःखों की निवृत्ति होती है, ऐसे प्रभु के नाम को कभी न विसारें। इस पर गुरु प्रमाणः-

सो किउ बिसरै जि घाल न भानै॥ सो किउ बिसरै जि कीआ जानै॥
सोकिउ बिसरै जिनि सभु किछु दीआ॥ सोकिउ बिसरे जि जीवन जीआ॥
सोकिउ बिसरै जि अगनि महि राखै॥ गुरु प्रसादि को विरला लाखै॥
सोकिउ बिसरै जि बिखुते काढै॥ जनम जनम का टूटा गाढै॥
गुरि पूरे ततु इहै बुझाइआ। प्रभु अपना नानक जन धिआइआ॥
(गउड़ी सुख० म५ पृ० २८९)

ऐसे सुखों के दाता हरि को भुला कर जो जीव पदार्थों को माँगते हैं वह मूर्ख भूले हुए हैं:—

ऐसा जगु देखिआ जूआरी॥ सभि सुख मागै नामु बिसारी॥ (गउड़ी म० १ पृ० २२२)

गुरु मुखों के लिये एक महात्मा ऐसे लिखते हैं:-

दोहा—सब बातों को भूलकर, दो बातें सिख लेह।
साहिब की कर बन्दगी, भूखे कउ टुक देह॥

ताते गुरु के प्यारे स्वयम् इन दोनों बातों को धारण करें और अपनी सन्तान को भी सिखावें। इन बातों को धारण करने वाले के प्रति एक इतिहास श्रवण करें:-

एक सत्संगी पुरुष था। उसका नित्य प्रति यह नियम था कि प्रातःकाल उठकर शौच स्नान करना और नाम जपना; और भूखे को भोजन देकर पीछे आप खाना। क्योंकि उसको महाराज जी के इस वाक्य पर भरोसा था:-

नाउ तेरा निरङ्कारु है नाइ लईऐ नरकि न जाईऐ॥
जीउ पिंडु सभु तिसदा दे खाजै आखि गवाईऐ॥ (आसा दीवार पृ० ४६५)

जब उसकी लड़की बड़ी हुई तो उसने मनमें विचार किया कि माता पिता को चाहिये कि अपनी सन्तान को धर्म शिक्षा देवें, क्योंकि उसको महात्मा का यह वचन याद था:-

माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः। न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथा॥

तब उसने अपनी लड़की से कहा हे पुत्री! सवेरे उठकर स्नान करके ईश्वर चिन्तन किया कर, फिर भूखे को भोजन देकर पीछे आप

खाया कर। जो माता पिता अपनी सन्तान को बाल्यावस्था से ही धर्म शिक्षा नहीं देते उनकी सन्तान मंद कर्मों में प्रवृत्त हो जाती है इससे वह अपनी संतान के आपही शत्रु होते हैं।

लड़की बोली, "हे पिता जी! मैं आज से प्रतिज्ञा करती हूं कि प्रातःकाल उठकर पहिले स्नान, फिर ईश्वर चिंतन, पुनः भूखोंको भोजन देकर पीछे आप खाया करूँगी। इसको मैं अपनी आयु पर्यन्त निबाहूंगी।" तब नित्य प्रति उसने ऐसा अभ्यास करना आरम्भ किया। जब उसका विवाह हुआ तब उसका उस स्थान पर निवास हुआ जहां के राजा ने यह आज्ञा दी हुई थी कि जो कोई किसी को रोटी देगा उसके हाथ कटवा दिये जावेंगे; यह मांगने वाले निकम्मे भार रूप ही हैं जो कमाकर नहीं खा सकते। वह लड़की वहां भी नित्य नियम आदि करने लगी। तब उसके सम्बन्धियों ने कहा कि तू हरिनाम का नित्य नियम तो कर लिया कर; परन्तु किसी को रोटी मत देना, क्योंकि यहां के राजा की बड़ी कठोर आज्ञा है॥

इस प्रकार घर वालों से सुनकर वह लड़की नित्य-प्रति पहिले ईश्वर चिंतन करके फिर कौए आदिकों को रोटी डालकर पीछे आप भोजन किया करे। इसी प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन एक फ़क़ीर उस शहर में आ निकला जिसके घर के दरवाज़े पर भोजन के लिये भिक्षा मांगी उसी ने अगला घर दिखा दिया। इसी प्रकार वह द्वारे द्वारे फिरता रहा परन्तु राजा के भय से उसको रोटी किसी घर से न मिली; सबने अगला घर कह दिया। तब फ़क़ीर बड़ा दुःखी हुआ। जब शहर से बाहर निकलने लगा तो उसके मुख से आह निकली और वह बोला, यह शहर है या श्मशान भूमि? मैं तीन दिन का भूखा हूं, मार्ग में कोई शहर नहीं पड़ा। भूख से व्याकुल हुआ हुआ यहां पर आया हूं। मुझको यह निश्चय था कि यहां पर रोटी खाकर अपने प्राणों को बचालूंगा; परन्तु सारे शहर में फिरा हूं, किसी ने भी रोटी नहीं दी। अब मुझे यही प्रतीत होता है कि मेरे प्राण

बचने कठिन हैं।" फ़क़ीर के ऐसे वचन लड़की ने सुन लिये और कहा ज़रा ठहर जाओ। जल्दी से घर के भीतर गई और चार रोटियां जो टोकरी में पड़ी हुई थीं वह ले आई और उस फ़क़ीर को देदीं और कहा, "शहर से बाहर जाकर खाना क्योंकि यहां के राजा की आज्ञा है कोई किसी को रोटी आदि खाने को न देवे। इसलिये ऐसा काम हो जिससे तुम्हारी भूख भी निवृत्त हो जावे और हमारा मान भी बना रहे।" तब वह फ़क़ीर रोटियां लेकर चला गया और कहा, "हे माई! तू धन्य है जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की है॥"

उस समय एक पुरुष ने उसे रोटियां देते हुए देख लिया था। उसने जाकर राजा से कहा कि अमुक घर वालों ने आज फ़क़ीर को रोटी दी है। उन्होंने आपकी आज्ञा नहीं मानी॥

ऐसा सुनते ही राजा को बहुत क्रोध आगया और उस ने कहा वह कौन है जो हमारी आज्ञा नहीं मानता? उसने सिपाहियों को बुला लिया और लड़की को पकड़ने के लिये उस पुरुष के साथ ही भेज दिया। उस पुरुष ने सिपाहियों को दूर से ही घर दिखा दिया। तब सिपाहियों ने उस घर का दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से आवाज़ आई, "कौन है?" सिपाहियों ने कहा कि दरवाज़ा खोलो लड़की दरवाज़ा खोल कर पूछने लगी, "क्यों भाई क्या बात है?" सिपाहियों ने कहा तुमने कुछ रोटी किसी यात्री को दी है? लड़की बोली कि देने वाला तो परमेश्वर ही है, परन्तु मेरे हाथसे गई अवश्यहै। सिपाहियों ने कहा, "तूने राजा की आज्ञा नहीं मानी? अभी चल तेरे को राजा बुलाता है।" उसी समय लड़की राजा के सामने आई। राजा बोला, तूने मेरी आज्ञा नहीं सुनी थी?" लड़की निर्भय होकर बोली राजन् तेरी आज्ञा सुनी है; परन्तु अपने सच्चे महाराजा की आज्ञा भी सुनी है कि:—

नाउ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाइये॥
जीउ पिंडु सभु तिसदा दे खाजै आखि गवाइऐ॥ (आसा दी वार पृ० ४५६)

इसलिये झूठे राजा से सच्चे राजा की आज्ञा माननी अत्यन्त

आवश्यक है। ऐसा सुन राजाने कहा तू मुझे झूठा राजा कैसे कहती है ?

लड़की बोली:— कोऊ हरि समानि नहीं राजा ॥
ए भूपति सभ दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा ॥ (बिलावल मः ५ पृ० ८५६)

तब राजा बोला, इसने मेरी आज्ञा नहीं मानी और अब उत्तर प्रत्युत्तर भी देती है; इसलिये इसके हाथ काट दो। बधिकों ने उसके हाथ काट दिये; परन्तु ईश्वर की कृपा से उसको पीड़ा का किंचित् भी अनुभव न हुआ। जब घर आई तो पति असंतुष्ट हुआ औरकहा, मैं तुझको रोकता था; परन्तु तूने मेरा कहा न माना। इसलिये इस दशा को प्राप्त हुई है। तैने हमारी बदनामी कराई है। अब तू हमारे घरसे निकल जा। जब इस प्रकार के वचन अपने पति देव से भी सुने तो उस समय उसने अपना कोई सहायक न जाना; एक परमात्मा को ही अपना रक्षक समझा। तब परमात्मा से प्रार्थना करने लगी हे प्रभो !:—

तेरा कीआ मीठा लागै ॥ हरिनामु पदारथु नानकु मागै ॥ (आसा मः ५ · पृ० ३९४)

ऐसा कह कर अपने कटे हुए टुंडों से अपने बच्चे को उठा लिया और शहर से बाहर की ओर चल पड़ी। जब शहर के बाहर निकली तो उसको बड़ी प्यास लगी। विचारा कि इस शहर वाले तो पानी नहीं देंगे इसलिये मैं सामने तालाब में चली जाऊं और जब कमर तक पानी आजावेगा तो जिस प्रकार पशु पानी पीते हैं उसी प्रकार मैं भी पीलूंगी। जब पानी पीने लगी तब उसका लड़का तालाब में गिर पड़ा; तो उसको अपना पानी पीना भूलगया और उस लड़के को निकालने का प्रयत्न करने लगी। परन्तु हाथों के कटे होने के कारण बच्चा पकड़ा न जा सका जिससे बच्चा मृत्यु भाव को प्राप्त होगया। लड़के का विछोह देखकर वह अधीर न हुई किन्तु उस समय यह कहने लगी कि:—

हम राज़ी हैं तिस में जो तेरी रज़ा है !
इउं भी वाह वाह है और यूं भी वाह वाह है !!

उसका ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर अन्तर्यामी ने अपने एक दूत को भेजा। उसने आकर पुकारा कि हे पुत्री ? तालाब से जल्दी लड़के को निकाल ले। उस पुरुष का शब्द सुनकर जब लड़की ने पानी में अपने

टुंडों को डाला तो लड़का जीवित होगया और हाथभी ठीकहो गये:-

अहो जस्य रखेण गोपालह नानक रोम न छेघते ॥ [सलोक सहस० पृ०१३५४]

तब लड़की कहने लगी कि हे सत्पुरुष ! आप कौन हैं जिनके आने से मेरे सब दुःख दूर होगये हैं। तब उसने कहा हेपुत्री ! मैं परमेश्वर का भेजा हुआ आया हूं । तेरी सच्ची उपासना और नित्य नियम परमात्मा को स्वीकार हैं। अब तुम घर चली जाओ। राजा भी तुम्हारी शरण में आवेगा और सारा संसार तुम्हारे चरणों की पूजा करेगा। जब घर गई तो सब आश्चर्य करने लगे कि यह तो हाथ कटा के गई थी, कैसे ठीक होगये ? यह बात फैलती २ राजा के पास भी पहुँच गई। उसने आकर हाथ पूर्ण देखे और उससे क्षमा माँगी। तब लड़की ने कहा कि तुमको तब क्षमा मिल सकती है जब अपनी समस्त प्रजा को नाम जपने और दान करने की आज्ञा दो। राजा ने कहा कि आजसे मैं भी दान किया करूंगा और अपनी प्रजा को भी आज्ञा दूंगा कि वह भी दान किया करे। तातें सिद्ध हुआ कि जो पुरुष अपना नित्य नियम प्रेम से करते हैं उनपर ही ईश्वर दयालु होता है। गुरु प्रमाणः-

तनु मनु धनु गृहु सउपि सरीरु। सोई सुहागनि कहै कबीरु ॥ (गउड़ी पृ० ३२८)

इसी आशय पर एक और महात्मा भी लिखते हैं:—

तन धन दा जो सरफ़ा करके, ख़रचे राह न साईं ।
आख़िर नूं सब खै हो जासन, पैसन लख बलाईं ॥
पुनः—पाकज़ात देनाल मिलावे, ऐसा कोई गुरु पीर मिले।
बादशाह देनाल मिलावे, ऐसा कोई वज़ीर मिले॥
डेरा पाक मशूक़ां वाला,आशिक नदीआं चीर मिले॥
तन धन दा जो करे न सरफ़ा,उसनूं यार अख़ीर मिले॥

भाव—जो तन, मन, धन को प्रभु के अर्पण करने में जी नहीं चुराता उसके कार्य परमात्मा सम्हालता है। इस पर दृष्टान्त श्रवण करें:-

एक जैमिनि नाम का राजा परमेश्वर का अत्यन्त प्यारा था, जिसका हर समय परमेश्वर के नाम में चित्त लगा रहता था और वह दोपहर तक एकान्त में ही ईश्वर का भजन किया करे। उसने ऐसी ही

घोषणा करादी थी कि "दोपहर तक मुझे कोई न बुलाये; अगर कोई बुलावेगा तो उसका सिर काट दूंगा।" उसकी यह आज्ञा सुनकर एक पड़ौसी राजाने विचारा कि यह प्रातः काल भगवद्भजन से उठता नहीं; इस लिये हम उस समय इस पर धावा करके अपना अधिकार करलेवें। ऐसा सोचकर शहर के पास आकर अपने तम्बू लगा दिये और मंत्री को संदेशा भेजा कि हमारे साथ युद्ध करो या हमारे आधीन हो जाओ। यह सुनकर मंत्री घबराये और सोचाकि राजा साहब तो इस समय भजन में लगे होंगे; कौन उनको बुलावे? जो बुलावेगा उस का सिर राजा साहब काट देवेंगे। यह विचार कर सबने निश्चित किया कि राजा साहिब की माता को भेजिये; माता का सिर तो न काटेंगे। ऐसा विचार कर उन्होंने माताजी से कहा कि अब राज्य जाता है। इसलिये आप जावें और राजा साहब को सूचना दें। वह उसी समय राजा के पास गईं और कहने लगीं हे पुत्र! शत्रु दरवाजेपर आगया है। उठो और राज्य की रक्षा करो। राजा कहने लगा, "हे माता जी! आप जाइये। क्योंकि आप मेरी माता हैं इसलिये मैं आपका सिर नहीं काटता; यदि और कोई होता तो मैं उसका सिर काट देता। झूठा राज्य धन जाता है तो जाने दो; परन्तु मैं सच्चे धनको नहीं छोड़ सकता।" कबीरजी कहते हैं:-

हमरा धनु माधउ गोबिंदु धरणीधरु इहै सार धनु कहीऐ।
जो सुखु प्रभ गोबिंद की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ। (गउड़ी कबीर पृ० ३३६)

जब परमात्मा ने राजा का ऐसा सच्चा प्रेम जाना तो उसी समय राजा का वेष धारण कर उसके घोड़े पर सवार होकर युद्धमें चलेगये। शत्रु को थोड़ी देरमें ही भगा दिया और उसके घोड़े को घोड़शाल में बँधवा कर आप अन्तर्धान होगये। उधर राजाके नित्य-नियमका समय पूरा होगया। फिर राजा ने घोड़शाल में जा कर अपने घोड़े को देखा तो वह पसीने से तर था। तब राजा ने नौकरों से पूछा कि हमारे घोड़े पर आज कौन सवार हुआ है? उन्होंने कहा महाराज! आपही अभी चढ़कर युद्ध में शत्रु को भगा कर आये हो, फिर हमसे पूछते हो। यह

बात सुनकर राजा जान गया कि परमात्मा ने ही मेरा स्वरूप धारण करके राज्य की रक्षा की है। इससे अब मुझे चाहिये कि सारा समय हरि की भक्ति में लगाऊं। ताते सिद्ध हुआ कि जो नित्य नियम प्रेम से प्रतिदिन करते हैं उनकी रक्षा अन्तर्यामी परमात्मा आपही करता है। जैसे जब मनुष्य जल में डूबजाता है तो उसके अन्दर की नाड़ियों में जल प्रवेश कर जाता है। अर्थात् अन्दर बाहर जल ही जल हो जाता है और उस समय जल उसको अपने ऊपर उठा लेता है। तैसे ही जिस पुरुष का प्रेम अंदर बाहरसे परमात्मा के साथ होता है उसकी हर तरहकी जिम्मेदारी अन्तर्यामी अपने ऊपरले लेता है। जैसे जिस राजा के पास चिन्तामणि हो यदि उसका राज्य कोई छीन लेवे तोभी वह निश्चिन्त रहता है; क्योंकि वह जो चाहे सो चिन्तामणि से प्राप्त कर सकता है। तैसे जिस पुरुष के पास नाम रूपी चिंतामणि है अर्थात् जिसने नाम को ही सच्चा धन समझा है उसको झूठे धन आदिकों के नाश होनेकी कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि नाम रूपी चिन्तामणि उसके पास है। फिर, जैसे जिस कुएँ में जल अधिक है वह न तो समाप्त होता है और न गदला ही होता है। तैसे जिस पुरुषके पास नामरूपी जल अधिक होगा अर्थात् चिरकाल अभ्यास किया हुआ होगा उसका मन विकारों से मैला नहीं हो सकेगा। नाम से रहित पुरुषों के प्रति महाराजजी कथन करते हैं:—

राज मिलक सिकदारीआ रस भोगण बिसथार।
बाग सुहावे सोहणे चलै हुकमु अफार॥
रंग तमासे बहु बिधी चाइ लगि रहिआ।
चिति न आइओ पारब्रहमु ता सरप की जूनि गइआ॥(सिरीरागमहला५पृ०७०)

जैसे लुहार की धौंकनी में स्वास तो है परन्तु मृतक होने से काम की नहीं है; तैसे जो पुरुष नाम नहीं जपता वह स्वासों के होते हुए भी मृतक के समान है। गुरु जी कहते हैं :--

अति सुन्दर कुलीन चतुर मुखि गिआनी धनवंत
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नहीं भगवंत॥ [गउ० बा० म०५ पृ० २५३]

फिर जैसे कोई पुरुष रत्नों को छोड़कर कंकड़ों की झोली भरता है

वह अन्त में पछताता है। तैसे जो पुरुष नाम रूपी रत्नों को त्याग कर पत्थरवत् जड़ विषय पदार्थों से प्रेम करता है वह अंत में पश्चाताप करता है। और जैसे जो फूल पेड़के साथ रहता है उसका पोषण होता रहता है; परन्तु जब वह डाली से टूट जाता है तो कुमला जाने के कारण कूड़े में फैंका जाता है। तैसे जो पुरुष परमेश्वरके नाम में लगा रहता है उसको तो सुख और शोभा की प्राप्ति होती है; परन्तु जो नाम जपने से रहित हो जावे उसकी इस लोक में हानि होती है, उपरान्त नीच योनियों में फैंका जाता है। ताते सिद्ध हुआ कि जिस नाम का ऐसा महात्म्य है, उसको जिज्ञासु अवश्य नियम पूर्वक स्मरण करे ॥

केवल जल का स्नान तो स्थूल शरीर की आरोग्यता और आलस्य की निवृत्ति के लिये है। इसके बिना भजन स्मरण हो नहीं सकता। सम्पूर्ण अज्ञान तत्कार्य रूप मल की निवृत्ति तो गुरु मुख द्वारा महावाक्य के श्रवण, मनन, निदिध्यासन के पश्चात् आत्म साक्षात्कार से ही हो सकती है। गुरु प्रमाणः--

तीरथ तपु दया दतु दानु। जे को पावै तिलका मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ।
अंतर गति तीरथि मलि नाउ ॥ (जपुजी)

धारना-(नाम मिलै ता जीवां तेरा नाम मिलै)
तेरा कीता जातो नाही मैनो जोगु कीतोई ॥
मैं निरगुणिआरे को गुणु नाहीं आपे तरसु पइउई ॥
तरसु पइआ मिहरामति होई सतिगुर सजणु मिलिआ ॥
नानक नाम्रु मिलै ता जीवा तनु मनु थीवै हरिआ ॥

(सलोक म० ५ पृ० १४२६)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विवेक

प्रश्नः—भगवन् जी ! नाम जपने के जो जो विधान आपने वर्णन किये हैं सो श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपने कथन किया था कि मल विक्षेप को दूर कर चार साधन सम्पन्न होकर जिज्ञासु सद्गुरु की शरण में जावे सो चार साधनों को कृपा करके वर्णन करें ॥

उत्तरः--पहले चार साधनों के नाम श्रवण करो–(१) विवेक, (२) वैराग्य, (३) षट् सम्पत्ति और (४) मोक्ष इच्छा। इस में पहिले विवेक का विवेचन करते हैं:–

विवेक का स्वरूपः–सर्व पदार्थों (स्त्री, धन, पुत्र, पृथ्वी, सन्मान, और अपना शरीर, इत्यादि) को अनित्य समझना; इन सबके अतिरिक्त केवल एक परमात्मा को ही नित्य अर्थात् सत्य समझना; इसका नाम विवेक है। गुरु प्रमाणः–

साधो इह तनु मिथिया जानउ ॥ या भीतर
जो रामु बसतु है साचो ताहि पछानो ॥ (बसन्त महला ९ पृ० ११८६)

जैसे आकाश पर समस्त तारागण 'चलने वाले' हैं और केवल एक ध्रुव ही अटल है। तैसे सर्व पदार्थ शरीर सहित नाशवान् हैं और ध्रुव की तरह परमात्मा ही अटल अर्थात् सत्य है। गुरु प्रमाणः–

जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि।
इनमैं कछु साचो नहीं नानक बिनु भगवान ॥ [श्लोक म०९पृ०१४२७]

भावार्थ–जैसे स्वप्न के पदार्थ प्रतीत होते हैं, ऐसे ही जगत प्रतीति मात्र है; और जैसे जाग्रत होने से स्वप्न के सारे पदार्थ नहीं रहते तैसे ज्ञान जाग्रत होने से जगत का अभाव हो जाता है। सद्गुरु जी कहते

हैं जैसे स्वप्नावी पुरुष सच्चा है तैसे एक भगवान् ही सच्चा है जो सर्व का आधार रूप है। शेष सब मिथ्या है। गुसाईं जी कहते हैं:—

दो०— दुगुने तिगुने चौगुने, पांच गुने षट सात।
अष्ट गुने अरु नौ गुने, नौके नौ रहिजात॥
नौ के नौ रहिजात हैं, तुलसी किये विचार।
रम्यो राम तिउं जगत में, नहीं द्वैत विस्तार॥

भावार्थ—जैसे नौ के अंकका स्वरूप पहिले (९) है। ९ का स्वरूप ऐसा होता है। जब वह ९ का अङ्क (१८), (२७), (३६), (४५), (५४), (६३), (७२), (८१), इत्यादिक रूपों को धारण करता है तो पहिले जो ९ का स्वरूप था वह नहीं प्रतीत होता परन्तु विवेक करने से जैसे वही ९ का स्वरूप भासता है तैसे प्रगट करते हैं कि (१८) के अंक में 'एक' दहाई का है, इससे एक ग्रहण कर के आठके साथ मिलाने से (९) होजाते हैं; (२७) के अंकमें दो दहाई के हैं, तहां से दो ग्रहण करके सात के साथ मिलाने से (९) होजाते हैं; (३६) के अंक में तीन दहाई के हैं, वहां से तीन ग्रहण करके छः के साथ मिलाने से (९) हो जाते हैं; (४५) के अङ्क में चार दहाई के हैं, वहां से चार ग्रहण करके पांच के साथ मिलाने से (९) होजाते हैं; (५४) के अंक में पांच दहाई के हैं, वहां से पाँच ग्रहण कर के चारके साथ मिलाने से (९) हो जाते हैं; (६३) के अङ्क में छः दहाई के हैं, वहां से छः ग्रहण करके तीन के साथ मिलाने से (९) हो जाते हैं; (७२) के अङ्क में सात दहाई के हैं, वहाँ से सात ग्रहण करके दो के साथ मिलाने से (९) हो जाते हैं; (८१) के अङ्क में आठ दहाई के हैं, वहां से आठ ग्रहण कर के एक के साथ मिलाने से (९) हो जाते हैं। इस प्रकार विवेक करने से बीच के अङ्कों में भी (९) का लाभ होता है। (९०) के अंक में भी फिर (९) अपने स्वरूप को दिखलाता है तात्पर्य यहकि जैसे (१८)अंक से लेकर (८१)अंक तक जो अंक हैं। उनके आदि और अन्त में तो (९) का स्वरूप प्रत्यक्ष भासता है और बीच के अंकों में पूर्वोक्त विवेक करने से वह (९) का

स्वरूप भासता है। तैसे ही सृष्टि के आदि तथा अन्त काल में एक अद्वितीय ब्रह्मसत्ता है, यह वार्ता श्रुतिमें प्रसिद्ध है। यद्यपि मध्य काल में भी अद्वैत सत्ता श्रुति द्वारा प्रसिद्ध है तथापि विवेक किये बिना भान नहीं होती। इसलिये हे प्यारे! विवेक करना आवश्यक है। गुरु प्रमाणः–।

ब्रह्म बीचारु बीचारे कोइ ॥ नानक ताकी परम गति होइ ॥ (रामकली म० ५ पृ० ६००)

जैसे सोना और मिट्टी मिली हुई हो जब तक उसका पता न हो तब तक कंगालता दूर नहीं हो सकती; परन्तु जब उसका पता लग जावे और सोने को अलग कर लिया जावे तो कंगालता दूर हो जाती है। तैसे ही सोने के समान आत्मा और मिट्टी वत् देह मिली हुई है। जब तक जिज्ञासु को पता नहीं लगता तबतक दीन बना रहता है। परन्तु जब महात्मा द्वारा श्रवण करता है और फिर विवेक करके आत्मा को देह से भिन्न समझता है तो उसकी कंगालता दूर होजाती है। फिर देखो करोड़ों वर्ष तक तांबे के अन्दर रेडियम धातु मौजूद रही; मगर जब तक उसका पता न था उस से कोई लाभ न मिल सका। अब वर्षों से रेडियम धातु तांबे से अलग की गई है। धातु के मालिक को करोड़ों रुपये प्राप्त हुए हैं। यह धातु अंधेरे में प्रकाश करती है और कठिन से कठिन और असाध्य रोगों की अचूक औषधि है। जब तक इस को तांबे से अलग न किया गया तब तक कुछ लाभ न प्राप्त हो सका; परन्तु जब इसको तांबे से अलग किया गया तो इससे अनेकों प्रकार के लाभ प्राप्त हो गये। ऐसे ही जब तक जिज्ञासु रेडियम की तरह आत्मा को विवेक द्वारा देह रूपी तांबेसे अलग न करे अर्थात् असत्यदेह के अन्दर सत्य आत्माका अनुभव न करे तब तक आत्मा के प्रकाश और आनन्द से वंचित रहता है और जन्म जन्म की कंगालता रूपी दुःख दूर नहीं हो सकता। जैसे रेडियम महारोगों की अचूक औषधि है ऐसे ही आत्मज्ञान भी मानसिक रोगों की अचूक औषधि है। ताते विवेक से ही हम आत्मा को सत्य और संसार को असत्य जान कर दुःखों से छूट सकते हैं। फिर, जैसे

दूध की प्रत्येक बूंद में घी मौजूद होता है,परन्तु मंथन किये बिना नहीं निकल सकता और ना ही घी के खाने का सुख प्राप्त हो सकता है। फिर, जैसे सब लकड़ियों में अग्नि मौजूद है, परन्तु जबतक उसे मथकर प्रगट न किया जावे तब तक रोटी आदिक पकाकर तृप्ति रूपी सुख नहीं हो सकता। फिर, जैसे तिलों में तेल तो मौजूद है; परन्तु जबतक उनको पेर कर तेल अलग न किया जावे तबतक सुख नहीं मिल सकता। फिर, गन्ने में रस तो मौजूद है; परन्तु जब तक उसको पेर कर गुड़, शक्कर, खांड़ नहीं बनाते तबतक उसके खाने और स्वाद लेने का सुख नहीं मिल सकता। तैसे आत्मा भी ज़र्रे २ में पूर्ण है; परन्तु विवेक के किये बिना जन्म-मरण रूपी दुःखों की निवृत्ति नहीं हो सकती। जब विवेक द्वारा आत्मा का अनुभव हो जाता है तो दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द अर्थात् अच्युत सुख की प्राप्ति होती है। गुरु प्रमाण :-

अठी पहिरी अठ खंड नावा खंड सरीर।
तिसु विचि नउ निधि नामु एकु भालहि गुणी गहीरु ॥ वार माझ म० १ पृ०१४६)

भावार्थ–हे जिज्ञासु! आठों पहरों में तुम को क्या करना योग्य है? 'अठ खंड,' अर्थात् पांच काम, क्रोधादिक और तीन गुण, वा पांच विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और तीन अवस्था–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इनको विचार द्वारा खंड २ कर अर्थात् अभाव कर और नवां जो खंड शरीर है तिस में नाम रूपी ख़ज़ाना जो गुणी पुरुषों ने कथन किया है इसका विचार कर, अर्थात् शरीर से आत्मा का अलग अनुभवकर॥

अब, हे प्यारे! विचार द्वारा शरीर को खण्ड २ करके जिस प्रकार आत्मा का अनुभव हो सकता है वैसे दृष्टान्त श्रवण करो:—

एक समय एक मस्तिष्क-रोगी पुरुष किसी उत्तम वैद्य की शरण को प्राप्त हुआ। वैद्य ने उसके रोग को पहिचान कर उसकी निवृत्ति करने को बादाम रोग़न निकालने का यत्न बताया। सुन्दर बादाम मंगवाये गये। परन्तु याद रहे कि बादाम रोग़न तीन पर्दों के अन्दर छिपा हुआ होता है। पहिला ऊपर का मोटा छिलका, दूसरा बारीक लाल छिलका और

तीसरी सफ़ेद गिरी। इन तीनों पर्दों के दूर किये बिना तेल नहीं निकल सकता। इसलिये जब बादामों को तोड़ना आरम्भ किया उस समय ऊपर का छिलका बोला कि हे वैद्यराज! बिना अपराध के किसी को हनन करना अच्छा नहीं होता। तब वैद्य ने कहा कि तुम बड़े अपराधी हो; क्योंकि बड़ी उत्तम वस्तु को तुमने छिपाया है। छिलके ने कहा कि मैं अपराधी नहीं हूं; किन्तु मैंने तो बड़ा उपकार किया है जो अपने पेट में इसका पालन किया, अनेक प्रकार के पक्षियों से इसकी रक्षा करी और सर्दी, गर्मी, वायु, आदिकों को अपने सिर पर सहन करके इसको कष्ट नहीं होने दिया। इसलिये तुम मुझे मत तोड़ो। वैद्यराज ने कहा, हे पापात्मा! ऐसे उत्तम पदार्थ के सम्बन्ध से ही तेरा मान है। यदि ऐसे उत्तम पदार्थ का संग तेरे साथ न हो तो तेरा एक कौड़ी भी मोल नहीं। तुमने ऐसे उत्तम पदार्थ का तिरस्कार किया है। इसलिये तुमको दण्ड अवश्य मिलेगा। ऐसे कह कर वैद्यराज ने ऊपर के छिलके को तोड़ डाला और लाल गिरी को अलग कर लिया। फिर उस लाल छिलके को दूर करने का उपाय किया तब वह बोला, "हे वैद्यराज! मैंने तो कोई अपराध नहीं किया। बिना अपराध के दण्ड देना आपको योग्य नहीं"। वह बोले हे दुष्ट! तुमने भी उत्तम पदार्थ को आच्छादित किया हुआ है, इसी लिये तुमने मान पाया है; क्योंकि उसके बिना तुम तुच्छ हो। ऐसे उत्तम पदार्थ के तिरस्कार करने का दण्ड तुमको अवश्य मिलेगा। यह कह कर वैद्यराज ने बादाम की गिरी को जल में भिगोकर लाल छिलके को दूर करके सफ़ेद गिरी को अलग कर लिया और उस से बादाम रोगन को अलग करने का उद्यम किया। जब उसको कूंडे में डालकर डंडे से चूर्ण करना आरम्भ किया तब वह सफ़ेद गिरी बोली हे वैद्यराज! आप दया करो। देखो, हमने इसको बहुत काल अपने अन्दर पालन किया है और हम एक रूपको प्राप्त हो रहे हैं। हमको बिना अपराध के मत रगड़ो। तब वैद्यराज ने कहा, "हे दुष्ट! तुमने उत्तम वस्तु को ऐसा आवरण किया

है जो किसी प्रकार भी तुम्हारे से अलग नहीं प्रतीत होती । इसलिये तुमने यह बड़ा भारी अपराध किया है जो ऐसी वस्तु को तुमने छिपा रक्खा है । हम तुझ को अवश्य दण्ड देवेंगे, क्योंकि अपराधी को दण्ड दिये बिना पाप होता है । यह कहकर उसको डंडे से रगड़ कर बड़ा सुन्दर बादाम रोग़न अलग करके शुद्ध बर्तन में रखकर उस रोगी को पिलाया और सिर आदिक अंगों पर मालिश कराई । तब उसका रोग निवृत्त हुआ और वह निरोग हुआ । तैसे ही यह जीव अज्ञान रूपी मस्तिष्क रोग के वश हुआ हुआ किन्हीं पूर्वले जन्मोंके पुण्यों के प्रभाव से जिज्ञासा को प्राप्त होकर ब्रह्मश्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण को प्राप्त हुआ । तब परम कृपालु गुरुदेव ने शिष्य के रोग दूर करने के लिये आत्म रूप बादाम रोग़न के प्रगट करने का उद्यम किया; क्योंकि यह भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीर रूपी पर्दों के भीतर है । प्रथम स्थूल शरीर रूप मोटे छिलके को विवेक से तोड़ा, क्योंकि इसमें सबको आत्म बुद्धि प्रसिद्ध है; इस लिये यह आत्मा का आच्छादन करने वाला है । आत्मा से भिन्न किये हुए यह जड़ हो जाता है, मृत्यु काल में यह बात अनुभव सिद्ध है । जब जीवकला इस को त्याग जाती है तब स्थूल शरीर जड़, अपवित्र और अस्पर्श्य होजाता है । तत्काल वही सम्बन्धी उसको उठा कर जल में प्रवाह कर देते हैं, अग्नि में जला देते हैं या मिट्टी में गाढ़ देते हैं; एक क्षण मात्र भी उसको अपने घर में नहीं रखना चाहते । ताते विवेक द्वारा ऐसे असत्य, जड़, और दुःख रूप स्थूल शरीराभिमान को तोड़ कर आत्मा अलग किया । उसके उपरांत फिर सूक्ष्म शरीर रूप लाल छिलके को दूर करने के लिये विवेक रूपी जल में भिगोया अर्थात् दृष्य तथा विकारी आदि धर्मों वाला सिद्ध होने से अनात्म रूप जान कर स्थूल शरीर की नाईं असत्य, जड़, दुःख रूप मायामय होने से मिथ्या हुआ । तब 'कारण शरीर सहित आत्मा' रूपी सफ़ेद गिरी को अलग किया—बुद्धि रूपी कूंडी में उस (कारण शरीर सहित आत्मा रूपी सफ़ेद गिरी) को रखकर विवेक रूप डंडे से

अभ्यास रूपी घोटा लगाया। तब कारण शरीर अज्ञान रूपी खल पृथक होगई और शुद्ध आत्मा रूप बादाम रोग़न प्रगट होगया; जिसको अपने अन्दर पान करके अज्ञान रूप मस्तिष्क रोग से रहित हुआ; अर्थात् आत्म निश्चय वाला होकर अविद्या तत्कार्य रूप रोग से निवृत्त हो कर यह जिज्ञासु मोक्ष पद को प्राप्त हुआ। इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं :-

कुं- नेती नेती कर सभी देवे जमी उड़ाइ।
शेष आतमा रहे तब द्वैत दूर हो जाइ॥
द्वैत दूर हो जाइ ये साधन सुगम पछानो।
मिथ्या झूट उड़ जाइ न इसमें मुश्किल मानो॥
मनोराज या स्वप्न जान सृष्टी है जेती।
कारण सूक्ष्म स्थूल उड़ा दो नेती नेती॥

पुनः- चौ०- भाव अनित्य सदा उर धारो। नित्य अनित्य सो वस्तु विचारो॥
नित्य अनित्य विवेके जोई। शोक वेग तेहि छुवहि न कोई॥

पुनः- दो०- प्रथमें सत्य असत्य का, रिद में करौ विचार।
देह असत निश्चय करौ, आतम सत्य संभार॥

इसलिये गुरुजी कहते हैं कि सब जगत में विवेक बुद्धि निर्मल है। भाव–दो मिली हुई वस्तुओं को अलग-अलग करने का नाम विवेक है जैसे दूध और पानी मिले हुए को हंस पक्षी अपनी चोंच द्वारा अलग अलग कर देता है, तैसे विचारवान् देह और आत्मा को अलग अलग करते हैं। इस पर दृष्टान्तः-

पारो जुलका नाम का एक प्रेमी था। जब उसको ईश्वर के मिलने का प्रेम पैदा हुआ तो गुरु की खोज में घर से चला। बहुत जगह फिरा परन्तु कहीं भी मन को शान्ति प्राप्त नहीं हुई और ना ही चित्त में श्रद्धा ही हुई। एक दिन सवेरे नदी के किनारे बैठा हुआ था तो क्या देखता है एक शिष्य गुरु का प्यारा कपड़ों को उतार कर नदी से पार होने लगा उससे पूछा हे भलेपुरुष ! सर्दी की ऋतु में इस समय क्यों नदी में प्रवेश करता है ? उसने कहा कि यह कोई नई बात नहीं है, मेरा नित्य प्रति का नियम है; क्योंकि मेरे श्री सद्गुरु अमरदेव जो

महाराज नदी के पार रहते हैं, उनके दर्शनों के लिये मैं प्रतिदिन जाता हूं। यह सुनकर उसके मन में भी प्रेम की लहरें उछालें मारने लगीं। उसने कहा, "कृपा करके मुझको भी साथ ले चलो"। उस शिष्य ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया। जब श्री सद्गुरु देव जी के सन्मुख पहुँचा तो दर्शन करते ही मन में कुछ शान्ति प्राप्त हुई। थोड़ी शान्ति का कारण यह है कि बहुत फिरते फिरते उसका मन चंचल हो गया था। तब उसने प्रश्न किया, महाराज जी! परम हंस का क्या लक्षण है? तब सद्गुरुजी ने उच्चारण किया:—

गुरु आखिआ हंस नाम हैं पंछी दा इक चंगा।
कवि जनां विच चरचा उस दी कहिंदे चिट रंगा॥
मान सरोवर अस्थान बतावन जिथे वास रखावे।
मोती चुगे दुधनूं फाड़े घर दी तांब तकावे॥
परम हंस उस मानुषताईं भले लोक सो आखन।
जिसदी रहिणी अंदर लखण हंसा वाँग प्रकाशन॥
जीवन होए दाग तों खाली उज्जल हंसां वरगा॥
सत संग रूपी मानसरोवर वास सदा ही करदा॥
मोती वांगूं सबद दी आभा*उस विच मगन रहावे। *कान्ति
कर व्यतिरेक देहतों आतम दुध जिउं फाड़ करावे॥
आतम ग्रहण अनातम त्यागे सदा रहे लिवलाई।
जिसदे कारन तिसने प्यारे परम अवस्था पाई॥ (गुरु सिख वाड़ी)

गुरु प्रमाण :—मनरे साचा गहो विचारा॥ राम नाम बिनु मिथिआमानो सगरो इहु संसारा॥ १ ॥रहाउ॥ जाकउ जोगी खोजत हारे पाइउ नाहि तिह पारा॥ सो सुआमी तुम निकटि पछानो रूप रेख ते निआरा॥ (जैतसरी म० ९पृ० ७०३)

पुनः—दोः—दूजी कही विचारना, उपज्यो तत्त्व विचार।
एकांत ह्वै शोधन लग्यो, कोऽहं को संसार॥ (विचार माला)

भाव—जब यह विचार उत्पन्न हुआ कि तत्त्व क्या है और मिथ्या क्या है तब एकान्त विषे स्थित होकर विचार करने लगा कि मैं कौनहूं? क्या यह स्थूल शरीर मैं हूं? सो यदि मैं स्थूल शरीर होऊं तो परलोक में कैसे गमन करूं? क्योंकि यह शरीर तो यहां ही भस्म हो जाता है और जीव अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिये परलोक जाता

है। ताते मैं स्थूल शरीर नहीं हूं और परलोक में गमन तथा इस लोक में आगमन सूक्ष्म शरीर का होवे है क्या वह मैं हूं ? किन्तु नहीं; क्योंकि सुषुप्ति अवस्था विषे सूक्ष्म शरीर तो कारण रूप अज्ञान विषेलय होजाता है और मैं सुषुप्ति अवस्था विषे भी होता हूं। इससे मैं सूक्ष्म शरीर नहीं हूं। और सुषप्ति में कारण शरीर होवे है। यदि मैं कारण शरीर होऊं तो जाग्रत में बेखबरी को सिद्ध कैसे करूं ? इस अनुभव से अज्ञान मेरा दृश्य प्रतीत होवे है; इससे सो भी मैं नही हूं। सो तीन शरीरों से भिन्न भी में कर्ता भोक्ता हूं वा अकर्ता अभोक्ता ? कर्ता सावयव होवे है। मेरे अवयव प्रतीत होवे नहीं; याते मैं कर्ता नहीं और याही ते भोक्ता भी नहीं। सो अकर्ता स्वरूप आत्मा भी सर्व शरीरों विषे मैं एक हूँ अथवा नाना हूँ ? वेद जीव ब्रह्म का अभेद वर्णन करते हैं। जो आत्मा नाना होवें तो अभेद बने नहीं। याते मैं एक हूं। "सो एक भी मैं ब्रह्मस्वरूप कैसे हूं ?" इस वार्ता को जानने के लिये ब्रह्म श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण विषे प्राप्त होऊं और "को संसार" कहिये कौनसा संसार मेरे ताईं दुःख रूप है, ईश्वर रचित वा जीव रचित ? ईश्वर रचित संसार उत्पत्ति का शास्त्र कारोंने अध्यारोप कई प्रकार से किया है:—

दो०— उपनिषदन में बहुत विधि, जग उत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिन को यही, चेतन भिन्नअसार॥

भाव—जगत की उत्पत्ति कथन करने में वेद का अभिप्राय नहीं; किन्तु अद्वैत ब्रह्म लखावने को जगत के निषेध करने के लिये मिथ्या जगत का अध्यारोप किया है। जैसे विनोद के निमित्त बारूद का हाथी उड़ाने को बनावें हैं; उसके कान पूँछ टेढ़े होवें तो सीधे करने के लिये यत्न नहीं करते। तैसे अद्वैत ज्ञान के निमित्त प्रपंच के निषेध करने को प्रपंच का अध्यारोप किया है, इससे वेद ने प्रपंच की उत्पत्ति क्रम का एक रूप कहने में यत्न नहीं किया। याते यह जाना जावे है कि वेद का अभिप्राय प्रपंच निषेध में ही है। वेदव्यास जी ने मन्द बुद्धि

जिज्ञासुओं के लिये ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति पाँच भूतों द्वारा क्रम से वर्णन करी है। यथा विचार सागरः-

कवित्त-जीव ईश भेद हीन चेतन स्वरूप मांहि,
माया सो अनादि इक शांति ताहि मानिए।
सत्य औ असत्य ते विलक्षण स्वरूप ताके,
ताहि को अविद्या औ अज्ञान हू बखानिए॥
चेतन समान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्ति में आरूढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिए।
माया में आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईश सर्वज्ञ जग हेतु पहिचानिए॥

दो०-मलिन सत्त्व अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान युत जीव सो, करत कर्म फल आस॥

कवित्तः-जीवन के पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचे तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुण गाइये॥
सत्व अंश पंचन को मेलि उपजत सत्त्व,
रजोगुण अंशमिल प्राण त्यों उपाइये॥
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञान इन्द्रिय रचै।
कर्म इन्द्रिय रजोगुण अंशते लखाइये॥

सवैया-भूत अपंचीकृत औ कारज, इतनी सूक्ष्म सृष्टि पछान।
पञ्ची कृत भूतन ते उपज्यौ, स्थूल पसारा सारो मान॥
कारण सूक्ष्म स्थूल देह अरु, पञ्चकोश इनही में जान।
करि विवेक लखि आतमा न्यारौ, मुञ्ज ईषीकाते ज्योंभान॥ (विचार सागर)

भावार्थ-यह ईश्वर रचित सृष्टि सुख दुःख का कारण नहीं; किन्तु जीव रचित सृष्टि ही सुख दुःख का कारण है। इसमें दृष्टांतः-

एक शहर में दो साहूकारों के दो लड़के विदेश में व्यापार करने के लिये गये। जब वहां पर पहुँचे तो कुछ दिनों के उपरान्त एक मृतक हो गया और दूसरा व्योपार करने लगा। जब कुछ काल व्यतीत हो गया तो उसी शहर का एक और पुरुष किसी आवश्यक कार्य के लिये वहां गया। जब काम करके लौटने लगा तो उसने सोचा कि हमारे शहर के

दो लड़के यहां आयेथे,उनसे मिलकर राज़ी खुशी का समाचार ले जाऊं। वह जाकर उस लड़के से मिला और कहा "मैं घर को जा रहा हूं, अगर तुम को कोई संदेशा देना हो तो कहो।" तब उस लड़के ने कहा कि हमारे माता पिता को कह देना कि तुम्हारा लड़का कुशल पूर्वक है और धन बहुत कमाया है। कुछ दिनों के उपरान्त घर आजावेगा; और अमुक साहूकार के घर में कह देना कि तुम्हारे लड़के की मृत्यु हो गई है। वह पुरुष जब अपने शहर में आया तब उसने अपने खोटे स्वभाव के अनुसार उलटा ही कह दिया। जिसका लड़का जीता था उसके घर तो कह दिया कि तुम्हारा लड़का मर गया है और जिसका लड़का मर गया था उस साहूकार को कहा कि तुम्हारा लड़का कुशलपूर्वक है, कुछ दिन के उपरान्त आवेगा यह बात सुनकर, जिनको कहा था कि 'तुम्हारा लड़का मरगया है' वह तो रोने पीटने लग गये; और जिनका लड़का मर चुका था वह बहुत प्रसन्न हुए। अब ज़रा सोचो, ईश्वर सृष्टि में जिसका लड़का जीता है उसके घर में रोना पीटना पड़ रहा है क्योंकि जीव सृष्टि में मनोमयी कल्पित लड़का उसका मर चुका है; और ईश्वर सृष्टि में जिसका लड़का मर चुका है उसके घर खुशियाँ होरहीं हैं, क्योंकि जीव सृष्टि में मनोमयी कल्पित लड़का उसका जीता है। यदि ईश्वर सृष्टि सुख दुःख का कारण होती तो ईश्वर सृष्टि में जिसका लड़का जीता था उसके घर आनन्द होता और जिसका मर गया था उसके घर दुःख होता; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इससे सिद्ध होता है कि मनोमयी कल्पित जीव सृष्टि ही सुख दुःख का कारण है॥

फिर और देखो, तीन पुरुष रास्ते में जारहे थे। उन में से दो अज्ञानी और एक महात्मा-ज्ञानवान् थे। जाते जाते उनमें से एक पुरुष को एक अमूल्य मणि मिली तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और दूसरा उसका साथी बहुत ही दुःखी हुआ कि हाय! मुझे क्यों नहीं मिली; और ज्ञानी महात्मा को न हर्ष हुआ न शोक। यदि ईश्वर रचित सृष्टि का पदार्थ मणि सुख रूप होती तो तीनों को सुख होना चाहिये था, यदि

दुःख रूप होती तो तीनों को दुःख होना चाहिये था, और यदि सुख दुःख से रहित होती तो तीनों को सुख दुःख से रहित होना चाहिये था; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर रचित सृष्टि सुख दुःख का कारण नहीं। जीव रचित सृष्टिही सुख दुःख का कारण है। यदि यह कहो कि ईश्वर रचित सृष्टि से अन्य 'जीव रचित' सृष्टि कोई है ही नहीं तो सुनोः—

ईश्वर रचित सृष्टि में एक लड़की का शरीर पैदा हुआ। पुत्री, बहिन, भतीजी, भानजी, पोती, धेवती, पुत्र वधू, स्त्री, भौजाई, ननंद, देवरानी, जिठानी, फूफी, ताई, चाची, मौसी, मामी, साली, माँ, दादी, परदादी, नानी, परनानी, सास, ददिया सास, फुफिया सास इत्यादि अनेक प्रकार की मेर कल्पना उस एक ही शरीर में की गई हैं; उसके शरीर में कोई भिन्न भिन्न रूप रंग सिद्ध नहीं होता। जैसी २ जिस २ जीवने उसके शरीर में सम्बन्ध कल्पना करी है उसको उसका शरीर वैसा ही भास रहा है और उसी के अनुसार वह हर्ष शोक को प्राप्त होरहे हैं। निकट सम्बन्ध कल्पना वाले उसके शरीर के सुख दुःख से अधिक हर्ष शोक मानते हैं और दूर के सम्बन्ध वाले थोड़ा। जिन्होंने उसके शरीर में किसी सम्बन्ध की कल्पना नहीं की, उनको न हर्ष है न शोक। इससे सिद्ध हुआ कि यदि ईश्वर सृष्टि हर्ष शोक का कारण होती तो उस शरीर द्वारा सबको हर्ष होता या सबको शोक ही होता; अथवा सर्व हर्ष शोक से रहित होते। ताते सिद्ध हुआ कि जीव ही मैं-मेरी कल्पना के बांधे हुए हर्ष शोक को प्राप्त हो रहे हैं। ईश्वर सृष्टि का इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं। अब उस एक शरीरकी मृत्यु पर तमाम सम्बन्धी चलेआते हैं; जैसा२ जिस २ का निकट या दूर का सम्बन्ध उसमें कल्पना किया हुआ होता है उसके अनुसार शोकातुर होकर कोई अधिक कोई थोड़ा रोतापीटता है, और जो 'मैंमेरी' की कल्पनासेरहित है वह नहीं रोता। सारांश यह किजीव सृष्टि ही सुख दुःख का कारण है, ईश्वर सृष्टि नहीं ॥

फिर और सुनो—एक पुरुष घरमें धर्म पत्नी को गर्भ वती छोड़कर

व्यापार के लिये परदेश में चला गया। पीछे लड़का उत्पन्न हुआ। होश सम्हालने पर लड़के ने माता से पूछा कि मेरा पिता कहाँ है? माता ने कहा कि अमुक देश में गया हुआ है। लड़के ने कहा कि मैं अपने पिता को मिलना चाहता हूं। तो माताने नौकर को साथ देकर लड़के को पिता के पास रवाना कर दिया। उधर से उसका पिता भी घर को आरहा था। चलते चलते दोनों का एक शहर की सराय में एक ही कोठरी के अन्दर रात्रि को निवास होगया। दैवयोग से लड़के को मार्ग में खाँसी की बहुत तकलीफ़ होगई थी जिससे उसके पिता को विश्राम में बाधा प्रतीत हुई और अपने आराम के लिये ठेकेदार को लोभ देकर बीमार लड़के को नौकर समेत कोठरी के बाहर निकलवा दिया। आधी रात बीतने पर लड़के की मृत्यु हो गई। नौकर ने शेष रात रोते पीटते बिताई। जब दिन चढ़े यात्री लोग उठे तो नौकर से सब समाचार पूछने लगे। उसका पिता भी सुखकी निद्रासे जागकर वहीं आकर खड़ा होगया। उस (नौकर) ने सब समाचार कह सुनाया और कहा कि यह बेचारा लड़का न तो घर में रहा न पिता के पास पहुँचा, मार्ग में ही मरगया। अब मैं इस विचार से रोताहूं कि इसकी माता से जाकर क्या कहूंगा। जब यह समाचार उसके पिता ने सुना तो कहा, "हा शोक! यह तो मेरा ही लड़का है!!" और अपने सिरको पत्थरों से मार मार कर रोने पीटने लगा। अब ज़रा सोचो कि जब तक उसको 'मैं-मेरी' की कल्पना न थी तब तक अपने रोगी लड़के को पराया जान कर अपनी सुविधा के लिये कठोर हृदय होकर कोठरी से बाहर निकलवा मृत्यु के वश कर दिया और जब यह पता लगा कि यह मेरा ही पुत्र है, और 'मैं-मेरी' की कल्पना हुई तो रोने पीटने लगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि मनोमयी कल्पित जीव सृष्टि ही सुख, दुःख और बन्धन का कारण है। इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि मनोमयी कल्पित जीव सृष्टि की 'मैं-मेरी' को निवृत्त करे। विवेक शून्य पुरुषों की गति गंगा जी का दृष्टान्त देकर वर्णन करते हैं:-

चंचलाछन्द–गंगनीर ए कछू अधे २ गती करन्त । नाकते हरे शिरे पुना गिरिन्द पै गिरन्त ॥
गिरिन्द ते धरा परै धराति सिन्धु मैं परन्त । शून्य जे विवेकते अनेक योनिते धरन्त ॥

भावार्थ–जैसे यह गंगाजी का जल नीचे से नीचे जारहा है। नाक से कहिये स्वर्गसे गिरकर हरे कहिये शिवजी महाराज के शीशपर गिरा, पुनः शिवजी के शीश से गिर कर गिरिन्द कहिये पर्वतों के राजा हिमालय पर आया, पुनः हिमालय से गिर कर धरा कहिये पृथ्वी पर आया, पुनः पृथ्वी से समुद्र में जाकर चार भाव को प्राप्त हुआ। तैसे ही विवेक से रहित जो पुरुष हैं वह अनेक योनियों को धारण करते हैं ॥

इस लिये जिज्ञासु को चाहिये कि ज्ञान का पहिला साधन जो 'विवेक' है उसको साधनों का मूल जानकर अवश्य धारण करे ॥

धारना–[बिचरि बिचरि रसु पीजै साधो बिचरि बिचरि रस पीजै]
रामा रम रामो पूज करीजै ॥
मनु तनु अरपि धरउ सभु आगै रसु गुरमति गिआनु दड़ीजै ॥ रहाउ॥साधो०॥
ब्रह्मनाम गुण साख तरोवर नित चुनिचुनि पूज करीजै ।
आतमु देउ देउ है आतमु रसि लागै पूज करीजै ॥ १ ॥ साधो० ॥
बिबेक बुधि सभजग महि निरमल बिचरि २ रसु पीजै ।
गुरपरसादि पदारथु पाइआ सतिगुर कउइहु मनु दीजै ॥ २ ॥ साधो० ॥
निरमोलकु अति हीरो नीको हीरै हीरु बिधीजै ।
मनू मोती मलु है गुर सबदी जितु हीरा परखि लईजै ॥ ३॥ साधो० ॥
संगति संत संगि लगि ऊचे जिउ पीय पलास खाइ लीजै ॥
सभनर महि प्रानी ऊतमु होवै राम नामै बासु बसीजै ॥ ४ ॥ साधो०॥
निरमल निरमल करम बहु कीनो नित साखा हरीजड़ीजै ॥
धरमु फलु फलु गुरि गिआनु दड़ाया बहकार बासु जगि दीजै॥ ५॥साधो०॥
एक जोति एको मनि बसिआ सभ ब्रह्म द्रसटि इकु कीजै ॥
आतम रामु सभ एकै है पसरे सभचरन तले सिरु दीजै ॥ ६॥ साधो ० ॥
नाम बिना नकटे नर देखहु तिन घसि घसि नाक वढीजै ॥
साकत नरअहंकारी कहीअहि बिनु नावै धृगु जीवीजै ॥७॥साधो०॥
जब लगि सास सास मन अंतरि ततु बेगल सरनि परीजै ॥
नानक कृपा कृपा करि धारहु मै साधू चरन पखीजै ॥८॥ साधो०॥

वैराग्य

प्रश्नः—हे भगवन्! विवेक का स्वरूप और सत्य असत्य का विचार श्रवण करके चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। इससे आगे दूसरा साधन जो आपने वैराग्य बताया है अब उसको दृष्टान्तों और प्रमाणों सहित वर्णन करें।

उत्तरः—हे प्यारे! एकाग्र चित्त करके श्रवण कर। गुरु प्रमाणः—

ना मैं जोगधिआन चितु लाया॥ बिनु वैराग न छूटसि माया॥ (गउड़ी कबीर पृ० ३१६)

कबीर साहिब अपने मन प्रति समझाते हुए सर्व जिज्ञासुजनों को उपदेश करते हैं कि इस प्रकार अन्तर्यामी परमेश्वर के आगे विनती करो, "हे अन्तर्यामिन्! मैंने न तो आपके साथ ध्यान द्वारा वृत्ति को ही जोड़ा है और न मेरे विषे वैराग्य ही है। माया के पदार्थों की जो तृष्णा है वह वैराग्यके बिना कैसे निवृत्त होवे?" भर्तृहरिजी लिखते हैं:—

दो०—हरे तृषा वैराग तब, धरे विवेक विकाश।
तुंग भोग संयोग कर, होत न तृष्णा नाश॥
तुंग भोग संयोग कर, नास जु होती प्यास।
मघवा होतो दीन कत, हरि अजादि के पास॥

भावार्थ—यदि विवेक (विचार) हो भी जावे और वैराग्य सहायक न हो तो सन्सार के पदार्थों की जो तृष्णा है वह निवृत्त नहीं हो सकती। यदि कहिये कि सांसारिक पदार्थों के भोगों को भोगकर तृष्णा निवृत्त करलेवें तो यह बात असम्भव है—भाव—यह बात हो ही नहीं सकती। यदि सन्सार के पदार्थों को भोगने से तृष्णा की निवृत्ति होती तो इन्द्र जो त्रिलोकी का राजा है उसकी तृष्णा निवृत्त हो जानी चाहिये थी। परन्तु उसकी भी तृष्णा दूर न हुई; क्योंकि जब भी कोई उग्र तप

करने लगता है तब इन्द्र को चिन्ता हो जाती है कि मेरे भोग पदार्थों को यह कहीं (इन्द्र बन कर) छीन न ले। उस समय स्वर्ग से अनेक अप्सराओं को भेजकर विघ्न डाल देता है ताकि उसका तप पूर्ण न होने पावे। और जब कोई राक्षस व दैत्य स्वर्ग छीनने के वास्ते आक्रमण करता है तब वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव के पास जाकर दीन होता है कि मेरे राज्य की रक्षा कीजिये। ताते सिद्ध हो गया कि जब इन्द्र की तृष्णा निवृत्त नहीं होती तो इतर जीवों की क्या कथा है:—

दो०—विविध विषय के भोग कर, नहिं विबुधेश अघात।
स्वल्प अवधि लव भोगकर, नरन शांत कत जात॥
ताते इच्छा-नास की, जा को इच्छा आहि।
उपशम धरे विचार युत, टरे एक ते नाहि॥

इसलिये राजा भर्तृहरि ने यही वैराग्य और विवेक मांगा है:—

बिन वैराग्य विवेक मैं, तव पद पङ्कज टेक।
श्री शङ्कर मम शङ्करो, दे वैराग्य विवेक॥

वैराग्य व विवेक के बिना जीव दुःखी होता है:—

जैसे एक राजा को रात्रि के समय ऐसा विचार हुआ कि मैं वेष बदल कर अपने शहर में प्रजा की देख भाल करूं कि कोई दुःखी तो नहीं है। इस बात को विचार कर शहर में घूमने लगा। घूमते हुए देखा तो दो स्त्री पुरुष परस्पर कोई व्यवहार की बातें कर रहे थे। राजा ने विचार किया कि इनकी बातें खड़े होकर सुनें; परन्तु उन्होंने देख लिया और "चोर! चोर!!" कर के बड़े ज़ोर से पुकारा तो सब लोगों ने एकत्र होकर वेषधारी राजा साहब को आकर पकड़लिया और बड़ी मारपीट करी। अब वह कह रहाहै कि मैं राजा हूं; परन्तु शस्त्र व वस्त्र न होने के कारण उसने मार खाई। तैसे ही इस जीवरूपी राजा के पास जबतक वैराग्य और विवेक रूपी शस्त्र वस्त्र नहीं होते तब तक यह दुःख पर दुःख सहन करता है। इसलिये वैराग्य ही परमात्मा की प्राप्ति का मुख्य कारण शास्त्रकारों ने बताया है:—

सो०—विराग सुख की खान, तृप्ती का भण्डार यह।
भ्रात विवेक पछान, सब प्रेमियों का मित्र यह॥ १॥

सब साधन परधान, मोच पदवि का द्वार यह।
मुख्य भृत्य* हरि जान, ताते गहो विराग को ॥ २ ॥ *मंत्री

चौ०–प्रेमीजना का प्रेम बढ़ावे। हरि के भक्त को भक्ति में लावे॥
ज्ञानियों का भूषन यह जान। धारो सुदृढ़ वैराग सुजान॥

जैसे पत्ती दो परों के बिना उड़ नहीं सकता, पड़ा रहता है और उसको सब जानवर पकड़ कर खा सकते हैं। यदि उसके पंख ठीक होवें तो वह किसी जानवर के वश में नहीं आसकता। महात्मा कहते हैं :–

कु०–तब लग पङ्खी उड़ै है, जब लग पङ्ख दरुस्त।
पङ्ख उखड़ जावें जभी, पङ्खी होवे सुस्त॥
पङ्खी होवे सुस्त, उड़ा उससे नहिं जावे।
बिन वैराग अभ्यास, तिवें नर मुकति न पावे॥
सचामन अरु जगत शान्त, ना होवे जब लग।
करे पुरुष अभ्यास, होइ वैरागी तब लग॥

सो०–बिन संग्रह सु विचार, पशू बद्ध ज्ञानी दुखी।
पत्ती पङ्ख प्रकार, उभै सहित सुख गति लहित॥

भावार्थः–पशु वैराग्य सहित है, अर्थात् संग्रह नहीं करता और विचार रहित होने से दुःखी अर्थात् बँधा हुआ है। बद्ध ज्ञानी विचार सहित है, वैराग्य रहित होने से पदार्थों और सम्बन्धियों के मोह से बँधा हुआ दुःखी हो रहा है। जैसे पत्ती दोनों पंखों से उड़कर फल खाकर सुखी होता है। तैसे विवेक और वैराग्य दोनों के होने से ज्ञान रूपी फल द्वारा सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है॥

जैसे जल के नीचे अग्नि जलती है तो वह उसकी गर्मी द्वारा भाप (भाफ़) रूप होकर बादलों में महान पद को प्राप्त होता है, तैसे ही वैराग्य की अग्नि द्वारा यह जीव परम पद को प्राप्त होता है। जैसे जब तक लकड़ी गीली होती है तबतक सुलगती रहती है, पूरा कार्य नहीं कर सकती; उलटा धुआं देकर दुःख की प्राप्ति करती है; जब सूख जाती है तो काम करती है। तैसे ही जब तक संसार का मोह है तब तक चिन्तादिकों से वैराग्यबिना जीव दुःखी होता है; परन्तु जब संसार के पदार्थों से विचार द्वारा वैराग्य होता है (कि यह सब पदार्थ झूठे हैं,

किसकी चिन्ता करूं) तब ज्ञान रूपी कार्य सिद्ध होता है। जैसे लाख जब तक अग्नि का ताप नहीं सहन करती तब तक कितना ही यत्न करो उस पर मुहर के अक्षर नहीं उभर सकते। जब ताप सहन करके नर्म हो जाती है तब अक्षर ज्यों के त्यों उभर आते हैं। तैसे ही जब तक वैराग्य रूपी अग्नि का ताप न सहन करे जिज्ञासु का हृदय नर्म नहीं होता और न ही गुरु और शास्त्र के वाक्य उसके अन्दर ठहरते हैं। जब वैराग्य को धारण करता है तब ठहरते हैं। फिर जैसे कोई पुरुष ऊंचे पहाड़ पर चढ़ा हुआ होता है उसको नीचे की वस्तुएं छोटी छोटी प्रतीत होती हैं, तैसे वैराग्यवान् को इसलोक से लेकर ब्रह्म-लोक पर्यन्त जो विषय सुख हैं सो तुच्छ प्रतीत होते हैं। क्योंकि वैराग्यवान् ने यह जान लिया है कि सम्पूर्ण विषय पदार्थ दुःख रूप और असत्य हैं।

गुरु प्रमाणः—जैसे जलते बुदबुदा, उपजै बिनसै नीत।
जग रचना तैसे रची, कहु नानक सुनमीत॥ (सलोक म०९पृ० १४२७)

इससे हे प्यारे! वैराग्य को धारण करो; क्यों कि वैराग्य ही दैवी सम्पदा के गुणों को पुष्ट करने वाला है तथा ज्ञान द्वारा कर्मों को नष्ट करने वाला है। इस पर भर्तृहरि जी लिखते हैं:—

कवित्त—दैवीगुण कवी गण औषधि समादि पुष्टे,
तृष्णा ताप मोह तम काम चोर हत है।
मुदित विवेकी कामी दुखी मूढ़ द्रोही वामी,
उदेधि त्रियामी मो कुसंग दिने गत है॥
सकुचे सरोज भोगी मोद सुधाके संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मों चढ़े घटत है।
दोष भेद माने नाहिं जन मन व्योम माहिं,
विधु वत विकसत निरवेद सत है॥

सत कहिये निश्चयकर, निरवेद कहिये वैराग्य, विधुवत् कहिये चन्द्रमा समान, विकसत कहिये प्रकाश करने वाला है।

प्रश्नः—भगवन् जी! आपने वैराग्य को चन्द्रमा समान वर्णन किया है, सो आप रूपक अलंकार से कथन करें॥

उत्तरः-हे प्यारे, चित्त लगाकर श्रवण करोः-

जैसे चन्द्रमा के प्रकाश से कमलिनीं खिल जातीं हैं और औषधियां पुष्ट होतीं हैं; तैसे वैराग्य रूपी चन्द्रमा के प्रकाश से दैवी गुण अर्थात् दैवी सम्पदा के गुण रूपी कमलिनियों के समूह खिलजाते हैं और शम, दम, आदि साधन रूपी औषधियां पुष्ट हो जातीं हैं। जैसे चन्द्रमा गर्मी और अंधेरा दूर करता है जिससे चोर आदिक नहीं रहते; तैसे वैराग्य रूपी चन्द्रमा तृष्णा रूपी तपत को और मोह रूपी अंधेरे को दूर करता है जिससे काम, क्रोध आदिक जो चोर हैं सो नहीं रहते। जैसे चंद्रमा के प्रकाश में कामी पुरुष स्त्री सम्भोग से सुख पाते हैं और स्त्री के वियोगी चंद्रमा के प्रकाश से दुःखी होते हैं; तैसे वैराग्य रूपी चंद्रमा के प्रकाश में विवेकी पुरुष मुक्ति रूपी स्त्री की इच्छा वाले प्रसन्न होते हैं और अज्ञानी मूढ़ मुक्ति रूपी स्त्री के वियोगी, दुःखी होते हैं। जैसे चंद्रमा रात्रि को प्रगट होताहै, दिन को छिप जाता है, तैसे वैराग्य रूपी चंद्रमा महात्मा जनों की बुद्धि रूपी रात्रि में प्रगट होता है और कुसंग रूपी दिन में नाश हो जाता है। जैसे चंद्रमा को देखकर कंवल सकुचा जाते हैं और खेती आदिक अमृत के ग्रहण करने वाले उससे अमृत ग्रहण करते हैं, तैसे वैराग्य रूपी चंद्रमा से भोगी पुरुषों के हृदय रूपी कंवल सकुचा जाते हैं और मोक्ष की इच्छा वाले जिज्ञासु जन अमृत को ग्रहण करते हैं। जैसे चंद्रमा शुक्ल पक्ष में बढ़ता है और कृष्ण पक्ष में घटता है, तैसे योगी पुरुषों की बुद्धि रूपी शुक्ल पक्ष की रात्रि में वैराग्य रूपी चन्द्रमा बढ़ता है और भोगी पुरुषों की बुद्धि रूपी कृष्ण पक्ष की रात्रि में घटता है। चंद्रमा को कलङ्क है, परन्तु वैराग्य रूपी चंद्रमा को वेद दोष नहीं कहते। चंद्रमा आकाश में चढ़ता है और वैराग्य रूपी चंद्रमा भक्तजनों के हृदय रूपी आकाशमें प्रकाश करता है॥

सो०- रजनी बिन सित चन्द, निशि असित शशि हीनज्यों।
उभय सहित आनन्द, त्यों वैराग विवेक विद॥

टीका- जैसे रात्रि बिना दिन को चन्द्रमा सित कहिये सफ़ेद

प्रतीत होता है (कान्ति हीन होता है), शोभा नहीं पाता और काली रात्रि चन्द्रमा रहित शोभा नहीं पाती। उभय कहिये दोनों सहित अर्थात् रात्रि भी हो और चन्द्रमा भी हो तब ही आनन्द होता है। तैसे वैराग्य और विवेक को 'विद' कहिये जानो। न अकेला वैराग्य शोभा पाता है और ना ही अकेला विवेक-दोनों से ही आनन्द प्राप्त होता है। श्री भर्तृहरिजी कहते हैं कि सब दुःखों की निवृत्ति का कारण वैराग्य है॥

दो०- नष्ट अदृष्ट न ज्ञान बिन, ज्ञान न बिन वैराग।
तातै भव निर्वेद प्रद, जातें भव दुख त्याग॥

भावार्थ-बिना वैराग्य के ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना अदृष्ट कहिये संचित कर्मों का नाश नहीं होता। वैराग्य बिना ज्ञान न होने से "भव" कहिये हे शिवजी महाराज! 'निर्वेद प्रद' कहिये वैराग्य देवो, जाते ज्ञान द्वारा सन्सार यानी जन्म मरण के दुःख त्याग जावें अर्थात् निवृत्त हो जावें॥

शङ्का:- हे भगवन्! वैराग्य कितने प्रकार का होता है? उसका कारण, स्वरूप, फल और उसकी अवधि क्या है?

समाधानः-हे प्यारे! वैराग्य दो प्रकार का है। पहला कारण और दूसरा तीव्र। (१) वैराग्य का कारण दोष दृष्टि है। जब जिज्ञासु को स्वतःसिद्ध सत्संग करते करते शुभ कर्मानुसार, किसी ग्रन्थ के पढ़ने से (जो सत्य परमात्मिक प्रेम का हो और जिसका विषय संसार की असत्यता प्रगट करना हो) वा किसी बड़े प्रिय सम्बन्धी या मित्र के मरने पर, सम्बन्धियों के विरोधी हो जाने पर, अपने शरीर के रोगी हो जाने पर मन में विचार होताहै कि संसार नाशवान् है; शरीर भी रहने वाला नहीं, सम्बन्धी सब अपने स्वार्थ के मित्र हैं, युवावस्था भी प्रति दिन व्यतीत होती जा रही है, मृत्यु भी सन्मुख दीख रही है, और भोग भी एक क्षण मात्र का सुख दिखाकर अंत में दुःख देने वाले हैं; ऐसे विचार होने का नाम "कारण वैराग्य" है। इस दशा में यदि पुरुष संसार को छोड़ देता है और पूरा सत्संग नहीं मिलता तो उसके लिए फिर गि

जाने का भय है। यह ऐसा वैराग्य है जैसे तृणों की अग्नि शीघ्र बुझ जाती है और कुछ कार्य सिद्ध नहीं करती ॥

(२) तीव्र वैराग्य का स्वरूपः–

चौ०– पुत्र दारा विषय जग जेते। यह जनम मत होवें तेते।
ऐसे इस्थित मत है जोई। वैराग सुतीवर भाखेउ सोई ॥

पहिले सब पदार्थों में दोष दृष्टि होजावे और फिर असत्य समझे, इस प्रकार की बुद्धि जब होवे अर्थात् पुत्र दारा और विषय जितने जगत् में हैं 'यह' कहिये इस जन्म में, सारे मेरे को,प्राप्त न होवें; ऐसी बुद्धि का नाम तीव्र वैराग्य है।

कवित्तः–बंध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग ऽरु विराग दोइ ध्वजा फहरात है।
विषय विषेसत्य भ्रम भ्रम मत वात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहिरात है ॥
साख्य साखी पूतरी अनूजरीऽरु ऊजरी द्वै,
देख रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लख रूप निज,
दुःख रूप आनन्द स्वरूप में समात है ॥ [विचार सागर]

टीका–हे प्यारे! 'देहवान्' कहिये देह अभिमानी अज्ञानी और ज्ञानवान् बंध और मोक्ष के 'गेह' कहिये धाम हैं–ज्ञानवान् मोक्ष का धाम है और अज्ञानी बंध का धाम है। जैसे बड़े नगर में ध्वजा धारियों के मंदिरों पर ध्वजा होती हैं तैसे राग और वैराग्य रूपी ध्वजा हैं। अज्ञानी का चिन्ह राग है और ज्ञानी का वैराग्य। अज्ञानी में भी वैराग्य होवे है। याते ज्ञानी का अज्ञानी से विलक्षण वैराग्य कहे हैं। हे प्यारे! शब्द आदिक जो विषय हैं उन विषे सत्यभ्रम कहिये सत्य पने की भ्रान्ति अज्ञानी को है और 'भ्रम मत' कहिये रज्जु सर्प की नाईं विषय भ्रम रूप हैं, यह निश्चय बुद्धि ज्ञानवान् की है। सो वायु की नाईं राग और वैराग्य को हलावे है। जैसे वायु ध्वजा को चंचल करे है तैसे विषयो में 'सत्य बुद्धि रूपी' और 'भ्रम बुद्धि रूपी' वायु राग और वैराग्य को चंचल करे है, स्थिर नहीं होने देवे है। विषयों में सत्य बुद्धि

से राग दृढ़ होवे है और विषयों में भ्रम बुद्धि से वैराग्य दृढ़ होवे है। विषय असत्य हैं, याते इन में सत्य बुद्धि भ्रान्ति रूप है। इस वार्ता के जनावने को कवित्त में 'सत्य भ्रम' कहा है 'सत्य बुद्धि' नहीं कही; भ्रान्ति ज्ञान और भ्रान्ति ज्ञान का विषय जो मिथ्या वस्तु हैं सो दोनों भ्रम कहे हैं। या कहने ते अज्ञानी और ज्ञानी के वैराग्य का भेद कहा। काहे ते जो अज्ञानी का वैराग्य है सो विषय में मिथ्या बुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु दोष दृष्टि से हुआ है; इससे मन्द वैराग्य है। विषय मिथ्या हैं, यह बुद्धि अज्ञानी को होवे नहीं। यद्यपि शास्त्र युक्ति से अज्ञानी भी मिथ्या जाने है तथापि 'विषय मिथ्या हैं' यह अपरोक्ष मति ज्ञानवान् को ही होवे है, अज्ञानी को नहीं। इससे अज्ञानी को विषयों में परोक्ष जो मिथ्या बुद्धि है उससे अपरोक्ष भ्रान्ति दूर होवे नहीं; क्यों कि अपरोक्ष से अपरोक्ष का विरोध है। इसरीति से अज्ञानी को जब विषयों में वैराग्य होवे है ता काल में परोक्ष मिथ्या बुद्धि है भी परन्तु उस से प्रबल अपरोक्ष सत्य बुद्धि है, इससे अज्ञानी की परोक्ष मिथ्या बुद्धि वैराग्य का हेतु है; किन्तु प्रबल जो सत्य बुद्धि है उससे विषयों में राग ही होवे है; और जो अज्ञानी को वैराग्य होवे है सो भी मिथ्या बुद्धि से नहीं किन्तु विषयों में दोष दृष्टि से होवे है। ज्ञानवान् सर्व प्रपंच को अपरोक्ष रूप करके मिथ्या जाने है; ता अपरोक्ष मिथ्या बुद्धि से अपरोक्ष सत्य बुद्धि दूर होवे है; याते वैराग्य के हेतु विषयों में मिथ्या बुद्धि ज्ञानवान् को है। जो ज्ञानी को विषयों में सत्य बुद्धि होवे तो फिर राग होवे और वैराग्य दूर होवे; सो अपरोक्ष रूप से मिथ्या जाने पदार्थों में फिर सत्य बुद्धि होवे नहीं॥

जैसे अपरोक्ष रूप से रज्जु में मिथ्या जाना हुआ जो सर्प ता में सत्य बुद्धि फिर होवे नहीं तैसे ज्ञानी को फिर सत्य बुद्धि होवे नहीं। इस प्रकार मिथ्यत्व बुद्धि होने से, राग की उत्पत्ति और वैराग्य की निवृत्ति ज्ञानी को होवे नहीं। इससे ज्ञानी का वैराग्य दृढ़ है और दोष दृष्टि से जो अज्ञानी को वैराग्य होवे है सो तो दूर हो जाता है। काहेते जिस

पदार्थ में दोष दृष्टि होवे है तिस पदार्थ में ही अन्य काल में सुख बुद्धि हो जावे है। जैसे विषयी पुरुषों को स्त्री सम्भोग के पश्चात् उसमें दोष दृष्टि हो जावे है और कालान्तर में फिर सुख बुद्धि होवे है। इस रीति से जब दोष दृष्टि दूर होवे तब अज्ञानियों का वैराग्य भी दूर होजावे है। इससे अज्ञानी को दृढ़ वैराग्य होवे नहीं और ज्ञानी का वैराग्य दोष दृष्टि और मिथ्यत्व निश्चय करके होवे है इससे त्यागे हुए पदार्थों को फिर ग्रहण नहीं करता, जैसे पुरुष अपनी उच्छिष्ट अर्थात् उलटी को आप नहीं ग्रहण कर सकता। इसी आशयपर विचार मालामें लिखा है:-

दोहा-अनाथ बिसारे विषय रस, संतन जान मलीन।
ता उच्छिष्ट सों रति करें, कामी काक अधीन॥

भावार्थ—अनाथ दास जी कथन करते हैं, हे प्यारे! संतों ने विषयों को 'रस-मलीन' कहिये अविद्या के कार्य और अनित्यता रूपी दोषों के साथ जानकर 'बिसारे' कहिये त्यागदिये हैं। 'ता उच्छिष्ट' कहिये सन्तों की त्यागी हुई उलटी, जो विषय हैं, कामी पुरुष रूप कौए विषय रस के आधीन हुए उसके साथ 'रत' कहिये प्रीति करते हैं। यह ज्ञानी और अज्ञानी के वैराग्य का भेद है॥

इस रीति से राग और वैराग्य अज्ञानी और ज्ञानीके चिन्ह कहे हैं। जैसे धामके ऊपर पूतरी कहिये हस्थी, गणेश, त्रिशूल आदिकों की मूर्ति होवे है तैसे बन्ध मोक्ष का धाम जो अज्ञानी और ज्ञानी का अन्तःकरण है ताके विषे साक्ष्य साक्षी पुतली हैं। अज्ञानी के अंतःकरण विषे साक्षी का विषय संसार रूपी पुतली है और ज्ञानी के अन्तःकरण में साक्षी रूप पुतली है। साक्षी का विषय जो प्रपंच हैं ताको साक्ष्य कहिये है। साक्ष्य रूप पुतली 'अनूजरी' कहिये मलिन है और साक्षी रूप पुतली 'ऊजरी' कहिये शुद्ध है। अज्ञानी रागी संसारी विषयों को देखकर ललचाता है। त्यागी ज्ञानवान् साक्षी को जानकर ललचाता है। अज्ञानी भ्रम करके चंचल संसार रूपी कूप में जन्मता मरता रहता है और ज्ञानवान् अचल ब्रह्मको अपना स्वरूप जानकर आनन्द स्वरूप में समाजाता है॥

शङ्काः-भगवन् जी ! आपने कथन किया है कि अज्ञानी संसार के पदार्थों को सत्य व आनन्द रूप मानकर उनमें ललचाता है और ज्ञानवान् असत्य और दुःख रूप जान कर उनसे वैराग्य करता है। इसमें प्रमाण, दृष्टान्त और कोई इतिहास सुनावें ॥

समाधानः—हे प्यारे ! ज्ञानवान् संसारको स्वप्नवत् झूठा समझता है। जैसे मृग तृष्णा के जल को मृग देख कर और सच्चा समझकर दौड़कर जाता है; थकित होकर गिर पड़ता है और तृषा भी निवृत्त नहीं होती—दुःखी होता है; जानने वाला पुरुष कभी भी घड़ा लेकर जल भरने नहीं जाता। तैसे मृग तृष्णा के जल के समान विषय पदार्थ झूठे हैं। इनमें अज्ञानी ही, सत्य और आनन्द स्वरूप समझकर, प्रवृत्त होते हैं; परन्तु यह मिथ्या होने से आनन्द नहीं दे सकते; अतः वे मृगवत् दुःखी होते हैं। और जानने वाले ज्ञानी इनको असत्य और दुःख रूप समझकर प्रवृत्त नहीं होते। इस पर गुरु प्रमाणः—

माई माया छलु ॥ तृण की अगनि मेघ की
छाया गोबिंद भजन बिनु हड़ का जलु॥ (टोडी म० ५ पृ० ७१७)

पुनः— जैसा सुपना रैन का तैसा संसार ॥
दृसटिमान सभु बिनसीऐ किआ लगहि गवार ॥ २॥ [बिला० म० ५ पृ० ८०८]

दृष्टान्तः—एक ज्ञानवान् राजा का लड़का बीमार होगया तो आत्म दृष्टि से वह लड़के की भली प्रकार सेवा करता रहा जिस से वह दो तीन दिन आराम न कर सका अर्थात् निद्रा न ले सका। तब तीसरे दिनरात्रि के समय उसने मंत्री से कहा हे मंत्री ! निद्रा न लेने से मेरा सिर दुःख रहा है, तुम इस लड़के के पास बैठो और मैं कुछ आराम करलूँ। मंत्री ने कहा, "सत्य वचन"। राजा सोगया। कुछ समय के उपरांत लड़के की मृत्यु हो गई। मंत्री ने विचार किया जो होना था वह तो होगया; यदि मैं अभी राजा को जगाऊंगा तो इसके आराम में बाधा पड़ेगी। ऐसा न हो कि कोई विक्षिप्तता (पागल पन) आदि रोग होजावे। इससे अभी जगाना ठीक नहीं। ऐसा विचार कर चुप चाप

बैठारहा। जब राजा सोकर जगा तो मंत्री ने कहा, "हे राजन्! लड़का तो मर गया है"। यह सुन कर राजा हंस पड़ा। ऐसा देख कर मंत्री नेविचारा कि मैंने जो सोचा था वही बात हुई (इसको पागल पन होगया है) जो हंसता है। जब दुबारा कहा कि हे राजन्! लड़का मृत्यु वश होगया है। फिर भी राजा हंसा, तो तीसरी वार कंधे को पकड़ कर हिला दिया और कहा, "राजन्! लड़के का स्वर्ग वास होगया है"। तब राजा ने कहा, "हे मन्त्री! मैं सुन रहाहूं, मैंकोई निद्रा में नहीं हूं।" तब मंत्री बोला यदि आप निद्रामें नहीं तो पुत्र की मृत्यु को सुनकर हंसने का क्या कारण, राजाने कहा हे मंत्री! कहो, कितनी देर मैंने निद्रालीहै? मन्त्री बोला, "लगभग चारघंटे।" राजा ने कहा हे मन्त्री! मैंने इतने समय में एक स्वप्न देखा है कि मेरी अनेक रानियों द्वारा अनेक पुत्र उत्पन्न हुए हैं और जागने पर न तो रानियां रहीं और न पुत्र ही रहे। तो अब बताओ कि उन अनेक रानियों और पुत्रों का शोक करूं या इस एक पुत्र का शोक करूं? मुझे तो शास्त्र और गुरु वाक्यों पर भरोसा है कि यह संसार स्वप्नवत् झूठा है। इससे झूठे पुत्र के लिये क्या शोक करूं? इसी आशय पर प्रबोध चन्द्र नाटक में लिखा है:-

चौ०- ज्यों पथ भीतर पथिक मिलाए। समा पाइ पुनि बीछर जाए॥
ज्यों तृण काठ सु नदी प्रवाहा। कभी मिले कभि होहि दुराहा॥
ज्यों जल बूंद मेघ की धारा। यथा जहाज़ सु सिन्धु मंझारा॥
पिता मात सुत बन्धु सु दारा। मिलि बिछुरे या जगत मंझारा॥
या को होईवियोग सु जब ही। शोक न लए विवेकी तब ही॥
इहां जगत की गति है जोई। कोटिन मांहि लखै नर कोई॥

अध्यात्म रामायण में भी लिखा है कि जब भगवान् रामचन्द्र जी पिताकी आज्ञा मानकर बनको जानेलगे उस समय लक्ष्मणजी ने कहा हे तात! राज्य पर आप का ही अधिकार है!! मैं धनुष बाण लेकर खड़ा होता हूं, कौन है जो आपको अयोध्या के सिंहासन से उठा सके!!!

लक्ष्मण-राम! त्वं कर तिलक भाल सु बैठराज सिंहासनम्।
विघ्नकारी लोक में कर चाप करूं सो शासनम्॥

इहकहे लक्ष्मण कोप के तब राम गले लगायो।
उमा ता सिर चूम के तब राम आख सुनायो॥

श्रीराम—चौ०—विश्व शरीर राज पुनि जोई। जो लछमन यह साँचो होई॥
तो तां हेत सु यतन तुम्हारा। सफल होय या जगत मँझारा॥
मेघन माहिं सुविजली जैसे। भोग सबै जग चंचल तैसे॥
तपत लोह जग बिन्दु सुजैसी। आयु पिखो क्षण भंगुर तैसी॥
ज्यों मेंढक को अहिमुख गहे। वहि अति मूरख डंसन चहे॥
कालसर्प तिउ लोकन ग्रासै। मूरख करे भोग उर आसै॥
जाकर मनते अति दुख पावें। ता सुख हित वे करम कमावें॥
सो तन आतम ते अति न्यारो। भोग सु किहिविधि होइ विचारो॥
मात पिता भाई सुत दारा। जा संगम कर करे विकारा॥
प्रपा१ जन्तु ज्यों नदीअन काठ। त्यों क्षण चांचल संगम ठाठ॥ १ प्याऊपर पुरुष
२पदमा छाया ज्यों अति चला। तरुण अवस्था कूरम३ जला॥ २वृक्ष। ३कछुआ
स्वप्न तुल्य स्त्री सुख अहै। तद्यपि नर अभिमानहि गहै॥
स्वप्न तुल्य यह सब संसारा। सदा रोग दुख याहि मँझारा॥
गंधर्व नगर के सम जग गरे। मूरख ता अनुवरतन करे॥
रवि की गत आगती अधीना। आयु होय निरन्तर छीना॥
जरा मरण औरन को देखे। मूरख अपने नाहि सुलेखे॥
सोई दिन अरु सोई रात। मूढ़ धरे मन में विखिआत॥
भोगन को अनुधावन करे। काल वेग की खबर न परे॥
काचे घट को नीर सु जैसे। उमरा जाय सुक्षण क्षण तैसे॥
सफल बाण ज्यों करे प्रहारा। त्यों जग रोग सु करै सँहारा॥
बाघिनि ज्यों जग जरा डरावे। समो निहारि मृत्यु संग आवे॥
त्वचा मांस हाड अरु विष्टा। मूत्र रेत रक्त जिह निष्टा॥
ऐसे तन में करि अभिमान। मैं राजा जो लेवे मान॥
अन्त समय तन विष्टा होई। कै पुनि भस्म कृमादिक सोई॥
विकारी और प्रनामी जोइ। यह आतम देह कदापि न होइ॥
लक्ष्मण जो तन आतम मान। लोक दहनि को चहे भवान४॥ ४ आप
दोष अहें जग भीतर जेते। तन अभिमान होइ सब तेते॥
देहोऽहं यहि बुद्धि सु जोई। नाम अविद्या भाषी सोई॥
नाहं देह चिदातम हये। या विधि की मति विद्या कहिये॥
अविद्या करि होवे संसारा। विद्या ताहि सुदये निवारा॥

देहसे वैराग्य-एक चिन्ता रहित फ़क़ीर जंगल में बैठा था। एक वज़ीर का लड़का उधर से निकला तो फ़क़ीर ने देख कर भी सलाम न किया। लड़का अभिमान से बोला, "तू जानता नहीं मैं कौन हूं ?" फ़क़ीर न बोला। दो चार वार कहने से वह बोला हां, मैं तुमको जानता हूं। (१) पहिले तू पिता की देह में वीर्य की बूंद था। (२) फिर उसकी मूत्र इन्द्रिय द्वारा माता के गर्भ में आया। (३) नव मास गर्भ में सिर नीचे, पांव ऊपर, जेर में लपेटा रहा। (४) विष्टा मूत्र कर वेष्टित रहा। (५) जठराग्नि कर तपायमान रहा। (६) तोप के मुहं में बारूद की थैली की तरह संकीर्ण स्थान में बन्द रहा। (७) नव मास घोर अंधकार में स्थित रहा। (८) दूसरी वार माता के मूत्र स्थान द्वारा बाहर आया। (६) जहां पड़ा वहां ही पड़ा रहा, न अपनी सुधि न दूसरे की। (१०) न उठने बैठने की, न बोलने की और ना ही मक्खी मच्छर उड़ाने की शक्ति थी। (११) दूसरों केआधीन था-कोई खिलाये, कोई पिलाये। (१२) होश आने पर बड़े बालकों से भय खाता रहा। (१३) बहुत समय तक अध्यापकों की ताड़ना सहन करता रहा। (१४) अब युवावस्था में काम क्रोध कर पीड़ित है। (१५) शत्रुओं का हर समय भय रहता है। (१६) स्त्री का दास बना हुआ है; मान और मोह कर अन्ध है। (१७) त्वचा, रक्त, मांस, नाड़ी, विष्टा, मूत्र, बलग़म का थैला है। (१८) वृद्ध होकर रोगों से पीड़ित होगा (१६) मृत्यु वश होकर नर्कों का दण्ड पावेगा। अब तू ही कह कि तू कौन है ? हम तो तुमको ऐसे ही जानते हैं। यह सुन कर वह लड़का लज्जित हुआ और उसको वैराग्य हुआ॥

स्त्रीसे वैराग्य-जिस स्त्री को अज्ञानी रमणीक मानता है वह कैसी है ? नेत्रों में कीचड़ (गीड) है, नासिका में सींड, मुख में थूक भरा है। ऐसे ही सर्व अंगों में मैल ही मैल है। विचार रहित पुरुष इस मलिनता को जानते नहीं। जैसे घट ऊपर से बड़ा सुन्दर हो और

भीतर मैला भरा हुआ हो तो अनजान पुरुष उसको सुन्दर जाने है और चतुर दूर से भागे है। तैसे स्त्री का शरीर गन्द मन्द का थैला है; परन्तु वस्त्र भूषण पहिनने के कारण अज्ञानियों को सुन्दर भासती है। धर्मकर्म को छोड़कर इसकी इच्छा करनेवालों को वैश्यादि शरीरों की प्राप्ति होती है; तिन में भी पाप करके नर्कों को प्राप्त होते हैं। इस लिये स्त्री का शरीर ऊपर से सुन्दर है, परन्तु दुःख रूप है। जैसे पुए ऊपर से सुन्दर भासें और भीतर विष मिला हो तो खाते समय मन प्रसन्न होता है, परन्तु परिणाम उसका मृत्यु है। फिर जैसे सर्प ऊपरसे कोमल भासता है, परन्तु उसके काटने से मृत्यु हो जातीहै; तैसे स्त्री ऊपरसे सुन्दर प्रतीत होतीहै, परन्तु उसके सम्बन्ध वा चिंतन से परम पद में हानि होती है:-

फ़रीदा ए विसु गंदला धरीआ खंडु लिवाड़ि।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥ (पृ० १३७९)

इससे प्रेमी पुरुष स्त्रीको दुःख रूप जान कर वैराग्य धारण करे:-

दो०-अर्थ धर्म अरु मोक्ष कूँ, नारि त्रिगारत ऐन।
सब अनर्थ को मूल लख, तजै ताहि ह्वै चैन॥

॥ पुत्र से वैराग्य ॥

दो०-पुत्र सदा दुख देत यों, विना प्रापति दुख एक।
गरभ समे दुख जनम दुख, मरै तु दुःख अनेक॥

जब पुत्र नहीं होता तब माता पिता को चिन्ता रहती है कि कब होगा, जब गर्भ ठहरता है तब एक तो यह डर रहता है कि गिर न जावे, दूसरा पुत्र होगा या कन्या। यदि पुत्रहो जावे तो ग्रह बिगड़ने की चिंता होवे है। इस करके माता पिता यंत्र मंत्र कराने के लिये नीच पुरुषों के भी आगे दीन होवेहैं। फिर ऐसा भय होवे है कि कहीं दांत निकलने के समय बालक मर न जाय। फिर जब बड़ा होवे और किसी से मार खा आवे तो दुःख, यदि किसी को मार आवे तो भी (उलाहनों से) दुःख होवे है॥

फिर पुत्र यदि योग्य होवे तो उसके मोह वश पुण्य दान न करके उस के लिये ही धन को इकट्ठा करे हैं और उसके दुःख से महान

दुःखी होवे हैं। अंत समय पुत्रमें ध्यान रहने से शूकर की योनि गुरु साहबजी ने बताई है। और यदि आज्ञाकारी न हो तो दुःख। कुकर्म करके जेल में जावे तो माता पिता को महान् कष्ट होवे है और यह कहे हैं कि या तो हमारी या इस मूर्ख पुत्र की मृत्यु हो जाय परन्तु काल के बिना मृत्यु कैसे आवे ? इस करके समस्त आयु पर्यन्त माता पिता इस जन्म में दुःखी रहते हैं और आगे परलोक भी नहीं सुधरता; अर्थात् आगे भी दुःख ही होता है। इसलिये पुत्र मित्र नहीं है किन्तु वैरी ही है। इस पर महात्मा लिखते हैं:-

दो०-जनमत ही दारा हरे, युवा होइ ले भौन।
वृद्ध भये सर्वस हरे, सुत सा वैरी कौन ॥

भावार्थ-पुत्र जन्मते ही स्त्री-सुख को हर लेता है। जब युवा होने पर उसका विवाह होजाता है तो पिता लज्जा कर के घर नहीं जाता, रोटीभी दुकान पर मँगवाता है; इससे घर का सुख लेलेता है। जब पिता अति वृद्ध हो जावे है तो पुत्र सारा धन सम्हाल लेता है। इससे पुत्र समान कोई दूसरा वैरी नहीं:-

दो०-कर विचार यों देखिये, पुत्र सदा दुख रूप।
सुख चाहत जे पूत तें, ते मूढ़न के भूप॥

॥ धन से वैराग्य ॥

चौ०-जो चाहै माया बहु जोरी। करै अनर्थ सो लाख करोरी॥
जाति धर्म कुल धर्म सु त्यागै। जो धनकूँ जोरन जन लागै॥
विना भाग तदपि न धन जुरिहै। जुरैतु रचा करि करि मरि है॥
खर्चत धन घटि है यह चिंता। नाशै निशि दिन ताप अनन्ता॥
सदा करत यूँ दुख धन मन कूं। चहै ताहि धिक्कर तिहि जनकूं॥
युवति पूत धन लखि दुखु दाता। तज्यो भक्षु ममता को नाता॥(विचार सागर)

पुनः- धन भी दे तकलीफ़ को नहीं सुक्ख की जा।
जमा करन अरु नास में देवे दुःख दिखा॥
मध्य काल भी समझते मूढ़ खुशी का हेत।
सो तो त्यागै दूरि ते जो है पुरुष सचेत॥

यह भी सुख की प्राप्ति नहीं करता, दुःख को ही देता है। प्रथम

तो जीव को पुण्यों के बिना धन की प्राप्ति नहीं होती; यदि कोई पुण्य प्रगट हो भी जावे तो खेती करनेसे व्योपार करने से या नौकरी आदिकों के करने से अतिशय कर के दुःख ही होवे है। खेती बाड़ी करने में पशुओं के समान कमाना पड़ता है, जिससे दुःख होता है; और व्योपार में वस्तुओं के क्रय विक्रय करने में चिंता से दुःखी होवे है; और धन की हानि लाभ में सदा दुःखी होता है। बहुत पुरुष धन की हानि होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, और कई पागल होजाते हैं। और नौकरी में भी सदैव पराधीनता से मृत्यु समान दुःख होता है। इस पर नीति में लिखा है:-

दो०—नार कलहिनी ग्राम घर, देह दुःखी नृप नीच।
परवश पांचों नरन को, जीवित ही है मीच॥

इससे सिद्ध होता है कि पराधीन पुरुष जीता ही मृतक के समान है। इस प्रकार धन संचय करने में दुःख होता है। अब रक्षा करने के दुःख को वर्णन करते हैं:-

धनी पुरुष की यह इच्छा रहती है कि मेरे धन का पता मेरे स्त्री पुत्रादिक तथा और किसी को भी न लगे। इस लिये अंधेरी रात में घर के अंदर धन दबाने के लिये जाता है तो भीति से मस्तक फूटता है, और जब कुदालसे पृथ्वी खोदते हुए अंधकार के कारण कुदाल पांव में लगता है तो अत्यन्त दुःखी होता है; परन्तु लज्जा से चुप हो रहता है, किसीके आगे कुछ नहीं कहता। इस प्रकार बहुत दुःख उठाकर पृथ्वी में धन दबाता है, और राजा तथा चोरों के भय से सदा दुःखी रहता है। धन के लोभ से ही पिता, स्त्री, पुत्र, गुरु, भाई, आदिकों से विरोध करे है। ऐसे धनकी रक्षा में अनेकोंदुःख हैं जो कि पूरे लिखे नहीं जाते। धनके नाश में तो अति दुःख है। जिस धनी पुरुष का धन नष्ट हो जावे उसका इस जन्म में (कंगाल होने से) तृस्कार होता है और परलोकमें नीच गति को प्राप्त होता है। इमप्रकार धन एकत्र करने, रक्षा करने और नाश होने में अत्यन्त दुःख देता है। नीति में लिखा है:-

नाराच छन्द–त्रिकाल द्रव्य दुःख मय उपाय रक्ष अन्त में।
निदान है विरोध को सो मात तात जन्त में॥
कृतान्त धाम काम को अलंकृती समष्ट है।
शुभाशुभं निकेत भी तथापि त्याग श्रेष्ठ है॥

भाव–'उपाय'कहिये उत्पत्ति, रक्षा, और 'अन्त' कहिये नाश, तीनों काल 'धन' पदार्थ दुःख रूप हैं। पुनः सो धन माता, पिता, पुत्र, में विरोध का कारण है। 'कृतान्त' कहिये सृष्टि के अन्त करने वाले यमराज के घर पहुँचाने वाला है। भाव–अशुभ कर्मों में लगाया हुआ नर्कों में दुःख देता है और शुभ कर्मों में लगाया हुआ स्वर्ग के सुख देता है। 'समष्ट' कहिये सब शुभ अशुभ कर्मों का धन'अलंकृती' कहिये भूषण है। यद्यपि शुभ अशुभ का 'निकेत' कहिये घर भी है तथापि 'त्याग' कहिये धन से वैराग्य करना ही श्रेष्ठ है। यथाः–

लक्खां वाल्यां नूं लख कर्ज़ीये, हज़ारां वाले नहीं सौंदे।
सैंकड़ों वाले रहिण दुख्यारे रात दिने पए भौंदे॥
चंगे पंज दस रुपैयाँ वाले, जो टंग ते टंग धर सौंदे।
साईं लोका ओह सबतों चंगे, जो नाम साईं दा गौंदे॥

अब मन्दिरों से वैराग्य वर्णन करते हैं:–

धारना– (किआ थोड़ड़ी बात गुमान सरपर चलणा)
गोइलि आइआ गोइली किआ तिसु डंफु पसारु।
मुहलति पुंनी चलणां तूं संमलु घर बारु॥ १॥ किआ०॥
हरि गुण गाउ मना सतिगुरु सेवि पिआरि॥
किआ थोड़ड़ी बात गुमान॥ १॥ रहाउ॥ किआ०॥
जैसे रैणि प्राहुणे उठि चलसहि परभाति॥
किआतूं रता गिरसत सिउ सभ फुलाकी बागाति। २॥ किआ०॥
मेरी मेरी किआ करहि जिनि दीआ सो प्रभु लोड़ि॥
सर पर उठी चलणा छडिजासी लख करोड़ि॥ ३॥ किआ॥
लख चउरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनम पाइओइ।
नानक नामु समालि तूं सो दिनु नेड़ा आइओइ॥ ४॥ किआ॥

(सिरी० म० ५ पृ० ५०)

'गोइलि आइआ गोइली'

भावार्थ—महाराज जी वैराग्य जनक उपदेश करते हैं कि जैसे किसी देश में वर्षा न होने से घास नहीं होती तो वहां के रहने वाले 'गोइली' कहिये गौएँ चराने वाले जिस देश में या नदी के किनारे घास हो तो उस स्थान में 'गोइल' कहिये गौओं को ले जाते हैं ॥

'किआ तिसु डंफु पसारु ॥'

'तिसु' कहिये गौएं चराने वाले को तिस स्थान में क्या 'डंफु' कहिये पाखंड कोठे और मन्दिरों का पसारा करना है, अर्थात् वह नहीं करता; क्योंकि वह जानता है कि जब वर्षा आवेगी तब मुझे यहां से चले जाना है ॥

'मुहलति पुंनी चलणा तूं संमलु घरिबारु ॥ १ ॥'

अवस्था रूपी मुहलत (समय) पूर्ण होने पर तुमको चले जाना है, क्योंकि वास्तविक घर तुम्हारा स्वरूप है। इस लिये वास्तविक घर की प्राप्ति का 'बारु' कहिये द्वार जो सत्संग है उसमें जाकर अपने स्वरूप को सम्हालो ॥

'हरिगुण गाउ मना सतिगुर सेवि पिआरि ॥'

भाव—सत्संग में जाकर 'मना' कहिये हे प्यारे ! हरि के गुण गान करो और सद्गुरु तथा सत्संगत की सेवा प्रीति पूर्वक करो, जिससे अंतःकरण की शुद्धि द्वारा ब्रह्मज्ञान अर्थात् निज स्वरूप को जानो ॥

'किआ थोड़ड़ी बात गुमानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥'

हे शिष्यो ! क्या 'थोड़ी बात कहिये चार दिन की ज़िंदगी पर महल माड़ियां (चौबारे) और सम्बन्धियों की 'मैं-मेरी' का गुमान कहिये अहंकार करते हो ?

'जैसे रैणि प्राहुणे उठि चलसहि परभाति ॥'

ताते हे शिष्यो ! तुम आपको ऐसे निश्चय करो जैसे रात्रि को पाहुणा आता है तो वह मन्दिरों पर मैं मेरी नहीं बाँधता; क्योंकि वह जानता है कि मैं सवेरे उठ कर अवश्य चला जाऊंगा। तैसे तुम भी अवस्था रूपी रात्रि के पाहुने हो; इसलिये मैं-मेरी का अहंकार मतकरो। जिस समय काल रूपी दिन चढ़ा, तुमको भी उठकर चले जाना है सो

इसपर इतिहास श्रवण करें:—

एक महात्मा विचरते हुए रात्रि को एक गांव में पहुँचे। वहां के मनुष्य सो गये थे। सर्दी का समय था और कुछ बूंदा बांदी भी होरही थी। महात्मा शहर के एक मकान के कुण्डे को खटखटाने लगे और कहने लगे, "दरवाज़ा खोलो! दरवाज़ा खोलो!!" उस मकान का मालिक चौबारे के अन्दर सोया हुआ था; उसने द्वार खोलकर पूछा, "तुम कौन हो?" महात्मा ने कहा कि हम मुसाफ़िर हैं, ड्योढ़ी का द्वार खोलदो; रात को आराम करके सवेरे हम चले जावेंगे। तब वह बोला कि यहां से चले जाओ, यह कोई मुसाफ़िरख़ाना नहीं है। यह कह कर उसने द्वार फिर बंद कर लिया। महात्मा फिर कुण्डा खटखटाने लगे; तो मालिक ने द्वार खोलकर फिर अप्रसन्न होकर वही बात कही। परंतु निर्भय महात्मा ने फिर कुण्डा खटखटाया। तब तीन चार वार मालिक ने वही उत्तर दिया और महात्मा न हटे; तो मकान के मालिक ने जाना कि यह कोई पागल है, मैं जबतक इसको धक्के मार कर न निकालूंगा यह आराम से नहीं सोने देगा। तब नीचे उतर कर कहने लगा, "हमने तुमसे कई वार कहा है कि तुम मुसाफ़िरख़ाने में चले जाओ, परन्तु तुम नहीं मानते; इसका क्या कारण है?" महात्मा ने कहा, हे भाई! तुम्हारा पिता कहां है? उसने विचार किया कि यह कहीं पिताजी का मित्र न हो, इसलिये शान्ति के साथ बोला, "वह तो परलोक सिधारगये हैं।" महात्मा–तुम्हारी माता? वह बोला कि उनका भी स्वर्गवास हो गया। महात्मा–तुम्हारे दादा,दादी, परदादा,परदादी और उस समय का परिवार? वह बोला, "सभी परलोक को चले गये।" महात्मा बोले हे भले पुरुष! मुसाफ़िरख़ाना किसे कहते हैं? वह बोला कि जहां कोई आवे और विश्राम करके चला जावे। महात्मा–हे भोले पुरुष! इस घरमें भी तेरे पिता पितामह और कई तेरे बड़े, परिवार समेत, यहांपर विश्राम करके चले गये हैं और इसी प्रकार तू भी चला जावेगा; फिर तेरे पुत्र, पौत्र, विश्राम करके चले जावेंगे। तो क्या यह मुसाफ़िरख़ाना न हुआ?

यह सुनकर उसको होश आया और मनमें विचारा कि यह कोई महात्मा सत्पुरुष हैं; क्योंकि इनकी यह बात बिलकुल ठीक है। यह घर तो मुसाफ़िरख़ाने के सदृश ही है। तब महात्मा को बड़े सत्कार से भीतर ले गया और पलंग बिछा कर बिछौनादि देकर विश्राम कराया। जब सवेरे उठकर महात्मा चलने लगे तो हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहा, "महाराज जी! आप कृपा करके मुझे कुछ उपदेश करें। तो महात्मा ने कहा, हे प्यारे! इस संसार में तुम अपने आपको मुसाफ़िर समझो और इस घर बार को मुसाफ़िरख़ाना समझो किसी वस्तु पर मैं मेरी मत करो और ऐसे जानों:-

दो०-धन जोबन अरु माल को, मती भरोसा राख।
चार दिना की चाँदनी, फेर अंधेरा पाख॥ १॥
धन जोवन यूँ जायगा, जैसे उड़त कपूर।
नारायण हरि भजन बिन, क्यों चाटे जग धूर॥ २॥

पुनः-जीम-जग सराए मुसाफ़रां दी, एथे भुल यारा डेरा पा नाहीं।
बन्ह बिस्तरा कूच तैयार होजा, एह रहण वाली तेरी जा नाहीं॥
कोई पलक मुकाम अराम करलै, झगड़े दाइमी एथे लगा नाहीं।
चल वतन हुण सफ़र नूँ छोड़ गोविन्द, बोझ दुःख परदेस उठानाहीं॥

गुरुजी कथन करते हैं:-

डडा डेरा इहु नहीं जह डेरा तह जानु॥ उआ डेरा का संजमो गुरु कै सबदि पछानु॥ इआ डेरा कउ स्रमु करि घालै॥ जाका तसू नहिं संगि चालै॥ उआ डेरा की सो मिति जानै॥ जाकउ द्रसटि पूरन भगवानै॥ डेरा निहचलु सच साध संगि पाइआ॥ नानक ते जन नह डोलाइआ॥ (गउ० ब० म० ५पृ० २५६)

भावार्थ-महाराज जी 'ड' अक्षर द्वारा उपदेश करते हैं हे शिष्यो! यह मृत्यु लोक रूपी डेरा तुम्हारा नहीं है। जो असली परमात्मा रूप डेरा है तिस को जानो। यह गृह आदि और शरीर रूपी डेरा नाश हो जाने वाला है। तुम परमात्मा रूपी डेरे की प्राप्ति का यत्न करो। परन्तु वह डेरा गुरु के शब्द द्वारा जाना जावेगा। इन गृह आदिकों को तू कष्ट उठा उठा कर बनाता है। मो इन मन्दिरों वा शरीर का तुम्हारे साथ 'तसू' कहिये गज़ का चौबीसवां भाग भी नहीं जावेगा।

उस परमात्मा रूपी डेरे की वह पुरुष मर्यादा जानता है, जिस पर परमेश्वर की पूर्ण कृपा दृष्टि होती है उसको सद्गुरु का मिलाप करा देता है, सच्चा निश्चल डेरा सद्गुरु की संगत करने से जिन्होंने पाया है सो किसी का डुलाया नहीं डोलता। एक महात्मा भी कथन करते हैंः–

पुल या वेड़ी वांग तू इस दुनिया को जान।
ठहिरन वाली जा नहीं यह राह गुज़र पछान॥

पुनः– काहदा माण करेंतू मूरख आखर नूं हथ झाड़ चले।
छोड़ छोड़ के उठगई सगली साधु सन्त पुकार चले॥
नाम जिन्हांदा जपदी दुनिआं रामकृष्ण अवतार चले॥
अर्जुन दे अब बाण न दिसदे भीम जैसे बलकार चले।
जिन्हां किले सुवरन दे कीते, कूड़े कर तकरार चले॥
आया खाली टुर गया खाली खाली हाथ पसार चले॥
दारा और सिकन्दर जैसे दुनियाँ दे सरदार चले।
पीर पैग़म्बर रहा ना कोई रुस्तम आख़िर हार चले॥

पुनः– जिस कंधी नूं ढाह हमेशां तेरा वासा उसे उचे।
इस बंदे नूं सौ सौ वारी मौत सनेहुड़े मुचे॥
जेहड़े मेंण मिरासन तेरे ओह ने जा मसाणे सुचे।
करनाही कुछकरलै बंदिआ फिरकी करेंगा वकतविगुचे॥

पुनः–चार दिनांदा प्राहुणा प्राणी आसां करदा वडीआं।
पासों देखे सभ लडेंदी देख करेंदा रडीआं॥
मात पिता जिन्हां तैनू जणिआं तिनां भी झोकां लदीआं।
चूहड़ धीआं नहीं पेके रहिणा सर पर साहुरे सदीआं॥

हे प्यारे! जिन्होंने चार दिन का जीवन समझा है वह संसार में कैसे रहते हैं, इस पर इतिहास श्रवण करोः–

एक लक्खू नाम से परमात्मा के प्यारे भक्त थे जिनका नियम था कि साधु, सन्त और अतिथि की सेवा बड़े प्रेम से करनी। एक स्थान धारी साधु था। जो साधु महात्मा उसके पास जाकर ठहरें वह लक्खू भक्त की स्तुति किया करें कि लक्खू भक्त साधु सन्तों की भली प्रकार सेवा करता है। इस प्रकार अनेकों स्तुतियां सुनकर स्थानी महात्मा के मन में विचार आया कि ऐसे प्रभु प्यारे भक्त का दर्शन अवश्य करना

चाहिये। तब वह महात्मा चलकर उस गांव के बाहर आकर बैठ गये। गांव के सत्संगी पुरुष दर्शन के लिये आये और भोजन के लिये विनती करी। तब महात्मा ने कहा, "हे भाई! भोजन तो हमने करना है, परन्तु लक्खू भक्त के घर हम पाहुने आये हैं; सो तुम बताओ वह भक्त कौन है?" वह बोले उनको पता नहीं चला नहीं तो वह अवश्य आते। यदि आज्ञा हो तो हम बुला लावें? तब महात्माने कहा, "अच्छा बुलालाओ"। उसी समय एकमनुष्य जाकर बुला लाया। लक्खू भक्त ने प्रसाद आगे रखकर नमस्कार की और भोजन के लिये कहा तो महात्मा ने कहा, "सत्य वचन"। लक्खू भक्त ने घर जाकर बड़े प्रेम से भोजन तैयार कराया। जब समय होगया तो महात्मा को बुला कर घर ले गये। महात्मा भोजन कर चुके तो लक्खू भक्त ने उनको पलंग पर बिठादिया और स्त्री व कन्या समेत आपभी पास आकर बैठ गये। तब महात्मा ने कहा, "हे भक्तजी! तुम जो तन, मन, धन, खर्च करके इतनी सेवा महात्माओं की करते हो सो किस विचार करके करते हो?" तब लक्खू भक्त बोला, "महाराजजी! मैंने यह सोचा है कि चारदिनका जीवन है, जो तन, मन, धन, महा पुरुषों की सेवा में लगजावेगा वही हमारे काम आवेगा; क्यों कि शरीर का तो अवश्य नाश हो जाना है और शेष धन इसी स्थान पर रह जाना है। फिर महात्मा ने लक्खू भक्त की स्त्री से पूछा हे माई! तू क्या समझ करके सन्तों की सेवा करतीहै? वह बोली, "महाराज जी! मैंने महा पुरुषों से सुना है कि दो दिन का जीवन है; जो शुभ काम सेवा आदि करलिया जावे वही लाभ दायक है"। फिर महात्मा ने लक्खू भक्त की कन्या से पूछा, "हे देवी! तू क्या समझ कर सेवा करती है? तेरी तो अभी खाने, पीने, पहिरने की अवस्था है।" वह बोली महाराजजी! मैंने तो यह समझा हुआ है:-

दो०—लक्खू मुल्ला लख कोह, अम्मां भुल्ली सौ कोह।
मैं तो ऐसा जाणिआ, श्वास आवण हो न हो॥

भाव—यह कि, मेरा पिता लक्खू तो लाख कोस भूला हुआ है,

क्योंकि उन्होंने चार दिन का जीवन समझा हुआ है; और मेरी माता सौ कोस भूली हुई है, क्योंकि उसने दो दिन का जीवन समझा हुआ है; और मैंने तो गुरु के वाक्यों से ऐसे निश्चय किया है:—

हरि जपदिआ खिनु ढिल न कीजई मेरी जिंदुड़ीए मतु
कि जापै साहु आवै कि न आवै राम ॥ (बिहा० म० ४ पृ० ५४०)

इसलिये मेरे को तो एक श्वास का भी भरोसा नहीं है । ऐसे देवी के वचन सुनकर महात्मा बड़े प्रसन्न हुए और कहा हे देवी ! तूने बहुत अच्छा समझा है । तब लक्खू भक्त और उनकी स्त्री ने महात्मा के आगे हाथ जोड़कर विनती की महाराजजी ! हम सदा भूले हुए हैं । आप कृपा करके हमको उपदेश करें जिससे हमारा कल्याण हो । महात्मा ने कहा:—

दो०— माई मरना सच्च है, जीवण जांणी कूड़ ।
इस निश्चय को धार कर, हो रहु संतां धूड़ ॥
सो०—सब अनित्य हैं काय, सब विभूति चण भंगुरी ।
निकट काल नित आइ, धर्म संग्रहि योग अब ॥
दो०—माई सुख भगती रखीं, बरतण रख वैराग ॥
निश्चय रख ब्रह्मज्ञान को, इस विधि पूरन भाग ॥

ऐसा उपदेश देकर महात्मा चले गये । ताते सिद्ध हुआ कि ऐसे वैराग्य वान् पुरुषों पर ही महा पुरुषों की व परमात्मा की कृपा होती है । इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि झूठे शरीरों और पदार्थों से प्रेम को हटा कर वैराग्य को धारण करे ॥

गज़ल:—कह रहा है आसमां यह तो समां कुछ भी नहीं ॥
पीस दूंगा एक गर्दिश में जहां कुछ भी नहीं ॥
जिस जगह था जम का जलसा और खुसरो का महल ।
चन्द कबरों के सिवा अब तो वहां कुछ भी नहीं ॥
गूँजते थे जिनके डंके से ज़िमी ओ आसमां ।
चुप पड़े हैं कब्र में अब हूं हाँ कुछ भी नहीं ॥
तख्त वालों का पता देते हैं तख्ते गोर के ।
खोज मिलता है यहां तक बादे अज़ाँ कुछ भी नहीं ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मनकी प्रबलता

प्रश्नः– हे भगवन्! आपके मुखारविन्दु से वैराग्य का प्रसंग श्रवण कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आगे आपने अधिकारी का तीसरा साधन (षट् सम्पत्ति) वर्णन किया है। सो भिन्न भिन्न उनके नाम और मन व इन्द्रियों की प्रबलता और रोकने के उपाय वर्णन करें ॥

उत्तरः– हे प्यारे! षट् सम्पत्ति के नाम यह हैं। (१) शम, (२) दम, (३) श्रद्धा, (४) समाधानता, (५) उपरामता, (६) तितिक्षा ॥

अब मन की बुराइयां बताते हैं। मलिन वृत्ति का नाम मन है। इसको चोर के समान वर्णन किया है। जैसे चोर उत्तम वस्तु चुराकर ले जाता है तैसे मलिन मन उत्तम गुणों को नाश करता है। जैसे लिखा है:-

कबीर इहमन चोर है, भली वस्तु लै जाइ।
सूते को यह लूटलै, जाग्रत से डरपाइ ॥

प्रश्नः–हे भगवन् जी! आपने कथन किया है कि मन चोर है और भली वस्तु अर्थात् सोये हुए पुरुष के शुभ गुणों को लूट ले जाता है और जाग्रत से डरता है। सो आप पहिले निद्रा का वर्णन करें ॥

उत्तरः–हे प्यारे! महा पुरुषों ने निद्रा पाँच प्रकार की कथन की है- (१) जो निद्रा सब प्राणधारी सोते हैं। (२) सत्संग में आकर सत्शास्त्र के वाक्यों का समझ में न आना। (३) सत्संग में आना और मन घरके कामों और व्यर्थ संकल्प विकल्पों में लगा रहना। (४) सत्शास्त्र को श्रवण करके समझ भी आजानी परन्तु धारणा रहित होने से पिछले स्वभाव को न छोड़ना। (५) मोह निद्रा अर्थात् मायिक पदार्थों से मोह करना। जिज्ञासु पुरुष इस पाँच प्रकार की निद्रा को दूर करे ॥

पहिली निद्रा–अधिक सोने से व्यवहार और परमार्थ दोनों सिद्ध नहीं हो सकते, किन्तु आयु घटती है। कुम्भकर्ण छः महीने सोता था और एकदिन जागता था। उसने अपनी आयु सोनेमें ही नाश करली। पार्वती जी अमर कथा सुनते २ सो गई, जिससे अमर न हुई; ससी सोगई जिसको पुंनू छोड़कर चलागया, तब बिछोड़े से बहुत दुःख उठाये; जीवना मौड़ मालव देश में बड़ा प्रसिद्ध डाकू हुआ है, वह सोया हुआ पकड़ा गया, और सब भाग गये। जिज्ञासु ऐसी हानि पहुँचाने वाली निद्रा को कम करे और प्रातःकाल उठने का नियम बनाले॥

गुरु प्रमाणः–झालाघे उठि नामु जपि निसिबासुर आराधि।
कान्हा तुझै न विआपई नानक मिटै उपाधि॥ (गउ०ब०म०५पृ० २५५)
पुनः– जागत रहे तिनी प्रभु पाइआ सबदे हउ मै मारी॥ (सोरठ म० ३ पृ० ५६६)

महात्मा कहते हैं:–

समझ सोच लै तू मन मेरे प्रेमी हो सुख सोना क्या।
जिन्हां नैनां से नींद गवाई तकिआ और बिछोना क्या॥
जैसा मिल जाए तैसा खाना चिकना और सलोना क्या।
कहित कमाली प्रेमके मारग सीस दिया फिर रोना क्या॥

स्वामी गोविन्दानन्द जी लिखते हैं:–

कुं०–खाना सोना सांतकी गुस्सा ग़म न होइ।
राग द्वेष और खौफ़ से दिल को राखै धोइ॥
दिलको राखै धोइ न कोई ख्वाहिश मन में।
विषय वासना छोड़ ख्याल नहीं तन या धनमें॥
हंता ममता त्याग जब सर्व ब्रह्म ही जाना।
चित्त शान्त होय तभी सांतकी सोना खाना॥

दूसरी निद्रा–'सत्संग में आकर सत्शास्त्र के वाक्यों की समझ न आनी' इसका नाम मन्द बुद्धिता अर्थात् मलिन बुद्धि है; सो नाम और सत्संग से निवृत्त होती है:—

दो०–बार बार अभ्यास से, दुर्मति होत सुजान।
रस्सी आवत जात ही, सिल पर करत निशान॥
पुनः–मुख आत्मा के दर्श हित, चित आदर्श* को शोधि।
सब पर करुणा रेणुकर, बिनसे द्वैत विरोधि॥ (वैराग्य शतक)

*शीशा

गुरुजी भी कथन करते हैं:-

भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥ पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ ॥ दे साबूणु लईऐ उहु धोइ ॥
भरी ऐ मति पापा कै संगि ॥ उहु धोपै नावै कै रंगि ॥ (जपुजी पृ० ४)

तीसरी निद्रा—सत्संग में आना और मन का मनोराज और घर के कामों विषे फिरते रहना। इससे हानि:-

भीखा सेज बिछाई रङ्गली, पड़दे रक्खे दो।
तन दीआ, मन न दीआ, सुहागन किसविध हो ॥

गुरु प्रमाण:-

विचि संगति हरि प्रभु वरतदा बुझहु सबद बीचारि ॥ (वार कान० पृ० १३१४)

भाव—जैसे जो स्त्री पति के पास सेजपर आवे और बीचमें पर्दा रख लेवे जिससे पति के साथ अंग स्पर्श न हो, वह पतिव्रता तथा पुत्रवती नहीं हो सकती। ऐसे ही सत्संग (जो परमात्मा रूपी पति के मिलाप की शैया है) में आकर शरीर से तो बैठा रहे और मन घर के धन्धों में फिरता रहे; भला वह जीव रूपी स्त्री कैसे परमात्मा रूपी पति को प्राप्त कर के सुहागिन बनकर ज्ञान रूपी पुत्र वाली हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

जैसे गुरु साहिब जी ने, क़ाज़ी और नवाब के साथ मसजिद में जाकर भी नमाज़ न पढ़ी तो उन्होंने इसका कारण पूछा। महाराज जी ने उत्तर दिया, "ऐ नवाब! हमारे साथ कोई नमाज़ पढ़ता तो हम पढ़ते। तुम्हारा मन तो क़ाबुल में घोड़े खरीदता फिरता था, हम किसके साथ नमाज पढ़ते?" क़ाज़ी ने कहा कि हमारे साथ पढ़ते। महाराज जी ने कहाकि तुम्हारा मन भी घोड़ी के बछड़े की रखवाली में फिररहा था, इसलिये हम तुम्हारे साथ भी नमाज़ कैसे पढ़ते? भाव—मन व्यवहारों के चिन्तन में लगने पर महाराजजी ने उनकी नमाज़ स्वीकार न करी। इसी आशय पर महात्मा लिखते हैं:-

दो०—माला फेरे हाथ में, जीभ फिरै मुख माहि।
मनुआँ तौ दह दिशि फिरै, यह तौ सुमिरन नाहि ॥

पुनः—माला मनसे लड़ पड़ी, तू क्यों फेरत मोहि ।
मन की माला फेर तू, ईश्वर मिल जाइ तोहि ॥
पुनः—मन की माला फेरी नाहीं, मनका फेर फिराया क्या ।
आदत खोटी गँवाई नाहीं, मत्था फेर घसाया क्या ॥
पुनः—आपने आपने धरम करै, यम नियम विस्तरै ।
जो वस नाहीं मन एक, तौ मिथ्या आचार अनेक ॥
पुनः—लख डराडौत करै दिहाड़ी, सौ सौ फिरे दुआरे ।
तीरथ तप न कोई छोड़ै, कुंटाँ फिरे चारे ॥
रात दिन करै जगराते, दान करे बहु भारे ।
आख गुआला सभे गलाँ झूठीआँ, बिना मन की मत मारे ॥

इसलिये इस निद्रा को जिज्ञासु ऐसे निवृत्त करे । सत्संग में आकर मनको घर के धंधों की ओर से हटा कर प्रेम पूर्वक श्रवण करे, जैसे मोर बादल की घोर को सुन कर प्रसन्न होता है । महात्मा लिखते हैं:—

आसावरी—इकतूँ दूणे होण तिन्हां दे जो साध संगत चल आंदे ।
दूणे तूं चऊंणे होण तिन्हां दे जो सुण के मननूं लांदे ।
सांवें सटे होण तिन्हां दे जो आके पए उघलांदे ।
मूड़ी गुल गुआल तिन्हां दी जो आके रौला पांदे ।

चौथी निद्रा—शास्त्र की समझ भी आजानी परन्तु उस पर निष्ठा न करना । इस पर गुरु प्रमाण:—

कबीर मनु जानै सभबात जानत ही औगनु करै ॥
काहे की कुसलात हाथ दीपु कूए परै ॥ (पृ० १३७६)
पुनः—जानि बूझि कै बावरे तै काजु बिगारिउ ॥
पाप करत सुकचिउ नहीं नह गरबि निवारिउ ॥ (तिलं० पृ० ६२७)
पुनः—तती तोइ न पलवै जे जलि टुबी देइ ।
फरीदा जो दोहागणि रबदी झूरेदी झूरेइ ॥ (पृ० १३८१)

भावार्थ—जैसे 'तत्ती तोइ' कहिये जल में जो खेती जल जावे उसपर चाहे कितनी ही वर्षा होवे वा उस खेतीको कितनाही जलमें डुबो देवें, वह हरी नहीं हो सकती । तैसे ही जो सत्शास्त्र और सत्संग कर के फिर जान बूझ कर शास्त्र विरुद्ध चलता है उसको कोई समझा नहीं सकता:—

दो०—समुझि सुनीति कुनीति रत, जागत ही रह सोइ ।
उपदेशिवो जगाइवो, तुलसी उचित न होइ ॥

इस लिये वह जीव रूपी स्त्रियाँ परमात्मा रूपी पति के बिछोड़े से दुहागिनि हैं, जिससे चौरासी चक्कर (योनियों) में भ्रमती रहती हैं और कभी सुख को प्राप्त नहीं होतीं। सारुक्तावली में लिखते हैं:-

दो०-शास्त्र कर मद हत सुजन, खल को मद उपजंत।
ज्यों दृग भानु प्रकाश हुवै, उल्लू अंध करंत॥

'सुजन' कहिये श्रेष्ठ अधिकारी पुरुष का शास्त्र के पढ़ने और श्रवण करने से 'मद' कहिये अहंकार, 'हत' कहिये नाश हो जाता है। जैसे नेत्र और सूर्य दोनों के होने से प्रकाश होता है और अंधकार दूर होजाता है। और अनाधिकारी खल कहिये मूर्ख पुरुषों को शास्त्र पढ़ सुन कर अहंकार उत्पन्न हो जाता है; जैसे उसी सूर्य प्रकाश से उल्लू अंधे हो जाते हैं अर्थात् उन की आँखें बन्द हो जातीं हैं। इसलिये जिज्ञासु पढ़ सुन कर अमल करके इस निद्रा की निवृत्ति करे॥

पाँचवीं मोह निद्रा-माया के पदार्थों से मोह करना। इस निद्रा से महात्मा जगाते हैं:-

दो०-मोह अंधेरा दूर कर, नींद विकल्पहि मार।
बोध शशी सो ऊगजहि, जाकी प्रभा अपार॥
पुनः-मोह नींद विच सुतिआ, दुख तां नैन उघाड़।
दिन थोड़ा पैंडा घना, काथों विच उजाड़॥
गुरु प्रमाणः—मनु सोया माया बिसमादि॥ (पृ० १८२)

ऐसा उपदेश सुनकर जिज्ञासु ईश्वर के आगे प्रार्थना करते हैं:-

आसावरी-पकड़ उठाल असानूं साईं असी खुले नैण निद्राए।
संतां दे वचन उपदेश करेंदे समझें नहीं समझाए॥
विषय भोग पदारथ सतकरि जाने दुर्जन मित्र बनाए।
सभ चलेंदी नदरी आवे हम दृढ़कर आसन लाए॥
गुरु प्रमाण-मन खुटहर तेरा नही बिसासु तू महा उदमादा॥
खर का पैखरु तउ छुटै जउ ऊपरि लादा॥ (पृ० ८१५)

भावार्थ-हे मन! तू कैसा खोटा है!! तेरा विश्वास नहीं, क्योंकि तू अतिशय करके अहंकारी है। जैसे गधे का पैखड़ (पैरकी रस्सी) मालिक तब छोड़ता है जब उस पर बोझालाद लेता है। तैंसे जिज्ञासु

को चाहिये कि मनको निष्क्रिय न रहने दे अर्थात् शुभ मार्ग में लगाये रक्खे और जब खोटे सङ्कल्प उठावे तब इसका ध्यान रक्खे। जैसे साहूकार चतुर गुमाश्ते का हर समय ध्यान रखता है तो वह अपनी पूँजी को भी बचा लेता है और लाभ भी उठाता है। यदि प्रमाद करे तो लाभ कहां, गुमाश्ता ही पूँजी को खाजाता है। तैसे जिज्ञासु को चाहिये कि मन के बुरे विचारों की ओर ध्यान रक्खे। इससे अपनी पूँजी (श्वास) बचालेगा और लाभ भी उठायेगा। यदि प्रमाद करेगा तो मन रूपी गुमाश्ता पूँजी ही नष्ट कर देगा; क्योंकि यह बड़ा चतुर है और अनेक प्रकार के दाव पेच करके बुरी ओर ले जाकर पूँजी नष्ट कर देता है। इसी आशय पर महात्मा लिखते हैं:—

दो०—जैसा इह मन मसखरा, तैसा और न कोइ।
पल विच वैठे चैन कर, पल विच वैठे रोइ॥

इसी आशय पर भर्तृहरिजी कहते हैं:—

चौ०—काम क्रोध लोभादि रूप धरि। नटवत मोहै तुमको मन अरि॥
तुम्हरे सुख को अहनिसि काटै। सत पथ ते तुमको नित डाटै॥
कीन्ह दीन ते दीन तुम्हें मन। जनम जनम को मन तव दुश्मन॥

इस मन शत्रु से बचने के लिये इस प्रकार यत्न करे जैसे राजा लोग सुरक्षित रहने के लिये क़िले के अन्दर निवास करते हैं:—

जब राजा गोपीचन्द योग धारण करके घरसे चले तो उनकी माता मैना वन्ती ने उपदेश किया हे पुत्र! यह चार बातें मेरी याद रखना:—

(१) फूलों की सेज पर शयन करना। (२) नित्य ताजा मिठाई खाना। (३) नित्य प्रति नया विवाह करना। (४) किले में रहना॥

ऐसे सुन कर गोपी चन्द ने कहा हे माता! एक ओर तो तुमने राज्य भोगका त्याग करा कर योग धारण करा दिया है और दूसरी ओर तुम यह बात कहती हो। भला यह वस्तुएं वन तथा योगी वेष में कैसे प्राप्त हो सकतीं हैं? माताने कहा हे पुत्र! इसका अर्थ तुमने नहीं समझा। पहिले 'फूलों की सेज पर सोना' इसका तात्पर्य यह है कि जब तुमको निद्रा सतावे तब तुम रोड़ों पर शयन करोगे तो भी फूलों

की सेज समान सुख प्राप्त होगा। दूसरा 'ताज़ा मिठाई खाना' इसके कहने का यह आशय है कि जब तुम को खूब भूख लगे तब तुम बासी और मिस्सी रोटी खाओगे तो भी तुमको मिठाई सदृश आनन्द प्राप्त होगा; क्योंकि लोकोक्ति है, "भुख आगे जौं भी जलेबियां"। तीसरा 'प्रति दिन नया विवाह करना' इसका यह आशय है कि नित्य प्रति प्रेम को बढ़ाना-पड़वा के चन्द्रमा की नाईं-जैसे पड़वा का चन्द्रमा एक २ कला कर नित्य प्रति बढ़ता है जिससे उसका प्रकाश और शीतलता भी साथ २ बढ़ती जाती है। पुत्र! ऐसा प्रेम न हो कि जैसे पूर्णमासी के उपरान्त चन्द्रमा की एक एक कला घटती जाती है, ऐसे प्रेम भी धीरे २ घटता जावे। चौथा 'क़िले में रहना' इसका यह तात्पर्य है कि जैसे क़िले में रहने से शत्रु का भय नहीं होता तैसे सत्संग रूपी क़िले में मन वा मन की सेना कामादि (जो महान् शत्रु हैं) का भी भय नहीं रहता। जैसे गारुड़ी विद्या जानने वाले को सर्प का भय नहीं होता तैसे गुरुमुखों को मनरूपी सर्प का भय नहीं होता:-

दो०-दादू यह मन सर्प है, बसतौ हिरदे माहिं।
इसके काटन से प्रथम, तुम क्यों काटत नाहिं॥

और महात्मा भी लिखते हैं:-

हे-हिकमतां होर तूं छोड़ बन्दे, कर बन्दगी सुख जो भालना हैं।
मुंह कुट्यां पवी न कुछ पल्ले, काहनूं औध अकारथी गालना हैं॥
विषे पंज पिवाए के दूध भईआ, चित सर्प वैरी प्या पालना हैं।
की होग हवाल गोपालसिहा, समझें काल ना राम संभालना हैं॥

पुनः- चंचल मन निशदिन भटकत है, जिउं मरकट डार डार पर लटकत है,
रोकत यतन से उसे खिनखिन में, सु तिन ही में अटकत है॥
कांच के हेत लोभ कर मूरख, चिन्तामनि को पटकत है॥
ब्रह्मानन्द समीप छोड़कर, तुछ विषयों में गटकत है॥

ताते सिद्ध हुआ कि मन बड़ा प्रबल है। सत्संग करते २ जब प्रभुकी कृपा होती है तब इसके निरोध (रोकने) की विधि प्राप्त होती है॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शम-मन रोकने के उपाय

प्रश्नः—हे भगवन् ! आपने वर्णन किया है कि जब तक एकाग्र मन से भजन स्मरण न किया जावे तब तक वह सफल नहीं हो सकता। सो कृपया यह बतावें कि मन को कैसे रोका जावे ॥

उत्तरः—हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो गुरु प्रमाणः—

जिउ मन्दर कउ थामै थंमनु। तिउ गुरका सबद मनहि असथंमनु।
जिउ पाखानु नाव चढ़ि तरै। प्राणी गुरचरण लगतु निसतरै ॥
जिउ अंधकार दीपक परगासु। गुर दरसनु देखि मनि होय बिगासु।
जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै। तिउ साधू संग मिलि जोति प्रगटावै ॥
तिन संतन की बाछउ धूरि। नानक की हरि लोचा पूरि ॥

(गउड़ी सुखमनी म०५ पृ० २८२)

भाव—जैसे मन्दिर की छत को खम्भा स्थित रखता है तैसे गुरु के शब्द से विचार द्वारा मन स्थिरता को प्राप्त होता है। सो गुरु के शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक विधि दूसरे निषेध। दोनों से ही मन स्थिर होता है ॥

दृष्टान्त—समुद्र के किनारे एक टिटिहरा और टिटिहरी रहते थे। जब अण्डे देने का समय आया तो टिटिहरी बोली, "हे स्वामिन् ! अब किसी और जगह घोंसला बना लिया जावे क्योंकि यहां समुद्र की लहर के साथ अण्डे बहजाने का भय है।" टिटिहरा ने कहा, "समुद्र की क्या शक्ति है जो हमारे अण्डे बहाकर ले जावे ? दूसरे स्थान पर जाने की कोई आवश्यकता नहीं।" यथा समय टिटिहरी ने अण्डे दिये। समुद्र ने उसके बल की परीक्षा के लिये (जब दोनों पक्षी चोगा लेने को गये थे) अपनी लहर द्वारा अण्डों को बहाकर अपने में किसी

सुरक्षित स्थान पर रख लिया। जब पक्षी लौटकर आये तो अण्डों को न पाकर टिटिहरी बोली स्वामिन्! मैंने आपसे कहा था, परन्तु आपने नहीं माना और हठ करके सारी आयु की कमाई (यह दो ही अण्डे) नष्ट करली। टिटिहरे ने कहा, "तू घबरा नहीं, मैं समुद्र को सुखाकर अपने अंडे लेकर छोडूँगा।" टिटिहरी बोली, "हे स्वामिन्! बराबरी समान बल वाले से हो सकती है।" बल तीन प्रकार के होते हैं—शारीरिक बल, धन बल तथा बाहुबल। शरीर करके तुम्हारी और समुद्र की समानता नहीं। देखो समुद्र का शरीर लाखों योजनों में है और तुम्हारा शरीर एक बालिश्त भर है। धन करके भी समानता नहीं समुद्र में अनेक प्रकार के मोती, रत्नादिक हैं और तुम्हारे पास खाने को एक दिन के लिये भी कुछ नहीं। और बाहुबल की भी समानता नहीं। समुद्रके बड़े २ सम्बन्धी हैं—विष्णु भगवान् जामाता हैं और इन्द्रादिक देवता, कितने ही असुर तथा नाग सहायक हैं। तुम्हारा सहायक मुझ स्त्री को छोड़कर और कोई नहीं। यह सुनकर टिटिहरा क्रोध युक्त होकर कहने लगा कि हे भीरु स्त्री! तूने अपना पति ब्रत धर्म पालन नहीं किया। स्त्री के लिये शास्त्र में ऐसा लिखा है कि विपत्ति के समय अपने पति का साथ न छोड़े:—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥

इस विपत्ति के समय तूने हमारा साहस तोड़ दिया है, इसलिये तू बध करने योग्य है। परन्तु मैंने बहुत आयु तेरे साथ व्यतीत की है इसलिये बध नहीं करता। बस इतना दण्ड तेरे लिये ठीक है कि मेरी आंखों से ओझल होजा। वह बहुत भय भीत होकर अपने स्वामी के चरणों में गिरपड़ी और बड़ी दीनता से बोली कि मेरा अपराध आप क्षमा कीजिये, मैं आपकी तन मन से दासी हूं और आपके इस कार्य में सहायक हूं। टिटिहरे का क्रोध शान्त हुआ और उसको साथ लेकर मन में सङ्कल्प किया कि यदि समुद्र हमारे अंडे नहीं देगा तो हम इसको अवश्य सुखा डालेंगे, चाहे हमारे अनन्त जन्म क्यों न बीत जावें।

ऐसा दृढ़ निश्चय कर वह दोनों इस प्रकार यत्न करने लगे–जितना जल मुखमें आजावे उसको उठाकर समुद्रके बाहर फेंकें और बाहरसे रेत लाकर समुद्र में डाल देवें। दिन भर यही करने लगे; खाना पीना और सोना सब छूटगया। तब उनके सजाती (टिटिहरे) पक्षियों ने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि समुद्र ने हमारे अंडे ले लिये हैं, इस से हमारा और समुद्र का शत्रुभाव होगया है। यदि यह हमारे अंडे नहीं देगा तो हम इसको जन्मान्तरों पर्यन्त भी नहीं छोड़ेंगे। तब उन्होंने बहुत प्रकार से समझाया और कहा कि यह कार्य कठिन है क्योंकि बली से विरोध करना नीति के विरुद्ध और अपनी मृत्यु का कारण है:–

दो०–करै बखीली बली सों, पाप कर्म में प्यार।
त्रिय प्रतीति साजन कलह, मृत्यु द्वार यह चार॥

परन्तु उन्होंने किसी का कहा न माना और अपना दृढ़ संकल्प और उत्साह प्रगट किया। तब टिटिहरे जाति के सब पक्षी उनकी सहायता करने लगे। अन्य जाति के पक्षियोंने भी सब समाचार सुनकर पहले तो समझाया, परन्तु उनका दृढ़ संकल्प देखकर उन्होंने भी उनकी सहायता करनी आरम्भ करदी। कोसों पर्यन्तसमुद्र के किनारे पक्षीहीपक्षी दृष्टि गोचर होने लगे। दैवयोग से देव ऋषि नारद जी भी उसी स्थान पर आ पहुंचे और उनके वहां एकत्र होने का कारण पूछा। पक्षियों ने सब समाचार कह सुनाया। नारदजी जन्मान्तर पर्यन्त भी उनका दृढ़ निश्चय देखकर बड़े प्रसन्न हुऐ और कहा, "हे पक्षियो! मैं तुमको एक सुन्दर युक्ति बताता हूं; उससे तुम्हारा काम शीघ्र ही सिद्ध हो जावेगा। तुम्हारा राजा विष्णु भगवान् का वाहन गरुड़ है। प्रजा का दुःख राजा शीघ्र दूर कर सकता है। इसलिये तुम गरुड़ के पास जाकर प्रार्थना करो, वह तुम्हारा काम जल्दी ही सिद्ध कर देंगे।" यह कह कर नारद जी चले गये। सब पक्षी मिल कर गरुड़ जी की शरण को प्राप्त हुए और सब समाचार कह सुनाया। गरुड़ जी अपनी प्रजा का दुःख देख कर बड़े क्रोधित हुए और तत्काल उस स्थान पर आये। गरुड़जी के आते

ही समुद्र कांपने लगा, मनुष्य का रूप धारण कर अंडे लाकर उनके आगे रखदिये और अपना अपराध क्षमा कराया। तब गरुड़ जी टिटिहरी को अंडे देकर अपने स्थान पर चले गये।

दार्ष्टान्त—तैसे इस शरीर में मन बड़े विस्तार वाला समुद्र है। इसमें तृष्णा रूपी बड़वाग्नि है, अहंकार रूपी पर्वत है, मोह रूपी भंवर है, काम क्रोध रूपी मगरमच्छ तथा ईर्षा, मान, मत्सरादि अन्य भयानक जल जीव हैं। वासनायें तरंगें हैं। जीव टिटिहरा और बुद्धि इसकी स्त्री (टिटिहरी); सत्य संतोष इनके अण्डे हैं। इस मन रूपी समुद्र ने उनका हरण कर लिया है अर्थात अभाव कर दिया है। मनुष्य जन्म में जब यह जीव व बुद्धि सत्संग प्राप्त करके उद्यम करने लगे तो जप, तप, व साधन रूपी अनेक पक्षी उनकी सहायता करने लगे। नारद कृपावत् ईश्वर कृपा है जिससे ब्रह्मश्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप गरुड़ की प्राप्ति हुई। उनके विधि निषेधके वाक्य रूपी पंखों की उपदेश रूपी पवन से मन रूपी समुद्र काँपने लगा और डर कर सत्य संतोष रूपी दैवी संपदा के गुण रूपी अण्डे लौटा दिये। अर्थात् विधि वचनों के उपदेश से आत्मा से भिन्न मन और उसके कार्य सब कल्पित होने से अधिष्ठान रूप निश्चय हुए; इससे मन न रहा। विधि पक्ष से मन कैसे रुकता है? जैसे कोई पुरुष जाती हुई स्त्री को देख कर उसके पीछे खोटे विचार को लेकर जावे और जब जाकर देखे कि माता या बहिन है तो शीघ्र ही उसका मन विकार से रहित हो जाता है और लज्जित होता है। तैसे द्वैत से राग द्वेष होता है। जब सर्व अपना आप निश्चय कर लिया तो फिर किसी से राग द्वेष नहीं बनता, और मन शान्त हो जाता है और जहाँ भी वृत्ति जातीहै सर्व ब्रह्म रूप देखता है। यही समाधिहै। यथा प्रमाणः—

श्लो०—देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधिया॥

दृष्टान्तः—पहिले समय में (जब कुतुबनुमा नहीं थे) जहाज़ चलाने

वाले एक कौआ अपने साथ बाँधकर रखते थे। जब उनको दिशा भ्रम हो जाता था तो वह कौए को उड़ा कर देख लेते थे। (कौए का यह स्वभाव है कि जब उड़ाओ तो वह पश्चिम दिशा को ही जाता है, और एक दिशा का ज्ञान होने पर सब दिशाओं का ज्ञान हो जाता है।) बाहर कहीं कौआ उड़े तो उसके बैठने के लिए अनेकों जगह मिल जाती हैं; परन्तु समुद्र में योजनों तक जलही जल होता है, इसलिये वहाँ उसको बैठने की कोई जगह नहीं मिल सकती थी; इससे लौट कर जहाज़ पर ही आ बैठता था। तैसे मन रूपी कौए को जब राग द्वेष होता है तब तो कई स्थानों पर अटक रहता है; जब सर्व अद्वितीय ब्रह्म का निश्चय करता है तो जल की नाईं सर्वत्र अद्वितीय ब्रह्म को ही देखता है और लौट कर रुक जाता है। और 'निषेध' वचनों के उपदेश से आत्मा से भिन्न संसार और मन का अत्यन्ताभाव निश्चय होता है, तिस से भी मन रुक जाता है। जैसे जिस पुरुष ने मृग तृष्णा के जल को कल्पित समझा वह घड़ा उठा कर नहीं जाता। ऐसे ही जिसने संसार के पदार्थों को असत्य और दुःख रूप समझा फिर उसका मन पदार्थों की ओर नहीं जाता। इस प्रकार जीव रूप टिटिहरा यद्यपि अल्प शक्ति वाला है और मनरूप समुद्र महा दुस्तर है, तथापि दृढ़ यत्न से जीत लिया जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि दोनों प्रकार के वाक्यों से मन वश हो जाता है। यथा गुरु प्रमाणः-

मन समझावन कारने कछूअक पढ़ीऐ गिआन ॥[गउड़ी बा० कबीर पृ०३४०]

भाव-ज्ञान की प्राप्ति के लिये अर्थात् मनके संशयों को निवृत्त करने के लिये कुछ वेदान्त शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥

मन वसि आवै नानका जे पूरन किरपा होइ ।

पुनः-मनि जीतै जगु जीतु ॥ [जपुजी साहिब पृ० ७]

ताते जिज्ञासु को मन वश करने के लिये दृढ़ उद्यम परायण होना चाहिये। इस प्रकार ईश्वर और गुरु की कृपा से मन सुखैन ही वश हो जाता है। गुरु प्रमाणः-

सगल उदम महि उदमु भला ॥
हरि का नामु जपहु जीअ सदा ॥ [गउड़ी सुखमनी म० ५पृ० २६६]

इसी आशय पर कबीर जी कथन करते हैं:-

किउ लीजै गढु बंका भाई ॥ दोवर कोट अरु तेवर खाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥
पाँच पचीस मोह मद मतसर आडी परबल माया ॥
जन गरीब को जोर न पहुचै कहा करहु रघुराया ॥ १ ॥
कामु किवारी दुखु सुखु दरवानी पापु पुंनु दरवाजा ॥
क्रोधु प्रधानु महा बड दुंदरु तह मनु मावासी राजा ॥ २ ॥
स्वाद सनाह टोपु ममता को कुबुधि कमान चढ़ाई ॥
तिसना तीर रहे घट भीतर इउ गढु लीउ न जाई ॥ ३ ॥
प्रेम पलीता सुरति हवाई गोला ज्ञानु चलाया ॥
ब्रह्म अगनि सहजे पर जाली एकहि चोट सिझाया ॥ ४ ॥
सतु संतोखु लैलरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ॥
साधु संगति अरु गुर की कृपा ते पकरिओगढ़ को राजा ॥ ५ ।
भगवत भीरि सकति सिमरन की कटी काल भै फासी ॥
दासुकमीर चढ़िउ गढ़ऊपरि राजलीउ अबिनासी ॥६॥(रागभैरउ कबीरजी पृ०११६१)

कबीर जी के पास जिज्ञासुओं ने प्रश्न किया कि ऐसे बाँके (टेढ़े) क़िले तथा इसके राजा को किन साधनों से आपने जीत कर अविनाशी राज्य पाया है और हम कैसे पावें ? कबीर जी ने उत्तर दिया कि मैंने चित्त में संशय युक्त हो कर ईश्वर के आगे प्रार्थना कर के राज्य लिया है। सो सुनोः- ;

हे परमेश्वर ! किस प्रकार हम यह कारण देह रूप 'बंका' कहिये अति टेढ़ा गढ़ लेवें अर्थात् जीतें ? यह गढ़ कैसा है ? जिसके किनारे 'दोवर कोट' कहिंये दोहरा (संशय विपर्य रूप) कोट है। सो संशय दो प्रकार के हैं-प्रमाणगत और प्रमेयगत, और विपर्य कहिये उल्ट बुद्धि का कोट कहिये क़िला है जिसको ज्ञान के बिना कोई शस्त्र जीत नहीं सकता। पुनः 'तेवर खाई' कहिये तेहरी तीन गुणरूप क़िले के चारों ओर खाई है। तीन गुणों के स्वभाव को बड़े २ ज्ञानी जन भी नहीं उल्लंघन कर सकते (दुर्वासा जी का तमोगुण, विश्वामित्र का रजोगुण और वसिष्ठ

जी का सतोगुण स्वभाव दूर नहीं हुआ) ॥

प्रश्नः—ऐसे क़िले में अपनी 'दैवी सम्पदा गुण' रूपी सेना की विरोधी सेना कौनसी है ? कृपा कर के सेनापतियों सहित सेना का वर्णन करें ॥

उत्तरः—'पांच पच्चीस' कहिये पांच तत्वों के पच्चीस अंशों के मेल से बने देह में 'मोह' (करने योग्य वा न करने योग्य वस्तु के विवेक की हानि), 'मद' कहिये अहंकार, 'मत्सर' कहिये ईर्षा, ऐसे ही और सब कामादि सरदारों सहित सेना है और उपरोक्त सेना के निवास के लिये 'आड़ी' कहिये टेढ़ी 'परबल माया' कहिये बड़े ज़ोर और छल वाली छावनी है। ऐसी सेना पर मुझ दैवी सम्पदा से रहित ग़रीब दीन जन का ज़ोर कहिये बल नहीं चल सकता। ताते हे रघुराया (परमेश्वर) ! मैं क्या करूं ? भाव—ऐसे शत्रुओं की मैं कुछ हानि नहीं करसकता; इससे मैं बड़े दुःख में हूं ॥ १ ॥ पुनः कैसा शत्रु है ? 'काम किवाड़ी' कहिये जिस क़िले का काम रूपी किवाड़ कहिये अनेक प्रकार की इच्छा रूपी फ़ाटक लगरहा है जो किसी को नहीं घुसने देता। पुनः 'दरवानी' कहिये दरवाज़े से बाहरही बल से रोकने वाले दुःख सुख दोनों डयोढ़ी वाले (द्वारपाल) हैं। काहे ते कभी पुरुष सुख के लाभ हेतु आगे जाने से रुक जावे है, कभी दुःख नाश हेतु रुक जावे है; याते रोकने वाले होने से यह द्वारपाल हैं। पुनः इस क़िले में प्रवेश और निकास के लिये पाप पुण्य रूपी एक दरवाज़ा है। और इस क़िले में मन राजा का क्रोध, 'प्रधान' कहिये समस्त सेना का मुख्य सेनापति है जो 'महाबड़ दुंदर' कहिये बड़े २ मल्ल युद्धों को कराने वाला है। तहां, ऐसे बड़े गढ़ में, 'मन मावासी राजा' कहिये मन अजित राजा है ॥ २ ॥ अजित होने की मन के पास सामग्री कहते हैं—'स्वाद' (पांचों विषयों का स्वाद) कहिये आनन्द वाला जिसने 'सनाह' कहिये लोहे का कवच पहिना हुआ है, जिससे विवेक राजा का कोई शस्त्र मनको न लग सके। भाव-विवेक की कोई वार्ता उसके बीच में नहीं प्रवेश कर

सकती और उसके शस्त्रों से बचने वाला 'ममता' का टोप सिर पर पहन रक्खा है। भाव-विवेक का रंचक मात्र प्रवेश नहीं होने देने वाले पदार्थों में ममता कर रक्खी है। और टोप सहित कहा हुआ कवच पहिन कर अपने शत्रु विवेक के साथ युद्ध करने के लिये 'कुबुद्धि' कहिये खोटी बुद्धि रूपी धनुष चढ़ा रक्खा है। उस धनुष पर तृष्णा रूपी बाण धारे हैं जो नाना प्रकार के पदार्थों की अन्तःकरण रूपी भत्था में स्थिर हो रहीहै। हे परमात्मदेव ! 'इउं' कहिये इस प्रकार का तहां समाज होने से हमारे से देह रूपी गढ़ लिया नहीं जाता ॥ ३ ॥ जब इस प्रकार हम दीन हुए तो, हे जिज्ञासु जनों ! अपने स्वामी की कृपा से साधु संगत में हमको गढ़ तोड़ने के लिये जो उपाय सूझे और हमने किये, सो सुनोः-

'प्रेम पलीता' कहिये सब ओर से वृत्ति को हटाकर परमेश्वर की ओर प्रेम लगाना, यह तो हमने गढ़ जीतने के लिए तोप का 'पलीता' कहिये बत्ती करी है और, 'सुरति हवाई' कहिये शुद्ध बुद्धि तोप करी है। पुनः तिस बुद्धि रूपी तोप में सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त किया हुआ 'यथार्थ ज्ञान' रूपी गोला चलाया। 'ब्रह्म-अग्नि' कहिये ब्रह्माकर वृत्ति रूप आग पलीते को लगाकर जब 'सहजे कहिये स्वाभाविक ही उस तोप को चलाया तब एकही चोटमें'सिझाइआ' अर्थात् किलेको तोड़लिया।।४।।

पुनः, किला टूटने के उपरान्त, काम क्रोध आदिकों के साथ 'सत' कहिये 'सत्य बोलना' और 'संतोष' कहिये 'यथा लाभ में प्रसन्न रहना', इन वीरों को लेकर लड़ने लगा। 'तोरे दुइ दरवाजा' कहिये तब सब सेना को मारकर पाप पुराय दोनों प्रकार के कर्मों को भी ज्ञान अग्नि में जलाकर दोनों द्वार तोड़ दिये और तोड़ कर 'साधु संगत' कहिये सन्तों के सत्संग और उपदेश दाता गुरु की कृपा से मैंने'गढ़ का राजा' मन भी पकड़ लिया ॥५॥ और पकड़कर अन्त में(जैसे पुराने राजा के सब काम नया राजा उठा देवे है तैसे) 'भगवत भीरि' कहिये ब्रह्माकार वृत्ति की अधिकता और स्वरूप स्मरण की शक्ति से 'काल का भय' रूपी फांसी भी उस राजाकी काटदी और काटकर मैं (दासकबीर) 'चढ़िओ गढ़ ऊपर

अर्थात् स्थित हुआ। शरीर से परे देह रहित स्वरूप में स्थित हो मैंने अविनाशी राज्य पाया। भाव–मैंने इन साधनोंद्वारा मन राजा को जीता है। इसी प्रकार तुम भी जीत सकते हो ॥ ६ ॥ और भी लिखा है:–

मन दे नाल जिन्हां युद्ध कीता पूरे भाग तिन्हाँ दे।
साईं सद तिन्हांनूँ कीता उह टुरे उते वल जांदे ॥
पूरे सतगुर संग मिलाए गुरमत लए बिगसांदे।
सेवादास जिन्हाँ मनको जीतिआ तिन्हां लधे भारसुखांदे ॥

पुनः–नाम रूप सब झूठ है, ब्रह्म सच्चिदानन्द।
सो मैं ही अद्वैत हूँ, नहीं द्वैत की गन्ध ॥
नहीं द्वैत की गन्ध, यही अभ्यास कमावै।
क्षीण वासना होइ, तौ मन भी नहीं रहावै ॥
करे नित्य सत्संग, करे या प्राणायाम।
बेगि शान्त होजाइ, रहे नहिं मन का नाम ॥

पुनः–मन विवेक के घोड़े चढ़के गुरु वाकां दीआं वागां फड़के। वैरागदे चाबुक लावणा ॥
सीधीसड़क समदममें जाना पड़औभड़ न फिर पछतावना। नित सतसंगतमें आवणा ॥

दृष्टान्त–एकवार सिकन्दर बादशाह के पिता के पास किसी दूसरे राजा ने एक घोड़ा भेजा और कहला भेजा कि इस पर सवार चढ़ाकर इसकी चाल सीधी कर भेजो। वह अति चंचल होने के कारण किसी पुरुष को सवार ही न होने देवे, तिस से सब घुड़ सवारों ने जवाब देदिया। जब सिकन्दर का पिता उसे वापिस करने लगा तब सिकंदर ने कहा कि मैं इस पर सवार होकर इसे सीधा करूंगा। पिताने कहा, हे पुत्र! यह तो बड़े२ सवारों को भी सवार नहीं होने देता, क्या तेरी मृत्यु आगई है? सिकन्दरने कहा, हे पिताजी! एक दिन तो मरना अवश्य है, परन्तु यश के साथ मरना अच्छा है, अपयश के साथ नहीं। यह कह कर उसने घोड़े की बाग डोर अपने हाथ में पकड़ली और देखा कि यह इतना क्यों कूदता है। तो मालूम हुआ कि यह अपनी छाया को देख कर चंचल होता है; इस कारण सवार को चढ़ने नहीं देता। सिकन्दर ने घोड़े का मुख सूर्य के सन्मुख कर दिया, तब घोड़ा ठहर गया; शीघ्र ही सिकन्दर छलांग मार कर सवार होगया। घोड़ा बहुत

बलीथा,इससे वह बहुत वेग के साथ दौड़ा;परन्तु सिकन्दर ने कुछ परवाह न की और बाग ढीली छोड़दी । अन्त में घोड़ा दौड़ कर जब थक गया तो सिकन्दर ने घोड़े की बाग पीछे को मोड़दी और चाबुक मारता हुआ उसे लौटा लाया । घोड़ा पसीने से तर होकर सीधा होगया । पिता ने कहा, "हे पुत्र ! तू इस घोड़े पर सवार हुआ है, इससे मालूम होता है कि एक दिन तू सारी दुनियाँ का बादशाह बनेगा । सिकन्दर बादशाह ऐसा ही हुआ है ।

दार्ष्टान्त–तैसे मन रूपी घोड़ा विचार से पहिले बली और चंचल होता है और मनो मयी पदार्थों को अपने आप ही रचकर वा उनको देख कर प्रसन्न होकर चञ्चलताई करता है । जो जिज्ञासु पुरुष इसको सीधा करना चाहे, पदार्थों की ओर से इसका मुंह मोड़कर इसको आत्मा रूपी सूर्य की ओर करे और फिर इसके विचारों की ओर ध्यान रक्खे । जिधर जिधर यह जावे वहां पर 'अपना आप' दिखावे,तब यह थक कर सीधा हो जावेगा । जैसे कबीर जी कहते हैं ।

अपनै बीचारि असवारी कीजै ॥ सहज कै पावड़ै पगु धरि लीजै ॥

चलुरे बैकुंठ तुझहि ले तारउ ॥ हिचहि त प्रेमकै चाबुक मारउ॥(गउड़ी कबीरपृ० ३२६)

भावार्थ—'सम्पूर्ण पदार्थों को सत्ता स्फूर्ति देने वाला प्रकाश रूप चेतन मैं हूं ऐसा जो विचार किया है वही मन रूपी घोड़े पर सवारी करी है । फिर जैसे घोड़े पर सवार होकर पुरुष रकाबों में पाँव टिकाता है ; तैसे हमने मन रूपी घोड़े पर सवार होते समय एक शान्ति रूपी रकाब बनाई है, जो सम्पूर्ण चंचलता और विषयों की तृष्णा को दूर करती है; दूसरी धैर्य रूपी रकाब है जो 'खान पान आदि व्यवहारों में दीन होना' रूप कायरपना छोड़ दिया है । 'सहज के पावड़े' नाम शान्ति और धैर्य रूप रकाबों में अपने पाँव रख लिये हैं । ऊपर कही रीति से मन रूपी घोड़े पर सवार होकर उसको परमार्थ की ओर चलाते हुये कबीर जी अपने मन के प्रति कहते हैं :–

चलरे बैकुंठ तुझहि ले तारउ ॥ (गउड़ी कबीर जी पृ० ३२६)

'वैकुंठ नगर' कहिये जहां सन्त वासा।

पुनः– साध संगति वैकुंठे आहि ॥ (भैरव कबीर जी पृ० ११६१)

कबीरजी कहते हैं, हे मन रूपी घोड़े ! तू महात्माओं के सत्संग रूपी वैकुन्ठ स्थान में चल। वहां लेजा कर मैं तेरे को संसार सागर से पार करूंगा, डूबने नहीं दूँगा; और यदि तू 'हिचहि' कहिये हठ करके पीछे कुसंग की ओर हटेगा तो 'त' कहिए तेरे को मैं 'परमेश्वर में अत्यन्त प्रेम लगाना' रूप चाबुक मारूंगा–भाव--परमेश्वर में प्रेम लगाके कुसंग से हटाऊंगा। ऐसी ही और युक्तियां मन के रोकने की नीति में बताई हैं॥

कोई एक कंगाल वन में लकड़ी बीनता फिरता था। एक भूत ने उससे कहा कि तू मुझको बेच कर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर। कंगाल ने पूछा तेरे में कौनसा गुण है जिसे देख कर तुझे कोई खरीदेगा। भूत–मेरे में गुण तो यह है कि जैसा भी कोई काम कहेगा, मैं तुरन्त करूंगा और अवगुण यह है कि बिना कामके रहूंगा तो मार दूंगा। कंगाल ने उसे बाजार में लाकर उसके गुण-अवगुण बतलाये। एक साहूकार ने यह सोचकर उसे ५००) रु० में मोल ले लिया कि दूर देशों में मेरी अनेक दुकानें हैं, मैं इसको बिना कामके नहीं रहने दूंगा; मेरा काम चिट्ठी आदि पहुँचाने का बहुत है।

कवित्त–कौतुक निमित्त कहूं जन जिन मोल लीनो,
गुणागुण चीनो खेद मोद भयो जीनो है।
कहे काम औखो झट करे हट देत पोखो,
भयो धोखो भारी मन सुता मंत्र लीनो है॥
अग्र गाडी दार गुरु यापै रे चढ़ोतर तू,
कह्यो धनी मान्यो याते भूत बल चीनो है।
कै स्वरूप लावै कै स्वरूप गीत गावै,
ऐसे संत जनों निज मन भूत वश कीनो है॥

पहिले दृष्टान्त वर्णन करते हैं। 'कहूं जन' कहिये किसी एक साहूकार ने कौतुक के लिये 'जिन' कहिये भूत मोल लिया। 'गुणागुण

चीनो खेद मोद भयो जीनो है'–साहूकार गुण को 'चीनो' कहिये समझ कर अपने मन में 'मोद' कहिये प्रसन्न और अवगुण को समझकर 'खेद' कहिये दुःखी हुआ। 'कहे काम औखो' अर्थात् साहूकार जो भी कठिन काम बतावे, 'झट करैं' कहिये वह शीघ्र ही कर देवे। 'हटदेत' कहिये पीछे हट कर 'पोखो' कहिये परछाईं 'देत' कहिये देवे। साहूकार ने विचारा कि बड़ा भारी धोखा हुआ और चिन्ताके मारे दिन प्रतिदिन सूखने लगा। उसकी पुत्री महात्मा की सत्संगिन थी। उसने पिता से इसका कारण पूछा। साहूकार ने सब हाल कह सुनाया। उसने महात्मा से पूछकर पिता को उपाय बताया। 'मन सुता मंत्र लीनो है' कहिये साहूकार ने पुत्री का मन्त्र (सलाह) मानलिया। 'अग्रगाडी दारु गुरु'-तब आंगन में 'दारु' कहिये लकड़ी 'गुरु' कहिये बड़ी ऊंची 'गाडी' कहिये गाड़दी। 'या पै रे चढ़ोतर तू–'रे' कहिये हे भूत ! इस लकड़ी (खम्भ) पर तू चढ़ और उतर; ऐसे 'धनी' कहिये साहूकार ने कहा 'मान्यो' कहिये भूत ने मान लिया। 'याते भूत बल छीनो है–'इस प्रकार भूत का बल नष्ट होगया॥

द्राष्टान्त–महात्मा रूपी साहूकार, मन रूपी भूत, सदगुरु की बुद्धि रूपी पुत्री है। 'कै' कहिये अथवा, 'स्वरूप लावै' कहिये महात्मा अपने मनको समाधि में स्थित करदेते हैं। जब मन समाधि से उत्थान होता है 'कै' कहिये अथवा 'स्वरूप गीतगावें'–तो अपने स्वरूप के गीतगायन करने में लगादेते हैं। ऐसे सन्त जनों ने 'निज' कहिये अपने मन भूत को 'वश कीनों' कहिये अपने वश में किया है। औरभीमहात्माकहते हैं:-

बरज रही मैं इन विषयन सों मान कही मन मूरख मेरी॥ टेक॥
जनम जनम के वैरी तेरे चौरासी लख फेरत फेरी।
यह मीठे फल जहर भरे हैं सुख थोड़ा और विपत घनेरी।
मृग तृष्णा जग देखि भुलायो प्याम न मिटि है कबहूं तेरी।
ब्रह्मानन्द संग तजि इनको पावे मोच्छ लगै ना देरी।

पुनः– इथे आए सां लाभ उठावने नूं उलटा मूल नूंचा बरबाद कीता।
मंदे कंमादे विच उस्ताद होए भले कंमा नू कदे न याद कीता॥

तरस खावना सी देख गरीब ताईं सगों चित्त नूँ चा जलाद कीता ।
इस मन कपटी ताईं रोकना सी सगों इसनूं चा आज़ाद कीता ॥

गुरु प्रमाण—रे मन रामसिउ करि प्रीति॥स्रवन गोबिंद गुनुसुनउ अरुगाउरसना गीति॥रहाउ॥
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ॥ कालु बिआलु जिउपरिओ
डोलै मुखु पसारे मीत ॥१॥ आजु कालि फुनि तोहि ग्रसिहै समझि राखहुचीत ॥
कहै नानकु रामु भजिलै जातु अउसरबीत ॥२॥ (सोरठ म० ९ पृ० ६३१)

पुनः— मरकट मुसटी अनाज की मन बउरारे लीनी हाथु पसारि ॥
छूटन को सहसा परिआ मन बउरारे नाचिओ घरघर बारि ॥ २ ।
(गउड़ी पूर० कबीर पृ० ३३६)

पुनः एक और महात्मा लिखते हैं:—

मेरे मन परदेसिआ, इह देस पराया जान । अजकल डेरा होवसी, तेरा विच शमशान ॥
लागू तेरे आवसन, अचन चेत अजान । करलै तोशा राहका, होसिया पछोतान ॥

पुनः भर्तृहरि जी लिखते हैं:—

कवित्तः— परिवार के सनेह को निवारि देहि मन,
बीची बुदबुदे रेखा दामिनी समानिये ॥
पुनः दीपतागनि में नागनमें नदी वेग,
माहिं जैसे सुख नाहिं तैसे ताहि जानिये ।
देव नदी तीर की पवित्र धरा पर बैठ,
नील कण्ठ मांहि नीत उतकण्ठा ठानिये ॥
अब ऐसी रीति करो भोगन की प्रीति हरो,
गुरु वेद वाक्य धरो तीनताप हानिये ॥

भावार्थ—हे मन ! परिवार के स्नेह को 'निवार देहि' कहिये दूर करो । परिवार का स्नेह कैसा है ? जलमें लहरें बुद-बुदे और 'रेखा' कहिये लकीर वा 'दामिनी समानिये कहिये बिजली के चमत्कार वत्, भाव-क्षण भंगुर है । पुनः जैसे 'दीपतागनिमें' कहिये प्रज्वलित अग्नि में, नागों में, नदी के वेग में सुख नहीं, तैसे 'ताहि कहिये तिस परिवार में' सुख नहीं; ऐसे जानो । फिर क्या करो ? 'देव नदी' कहिये गंगाजी के किनारे की पवित्र पृथ्वी पर बैठ कर 'नीलकण्ठमाहिं' कहिये महादेव के चरणों में नित्य प्रति उत्साह बढ़ाओ । ऐसी रीति करो कि विषय भोगों की प्रीत दूर हो । वेद और गुरु वाक्यों को धारण करके तीन ताप

'हानिये' कहिये निवृत्त करो। इस प्रकार विचारवान् अपने मनको समझाते हैं और विचार द्वारा परिवार और विषय भोगों से अपने मन को छुड़ा लेते हैं॥

जैसे अश्वमेध यज्ञ का यह नियम है कि जो राजा यज्ञ करना चाहता है तो वह पहिले घोड़े को छोड़ता है। उसके पीछे सेना होती है जो घोड़ा पकड़ने वाले राजाओं को जीतकर उसे छुड़ाती है। इस प्रकार सर्व देशों पर विजय प्राप्तकरके जब घोड़ा लौटकर आजाता है तो उसको हवनकिया जाता है। तैसे विचारवान् पुरुष मन रूपी घोड़े को छोड़ देते हैं और उसके पीछे विचार रूपी सेना रखते हैं। जिस जिस पदार्थपर मन अटक जाता है तो उस २ में ही दोष दृष्टि और असत्य दृष्टि से मन को छुड़ा लेते हैं। इस प्रकार संसार के सब पदार्थों से हटाकर जब मनरूपी घोड़ा लौटा कर लाया जाता है तो फिर इसका ब्रह्म यज्ञ विषे अभाव हो जाता है अर्थात् इसका 'मलिन मन भाव' नहीं रहता—फिर जिधर २ देखता है ब्रह्म रूप ही देखता है॥ जैसे भर्तृ जी लिखते हैं:—

ब्रह्माकार भयो मन जाते। भोग्यो गयो आप खलु ताते॥
पूरब चपल रूप निज खोयो। चित सों मिल चित चितसो होयो॥
चितचित नाम सजाती जाते। भवत अभेद उभय चित ताते॥
पुनः—दो०—चित सों मिल चित सो भयो, जिहं चित तज निज बान।
अस जीवन मुकते पुरुष, नहिं मुक्ते जग जान॥

भावार्थ—'जिहं' कहिये जिस पुरुष का 'चित' कहिये मन 'तज निजबान' कहिये मन्द सङ्कल्प विकल्प रूपी स्वभाव त्याग कर 'चित्तसों' कहिये चेतन से मिलकर 'चित' कहिये मन 'सो' कहिये चेतनरूप 'भयो' कहिये हो गया है, ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष जगत में 'मुक्ते' कहिये बहुत मत जानो अर्थात् ऐसे पुरुष विरले ही जानो॥

पुनः एक और महात्मा भी लिखते हैं:—

सतगुरु पावे भेद बतावे, ज्ञान करे उपदेश।
तब कोला की मैला छूटै, जब आगि करे परवेश॥

जैसे कोयले को अनन्तवार जल में धोवें कभी भी उसकी कालिख

दूर नहीं हो सकती; परन्तु जिस अग्नि से कोयला बिछुड़ा है जब उसमें प्रवेश कराया जाता है तब लाल हो जाता है; पुनः उसकी राख भी सफ़ेद होजाती है अर्थात् कालिख दूर हो जाती है। तैसे कोयले के सदृश मन मैला है। अनेक प्रकार के साधनों से यह शुद्ध नहीं होता। जब सद्गुरु की प्राप्ति होती है और वह उपदेश करके भेद बताते हैं "हे मन ! तू जहां से बिछुड़ा है उसी में मिलेगा तबतेरी अशुद्धता दूर होगी," और ज्ञान द्वारा अभेद करते हैं तो वह शुद्ध हो जाता है। कई प्रेमी मनको इस प्रकार रोक लेते हैं:-

जैसे किसीको यह विचार हो कि मेरा तोता पिंजरे में रहने से दुःखी होता है और बाहर खुला छोड़दूं तो उड़ जायगा; तो वह ऐसा उपाय सोचता है कि जिससे तोते को बन्धन का दुःख भी न हो और वह उसके पास भी रहे। वह उसके उड़ने वाले दोनों ओर के पंखों को काट देता है। तब वह मालिक के पास ही रहता है, उड़ नहीं सकता और पिंजरे के बंधन से भी छूट जाता है। तैसे ही मन रूपी तोते को हठ योग द्वारा बन्धन में रखने से बहुत दुःख होता है और खुला छोड़ने से कार्य की सिद्धि भी नहीं हो सकती। तब जिज्ञासु उसके दोनों पर यानी भूत और भविष्यत् का चिन्तन छुड़ावे है फिर वह मालिक के पास ही रहता है अर्थात् वश में रहता है, बाहर विषयों में नहीं जाता और मोक्ष प्राप्ति रूपी कार्य भी सिद्ध होजाता है।

प्रश्नः--हे भगवन् ! आपने कथन किया है कि मन रूपी तोते के भूत भविष्यत चिन्तन रूपी दोनों पर काट देवे, सो कैसे काटे जावें ?

उत्तरः-भूत भविष्यत का चिन्तवन ऐसे छोड़े, जैसे गुरुप्रमाणः-

चिंता ताकी कीजिये जो अनहोनी होय ॥ (श्लोक म० ६पृ०१४२८)
मेरा कीआ कछून होइ। करहै रामु होइहै सोइ ॥ [भैरवी नामदेव पृ० ११६५]

पुनः-नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई।
चितवत रहिओ ठगउर, नानक फांसी गलि परी ॥[श्लोक म०६ पृ० १४२८]

दो०-गुज़री की चिंता नहीं, आगे धरे न आस।
जो आई मस्तक धरे, तुलसी ताको दास॥
पुनः-जो होनी सो हो चुकी, धीर धरो मन माहिं।
ताके पाछे मत पड़ो, जो अब बदलै नाहिं॥
जो बीती नहिं मुड़ेगी, चिन्ता छोड़ो मीत।
फ़िकर अगाड़ी की करो, पिछली सोच अनीत॥
पुनः- रोंदा शख़्स किसे ने डिठा आशक दरद रंजाना।
पुछिओस की दुःख पहुंचा तैनूं रोंदे हाल निमाना॥
आशक आखिआ इशक सजन दे मार मुकाया मैनूं।
साइल आखिआ किआ दोस्त तेरा मिलदा नाहीं तैनूं॥
आशक आखिआ बेशक कोई जुदा होवे दुख पावे।
मुशकल रहिया हजूर सजनदे पल २ मौत दिखावे॥
पुनः- मनका विसाह मत करो, येह बड़ा शैतान।
इसका ध्यान सदा रखो, हो जावे कल्यान॥

इस पर स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा कथित इतिहास श्रवण करें:-

एक साधु शहर में मधूकड़ी के लिये जाया करता था। रास्ते में एक वैश्या का मकान था। वह प्रतिदिन यह पूछा करे कि तुम स्त्री हो या पुरुष? साधु यह कह दिया करे कि फिर बतावेंगे। इसी प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन वह साधु बहुत बीमार पड़गया। समाचार पाकर लोग दर्शनों को आने लगे। वह प्रश्न करने वाली वैश्या भी आई। उसने साधु को नमस्कार की और कहाकि महाराज! आप तो अपने निज स्वरूप में लीन होते हुए पंच भौतिक शरीर का त्याग कर रहे हैं मेरे प्रश्न का उत्तर कौन देगा? यह सुन कर साधु उठकर बैठ गया और उपस्थित सज्जनों से कहा, हे मित्रो! इस देवी के प्रश्न का उत्तर हम अभी तक नहीं देसके। सबने मिलकर कहा कि महाराज! वह कोई बड़ा कठिन प्रश्न होगा। साधु ने कहा कि देवी का प्रश्न सर्व साधारण पुरुषों को तो सरल प्रतीत होगा; परन्तु उसका अर्थ बहुत गूढ़ है। सब लोगों ने प्रर्थना की महाराज! हमको भी इसके प्रश्न का तात्पर्य समझाने की कृपा करें। साधु-इस देवी का प्रश्न है कि तुम स्त्री हो

या पुरुष ? यह सुनकर सब लोग हंसने लगे और कहा यह अंधी है ? इसको मालूम नहीं होता ? साधु–ऐसे मत कहो, इसकी दृष्टि बहुत ऊंची है। यह जानना चाहती है कि संसार में पुरुष कितने हैं। यह मनुष्यों के चार विभाग करती है:–

(१) स्त्री सेवक, (२) स्त्री उपासक, (३) स्त्री डरपोक, (४) ब्रह्मचारी।

(१) स्त्री सेवक वह हैं जो परमार्थी जिज्ञासु की नाईं गृहस्थ में स्त्री की सेवा करते हैं और जो वह कहती है उसको बिना किसी विचार किये तुरन्त ही पूरा करते हैं। उनका जीवन इसी अर्थ होता है। वह मनुष्य जन्म के सच्चे अर्थ को नहीं जानते हैं। जब इस देवी की वैश्या दशा थी उस समय का इसे अनुभव है। अनेक धनवान् पुरुष इसकी सेवा कर चुके हैं और गुरु की नाईं जूठा प्रसाद भी खाते रहे हैं। मित्रो ! ऐसे मनुष्यों को यह पुरुष नहीं समझती।

(२) स्त्री उपासक वह होते हैं कि जिन मनुष्यों का मन स्त्रियों का सिंहासन बना हुआ है–हर समय स्त्रियोंकी लगन में मग्न रहते हैं अर्थात् उनके सामने हर समय स्त्री सम्बन्धी विचारों की धारा ही चलती रहती हैं। स्त्री के दर्शन और उसकी चर्चा में उनका हृदय प्रसन्न रहता है। इष्टदेव के समान स्त्री का पूजन तथा ध्यान करते हैं। इनका समस्त पुरुषार्थ भी स्त्री अर्पण रहता है। जैसे भंवरा कमल फूल की लगन में फँसकर प्राण तक गँवा देता है ऐसे ही वह लोग स्त्री-बन्धनों और कष्टों को बड़े प्रेम से सहन करते हैं और वियोग से छटपटाते हैं। हे मित्रो ! ऐसे मनुष्यों को भी यह पुरुष नहीं मानती॥

(३) स्त्री डरपोक उनको कहते हैं जो साधु होकर स्त्रियों का मुख नहीं देखते और वनोंमें निवास करते हैं। यदि मार्ग चलते हुए भी स्त्री को आते देखें तो मुंह फेर लेतेहैं अथवा आँखें बन्दकर लेतेहैं। स्त्रियों को अपने पास सत्संग में आने के लिये भी रोकते हैं। ऐसे मनुष्यों को निश्चय होता है कि स्त्री सिंह के समान है और आप शृगाल (गीदड़) बन कर उससे भागते हैं वह समझते हैं कि स्त्रीका आकर्षण हमको दास

बना देगा। उनके इस निश्चय से ही उनकी भीरुता (कमज़ोरी) प्रगट होती है। ऐसे निर्बल हृदय पुरुष इस प्रकार भाग छिपकर अपना निर्वाह करते हैं और कहते हैं कि हम इन्द्रियजित् या बालब्रह्मचारी हैं। इस देवी के उच्च विचारों के अनुसार वह भी पुरुष नहीं। इसका विचार है कि जो पुरुष निर्भीक तथा वीर होते हैं वह भागते नहीं हैं, सामना करके अपने मन को वश में करते हैं॥

(४) ब्रह्मचारी–इस देवी के विचार से ब्रह्मचारी दो प्रकार के हैं: (१) सन्यासी। (२) नियमक गृहस्थी। सन्यासी स्त्री त्यागी होते हैं, उनके मन वाणी और शरीर ईश्वर भक्ति में लगे रहते हैं, वह मुक्ति के इच्छुक होते हैं। स्त्री का दर्शन या संग उनके मन को चलायमान नहीं कर सकता। स्त्री, धन और मान-बड़ाई, इन तीनोंके मोहको आत्मदर्शी वीरही तोड़सकते हैं और वही 'पुरुष' कहलानेके अधिकारी हैं। वेदान्त में आत्मिक स्वतन्त्रता का यही स्वरूप कथन किया है। गृहस्थ-यती अर्थात् ब्रह्मचारी वह होते हैं जो प्रजापति नियम का पालन करते हैं। उनका प्रयोजन सन्तान पैदा करना ही होता है, विषय भोग नहीं। स्त्री के मोह में डूबकर विषयी तन, मन, धन, अर्पण कर देते हैं और नित्य नियम के समान संभोगाग्नि में वीर्य की आहुतियां डालते रहते हैं, यहां तक कि गर्भवती और परस्त्री का भी विचार नहीं करते। और भी कई प्रकार से वीर्य को नष्ट कर डालते हैं। शारीरिक न्याय के नियम को वह जानते ही नहीं। भक्ति और मुक्ति के नियम रूपी मोती संयमी रूपी हंस ही चुगते हैं; विषयी रूपी काग तो गन्दगी में ही अपना निर्वाह करके प्रसन्नरहते हैं। स्त्री व धन दोनोंहो के सेवक और उपासक, सत्यता और स्वच्छता की सड़कपर नहीं चल सकते, बातोंके ही पुल बांधते रहते हैं। लोगों के देखनेमें तो वह परोपकारी प्रतीत होते हैं परन्तु होते स्वार्थी हैं। यह न समझना चाहिये कि नियमक गृहस्थी स्त्री के साथ प्रेम नहीं करते या उसके पालन पोषणमें त्रुटि रखते हैं। नहीं, नहीं, वह न्यायकारी होते हैं, जो उसका अधिकार होता है वह उसको देते हैंऔर

वह जानते हैं कि हमारे प्रेम का पात्र हमारी स्त्री ही है। अपने प्रेम के सिंहासनपर वह किसी और स्त्रीको बैठाना पाप समझते हैं। वह न आप रोग और निर्बलता के पात्र बनते हैं और न स्त्री को ही बनने देते हैं, प्रेम अधिक और भोग नियमानुसार करते हैं। और अनुचित मोह तथा विषय के त्यागी होते हैं। वह न्यायानुसार अपनी तथा अपनी स्त्री की शारीरिक तथा मानसिक व्यवस्था को ठीक बनाये रखते हैं, स्त्री के रूप, रंग, तेज तथा बलके शत्रु नहीं बनते किन्तु उस बाग़ीचे के रक्षक होते हैं और भौरे के समान सुगन्धि से प्रसन्न रहते हैं। और जो विषयी होते हैं वह इस बाग़ीचे को थोड़े ही समयमें नष्टकर डालते हैं। वास्तव में विषयी पुरुष ही स्त्री के शत्रु होते हैं। इसी प्रकार से यह देवी, जो नियम धारी ब्रह्मचारी (अपनी स्त्री के मित्र) होते हैं, उनको पुरुष या वीर मानती है। साधु उस देवी को सम्बोधन करके बोला, हे देवी ! जो सन्त स्त्रियोंसे छिपकर रहतेहैं उनको तू डरपोक समझती है,यह तेरीभूल हीहै। जैसे कोई अपने शत्रु से गुप्त रहकर अपनी शक्ति को एकत्र करके, उस पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकारसे साधन काल में गुप्त रहना शास्त्रके अनुसार है। यह भीरुता नहीं है और न यह भागना और डरपोक पना कहाजाता है। ऋषियों का सिद्धान्त है कि आत्मिक बल के बढ़ने से स्त्री और विषयों पर विजय प्राप्त होती है; परन्तु आत्मिक बल ज्ञान, ध्यान, भक्ति तथा अभ्यास से ही बढ़ता है। आत्मिक बल बढ़ने से वैराग्य होता है; और वैराग्य की दशा में स्त्री आदि विषय शत्रु भासने लगते हैं और दुःख दायी प्रतीत होते हैं। जब यह सांसारिक विषय मित्र और सुखदायी प्रतीत होते हैं तब ही जीवात्मा इनका दास बनता है। तात्पर्य यह कि प्रथम एकान्त सेवन से ही आत्मिक बल बढ़ाया जाता है; और बढ़े हुए आत्मिक बल या सन्यास की दशा में सांसारिक चमकदार पदार्थों के बाण से बच जाते हैं। जैसे कच्चे घड़े को पानी की थोड़ी सी बूंदें ही गला कर नष्ट कर डालती हैं; परन्तु जब वही घड़ा भट्ठी में पकजावे तो उसमें पानी

हर समय भरा रहता है और फिर कोई हानि नहीं करता। तैसे ही एकान्त सेवन से आत्मिक बल बढ़ जाता है जो पक्के घड़ेके समान है॥

साधुजी चार प्रकार के मनुष्यों का विवेचन करके वैश्या से कहने लगे हे देवी! तुम्हारा आशय यह ही है जो मैंने ऊपर वर्णन किया है? तुम्हारे विचार में नियमानुसार चलने वाले मनुष्य ही पुरुष या वीर कहलाने के अधिकारी होते हैं; शेष सब स्त्रियों और माया के दास हैं। और (जैसे तेरा वा तेरे गुरु का विचार है) स्त्री सेवक वा स्त्री उपासक को स्त्री की पदवी न देनी चाहिये। कारण यह कि स्त्री में बड़ी भारी शक्ति है और वह इन पुरुषों को दास बनाये रखती हैं। केवल स्त्री इस कारण कहा जाता है कि खान, पान, शृंगार, भोग विलास, इत्यादि स्त्री के स्वाभाविक लक्षण होते हैं। ऐसे स्वभाव युक्त होने से मनुष्यों को स्त्री कहा जाता है नहीं तो शक्ति में वह स्त्री से अधिक बलहीन होते हैं। फिर इनको स्त्री की पदवी कैसे दी जा सकती है, क्योंकि वह स्त्री से नीचे दर्जे के होते हैं॥

वैश्या कहने लगी, महाराज! आपने मेरे मन के भाव को भली प्रकार से वर्णन किया है, यदि मैं स्वयम् कहती तो ऐसा वर्णन होना कठिन था जैसा कि विद्वान होने के कारण आपने किया है। गुरुदेव की कृपा से मेरे मन का भाव अब ऐसा ही है। कारण यह है कि मेरी लाखों रुपये की सम्पति स्त्री सेवकों और उपासकों की भेटों ने ही बनाई है; और वह दासता में ही रहते हैं। मैं स्वामी और वह सेवक, तो मैं फिर उनको स्त्री की पदवी कैसे देसकतीहूं? आपके भगवे कपड़े देखकर मैंने संकेतकियाथा पुरुषहो या स्त्री। तात्पर्य यहथा भोगी हो या योगी।

तब साधू ने सब लोगों को सम्बोधन करके कहा कि कहो मित्रो! देवी का प्रश्न साधारण था या गूढ़? उपस्थित सज्जनों में से इस देवी के आशय अनुसार कितने पुरुष हैं? यह सुनकर सब चुप हो गये॥

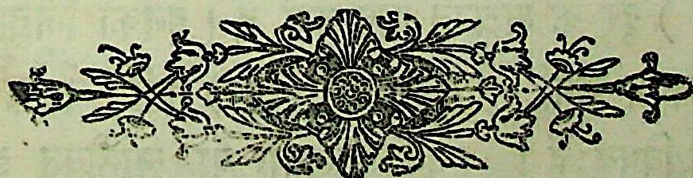
फिर साधु ने सब लोगों को बतलाया कि परमेश्वर का प्रेमी योगी और संसार का प्रेमी भोगी है। प्रभु के प्रेम से शुद्धि होती है और

सांसारिक प्रेम से अशुद्धि। प्रभु के प्रेम से छुटकारा मिलता है और सांसारिक प्रेम से बंधन। प्रभु के प्रेम से शांति मिलती है और सांसारिक प्रेम से भटकना। प्रभु के प्रेम से आचार विचार सुधरते हैं, सांसारिक प्रेम से बिगड़ते हैं। परमेश्वर के प्रेम से सुख बढ़ता है और सांसारिक प्रेम से दुःख। परमेश्वर का प्रेम निर्भय करता है और संसार अनेक प्रकार के भय और शोकों का घर है। तात्पर्य यह है कि संसार को त्यागना और परमेश्वर के चरणों में मनको स्थित करना ही वीर पुरुष का काम है। साधु ने फिर वैश्या का सब पिछला हाल सर्व लोगों को कह सुनाया कि पहले यह लोगों का मैला उठाने वाली भंगिन के समान थी। अब यह गुरु कृपासे देवी या पुरुष या शूरवीर के पद पर पहुँच चुकी है। यह कह कर साधु ने कहा हे देवी! अब तेरे प्रश्न का यही उत्तर है कि हम भी तेरे गुरु के समान पुरुष ही हैं॥

तातै सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु इस प्रकार मन को समझावे और भय दिखावे, जिससे वह खोटे कर्मों की ओर से हटकर परमेश्वर के स्मरण में लगकर शुद्ध हो जावे॥

धारणा-(रामसिउ करि प्रीति रे मन रामसिउ)
रे मन राम सिउ करि प्रीति॥
स्रवन गोविंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीत ॥ १ ॥ रहाउ ॥ राम० ॥
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत॥
कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत॥ १ ॥ राम० ॥
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीत॥
कहै नानकु रामु भजिलै जातु अउसरु बीत ॥ २ ॥ राम० ॥
(सोरठ महला ९ पृ० ६३१)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



काम

प्रश्नः—हे भगवन् ! शम कहिये मन को रोकना, यह प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है; परन्तु इस प्रसंग में आपने वर्णन किया है कि मन रूपी शत्रु काम, क्रोध, लोभादि रूपों को धारण करके तुमको मोहित करलेता है, तुम्हारे सुख को दिन रात काटता है, और सत्य वस्तु की प्राप्ति के मार्ग पर जाने नहीं देता। सो कृपा करके काम क्रोधादिकों का स्वरूप वा अवगुण और इनकी निवृत्ति का उपाय विस्तार पूर्वक वर्णन करें॥

उत्तरः—हे प्यारे ! एकाग्रचित होकर श्रवण करो और इस प्रकार भगवान् के आगे सविनय प्रार्थना करो जैसे गुरु प्रमणः—

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाय अहंमेव।
नानक प्रभ सरणागती करिप्रसादु गुरुदेव॥ (गउड़ी सुखमनी म० ५ पृ० २६६)

हे प्यारे ! मनुष्य के शत्रु तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) दूर के, (२) समीप के, (३) गल चिपटे,।

इन तीनों के मारने के भिन्न २ उपाय कहे हैं:—

(१) दूर के शत्रु को तीर या बन्दूक से, (२) समीप वाले को तलवार या लाठी से और (३) गल चिपटे को अपने बाहु बल से मारा जाता है।

तैसे (१) दूर के शत्रुवत् पाप कर्म हैं। इनको जिज्ञासु बाण या बन्दूक वत् निष्काम कर्मों से दूर करे। (२) समीप के शत्रु वत् शब्द स्पर्शादिक पाँच विषय हैं। इनको तलवार या लाठीवत् इन्द्रिय दमन

(दोष दृष्टि तथा मिथ्या दृष्टि) द्वारा दूर करे और (३) गल-चिपटों वत् काम क्रोधादिक पांच विकार हैं। इनको बाहुबलवत् वस्तु-विचार तथा क्षमादि द्वारा दूर करे। प्रथम कामके अवगुण वर्णनकरते हैं गुरुवाक्यः-

हे कामं नरक बिस्रामं बहु जोनी भ्रमावणह। चित हरणं त्रैलोक्य गंम्यं जप तप सील बिदारणह ॥ अलप सुख अवित चंचल ऊच नीच समावणह ॥ तव भै बिमुंचित साध संगम ओट नानक नारायणह।

(सलोक सहसक्रती म० ५ पृ० १३५८)

भाव-हे काम! तेरा कैसा स्वभाव है? जो जीव तेरे साथ स्नेह करते हैं तिनको तू नर्कों में विश्राम देता है और अनेकों योनियों में तिनको भ्रमाता है। फिर तू कैसा है? जीवों के चित्त को चुरा कर त्रिलोकी विषे तिनका गमन करवाता है, अथवा त्रिलोकी विषेगमन करके जीवों के चित्त को हर रहा है। पुनः तू कैसा है? जप, तप, शील स्वभाव, क्षमा, धैर्य वा यश, इनको तू नाश करने वाला है। तेरे मिलाप से जो सुख है सो तुच्छ है। 'अवित' कहिये जीवों को तू धन रहित कर देता है। और ऊंच जोदेवता आदि तथा नीच जो चाण्डाल आदि सब में समान ही वर्तता है, अथवा ऊंचे को नीच पद में टिका देता है। हे काम! तेरा जो स्वभाव है सो भय वाला है, संतोंका विशेष संग करने से तेरा भय दूर हो जाताहै। काहेते सन्तों के संग में नारायणकी ओट प्राप्त होती है जिससे भय का नाश हो जाता है; पुनः जीव तेरे स्वभाव के आधीन नहीं होता है।

हे प्यारे! इस काम ने मार मार कर जीवोंका नाश कर दिया है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी ऊंची पदवी से गिराकर नीच अवस्था को प्राप्त किया है; और जो बड़े-बड़े राजा ऊंची शान वाले थे उनको भी मोहित कर लिया है। अधिक क्या कहें, समस्त संसार को इसने अपने वश में किया हुआ है। इस पर लिखते हैं:-

बैंत-मारमार के कामने चूर कीता, ऋषी मुनी तपस्वी सदान वाले।
ऊंच पदवी तों डेग के नीच कीता, जतब्रत जो सदा रखान वाले॥
मोह लिया महेश ते शृङ्गीऋषी, राजाभोज काली ऊंची शान वाले।

सारी दुनिआं इस काम ने वश कीती, बचे गुरु उपदेश कमान वाले ॥

पुनः–परनारी दे भोगन वाले होसन कामी कुत्ते ।

चाम चड़िक ते उल्लू होसन रहिन जो बहुते सुत्ते ॥

देखो, कामका प्रभाव ऐसा है कि इससे पीड़ित पुरुष स्त्रियों के कहे पर चलते हैं। गुरु प्रमाणः—

कामिविआपे कुसुध नर से जोरा पुछि चला ॥ गउड़ी वार म० ४ पृ० ३०४)

अर्थ–जो 'कुसुध' कहिये अपवित्र 'नर' कहिये पुरुष 'काम विआपे' कहिये काम करके आतुर हैं सो पुरुष 'जोरा' कहिये स्त्री को पूछ कर चलते हैं; अर्थात् स्त्री के वश में रहते हैं:–

दो०—काम बरोबर व्याधिनहिं, शत्रु न मोह समान।

आन अग्नि नहिं क्रोध सम, सुख न समान सुज्ञान ॥

हे प्यारे ! सबसे पहिले काम को रक्खा है। कामके बराबर व्याधि कहिये दुःख दायक रोग मनुष्य को और कोई नहीं। जैसे किसी के अन्दर भूत प्रवेश कर जावे तो उसको चंचल कर देता है, उसको अपना इष्ट अनिष्ट कुछ नहीं प्रतीत होता। तैसे ही जिसके अन्तःकरण में काम रूपी पिशाच प्रवेश करता है उसको धर्म, अधर्म, किस प्रकार नहीं सूझता:–

दो०– निज युवती के होत ही, शठ लपटहिं परनारि।

भरे ताल सब ठौर पर, काक अचे घट वारि ॥

भावार्थ–'निज' कहिये अपनी, 'युवती' कहिये स्त्री घरमें होते हुए मूर्ख पुरुष पर स्त्री से 'लपटहिं' कहिये लंपट होते हैं। जैसे सब ठौर पर जलके तालाब आदिक भरे हुए होते हैं; परन्तु नीच काग घट का ढक्कन हटाकर 'वारि' कहिये जल 'अचे' कहिये पीता है अर्थात् घट को भ्रष्ट करता है। तैसे ही वह पुरुष कागवत् नीच हैं जो दूसरे का धर्म भ्रष्ट करते हैं। देखो, रावण अपनी अनेक सुन्दर स्त्रियों को छोड़कर सीता जी को खोटी दृष्टिसे उठालाया, जिससे अपना सर्वस्व नाश करवा लिया। उसके नाम पर आज तक धब्बा लगा हुआ है और उसकी राक्षसों में गणना की जाती है, क्योंकि उसने राक्षसी स्वभाव वाला काम

किया था। इससे आदि और भी अनेक इतिहास हैं कि जिनमें लोगों का कामके सम्बन्ध से नाश हुआ लिखा है। इसपर महात्मा लिखते हैं:-

डुला गौरजां ते भस्मासुर देखो, आई मौत ते काम नचावंदा ए।
पूरन भगत उते डुली देख लूणा, काम पुत्र नूँ यार बणावंदा ए।।
जोगा सिंह नूँ कामने घेर लीता, ऐ पर गुरु दशमेश बचावंदा ए।
राणीपिंगला डुली हाथीवान उत्ते, हाथीवान घर वेसवा जावंदाए।
धृग कामियाँनूं करके भरथरीजी, राज छोड़ फ़क़ीर हो जावंदा ए।
ऐमन समझ वैरी इस कामताईं, येह सतसंगनूं ज़रा न चाहवंदाए॥

भस्मासुर की कथा-भस्मासुर दैत्य ने शिवजी के दर्शनार्थ बड़ा तप किया। उससे प्रसन्न होकर शिवज़ी पार्वतीजी समेत प्रगट हुये और वर मांगने को कहा। भस्मासुर ने नेत्र खोले। जब पार्वतीजो को देखा तो उसके प्राप्त करने की इच्छा करके बोला कि मैं जिसके सिर पर हाथ रक्खूं वह भस्म होजावे। शिवजी महाराज ने कहा, "तथास्तुः" यानी ऐसे ही होगा। जब भस्मासुर को ऐसा वर प्राप्त हुआ तब वह शिवजी के सिर पर हाथ रखने को तैयार होगया। वह उसका खोटा विचार जानकर भागे और भस्मासुर उनके पीछे दौड़ा। शिवजी घबराकर एक कन्दरा में छिप गये और विष्णु भगवान् का स्मरण किया। विष्णु भगवान् मोहनी रूप धारण करके भस्मासुर के सन्मुख आये और कहा शिवजी तो मृत्यु को प्राप्त होगये हैं, पहिले मिलकर उनका स्यापा (रोना पीटना) कर लेवें। भस्मासुर काम के आधीन हुआ २ जिस जिस स्थान पर स्यापा करते समय मोहनी हाथ मारे वहां वहां पर वह भी अपने हाथ को मारे। जब मोहनी ने अपना हाथ सिरपर रक्खा तब भस्मासुर ने भी अपना हाथ अपने सिर पर रख दिया। उसी समय वह भस्म होगया। काम वश यह विचार नहीं रहा कि यदि मैं अपना हाथ अपने सिर पर रक्खूंगा तो भस्म हो जाऊंगा। भाव यह है कि काम ने ऐसी दुर्गति के साथ उसका नाश किया।

पूरन भक्त की कथा-राजा शालिवाहन के दो रानियाँ थीं, एक इच्छराँ और दूसरी लूणा। इच्छराँ के गर्भ से जब पूरन भक्त का जन्म

हुआ तो राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर पुत्र के जन्म व नक्षत्रादि के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा कि इसको बारह वर्ष तक किसी कन्दरा में रक्खो; इसके उपरान्त इसका मुख देखना। राजा ने बालक को एक कन्दरा में रखकर उसके पालन पोषण का सब प्रबन्ध कर दिया। बारह वर्ष के उपरान्त बड़ी धूमधाम के साथ पुत्र को बाहर निकाला। जब वह पिता के पास आया तब कुछ देर बाद राजा ने आज्ञादी कि तुम पहिले अपनी विमाता को नमस्कार कर आओ। पिता की आज्ञानुसार पूरन भक्त लूणा के महल में गया। वह उसको देखते ही मोहित होगई और पुत्र-दृष्टि छोड़ कर खोटी दृष्टि से स्पर्श करने की इच्छा की। अनेक प्रकार के दांव पेच खेले, परन्तु पूरन भक्त अपने धर्म से न टला और महल से चला आया। लूणा कोप भवन में जा पड़ी। जब रात्रि को राजा महलोंमें आया और कोप करने का कारण पूछा तो लूणा ने सब दोष पुत्र के सिर पर थोपदिया। कामाधीन राजा ने भी स्त्री के कहे को सच्चा मान कर अपने प्यारे पुत्र के हाथ पांव कटवाकर कूप में डलवा दिया। ताते सिद्ध हुआ कि धर्म का बिगाड़ना काम का ही प्रतापहै॥

"जोगासिंह नूं कामने घेर लीता, ऐ पर गुरु दशमेश बचावंदा ए।"

इस पर संक्षेप से इतिहास श्रवण करें:-

दो०-सिदकी सिख पिशावरी, जोगासिंह सी नाम।
बिन सेवा सतगुरां के, अवर न कोई काम॥
चौ०-दशम पातशाह राखन पास। सेवा का मन बड़ा हुलास॥
सेवा को ही समझे मूल। सदा रहे गुरु के अनुकूल॥
देख सिख की सुन्दर घाल। गुरु कलगीधर सदादिआल॥
दो०-जेते सुख संसार के, सगले सेवा बीच।
उत्तम पदवी पा गये, करके सेवा नीच॥
कवित्त-सेवा विच सिखां दा बहुतेरा समा लंघ गिआ,
माता पिता उस दे अनन्द पुर आवन्दे।
दोवें हत्थ जोड़ के हजूरी विच बैठ गए,
सत गुरां आगे अरज़ आपणी सुणावन्दे॥
आवंदा है चाउ जोगासिंह दे विआहसंदा,
आखदे ने गल नाले उतों शरमावन्दे।

सेवा तो निखेड़ने ते चित नहीं दास करे,
आजज़ी दे नाल संग पूतनूं लैजावंदे ॥
चौ०–मन पापीदाकी भरवासा । पलविच तोला पलविच मासा ॥
सेवादा आया अभिमान । जान गए गुरु जानी जान ॥
एक सिखको निकटबुलाया । पास बैठकर यह समझाया ॥
जाउ सिंह जोगासिंह नाल । एक बात का रहे ख़िआल ॥
जिस दिन होवे इसदा काज । खड़ा होइकर बीच समाज ॥
जब होवन दोइ लावां फेरे । पाती देनी होकर नेरे ॥
दो०–आज्ञा है सत गुरां दी, इह लौ पाती हाथ ।
हुकम गुरांदा मन के, तुर पौ साडे साथ ॥
चौ०–जोगासिंह घरांनूं आया । मात पिता ने काज रचाया ॥
बालक दे सिर बद्धा सेहरा । मात पिता नूं चाउ घनेरा ॥
दो०–अमृत वेला हुंदियां, लगा फेरे लैन ।
सिंह खलोता गुरु का, डिठा भर के नैन ॥

॥ कोरड़ा छन्द ॥

दो लावां जोगासिंह होरां जद लीतींआं । उस गुरु भाई ने अखां सनमुख कीतीआं ॥
जद सिख मिलाई नाल सिख दे अख जी । उस तुरत दिता परवाना आगे रख जी ॥
जद पढ़िआ जोगासिंह हुकम सरकार दा । उठ बैठा जपदा नाम सत करतार दा ॥
दो०–जद आया हुशियारपुर, होणासी हुशियार ।
सुन्दर डिट्ठी वेशवा, दित्ती होश विसार ॥
चौ०–पास वेशवा आया सोते । अगे पहिरेदार खलोते ॥
जोगासिंह ने झाती पाई । आगे डिठा खला सिपाही ॥
गुरुवाक्य–सिखा पैर न पाईं अंदर । अगेराजा वड़िआ मंदर ॥
दूजी वार गल पिया जन्जीर । अगे डिठा खड़ा वज़ीर ॥
जागदिआं सब रात लंघाई । जददेखे तां खलासिपाही ॥
दो०–रात काल के समय में, गया जु तीजी वार ।
बहुत किया शरमिंदिआं, अगों पहिरेदार ॥
पंजे कक्के धार के, झूठ बनाया ठाठ ।
जा सिखा घर आपने, कर जपजी दा पाठ ॥
चौ०–सोचां करदिआं रात गुज़ारी । मेरी बुधिगई किउं मारी ॥
की आखे मेरे सिरदा कंघा । घर कंजरा दे टुरिआ नंगा ॥
कित्थेकड़ा हथां विचपाया । कित्थे कोल वेशवा जाया ॥

की आखन मेरे सिरदे केस । दिल विच ठग्गी साधू वेस ॥
आखे करद नाले किरपान । संग चलेगा धरम ईमान ॥
दिनचढ़िआ टुरपिआ अगारी । औखासमझे मन हंकारी ॥
महाराज की शरनी आया । हथ जोड़ के शीश निवाया ॥
दो०–सतगुर बोले हस्स के, बड़ा भरोसे दार ।
सारी रात खलोतिआं, कटी गुरु बेगार ॥
चरनां ऊपर डिगिआ, अति शरमिंदा होइ ।
हैसी मैला खल्लड़ा, लीआ नामथीं धोइ ॥
पंच कक्के धार के न पंच वैरी वस कीने, गुरु दे सिखो लाज लावणी न कक्किआं ।
काली दास सुख नहीं नाम ते विहूणिआं नूँ, गुरु तों बगैर लोक खावंदेने धक्किआं ॥
"राणी पिंगला इन्ही हाथीवान उते, हाथीवान घर वेशवा जावंदाए ॥"
कवित्त–सोम नाम विप्रवर गिरिजा के वर कर,
लीनों सुधा फल कर दीनों नर नाह के ।
भूपति स्वपत्नीको रानी निज मीतहीको,
ताने दीनो गीतकी को नीकोफल चाहके ॥
आगे गणिका सरागे धरापति आगे धरा,
नर नाथ माथ धुना सुन धुना ताहि के ।
हाहा कामिनीके हित हते काम नीकेअब,
ताहितजो ताहि भजो शीशशशि जाहिके ॥

भावार्थ–सोम कहिये चन्द्र भान नाम करके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। तिसने देवी की बड़ी भारी तपस्या करी । देवी ने प्रसन्न हो कर उसे एक अमृत-फल दिया । ब्राह्मणने सोचा कि यदि मैं इसको खालूँगा तो युवा होकर विषय ही भोगूंगा । मैं ग़रीब हूं, मुझे क्या लाभ होगा? यहां का राजा बड़ा धर्मात्मा है । यह फल उसको देदूं तो वह खाकर अमर हो जावेगा और मेरे को कुछ धन देगा । ऐसा विचार कर वह 'सुधा फल' कहिये अमृत-फल को 'कर' कहिये हाथ में लिया और 'नर नाह' कहिये राजा भर्तृहरि को जाकर 'दीनों' कहिये दे दिया । राजा ने प्रसन्न हो कर उसे लेलिया और ब्राह्मण को धन देकर विदा किया । राजा का रानीसे बहुत प्रेम था । उसने वह फल रानी को देदिया कि उसके युवा होने से विषय भोग में आनन्द होगा । रानी की

मित्रता हाथीवान् के साथ थी। उसने यह सोचकर (कि यदि वह अमर और युवा हो जावेगा तो विषय भोग में आनन्द होगा) उसे दे दिया। हाथीवान् की एक वैश्या के साथ मित्रता थी। उसने सोचा कि यह फल उसे देदूं तो ठीक है। ऐसा विचार कर 'गीतकीको' कहिये वैश्या को 'नीको' कहिये सुन्दर फल 'चाहके' कहिये जान करके देदिया। वैश्या ने विचारा कि मैं इस को खाकर जवान हो जाऊंगी तो और अधिक कुकर्म करूंगी। इससे यह फल यहां के धर्मात्मा राजा को देदूं तो ठीक है। आगे 'गणिका' कहिये वैश्या ने 'सरागे' कहिये प्रीति से 'धरापति' कहिये राजा के आगे लेजाकर धर दिया। 'सुन धुना ताहि के' कहिये तिस वैश्या की धुना कहिये वाणी सुन कर 'नरनाथ माथ धुना' कहिये राजाने पश्चातापसे सिर हिलाया (और विचार किया कि) 'हाहा कामिनी के हित' कहिये अति कष्ट है कि स्त्री के लिये 'तजे काम नीके' कहिये जो शुभ कर्म थे सो नष्ट कर दिये। 'अब ताहि तजो' कहिये अब तिस (स्त्री) को त्यागूं और 'ताहि भजो' कहिये उसको भजूं 'शीश शशि जाहि के' कहिये जिस शिवजी के मस्तक पर दूजका चन्द्रमा है:-

सवैया-जिनको नित मैं चितमो चितमों, तिन की रति मो तन माहि रती ना।
वह आन पुमान के संग रती, पुनि ता मन में गणिका गृह कीना॥
धिक है अबला मृत कन्दरपै, अरु मोहि धिकार जो मार अधीना।
इत रीत समूह की प्रीत तजी, नृप होय योगीश्वर ईश्वर चीना॥

भावार्थ-भर्तृहरि जी कहते हैं कि 'जिनको' कहिये जिस स्त्री का मैं नित्य प्रति चित्त विषे चिंतवन करता रहा हूं 'तिनकी' कहिये तिस स्त्री की 'रति' कहिये प्रीति 'मोतन' कहिये मेरे शरीर विषे 'रतीना' कहिये रंचक मात्र भी नहीं। वह 'आन पुमान' कहिये और पुरुष के संग 'रती' कहिये प्रीति वाली होरही है। पुनः 'तामनमें' कहिये तिस हाथी-वान् के मन में गणिका ने घर किया हुआ है। धिक्कार है 'अबला' कहिये मेरी स्त्री को जिसने मेरे को छोड़कर नौकर से प्रीति करी, 'भृत' कहिये हाथीवान् को धिक्कार है जिसनें ऐसी सुन्दर रानी को छोड़कर वैश्या से प्रीति करी, 'धिक कन्दरपै' कहिये कामदेव ताईं धिक्कार है

'अरु' कहिये पुनः 'मोहि धिकार' कहिये मेरे को धिक्कार है 'जो मार अधीना' कहिये जो मैं काम के आधीन होरहा हूं। इस प्रकार समूह की प्रीति त्याग कर राजा भर्तृहरि ने योगीश्वर होकर 'ईश्वर चीना' कहिये ईश्वर को अपना आप करके जाना ॥

हे प्यारे! काम की प्रबलता पर और सुनो। कामोवाचः-

सवैया-भामिनि राइ विवेकहि के यम आदिक आठ अमात सुनाए।
ते रण रंग मही पहिले हमने सभ ठौरन ठौर दबाए ॥
कौन अहे जग भीतर मों हम जीवत ताहि को नाम अलाए।
वाम उरू तज चिन्त सदा तुम क्यों मन में अरि ते डरपाए ॥

भाव-काम देव कहता है 'हे भामिनि' कहिये हे प्यारी रति! विवेक राजा के यम आदिक आठ 'अमात' कहिये मंत्री जो तैंने सुनाये हैं 'ते' कहिये सो आठों मंत्री 'रणरंग मही' कहिये युद्ध भूमि में पहिले हमने 'ठौरन ठौर' कहिये अन्तः करण विषे ही दबा दिये हैं। सो ऐसा पुरुष जगत विषे कौन है जो हमारे जीतेजी 'ताहि' कहिये तिन आठों का नाम 'अलाए' कहिये उच्चारण करे। हे वामउरू! तू चिन्ता को सदा के लिये त्याग दे। तू क्यों अपने मन में 'अरि' कहिये शत्रुओंसे डरतीहै:-

दो०-कोप अगारी रहै जो, कौन अहिंसा नारि।
ब्रह्मचर्य को मैं सुनो, चण में डारूं मारि ॥

भाव-हे प्यारी! 'कोप अगारी' कहिये क्रोध के आगे 'कौन अहिंसानारि' कहिये ऐसी कौन अहिंसा स्त्री है जो 'रहै' कहिये ठहरे। अहिंसा तीन प्रकार की होती है-मन, वाणी और शरीर करके दुःख न देना-सो क्रोध के आने पर कदापि नहीं रह सकती अर्थात् क्रोधी पुरुष हिंसा से रहित कदापि नहीं हो सकता। और सुनो, ब्रह्मचर्य को मैं चण विषे मार डालूंगा। इससे भय मतकर ॥

ताते सिद्ध हुआ कि काम रूपी शत्रु जो बड़ा प्रबल है उसके साथ जिज्ञासु प्रीति न करे और प्रभुकी शरण को प्राप्त होकर विनती करे कि हे अन्तर्यामी! इससे रक्षा करो !!

वस्तु-विचार

प्रश्नः--हे भगवन् ! काम की प्रबलता को सुन कर हमारा चित्त बड़ा भय भीत हुआ है। कृपया इसकी निवृत्ति का उपाय वर्णन करें ॥

उत्तरः--हे प्यारे ! चित्त को एकाग्र करके श्रवण करो। काम की निवृत्ति का उपाय शास्त्रों में 'वस्तु-विचार' वर्णन किया है। विवेक राजा अपने मंत्री से कहता है, हे मंत्री ! विष्णु-भक्ति ने श्रद्धा द्वारा सन्देशा भेजा है कि तुम निश्चिन्त होकर शत्रुओं का नाश करो, मैं भी तुम्हारी सहायता करूंगी :-

चौपाई-मैं भी करूं सहायता थारी। यों हरि भगति सु कीन उचारी ॥
वस्तु-विचारि च्यहै जग जोई। काम जिने चख भीतर सोई ॥ (प्रबोध चन्द्र नाटक)

वस्तु-विचार का स्वरूप-पुरुष को चाहिये कि स्त्री के शरीर का विचार करे कि इसमें कौन सी वस्तु सुन्दर है और स्त्री को भी पुरुष के शरीर का विचार करना चाहिये। विचार द्वारा यह समझलेना चाहिये कि स्त्री और पुरुष दोनों के शरीर गन्द मन्द के थैले हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। एक महात्मा लिखते हैं:-

हड चम विष्टा मूत्र कै बलग़म, थुक्कां पाक लहू सिर ता पा मित्तर।
सीडगिड बदबू दी खान सारी, किस लई लैं दिल ला मित्तर॥
एह तां गन्दगीदा थैला बन्द होइआ, भुल एस ते नज़र ना पा मित्तर।
जे बदबू इसदी चढ़ दिमाग गईआ, फिर होवसी मुश्किल दवा मित्तर॥

गुरु प्रमाण-बिसटा अस्थि रकतु परेटे चाम। इसु ऊपरिले राखिओ गुमान ॥
एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक॥ बिन बूझे तू सदा नापाक॥ (आसाम०५पृ० २७४)

जैसे एक राजा का नवयुवक पुत्र था। एक दिन वह स्वाभाविक ही

अपने महल के ऊपर जा चढ़ा तो उसकी दृष्टि राज प्रोहित की सुन्दर कन्या पर जा पड़ी जो सिर स्नान करके अपने मकान की छतपर बाल सुखा रही थी। वह उसकी सुन्दरता को देखकर मोहित होगया और खाना पीना छोड़ दिया। माता अनेक प्रकार की बातों से उसका दिल बहलावे और पूछे हे पुत्र! तेरे को क्या रोग है? परन्तु लड़का लज्जा के मारे कुछ न बतावे। इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर माता ने फिर पूछा। लड़के ने सारा हाल कह सुनाया। माता ने कहा हे पुत्र! वह तो हमारे प्रोहित की लड़की है, यह काम अच्छा नहीं। यदि इस बात का पता तेरे धर्मात्मा पिता को लग गया तो वह दुःखी होगा और यहविचारकर कि ऐसा अधर्मीपुत्र मेरेघर पैदा हुआ है, तत्काल विष खाकर मर जावेगा यातुझे मार देगा। लड़केने कहा हे माता! चाहे कुछ भी हो, मेरा जीना तो तब हो सकता है जब उस लड़की के साथ मेरा विवाह होवे। माता ने कहा हे पुत्र! धैर्य धारणकर, मैं यत्न करूंगी। दूसरे दिन जब प्रोहितानी राजमहल में आई तो रानी ने उसको सारा हाल कह सुनाया। प्रोहितानी बिना कुछ उत्तर दिये हुए अपने घर चली आई और मन में बहुत दुःखी होकर विचारने लगी कि यदि मैं अपने पति से कहती हूं तो वह प्राण त्याग देवेंगे और पुत्री का सम्बन्ध न किया तो रानी रुष्ट होजावेगी। इस प्रकार जब बहुत व्याकुल हुई तो लड़की ने माता से उसका कारण पूछा। वह बोली हे पुत्री! बात बताने योग्य नहीं; परन्तु माता का पुत्री से कुछ पर्दा नहीं होता, इसलिये तेरे आगे कहती हूं; तू अपने मन में ही रखना। इस प्रकार कहकर साराहाल सुना दिया। लड़की ने कहा हे माता! तू कुछ चिन्ता न कर, अन्तर्यामी हमारे धर्म की रक्षा करेगा। अब तुम रानी से कहला भेजो कि आपका पुत्र अमुक स्थान पर मेरी पुत्री से मिले, वह आपस में कुछ बात चीत करलेवें। तब प्रोहितानी ने ऐसे ही कहला भेजा जब नियत स्थान पर आपस में मिले तो लड़की ने कहा कि चौथे दिन हमारे घर आना; परन्तु अपनी कोई निशानी मुझे दे जाओ। राजपुत्र ने

अपनी अंगूठी उतार कर लड़की को देदी और दोनों अपने २ स्थान पर लौट आये। लड़की ने घर आकर अपनी माता से कहा हे माता! एक वैद्य को बुलादो। जब वैद्य आया तो लड़की ने उससे कहा कि मुझे तीन जुलाब दीजिये। पहिले से तो शरीर के अन्दर का सब मूत्र, दूसरे से मल और तीसरे से रक्त निकल जावे। वैद्यजी ने तीन पुड़ियां देदीं। लड़की ने उन्हें खाया और जो मल, मूत्र तथा रक्त बाहर निकला उसको अलग अलग पात्रों में रख लिया। चौथे दिन जब राजकुमार आया तो दासी ने उसको उस मकान का संकेत किया जिसमें वह लड़की सोई हुई थी। जब वह उधर गया तो उसको बड़ी दुर्गन्ध आई; उसने नाक और मुंह को रूमाल से ढकलिया और लौटने लगा। तब अन्दर से उस लड़की ने बड़े क्षीण स्वर में बुलाया और कहा कि अन्दर आजाओ। जब लड़के ने पीछे हटकर उधर देखा तब उसकी भयानक मूर्ति देख कर पूछा, 'तू कौन है?' लड़की–मैं वही हूं जिसने अमुक स्थान पर आपको आजका वचन दिया था। लड़का–मैं नहीं मानता। तब उसने वह अंगूठी निकाल कर दिखाई। लड़का बोला मैं अन्दर कैसे आऊं? इधर तो अति दुर्गन्धि आ रही है, और मैं अब तुझे देखना भी नहीं चाहता। तब लड़की ने कहा, हमने जान लिया कि तुम्हारा प्रेम हमारे साथ नहींथा किन्तु विष्टा, मूत्र और रक्त के साथ था जिनके बाहर निकलने से शरीर की यह दशा हो गई है। वे पात्रों में सुरक्षित हैं। उनके साथ प्रेम करो। लड़का देखकर बड़ा लज्जित हुआ और विचारा कि सबके शरीरों में येही वस्तुएं हैं। ऐसा समझकर उसको वैराग्यहुआऔर दोनोंका धर्मबचगया। महात्मा वाक्यः–

दो०–सुन ओ यार प्यारिआ, कन अक्कल दे खोल।
झूठ न होसी ज़रा भी, सच्च सुनावां बोल॥
हड्ड चंम का देह यह, भरिआहै मल मूत।
थुक्कां बलगम पाक सब, है कारज पञ्च भूत॥
थैला है यह गन्दगी, दुरगन्धी अस्थान।
विष्टा ही इस में भरा, और न कुछ भी जान॥

वीरज रक्त मिलाप से, बनती है यह देह।
होइ पविचर किस तरह, जिसका कारन येह ॥

पुनः–(बच बचिआ काम शैतानी तों २)
यह काम बड़ा कम गंदगी दा। भैड़ा राह भुलावे बंदगीदा ॥
छिक सतिआ लैंदा जानी तों। बचबचिआ काम शैतानी तों।
इस किन्हां नूं लाए कलंकदीए। सुट तख़तों राजे रंक किए ॥
नहीं मुड़दा बिना गिलानी तों। बच बचिआ काम शैतानी तों ॥(संतसेवादास)

पुनः–जद विकार का बदल नासे। सत धर्म तद ही प्रकाशे ॥
द्वेष दृष्टि की पवन झुलावो।इस बादल को वेग नसावो ॥

पुनः–तरक बड़ो मम मीत है, होयो मोहि सहाइ।
पावक भोग करालते, लीन्हों मोहि बचाइ ॥

ताते सिद्ध हुआ कि वस्तु-विचार से ही जिज्ञासु काम रूपी शत्रु से बच सकता है। इस लिये जिज्ञासु को चाहिये कि वस्तु-विचार को सन्मुख रक्खे और ब्रह्मचर्य का पालन करे, क्योंकि शरीर सब गंद मन्द के थैले हैं ॥

धारणा–(इसपर करो गलानी यह देही मैली है)
मात पिता की रक्त बिन्दु से उपज्या सब जहान ॥ देही० ॥
हाड मांस नाड़ी का पिंजर विष्टा की है खान ॥ देही० ॥
षट विकार इसमें हैं पाए षट ही उर्मीवान् ॥ देही० ॥
देह टट्टी से प्रीत करे सो मेहतर का बाप पछान ॥ देही० ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



ब्रह्मचर्य

प्रश्नः—हे भगवन् जी! वस्तु-विचार का प्रसंग श्रवण कर के हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपने कथन किया है कि जिज्ञासु को चाहिये कि वस्तु-विचार कर के ब्रह्मचर्य का पालन करे, सो कृपा कर के अब आप ब्रह्मचर्य का प्रसंग वर्णन करें॥

उत्तरः—हे प्यारे! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। ज्ञान के सब साधनों का मूल ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य कर के शारीरिक और मानसिक बल होता है और बल करके सब साधन हो सकते हैं। जैसे जिस मकान की नींव जितनी दृढ़ होवे उसके ऊपर चाहे कितनी इमारत ही बनावें, कोई भय नहीं होता। तैसे ही चारों आश्रमों की नींव ब्रह्मचर्य है। यदि यह नियमानुसार हो तो शेष तीन आश्रम सुख पूर्वक निभाये जा सकते हैं। इस पर स्वामी आत्मानन्द जी ने कैसा सुन्दर लिखा है:—

दो०—ब्रह्मचर्य बुनियाद है, सब साधन को मूल।
तिनको सुख सुपने नहीं, जो इसके प्रतिकूल॥

नियम के विरुद्ध चलने वाले का इतिहास श्रवण करो :—

किसी नगर में एक सत्संगी साहूकार रहता था। उसके घर परमेश्वर की कृपासे एक बड़ा सुन्दर पुत्र पैदा हुआ। जब वह लड़का बारह वर्ष का हुआ तो उसकी सुन्दरता लोगों के दिलों को मोहने लगी। प्रत्येक स्त्री पुरुष के नेत्र लड़के के मुख कँवल को देखते ही भौंरे हो जाते थे। लड़के का शरीर स्फटिक की नाईं, रंग गोरा, लालिमा लिये हुए चमकीला, आकर्षक और मस्ती लाने वालाथा; मानो चित्त चकोरके सामने चन्द्रमा ही था। यहाँ तक कि चलते-चलते मनुष्य उस लड़के को देखकर

चित्रकी नाईं खड़े होजाते थे। वह दर्शनीय लड़का सबको प्यारा लगता था। साहूकार के गुरु बड़े श्रेष्ठ महात्मा थे। वह भी जब आते तो उस लड़के को कृष्ण रूप समझ कर उसके साथ प्रेम करते और साहूकार के भाग्य की श्लाघा करते और कहते कि तेरा पुत्र सबके हृदयोंको आनन्द देने वाला कृष्ण रूप है। इस का अच्छी प्रकार पालन-पोषण करना। पच्चीस वर्ष से पहिले इसके विवाह करने का नाम भी न लेना और कुसंगत से बचाए रखना। यदि ऐसा न करोगेतो इसके शरीरकी शोभा रूपी फुलवाड़ी उजड़ जावेगी। क्योंकि मुख का तेज, सुन्दरता, शारीरिक बल, पुष्टि, चिकनाहट, आकर्षण, धैर्य, वीरता,इत्यादि गुण ब्रह्मचर्य से ही फलते फूलते हैं। यह नियमहै कि पच्चीस वर्षसे पहिलेका विवाह इस बाग़ को ओला रूप होकर नष्ट कर देता है, अर्थात् पच्चीस वर्ष से पहिले किसी प्रकार से भी वीर्य का पतन होना शरीर के लिये बहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार की अनेक शिक्षायें साहूकार को देकर महात्माजी तो तीर्थ यात्राको चलेगये, पीछे लड़के की सगाइयोंका आना आरम्भ हुआ। साहूकार की स्त्री पतिको विवश करने तथा कहने लगी, जीवन का कोई भरोसा नहीं, जल्दी करो ताकि पुत्र के विवाह का भी आनन्द देखलें। इस समय तो बड़े बड़े प्रतिष्ठित घरानों से सगाइयां आरही हैं, कदाचित् फिर ऐसा सम्बन्ध न मिले। भाव यह है कि प्रतिदिन सम्बन्ध की चर्चा होनेलगी। अन्तको लड़के का विवाह चौदह वर्ष की अवस्था में होगया और पच्चीस वर्ष की आयु तक उसके घर दो लड़के और दो लड़कियां भी पैदा होगई। कुछ समय के उपरान्त महात्मा फिर उस साहूकार सेवक के पास आये। जब उन्होंने रामलाल को देखा तो उसकी शोभा, सुन्दरता, इत्यादि गुणों का सब उद्यान (बाग़) उजड़ा पाया न वह रंग है न रूप, न लाली, न शारीरिक बल। पहिले जो नेत्र बड़े और प्रसन्नता देने वाले थे, अब वह भीतर को धसे हुए भयानक से प्रतीत होरहे हैं, लाली के स्थानपर पीलाई छाई हुई है। चरबी का स्थान बलग़म ने लेलिया है जो कि खांसी के द्वारा बाहर

निकल जाती है। वह सुन्दर मुख जो पहिले चलते मनुष्यों को खड़ा कर लेता था अब भयानक और घृणा के योग्य होगया है, कोई न कोई रोग रामलाल को लगा ही रहता है। भाव यह कि अधिक भोग और असमय के विवाहने उसके जीवन, आनन्द और शोभा का सत्यानाश करडाला है। रामलाल की स्त्री भी रूप, रंग, बल और सुन्दरता आदिक का बाग उजाड़ करके चारपाई पर 'हाय हाय' शब्द उच्चारण कर रही है और लड़के लड़कियों को गाली देरही है। शक्ति हीन होने के कारण कोई भी काम उससे नहीं हो सकता। बारह वर्ष की अवस्था के विवाह ने भोग और प्रसूत द्वारा इस का भी नाक में दम कर दिया है। वीर्य की हानि का प्रभाव स्त्री पुरुष दोनों पर बराबर पड़ता है। महात्माजी ने रामलाल के माता पिता को बहुत कुछ कहा कि तुम अपने पुत्र और पुत्र वधू के लिये वैरी बनगये, परन्तु अब पछताने से क्याहो सकता है ॥

महात्माजी ने रामलाल के कल्याणार्थ कुछ उपदेश देने का विचार किया; परन्तु वह लज्जा के मारे उनके पास बैठता ही नहीं था, केवल नमस्कार करके चला जाता था। तब उन्होंने एक युक्ति निकाली। एक गन्धी (अत्तार)को पहले से ही सिखा दिया और एक दिन रामलाल को अपने साथ लेकर उसकी दुकान पर जा बैठे। गन्धीने महात्मा जी को नमस्कार की फिर अपने काम (इत्र निकालने) में लग गया। उसने रामलाल के सामने गुलाब के फूल देग में डाले, चूल्हे पर रखकर उसका मुंह बन्द करदिया और आग जलादी। पहिले फूलोंका अर्क फिर उस अर्क का अर्क निकाला। कई वार ऐसा करने के उपरान्त उसने इत्र निकालकर एक शीशी में भर लिया, फिर रामलाल और महात्मा जी के देखतेही उसको गन्दी नालीमें फेंक दिया। तत्काल रामलाल के मुंह से निकल पड़ा कि इस गन्धीसे बढ़कर और कोई मूर्ख नहीं। क्योंकि इसने बड़े भारी प्रयत्न से इत्र निकाल कर गन्दी नाली में फेंक दिया, अपने रुपये और पुरुषार्थ को जान बूझकर नष्ट कर डाला। महात्मा जी ने

रामलाल से कहा कि इस गन्धी से बढ़कर यदि कोई मूर्ख है तो वह तू है। इस मूर्खता से केवल आर्थिक हानि ही हुई है, जीवन नष्ट नहीं हुआ; परन्तु तूने तो शारीरिक इत्र जो दिल, दिमाग़, आदि सब इन्द्रियों को शक्ति, तेज, बल, सुन्दरता, आदि का देने वाला था उसको गन्दी नाली में फैंक कर नष्ट कर दिया है। किसी ने सत्य कहा है:-

आप भी गलिओं ब्राह्मण जजमान भी नाले।

भाव--तू आप तो निर्बल हो ही गया था, परन्तु तू ने अपनी स्त्री को भी रोग और निर्बलता का पात्र बना दिया है। महात्मा जी का यह उपदेश सुन कर रामलाल को चेत हुआ, क्योंकि यह बात उससे ही सम्बन्ध रखती थी। अब तो मारे लज्जा के गर्दन ऊंची नहीं होती थी, पश्चाताप करके रोने लगा। तब महात्मा ने कहा कि अब रोने से क्या होता है, आगे के लिये चेतो। इसी आशय पर महात्मा लिखते हैं:-

॥ भजन ॥

धारणा-[अब रोनेसे क्या होता है। क्यों वक्त मुफ़तमें खोता है]

चिड़ियों ने खेत उजाड़ा। ना देखा नैन उघाड़ा।
तू लम्बी तान के सोता है। अब रोने से० ॥
ग़फ़लत में जन्म उड़ाया। फल इसका नहीं उठाया ॥
अब नाहक़ क्यों रोता है ॥ अब रोने से० ॥
विषयों में बहुत गंवाई। कुछ नाहीं करी कमाई।
रहती को काहे डुबोता है ॥ अब रोने से० ॥
दुःखों पर दुःख दिखाए। दुनियां ने मजे चखाए।
तू अबतक हाथ न धोता है ॥ अब रोने से० ॥
कीकर से आम न होवे। कर मेहनत सारी खोवे।
क्यों बीज पापका बोता है ॥ अब रोने से० ॥
दुनियां की ख्वाहिश छोड़ो। मन एक गोविंदसे जोड़ो।
देखो सुख कैसा होता है ॥ अब रोने से० ॥

इस प्रकार महात्मा ने रामलाल को उपदेश दिया और दोनों अपने स्थान पर चले आए। दूसरे दिन महात्मा जी ने उस परिवार के सब स्त्री पुरुषों को एक स्थान पर एकत्रित करके उपदेश करना आरम्भ

किया (बहुत से लोग उपदेश में सम्मिलित हुए क्योंकि वह परिवार महात्मा जी का सेवक था):—

प्यारे मित्रो! चार वर्ण और चार ही आश्रम शास्त्रकारों ने वर्णन किये हैं। परन्तु सब वर्ण, आश्रम और मनुष्य जीवन की जड़ केवल ब्रह्मचर्य आश्रम है। जैसे धन की अपव्ययता (फ़ज़ूल खर्ची) आर्थिक दशा को बिगाड़ देती है तैसे ही वीर्य की अपव्ययता जीवन भर के लिये शारीरिक तथा मानसिक, सुखों से वंचित करदेती है। यह वीर्य क्या है? जो कुछ भी आहार खाया जाता है उसका (कई अवस्थाओं के बदलने के उपरान्त) वीर्य रूप इत्र बनता है। पच्चीस वर्ष से पूर्व ही उसका व्यय करने से शरीर की प्राकृतिक उन्नति में हानि होती है। बहुत से मूर्ख लड़के लड़कियां वीर्य रक्षा के लाभ को न जानते हुए अज्ञान के कारण वीर्य पात करते रहते हैं और बड़े होकर पश्चाताप करते हैं और उसके फल (दुःख) को भोगते हैं। दूसरे जो छोटी अवस्था में विवाह करते हैं वह भी अपने जीवन को नष्ट कर देते हैं। इसका प्रमाण स्वयम् रामलाल आपके सन्मुख उपस्थित है। इसका रंग, रूप, तेज कैसा मनोहर और प्रसन्न करने वाला था और आज क्या है, इसको आप सब जानते ही हैं। सज्जनो, मनुष्य जन्म मुक्ति पाने के लिये है, भोग तो सब योनियों में भोगे जाते हैं। जब तक ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को धारण न किया जावे तब तक मुक्ति असम्भव है। शुद्ध बुद्धि के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। त्याग मानसिक बल है। भाव यह कि धैर्य, वीरता, चिन्ता हीनता, आदिगुण ब्रह्मचर्य से फूलते फलते हैं। जो पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता वह मुक्ति कैसे पा सकता है? अभ्यास के लिये बल की आवश्यकता है। तात्पर्य यह कि सांसारिक तथा पारमार्थिक सुख ब्रह्मचर्य पालन करके बलवान् ही भोगते हैं। रामलाल को तो आंखों से दिखला दिया है, अब आप लोगों को दृष्टान्त द्वारा समझाता हूं। जैसे फूलोंका रस अग्निकी भट्ठी पर चढ़ाकर यन्त्र द्वारा निकाल लिया जाता है तो वह फूल शोभा से

रहित हो जाते हैं। फिर न उनकी कोमलता रहती है न सुन्दरता और ना हीं उनमें सुगन्धि आदि कोई गुण ही रहता है। वह बेकार होने के कारण फैंक दिये जाते हैं। तैसे 'पुरुष शरीर' रूप पुष्प हैं, वीर्यरूप रस है। स्त्री रूप अग्नि है जो संभोग रूपी यन्त्र द्वारा वीर्य रस को वार वार बाहर निकालती रहती है। परिणाम यह होता है 'पुरुष शरीर' रूपी पुष्प शोभा से रहित हो जाते हैं। शरीरका प्रत्येक अंग शक्तिहीन हो जाता है और पुरुष जल्दी बूढ़ा और रोगी होकर मृत्यु का ग्रास हो जाता है। ताते हे प्यारे! यदि तुम अपना और अपनी सन्तान का भला चाहते हो तो नियम पूर्वक पच्चीस वर्ष के लड़के का विवाह करो। और शास्त्रोक्त नियम का पालन करो। जब स्त्री मासिक धर्म के उपरान्त चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होवे तब उसके साथ भोग का नियम है। जब वह गर्भवती हो जावे तब भोग वर्जित है। इसके उपरान्त जब तक बच्चा जन्म लेकर माता का दूध पीता रहे तब तक भोग न करे। इस प्रकार करने से शारीरिक और मानसिक बल बना रहेगा और स्त्री पुरुष दोनोंको लाभ होगा, नहीं तो पापका भागी बनना पड़ेगा। यह भी न समझ लेना कि परस्त्री के साथ सम्बन्ध करने से ही पाप होता है; नहीं, अपनी स्त्री से भी अनुचित व्यवहार करनेसे अर्थात् भोगको नित्य नियम बना लेने से भी महा पाप होता है; क्योंकि परस्त्री से तो कभी-कभी सम्बन्ध होता है, परन्तु अपनी स्त्री के संग (कोई रोकटोक न होने के कारण) अधिक भोग तो पुरुष का सत्यानाश ही कर देता है। ऐसी दशा में पानी के समान वीर्य बहता रहता है, जिसका फल यह होता है कि स्त्री पुरुष दोनों के शुभ गुणों और शरीर रूपी बाग़का नाश हो जाता है। नीति में भी लिखा है :-

सवैया-काम कहै मम राखत जेतिन की रक्षा तिनदेव करेंगे।
जेमम त्याग कुभूमि विषे तिन देव कुपे तिन सुख हरेंगे॥
ठौरनहीं तिनलोक विषेतृण ज्यों भ्रमिहै भ्रमपुंज धरेंगे।
जारतहैं तिन ताप तिन्हें मम धारत आरत सिंधु तरेंगे॥

भावार्थ-कामदेव कहता है कि जो पुरुष 'मम राखत' कहिये मेरी

रक्षा करेंगे अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे तिनकी 'तिन देव'–तीनों देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, रक्षा करेंगे; और जो पुरुष मेरे को 'कुभूमि' अर्थात् परस्त्री आदिक खोटी भूमि विषे त्यागेंगे तिन पुरुषों पर 'तिन देव कुपें' कहिये तीनोंदेवता कोप करेंगे। 'तिनसूख हरेंगे' अर्थात् तिन पुरुषों का सम्पूर्ण सुख नाश करेंगे। 'ठौर नहीं तिन लोक विषे' यानी तिन पुरुषों को तीनों लोकों में शुभ स्थान न मिलेगा, किन्तु जैसे 'तृण'–सूखा तिनका भ्रमता है तैसे 'पुंज' कहिये समूह चौरासी लाख योनियों में भ्रमते हुए 'श्रम'–थकावट को धारण करेंगे।'जारत हैं तिन ताप तिनें' अर्थात् तिन पुरुषों को तीनों ताप दहन करेंगे। 'मम धारत आरत सिन्धु तरेंगे' कहिये मेरी रक्षा करने वाले यानी ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले दुःख रूप संसार से तरेंगे अर्थात् ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त होंगे। ब्रह्मचर्य को पालन करने के लिये और शास्त्र कारों ने भी आठ प्रकार के मैथुन का त्याग बताया है।

श्रवण स्मरण औ कीरतन, चितवन बात इकंत।
दृढ़ संकल्प प्रयत्न तन, प्रापति अष्ट कहन्त॥ (विचारमाला)

भाव–सनातन मत में जो पुरुष आयु पर्यन्त विवाह न करे अथवा स्त्री का स्पर्श न करे उसको यती कहा जाता है। इस मत में बहुत ही यती हुए हैं, परन्तु सबमे बड़े छः यती गिने गये हैं, जिनके नाम यह हैं:–(१) भीष्म, (२) गोरक्षनाथ, (३) लक्ष्मण, (४) हनूमान, (५) भैरों (६) दत्तात्रय। परन्तु गुरु घर में निज स्त्री व्रतधारी पुरुष को भी यती कहा गया है। यथा गुरु वाक्य :–

सुध जबते हम धरी बचन गुर दए हमारे॥
पूत इहै प्रण तोहि प्राण जब लग घटि थारे॥
निज नारी के साथ नेहु तुम नित बढईयहु॥
पर नारी की सेज भूल सुपने हूं न जईयहु॥ (पा० १०)

यथा भाई गुरुदास जी:–

एका नारी जती होइ परनारी धी भैण वखाणै॥ (वार ६ पउड़ी ८)

भाव–एक पत्नीव्रत पुरुष जो है सो:—

देख पराईआं चंगीआं मावां भैणां धीआं जाणै ।। (वार २९ पउड़ी ११)

जो इस वाक्य को धारण करता है, ऐसा गुरु का शिष्य सदा ही यती है। सो पुराने यतियों अथवा गुरु महाराज के बताये हुए नियम के अनुसार हर एक पुरुष को यती होना चाहिये। इस ब्रह्मचर्यके पालन करनेसे मनुष्यको जोशक्ति प्राप्त होजाती है उसपर इतिहास श्रवण करें:-

जगद्गुरु श्री अर्जुन देवजी का एक शिष्य जहाँगीर बादशाह के महलों की ड्योड़ी का द्वारपाल था। वह गुरुबाणी का प्रेम से पाठ किया करता था और ब्रह्मचर्य धर्म में पूर्ण था। सुन्दरता में भी अनुपम था। बादशाह की एक पुत्री युवावस्था वाली थी। उसका विवाह अभी नहीं हुआ था। दैवयोग से एक दिन उसकी दृष्टि उस शिष्य पर पड़ी। उसके मुख कंवल की कान्ति को देखकर उसका चित्त आकर्षित होगया। उसने निश्चय कर लिया कि मैं इसको अपना पति बनाऊंगी और यदि यह न प्राप्त हुआ तो अपना शरीर त्यागदूंगी। उसी समयसे वह उसके वियोग में बहुत व्याकुल रहने लगी जिससे खाना, पीना, सोना, आदि सब छूट गया और शरीर दुर्बल होगया। माता ने पूछा हे पुत्री! तुझको क्या दुःख है?परन्तुवह चुपरही। वार२पूछनेपर उसने सबसमाचार कहसुनाया। माता बोली यह कोई कठिन बात नहीं, तू सोच त्यागदे। मैं आज रात को बादशाह से स्वीकार करालूंगी। तब उसको कुछ धैर्य हुआ। रात्रि को जब बादशाह महलों में आया तब बेगम ने बादशाह को सब वृत्तांत सुनाया। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् तथा पुत्री की दशा देखकर बादशाह ने कहा कि उसको किसी देश का राज्य देकर (अपने समान बनाकर) पुत्री का मनोर्थ पूर्ण करूंगा। प्रातःकाल होते ही सब प्रबन्ध हो जावेगा। तब उसके चित्त को बहुत प्रसन्नता हुई और सब शयन कर गये। एक दासी (जिसका पति भी उसी डयोढ़ी में द्वारपालथा) यह सब सुनरही थी। उसने अपने पतिसे सब बातकही। उसने सुनकर उस गुरु शिष्यको यह प्रसन्नताकी बात सुनाई और कहा तुम्हारे बड़े भाग्य हैं जो तुम बादशाहके जामाता बनोगे। गुरु शिष्य ने हंसकर कहा जैसी गुरु

आज्ञा होगी वैसा होगा। फिर विचार किया, मेरा प्रण तो यह है कि मन, वाणी और शरीर करके कभी स्त्री का स्पर्श नहीं करना; और अब यह बात विपरीत होती दृष्टि आती है। इसलिये अपने प्रण को पालन करने के लिये यहाँ से कहीं भाग चलूं। ऐसा निश्चय करके उस दूसरे द्वारपाल से कहा कि तुम सावधान रहना मैं कुछ कार्य करके शीघ्र ही आजाऊंगा। उसने कहा अच्छी बात है। तब वह गुरु-शिष्य मनमें गुरुजी का ध्यान करके वहां से निकल पड़ा और पैदल ही चलते चलते दिल्ली से पेशावर पहुँच गया। उधर जब प्रातःकाल हुआ तो बादशाह ने उसे बुलाने को सेवक भेजे। दूसरे द्वारपाल द्वारा उनको ज्ञात हुआ कि वह रात्रि में किसी काम को गया था; फिर लौट कर नहीं आया। सेवकों द्वारा यह सूचना पाकर बादशाह ने आज्ञा दी कि उसे पकड़ कर लाया जावे। जो कोई उसका खोज निकालेगा उसको बहुत पुरुस्कार दिया जावेगा। देश देश में उसकी खोज होने लगी। वह पेशावर में पकड़ा गया और वहां के अधिपति के हवाले किया गया। उस ने बादशाह को सब समाचार लिखा और आज्ञा मांगी। बादशाह ने पुत्री से पूछा कि उसके साथ कैसा व्यवहार किया जावे। उसने कहा हे पिताजी! यदि वह मुझको स्वीकार करे तो जिस सवारी पर उसकी इच्छा हो उसी पर चढ़ाकर बड़ी धूम धाम से लाया जावे। यदि वह न माने तो उसका सिर काट कर यहां मंगवाया जावे। मैं उसका दर्शन और स्पर्श करूंगी। बादशाह ने ऐसा ही उत्तर लिख भेजा। उसे पढ़ कर पेशावर के अधिपति ने उस शिष्य को बुलवाया और बादशाह की आज्ञा सुनाई, फिर अपनी ओर से भी बहुत समझाया। परन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रहा और कहा कि बादशाह की 'सिर काटने वाली' आज्ञा का आप पालन करें। मेरा प्रण है कि स्त्री के शरीर को तन मन करके स्पर्श नहीं करूंगा। पेशावर का अधिपति उसका धैर्य देख कर आश्चर्य करने लगा और निरुपाय होकर बादशाह की आज्ञा पालन करने के लिये उस शिष्य से कहा, अच्छा, तुम अपना सिर

कटवाने के लिये तैयार हो जाओ। तब उस गुरु-शिष्य ने स्नान करके गुरुबाणी का पाठ किया, फिर सिर झुका कर कहा, लो, काटलो। तब बधिकों ने सिर काट कर धड़ से पृथक कर दिया। पेशावर का अधिपति शिष्य का ऐसा धैर्य देख कर मन में पश्चाताप करने लगा। फिर उस सिर को सन्दूक में बन्द कर के दिल्ली में बादशाह के पास भेज दिया। बादशाह ने भी सिर को देखकर बहुत शोक किया और उसको अपनी पुत्री के सन्मुख रख कर कहा अब जैसी तेरी इच्छा हो वैसे कर पुत्री ने वस्त्राभूषण पहन कर कहा हे पिताजी! इस सिर को उठाकर मेरे हाथोंपर धरदो। उसने केशोंको पकड़ कर सिर उठाया और अपनी पुत्री के हाथोंपर रखने लगा तो वह हाथों के साथ स्पर्श न करे। बहुत यत्नकिया परन्तु सिरने हाथोंके साथ रंचकमात्र भी स्पर्श न किया। बादशाह से आदि लेकर जो शरीर उस समय विद्यमान थे सब चकित होगये। तब पुत्री ने कहा, हे पिताजी! क्या आप इस भेद को जानते हैं कि यह सिर मेरे हाथों से क्यों नहीं स्पर्श करता? बादशाह ने कहा हे पुत्री! हमारी बुद्धि में यह भेद नहीं आया। पुत्री ने कहा पिताजी! मैं इस भेद को जानती हूं, सुनोः—जिस परमेश्वर के प्रेमी ने तन मन से स्त्री के साथ स्पर्श का त्याग किया हुआ है तिसके मरने के अनन्तर भी उसके शरीरका एक अंगतक स्त्री के साथ स्पर्श नहीं करना चाहता। यह विलक्षण प्रभाव ब्रह्मचर्य का है। इसलिये अब मैं भी अपनी आयु इसी धर्म में व्यतीत करूंगी। यह सुनकर सब ने उस शिष्य को धन्यवाद दिया।

और भी अनेकों ऐसे इतिहास हैं। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से स्यालकोट में पूरन भक्त के कूप को अबतक पूजा जा रहा है। अतः गुरु मत के अनुसार पुरुष निज नारी व्रत और स्त्री निज पतिव्रत को पालन करे; क्योंकि वर्तमान् समय में ऐसा ही योग्य है। गुरु प्रमाणः—

पर धन पर दारा पर हरी ॥ ताके निकट बसै नर हरी ॥ (भै० नामदेव० पृ० ११७३)

हे प्यारे! श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने रामायण-अयोध्या काण्ड में

वाल्मीकि जी से अपने रहने के लिये स्थान पूछा। तिस पर वाल्मीकि जी ने कहा है:--

चौ०--कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत शरण तुम्हारी॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराय विषते विष भारी॥
जेहरषहिं पर सम्पति देखी। दुखित होहिं पर विपति विशेखी॥
जिनहिं राम तुम प्राण पियारे। तिनके उर शुभ सदन तुम्हारे॥

पुनः–दोहाः–सत्य वचन अरु दीनता, पर त्रिय मातु समान।
इतने में हरि ना मिलें, तुलसी दास ज़मान॥

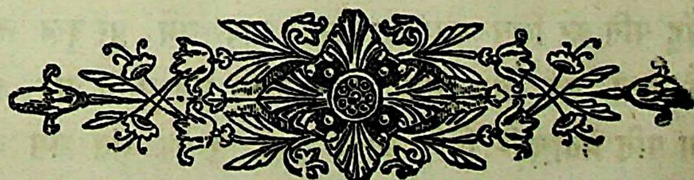
पुनः-- पर नारी जूआ असत, चोरी मदिरा पान॥
पांच ऐब यह जगत में, तजै सो शिष्य सुजान॥

चौपाई–इस रहित बिना नहिं सिख अखावे। इस रहित बिना दर चोटा खावे॥
इस रहित बिना जग में भरमाई। इस रहित बिना नर नरके जाई॥

ताते सिद्ध हुआ कि ऐसे अद्‌भुत प्रभाव वाला ब्रह्मचर्य जो सब साधनों का मूल है वह हर एक मुमुक्षु स्त्री पुरुष को पालन करना चाहिये॥

धारणा–(ब्रह्मचर्य धर्म की खानि मुक्ति का दाता है)
लक्ष्मण यतीने धर्म कमाया, मातु तुल्य पर नारि दृष्टाया।
रखी धर्म की आन, मुक्ति का दाता है॥ ब्रह्म०॥
हनुमत गोरख अवतारी, जिन आयु जत में गुजारी।
कहते वेद पुराण, मुक्ति का दाता है॥ ब्रह्म०॥
भैरों भीष्म महा बलकारी, इसी धरम की पैज सवारी।
दुनियां में झुले निशान, मुक्ति का दाता है॥ ब्रह्म०॥
पूर्ण भक्त धर्म अवतारी, अंग कटे ते सी न उचारी।
जिसे जाने सकल जहान, मुक्ति का दाता है॥ ब्रह्म०॥
ब्रह्मचर्य ही सदा सहाई, रखो इसे क्यों देर लगाई।
यह रखे तुम्हारा मान, मुक्ति का दाता है॥ ब्रह्म०॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



पतिव्रत

प्रश्नः-हे भगवन् जी! ब्रह्मचर्य का प्रसंग श्रवण कर के हमारा चित्तबड़ा प्रसन्न हुआ है! आपने कथन किया है कि पुरुष निज स्त्री व्रत धर्मका पालन करे और स्त्री निज पतिव्रत धर्मका पालन करे। सो कृपा कर के वर्णन करें कि स्त्री को पतिव्रत धर्म पालन करने से क्या शक्ति प्राप्त होती है और न पालन करने से उसकी क्या हानि होती है?

उत्तरः-हे प्यारे! एकाग्र चित्त होकर श्रवण करो। स्त्री को निज पतिव्रत धर्म पालन करने के लिये गुरुजी वर्णन करते हैं:-

सील संजमि प्रिअ आगिआ मानै॥ तिसुनारी कउ दुखु न जमानै॥ कहु नानक जिनि प्रिउ परमेसरु करि जानिआ॥ धन सती दरगह परवानिआं॥ (गउ० म० ५ पृ० १८५)

देखो, जगद्गुरु पंचम पातशाह जी महाराज पतिव्रत धर्म धारण करने वाली स्त्री को धन्य २ कहते हैं और ऐसी स्त्री ही पारलौकिक सुख की अधिकारणी है। श्री सीता जी को भी श्री अनुसूया जी इस प्रकार उपदेश देती हैं:-

॥ श्री रामायण-आरण्य काण्ड॥

चौपाई-कह ऋषि वधू सरल मृदुबानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥
मात पिता भ्राता हितकारी। मित सुखप्रद सुनु राज कुमारी॥
अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥
वृद्ध रोग वश जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेंहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव यम पुर दुख नाना॥
एकै करम एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पति व्रताचारि विधि अहहीं। वेद पुराण संत अस कहहीं॥

दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय।
आगे सुनहिंते भव तरहिं, सुनहु सीय चितलाय॥

चौ०—उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम पर पति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म विचारि समुझि कुलरहहीं। सो निकृष्ट तियश्रुति अस कहहीं॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानहु अधम नारि जगसोई॥
पतिवंचक परपति रति करई। रौरव नर्क कल्प शत परई॥
क्षणसुख लागि जन्म शतकोटी। दुख न समुझि तेहिसमको खोटी॥
बिनुश्रम नारि परमगति लहहीं। पतिव्रत धर्म छांड़ि छल गहहीं॥
पति प्रतिकूल जनमि जहं जाई। विधवा होइ पाइ तरुणाई॥

इस पर एक इतिहास श्रवण करें:—

एक राजा मायादास की लड़की विद्यादेवी थी जिसका प्रसिद्ध नाम बाली था। जब वह विवाह के योग्य हुई तो उसकी सगाई की गई। जब विवाह के समय दोनों चौकपर बैठे तब लड़का मृतक होगया। राजाने पण्डितों से पूछा। उन्होंने कहा अभी भाँवरें नहीं पड़ीं, इसको दूसरे वर के साथ विवाह देना चाहिये। जब राजाने लड़की को दूसरे वरके साथ विवाहना चाहा तब वह दूसरा लड़का भी शूल से मरगया। इसी प्रकार तीसरे और चौथे की भी मृत्यु होगई। राजा ने फिर पण्डितों से पूछा। उन्होंने विचार कर कहा कि यह लड़की बहुत पाप कर्म करके आई है। इसको देश निकाला दे दो नहीं तो तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा। तब राजाने उसको देश निकाला देदिया। वह लड़की जंगलमें रोती फिरती महान दुःख को प्राप्त हो रही थी। पास ही एक पेड़ पर तोते का घोंसला था। तोते के बच्चे ने तोते से पूछा यह लड़की क्यों रोती है? तोते ने कहा हे पुत्र! यह लड़की पति प्राप्ति बिना रोरही है। बच्चे ने पूछा इसको पति की प्राप्ति क्यों नहीं हुई? तोते ने कहा पूर्व जन्म में यह एक लखपति ब्राह्मण की पुत्री थी। ब्राह्मण ने सोचा कि यदि मैं इस लड़की को किसी धनवान् के घर विवाह दूंगा तो वह इस को मेरे घर से ले जावेगा और मेरा घर सूना हो जावेगा; क्योंकि मेरे घर इसके अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं। ऐसा विचार कर उसने

एक ग़रीब भोले भाले ब्राह्मण के साथ विवाह कर दिया और उसको अपने घरमें रखलिया। जब लड़की का पिता मृत्यु को प्राप्त हुआ तब वह पतिव्रत धर्म में स्थित न रही। पति ने बहुत समझाया परन्तु उसने एक न मानी। इसलिये यह लड़की अब पति की प्राप्ति से हीन होकर दुःखी हो रही है। तोते के बच्चे ने पूछा कि तुमको यह कैसे ज्ञात हुआ ? तोते ने कहा कि पूर्व जन्म में मैंने अपने सद्गुरु देव की बहुत सेवा की थी; परन्तु एक दिन कुछ अवज्ञा होगई, तो गुरुदेव ने शाप दे दिया कि जाओ तोते के जन्म को प्राप्त होवो। सो गुरुदेव का वचन सफल हुआ,–मैंने तोतेका जन्म पाया; परन्तु गुरु सेवा के प्रताप से मेरी दृष्टि खुली हुई है। जिस ओर मैं दृष्टि करता हूं सब का हाल जान लेता हूं। गुरु प्रमाणः–

बाली रोवै नाहि भतारु ।। [वार राम० म० १ पृ० ९५४]

पुनः–दोहागणी खरीआ बिललादीआ तिना महलि न पाइ ।।
दूजै भाइ करूपी दुखु पावहि आगै जाइ। [वड० म०३ पृ० ५५६]

पुनः–दोहागणी किआ नीसाणीआ ।। खसमहु घुथीआ फिरहि निमाणीआ ।।
मैले वेस तिना कामणी दुखी रैणि विहाइ जीउ ।। (श्रीराग म० १ पृ० ७२)

जिन्होंने पतिव्रत धर्म को धारण किया है उस पर दृष्टान्तः–

एक माई पतिव्रत धर्म के प्रताप से काबुल से चल कर अमृतसर श्री हरि मन्दिर साहिबजी की सेवा करने को आया करती थी; परन्तु संगत को कुछ पता न लगता था कि यह माई कब और कहाँ से आती है और कहां चली जाती है, और टोकरी फैंककर हाथ क्यों हिलाती है। इसलिये शिष्यों ने गुरु अर्जुन देवजी महाराज के आगे प्रार्थना करी कि महाराज जी ! आप इस माई से यह वार्ता पूछें। सद्गुरु जी उस माई से पूछते हैं:–

गुरु आखिआ माई जी सच दसीं, हर रोज़ इथे किधरों आवनी एं।
सारा दिन करें सेवाहरि मन्दिर, फिर रातनूं किथे तूं जावनी एं ।।
सुटके टोकरी जदों तूं होवें वेहली, फिर दोवें तू हथ हिलावनी एं।
एह बात तू खोल्हके सच दसीं, मेरे सिखां दे मन नूँ भावनी एं ।।

माई आखिआ गुरुजी सच दसां, हर रोज मैं कावलों आवनी हां।
पिछली रात मैं उठके पती ताईं, नित पूजा स्नान करावनी हां॥
फिर रिड़क के घरदा दुध सारा, होर कम भी सभ मुकावनी हां।
पतिव्रत धर्म दे विच मैंहां पूरी, जो कहे सो तुरत बजावनी हाँ॥
पतिव्रत दे तेज परताप करके, चरनां तेरिआं ते पुजजावनी हां।
छोटा बाल मासूम इक है मेरा, उसनूं पापंघूड़े विच आवनी हां॥
सुटके टोकरी जदों मैं होवां वेहली, हथ नाल पंघूड़ा हिलावनी हाँ।
नाले देवां झूटा नाले करां सेवा, इस वास्ते हथ हिलावनी हाँ॥
इस रीत करके दिने सेव मन्दिर, फिर रात नूं कावले जावनी हां।

उस माई के वचनों को सुनकर और उसे पतिव्रत धर्म में पूरा देख कर महाराजजी ने बड़े प्रसन्न होते हुए कहाः-

दो०-शाबाश पुत्री तुम सदा, पति दी सेव कमाओ।
जनम-जनमदे दुःखों छुटो, फेर न भौजल आओ॥

इसी आशय पर एक और इतिहास श्रवण करोः-

एक समय देवलोकमें सरस्वती जी, पार्वतीजी और लक्ष्मीजी आपस में बैठकर बड़े अभिमान से बातें कर रहीं थीं कि हमारे समान पतिव्रत धर्म वाली त्रिभुवन में कोई स्त्री नहीं है। उसी समय दैवयोग से देव ऋषि नारद जी भी विचरते हुए वहां पर आ पहुँचे। उन्होंने सब वार्ता सुनली और पूछा हे देवियो! आप अभी क्या कहरहीं थीं वह लज्जित होकर बोलीं महर्षे! जो कुछ हम कहरहीं थीं वह आपने सुनही लिया है। नारदजी बोले हे देवियो! तुम अभिमान मत करो। मृत्युलोक में अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूयाजी सब से उत्तम पतिव्रता हैं। ऐसा सुन कर उनके मनमें बहुत ईर्षा उत्पन्न हुई और विचारा कि मृत्यु लोक की स्त्री हमारे से बढ़ जावे तो हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है। इसलिये जिस प्रकारसे होसके उसका पतिव्रत धर्म भंग करना चाहिये। तब तीनों ने अपने २ पतियों से कहा कि हमारी प्रसन्नता के लिये अनुसूया का पतिव्रत धर्म भंग करदो। तीनों देवों ने विचार किया कि स्त्री जाति का हठ बड़ा भारी होता है। यदि हमने कह दिया कि पतिव्रत

धर्म वालीका ब्रत भंग नहीं होसकता, तो इस प्रकार यह नहीं मानेंगी। इसलिये इनको उसकी शक्ति दिखावें। तब तीनों देवता ब्राह्मणोंका रूप धारण कर अत्रि ऋषि के आश्रम पर आये। ऋषि ने गृहस्थ धर्म जान कर उनका बड़े सत्कार से शास्त्रानुसार अतिथि पूजन किया और विनती करी, हे महाराज! आपके लिये भोजन तैयार करवाता हूं। उन्होंने कहा भोजन तो हमने अवश्य करना है, यदि तेरी स्त्री बिना पर्दा किये हमें भोजन करावे। ऋषि ने विचारा मेरी स्त्री पतिब्रूता है, भला वह कैसे पर्दे बिना भोजन करा सकती है? यदि इस प्रकार भोजन करावे तो उसका पतिब्रूत धर्म नष्ट हो जावेगा और यदि यह अतिथि बिना अन्न जल किये चलेगये तो हमारे गृहस्थ धर्म तथा शुभ गुणों का नाश हो जावेगा। ऐसा विचार कर कहा, कि मैं अभी अपनी स्त्री से पूछकर आपको बताता हूं। ऋषि ने अन्दर जाकर अनुसूया जी को सब समाचार कह सुनाया। वह बोलीं, हे स्वामिन्! आप उनको भोजन करावें, मैं बिना पर्दे के उनको भोजन परोसदूंगी। ऋषिने कहा यह कैसे हो सकता है? क्योंकि शास्त्र में ऐसे लिखा है:—

दो०—पतिब्रत को यह धर्म है, पर पुरुषन निज अङ्ग।
कबहुं न नगन दिखावई, दीसे तो ब्रूत भङ्ग॥

अनुसूयाः—चौ०—जो तुमबिन हमसपनेहु माहीं। आन पुरुष रति कीन्हीं नाहीं॥

दो०—तो हमरे वह नग्न भी, देखि सकत नहिं अंग।
पच्छिम उदय न भानु होइ, उल्टी बहत न गङ्ग॥
आन उलट बातें सभी, होंहिं तो होंहिं निसङ्ग।
होत न परन्तु इह कबी, पतिब्रता सत भङ्ग॥

इसलिये हे पतिदेव! मेरा पतिब्रूत धर्म दृढ़ हो चुका है, मैंने उसके वस्त्र धारण किये हैं। इसलिये उसे कोई भंग नहीं कर सकता। पूर्वोक्त बातें उलटी हो जावें तो होजावें; अर्थात् सूर्य पूर्व से उदय होता है, पच्छिम से चढ़ना असम्भव है, यदि चढ़ जावे तो चढ़ जावे; अग्नि का गुण उष्णता है, वह उस से रहित होजावे तो होजावे; भाव—यह सब अपनी अपनी ईश्वरीय नियमानुसार मर्यादा को छोड़ देवें तो छोड़देवें,



परन्तु मेरा पतिव्रत धर्म भंग नहीं हो सकता। आप निःसंशय उनसे कह देवें कि तुम्हारे कहें अनुसार तुमको भोजन कराया जावेगा। ऋषि ने आकर तीनों को भोजन के लिये कह दिया। भोजन तैयार होने पर ऋषि तीनों को साथ लेकर घरके दरवाज़े पर पहुँचे। जब दरवाज़ा खोलकर अन्दर गये और पीछे को देखा तो उन ब्राह्मणों के स्थान पर तीन बालक छः छः महीने की अवस्था वाले दरवाज़े के बाहर पड़े हुए खेलते दीखे। ऋषि इधर उधर उन ब्राह्मणों को देखने लगे, तो अन्दर से अनुसूया जी ने कहा हे स्वामिन्! आप क्या देख रहे हैं? ऋषि ने कहा मेरे पीछे पीछे वह ब्राह्मण आरहे थे, मालूम नहीं कहां चले गये और यह तीन लड़के कहाँ से आगये? अनुसूयाजी ने कहा हे स्वामिन्! यहलड़के वेहीब्राह्मण हैं जो मेरापतिव्रत धर्म भंग करनेको आये थे, इन को उठालाइये। ऋषि उनको उठाकर अन्दर ले गये और चारपाई पर सुलादिया। जब इस प्रकार तीन चार दिन बीत गये और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव अपने अपने स्थान पर न पहुँचे तो उनके घर से तीनों देवियां इकट्ठी होकर आपस में विचार करने लगीं कि क्या कारण हुआ जो हमारे पति लौटकर नहीं आये? उनके लिये यह काम कुछ विलंब का नहीं था। इस प्रकार विचार करही रहीं थीं कि नारद मुनि विचरते हुए वहाँ फिर पहुँच गये और उनकी बातें सुनलीं। उन्होंने पूछा हे देवियो! आप क्या कह रही हैं? उन्होंने कहा कि आपने हमारे वचन सुनही लिये हैं। नारद ने कहा कि जिसके घर तुमने अपने पतियों को भेजा है उसने उन को छः छः महीने के बालक बना रक्खा हैऔर जब तक तुम उसके घरमें जाकर सेवा नहीं करोगी तब तक वह न देगी। तब तीनों देवियां नारद जी का कहना सत्य जानकर अनुसूया जी के गृह में गईं और दासी बनकर सेवा करने लगीं। इसी प्रकार सेवा करते २ कुछ समय व्यतीत होगया। एक दिन जब अनुसूया जी को प्रसन्न बैठे देखा तो हाथ जोड़कर खड़ी होगईं और प्रार्थना की, 'हे देवी! हमारा अपराध क्षमा करो, हमारे से बड़ी भूल हुई है।'

फिर अपना सारा वृत्तान्त सच सच कह सुनाया। अनुसूयाजी बोलीं, "क्या यह बालक तुम्हारे पति—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव हैं और तुम इनकी शक्तियां हो? हमारे घर सन्तान नहीं है। तुम मुझे सन्तान देवो, मैं तुमको तुम्हारे पति मिलादेती हूं।" तब उन तीनों ने अपने अपने तन से मैल उतारकर पुतले बनाये और अपनी शक्ति से जीव कला डालकर तीन पुत्र अनुसूया जी को दे दिये। अनुसूया जी ने उनके पतियों को, जो बालक रूप में थे, उठाकर दरवाज़े के बाहर लिटा दिया और किवाड़ बन्द कर लिये। तब वह तीनों अपने निज रूपों को धारण कर अपने अपने स्थानको गये। और जोलड़के शक्तियों ने अनुसूयाजी को दिये थे उनका उन्होंने लालन पालन किया। एक का नाम चन्द्रमा (चन्द्रमणि), दूसरेका दत्तात्रय और तीसरे का दुर्वासा रक्खा। हे प्यारे! देखो, पतिव्रत धर्म का प्रभाव ऐसा प्रबल है। और भी अनेकों पतिव्रताओं के इतिहास हैं, ग्रन्थ बढ़ने के भय से नहीं लिखे गये। पतिव्रत धारण करने वाली स्त्रियों में बड़े बड़े तपस्विओं से भी बढ़कर शक्ति होजाती है। इसलिये स्त्री जाति को चाहिये कि वह सर्वदा सर्वथा पतिव्रत धर्म का पालन करे। ऐसा करने से इसलोक में यश और पर लोक में सुख की प्राप्ति होती है। गुरु प्रमाणः—

सोहागणी सदा मुखु उजला गुर कै सहजि सुभाइ॥
सदा पिरु रावहि आपणा विचहु आपु गवाइ॥ (वडहंस म० ३ पृ० ५५६)

पहिले समय में अनेकों पतिव्रताएं होचुकी हैं, परन्तु वर्तमान् समय तो किसी और प्रकार का होरहा है। इसका कारण यह है कि पहिले माता पिता अपनी पुत्रियों को पतिव्रत धर्म पालन करने के लिये अनेक प्रकार की शिक्षा देते थे और अब ऐसी कोई शिक्षा उनको नहीं मिलती। देखो रामायण, जब जगत माता सीताजी का विवाह होचुका तो विदा करते समय माता पिता ने कैसी शुभ शिक्षा दी हैः—

चौ०—बहु विधि भूप सुता समुझाई। नारि धर्म कुल रीति सिखाई॥
सास ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
इहिते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सास ससुर पद पूजा॥

ऐसे समझाकर सीताजी को विदा किया गया था। जब श्रीरामचन्द्र जी को वनवास हुआ उस समय सीताजी भी पतिव्रत धर्म के अनुसार साथ जाने को तैयार होगईं और विदा होते समय सासु के आगे इस प्रकार विनती की :—

चौ०—तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय मातु मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू। पति विहीन सबशोक समाजू॥

इसलिये वृद्धों की सेवा करना और उनकी आज्ञा में चलना प्राणी मात्र का धर्म है। जैसे रामायण में लिखा है :—

चौ०—मात पिता गुरु प्रभु की वानी। बिना विचार करिय शुभ जानी॥
दो०—वर्णाश्रम निज निज धरम, सुरति वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोग न रोग॥

इसी आशय पर एक और महात्मा लिखते हैं :—

हुण एह मसलत है आरफ़ां दी, करो सर्वदा नेक यह कर्म माईओ।
ईश नाम दा रिदे विषे पहिरो गहिणा, दया तिलक शृंगार करो धर्म माईओ॥
धोती जत ते सत दी ओढ़ चुंनी, चोला पहिरिये कीजिये शर्म माईओ।
ईश करे जोई सच मानो सोई, मिटे शोक ते मोह सब भरम माईओ॥

इसी आशय पर नसीहत विलास श्रवण करें :—

पले रहि गिआ ज़ोर शुकीनीआं दा, होर नाम दा जपणा भुला गईओ।
किसे कंम न आवणें अंत वेले, रेशम मख़मलां पहिन हंढा गईओ॥
लगा प्रेम क़सीदे दे कढने दा, सतसंग दा प्रेम घटा गईओ।
सतसंग दे नालदा नहीं गहिणा, झूठे गहिणिआं विच भरमा गईओ॥
सूत कतना सी नाम जपण वाला, चरखे डाह के सूत कता गईओ।
गहिणे कपड़े हार सिंगार लाके, देह नाल सनेह वधा गईओ॥
सुन्दर देहि ने ख़ाक दा ढेर होणा, मिट्टी मिट्टी दे विच समा गईओ।
झूठे भोग पदारथां विच पै के, नाम जपण दा हौसला ढाह गईओ॥
ज़रा कंन दे के सुन लेओ माईओ, बाणी ठोकरां मार समझा गईओ।
धन भाग कबीर दे घरों लोई, देखो कुप्टिआं कुहड़ हटा गईओ॥
माईओ द्रोपता नूं देखो सभा अन्दर, ध्या के कृष्ण नूँ लाज रखा गईओ।
बीबी रजनीदा पती सी लंगड़ा लूल्हा, खारी पा सीस चुका गईओ॥

हथीं कार करके आप मंग के ते, पहिलां आप तों अन छका गईओ ।
माई भागो ते तुसी बलिहार जाओ, पिछे धरमदे जंग मचा गईओ ॥
कौलां वल भी नजर नूं मार लैखा, जेहड़ी धरमनूं रख दिखला गईओ ।
माई धन होई जगत विच ओही, जेहड़ी पती दी मन रज़ा गईओ ॥
माई धन होई जगत विच ओही, जग मिथ्या समझ फ़नाह गईओ ।
माई धन होई जगत विच ओही, जेहड़ी दूई द्वैत उडा गईओ ॥
माई धन होई जगत विच ओही, काम क्रोध मोह लोभ दबा गईओ ।
माई धन होई जगत विच ओही, धर्म रख परलोक सफ़ा गईओ ॥

तातें यह सिद्ध हुआ कि स्त्री को पतिव्रत धर्म पालन न करने से रौरवादिक नरकों की प्राप्ति और पतिव्रत धर्म पालन करनेसे बिना किसी श्रम के परमपद की प्राप्ति होती है । इसलिये पतिव्रत धर्म अवश्य धारण करना चाहिये और पति की आज्ञा को पालन करना और उसकी सेवा करना आवश्यक है ॥

इसी प्रकार पुरुषको भी एक पत्निव्रत धर्म धारण करना चाहिये और उसके पालन पोषण का ध्यान रखना चाहिये ।

॥ भजन ॥

धारणा– [पती दी सेवा करना नी माइयो पती दी सेवा करना]
जिसका पति बाहर से आवे, आसन पूजा करना ॥ नी माइयो० ॥
जिसका पति गया परदेस, धिआन हिरदेमें धरना ॥ नी माइयो० ॥
जिसका पति होवै कङ्गाल, दुख सुख सिरते जरना । नी माइयो० ॥
जिसका पति रोगी होवै, चा सिरे पर फिरना ॥ नी माइयो० ॥
तुमरे सिर जो आइ मुसीबत, मन में शांती करना ॥ नी माइयो० ॥
बलीनाथ एहि अरज़ सुनावै, अंतकाल तों डरना ॥ नी माइयो० ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



क्रोध

प्रश्नः—हे भगवन् ! काम की निवृत्ति के साधन को श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। कृपा करके क्रोध का स्वरूप और उसके अवगुण वर्णन करें ॥

उत्तरः—हे प्यारे ! पुरुषों के अन्दर चार प्रकार के स्वभाव वर्तते हैं– (१) खाने पीने की इच्छा–पशुओं वाला स्वभाव, (२) क्रोध–सिंहादिक हिंसक पशुओं वाला स्वभाव, (३) छलादिक–भूतों वाला स्वभाव और (४) शुद्ध बुद्धि द्वारा सबके साथ भलाई करनी और बुराई का त्याग–देवताओं वाला स्वभाव है। अब इनमें से 'क्रोध' का वर्णन करते हैं सो एकाग्रचित्त से श्रवण करो। गुरु प्रमाणः–

हे कलि मूल क्रोधं कदंच करुणा न उपरजते ॥
बिखयंत जीवं वस्यं करोति नृत्यं करोति जथा मरकटह ॥
अनिक सासन ताड़ंति जमदूतह ॥ तव संगे अधमं नरह ॥
दीन दुख भंजन दयाल प्रभु नानक सरब जीअ रख्या करोति ॥

[श्लोक सहसकृती महला५ पृ० १३५८]

भावार्थ–जगद्गुरु अर्जुन देवजी कहते हैं, हे क्रोध ! तेरा स्वभाव केवल कलह का मूल है। जो पुरुष तेरे साथ स्नेह करते हैं उन पुरुषों के हृदय रूपी भूमिमें करुणा, मुदिता, मैत्री, शीतलता और धैर्य जो गुण हैं उनको तू कदापि प्रगट नहीं होने देता। और जो विषयी जीव हैं तिनको तूने अपने वश किया हुआ है। कैसे ? 'नृत्यं करोति जथा मरकटह' कहिये जैसे बन्दर कलंदर के वश में हुआ २ उसकी इच्छा पूर्वक नाच करता है। तैसेही जीवरूप बंदर तेरे वश हुए २ तेरी इच्छा

अनुसार नाच करते हैं। भाव–जब पुरुष को क्रोध आता है तब मस्तक, नेत्र, होठ से आदि लेकर सारा शरीर कांपने लगता है। ताते हे क्रोध! जो पुरुष तेरा संग करते हैं सो महानीच हैं। तिन पुरुषों को अनेक प्रकारकी सासना देकर यमदूत ताड़ना करते हैं। दीनों के दुःख को नष्ट करने वाला और दया का घर जो अन्तर्यामी है वही सर्व जीवों की रक्षा करता है। उसी के आगे अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करो॥

काम क्रोध काया कउ गाले॥ जिउ कंचन सुहागा ढाले॥ (राम० म० १ पृ० ९३२)

भाव–जैसे सुवर्ण को सुहागा ढाल देता है, तैसे काम क्रोध शरीर का नाश कर देते हैं।

काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई॥
झूठा तनु सांचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई॥ (गउड़ी म० ९ पृ० २१९)

पुनः–काम क्रोध संगति दुरजन की ताते अहिनिसि भागउ। (गउड़ी म० ९ पृ० २१९)

क्रोध से यज्ञादिकों का फल ऐसे नाश हो जाता है। जैसे वैराग्य शतक में कथन किया:–

चौपाई–दुरित हरत ज्यों तुरत गङ्गजल। कलह गौन ज्यों करे मौन बल॥
पुन धन चाहि ग्रस्यो संतोषा। यज्ञ विपाक ग्रसे ज्यों रोषा॥

एक साहूकार का प्रति वर्ष यज्ञ करने का नियम था। इस प्रकार चिरकाल व्यतीत हो गया और उसका सब धन भी समाप्त हो गया, अन्त में वह स्वयम् भी भोजन वस्त्र से दुःखी हो गया। तब उसकी धर्म पत्नी ने कहा, हे पतिदेव! शरीर का निर्वाह तो करना अवश्य है, और गृहस्थ के लिये माँगना योग्यनहीं। सुना है कि अमुकराजा बड़ा धर्मात्मा है। वह आप भी यज्ञादिक करता है और यदि कोई पुरुष उनके पास यज्ञ के फलको बेचना चाहे तो मोल भी ले लेताहै। इसलिये आप उसके पास जाओ एक यज्ञ का फल बेचकर धन लेआओ। पहिले तो साहूकार ने बहुत आना कानी की, परन्तु स्त्री का हठ देखकर मान गया और मार्गके लिये कुछ भोजन तैयार करने की आज्ञा दी। भोजन तुरन्त तैयार होगया और साहूकार उसे लेकर चलपड़ा। मार्गमें एक कुएँ पर स्नान किया। जब भोजन करने बैठा तो एक बड़ी दुर्बल तथा भूख से

व्याकुल कूकरी जिसके पीछे चार पांच बच्चे थे, वहाँ आगई। उसे देख कर साहूकार को बड़ी दया आई और एक रोटी डालदी जो कुतिया ने शीघ्र ही निगल ली। साहूकार ने विचारा यह तो बहुत भूखी प्रतीत होती है। तब दूसरी रोटी और डाली। वह भी झट खाली। इसी प्रकार जितनी रोटियां उसके पास थीं वह सब कुतिया को डालदीं और वह खागई। फिर उसको जल पिलाया। तब साहूकार का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि इस कुतिया और इसके बच्चों की रक्षा होगई, नहीं तो इनका बचना कठिन था। मेरा क्या, मैं तो पहिले भी कई वार व्रत रख लेता था, आज भी व्रत ही सही। इसप्रकार प्रसन्नचित्त हुआ सायंकाल को उस राजा के नगर में पहुँचा और रात्रि को आराम से सोगया। प्रातःकाल ही राजा के नियमानुसार जाकर नगाड़े पर चोट लगादी। राजा ने अन्दर बुलाकर पूछा, 'तुमको कोई यज्ञ बेचना है?' साहूकारने कहा, "जी हां"। राजा ने उसको सत्कार पूर्वक बैठाया और ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा कि इसका कौनसा यज्ञ श्रेष्ठ है? उन्होंने कहा कि यज्ञ तो इसने बहुत किये हैं; परन्तु सबके ऊपर सुहागा फिरा हुआ है। भाव-सबका फल नष्ट हो चुका है। जो इसने कल मार्ग में यज्ञ किया है उसका जितना भी मूल्य यह कहे इसको देदो। साहूकार ने कहा, ज्योतिषी जी महाराज! कल तो मैंने कोई यज्ञ नहीं किया और मेरे पहिले यज्ञों का फल क्यों नष्ट हुआ है? ज्योतिषी-हे प्यारे! पहिले जो तुम यज्ञ करते रहे हो उस समय जो याचक आते थे उनको देते समय तुम क्रोध करते थे, और क्रोध से धर्म का नाश होजाता है। और कल मार्ग में जो भूखी कूकरी को दया करके प्रसन्नचित्त से भोजन कराया है और आप भूखे रहे हो, इसका तुमको महान् फल हुआ है। ऐसा सुनकर साहूकार ने पश्चाताप किया। उसके फल को न बेच कर अपने घर को लौट गया। इससे सिद्ध हुआ कि क्रोध करने से धर्म का नाश हो जाता है, मनुष्य की बुरी दशा होती है और इसी के कारण परस्पर के युद्ध में अनेक जीवों का घात होता है। पुनः क्रोध करने से

मनुष्य में शक्ति भी नहीं रहती इसका परिणाम दुःख और मृत्यु है। जैसे एक महात्मा लिखते हैं:-

हालत क्रोधियां दी बुरी दसदेवां, ठोकर लगे जे चित खिआल होइआ।
कौरवां पांडवांने जदों क्रोध कीता, ऐमन खूह खीआं दा अंतकाल होइआ॥
क्रोध करे दुरवासा अंबरीष उत्ते, चक्कर पेशपिआ नहीं टाल होइआ।
परसुराम क्रोधिआ राम उत्ते, सत्ता खिच लीनी खालण खाल होइआ॥
पुत्र उत्ते हरनाकश ने क्रोध कीता, देख बकरे वांग हलाल होइआ।

॥ मोह प्रति क्रोधोवाच—सवैया ॥

प्रभु मोहि सुनी यह बात कहे तुमरे संग शान्ति विरोध कमाए।
श्रद्धा हरि की पुनि भक्ति तथा, तिनकी यह दोन भई सुसहाए॥
मम जीवत शान्ति की बात कहाँ, यह चाहत तीनहुँ प्राण गंवाए।
मुजको बल नाथ कहाँ कहिये, कछु भाषत हों सु सुनो मन लाए॥
अंध करों दृगवंतन को, श्रुतिवंतन को बधिरो करि डारों।
धृतवंतन को सुअधीर करों, पुनि चातुर की मति दूर निवारों॥
हित कारय नाहिं पिखै कबही, जिनके उर भीतर मैं पगु धारों।
हित आतम को न सुने कबही, पढ़िओ जितनो छण माहिं विसारों॥

क्रोध कैसे दृगवंतों कहिये नेत्रवालोंको अन्धाकर देता है, सो सुनो:-

एक पंडित जी किसी राजा के यहां नित्य प्रति कथा सुनाया करते थे। एक दिन कथा में क्रोध का प्रसंग आया, उसमें पंडित जी ने सुनाया कि क्रोध चांडाल है। इस वार्ता को राज्य सभा भवन में झाड़ू लगाने वाले चांडाल ने भी सुना। इसी प्रकार कथा होते बहुत समय व्यतीत होगया। एक दिन पंडित जी कथा करने के लिये सभा में जा रहे थे तो मार्ग में राजा को किसी के साथ बातचीत करते देखा। पंडितजीने आशीर्वाद दियापरन्तु राजा अपने ध्यानमें लगे होनेके कारण नमस्कार न कर सका। यह देखकर पंडित जी बड़े क्रोधित हुए और मनमें कहा कि राजा अब अहंकारी हो गया है, इसको कथा क्या सुनानी है। आगे राज सभा में जाकर श्रोता गणों को मार्ग की वार्ता कहकर दूसरे द्वार से निकल कर घर लौट गये। जब राजा सभा में आये और देखा कि कथा नहीं होरही तो लोगों से इसका कारण पूछा।

उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने एक सेवक पंडित जी के बुलाने के लिये भेजा, परन्तु वह नहीं आये। फिर दूसरा मनुष्य भेजा, उसके साथ भी नहीं आये। तीसरी वार अपने मंत्री को भेजा। उसने जाकर पंडित जी को बहुत समझाया कि आपके लिये यह योग्य नहीं, पर वह न माने। जब मंत्री भी असफल होकर लौट आया तो सभा विसर्जन हो गई। वहीं चांडाल बाहर झाड़ू लगारहा था। यह समाचार सुनकर उसने कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं पण्डित जी को बुला लाऊं। राजा ने कहा, "अच्छी बात है, यदि आजावें तो ले आओ।" तब वह पण्डित जी के घर गया और बाहर खड़े होकर कहने लगा, "पण्डित जी! मेरा भाई आपके अन्दर है!! उसको बाहर निकालो!!!" पण्डितजी–तेरे भाई का हमारे घर में आने का क्या काम? चांडाल–महाराज! मेरा भाई आपके घरमें ही है!! उसको जल्दी बाहर निकाल दो!!! पंडितजी–ब्राह्मण के घरमें तेरेभाईका क्या काम? चांडाल तीसरी वार बोला, जल्दी से मेरे भाई को बाहर निकालो! फिर तो पण्डितजी बड़े क्रोध से बोले, यदि अपनी भलाई चाहता है तो यहाँ से जल्दी चलाजा,नहीं तो तेरीखैर नहीं। चांडालने कहा पंडितजी! आप इतना क्रोध न करें शांति से मेरी बात सुनलें। पंडितजी–सुनाओ। चांडाल–महाराज! आपने एक दिन कथा में क्रोध का प्रकरण सुनाया था और कहा था कि क्रोध चांडाल है। इसलिये वह मेरा भाई हुआ। इस समय आपके हृदय में क्रोध रूपी चांडाल ने प्रवेश किया हुआ है, सो आप उसको जल्दी से बाहर करो और राजा के पास चलो। यदि नहीं चलोगे तो मैं पकड़ कर राजा के पास ले चलूंगा; क्योंकि आप जो कुछ दूसरों को सुनाते हो उसमें स्वयम् निष्ठा नहीं रखते। यह सुनकर पंडित जी का क्रोध शान्त होगया, फिर चांडाल के आगे आगे चल पड़े और राजा को जाकर कथा सुनाई। गुरु प्रमाणः–

उना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोध चंडाल॥ [श्रीराग म० ४ पृ० ४०]

पुनः–कुबुधि डूंमणी कुदइआ कसाइणि परनिन्दा घट चूहड़ी मुठी क्रोध चंडालि॥

कारी कढी किआ थीऐ जां चारे बैठीआ नालि ॥ (वार श्रीराग म०१पृ० ९१)

दो०—निंदक कृतघन पिशुन* जन, पुनि जहि क्रोध विशाल । *चुगल खोर
चारों करमों के श्वपच*, पंचम जाति चंडाल ॥ *चांडाल (सारुक्तावली)

जैसे गधे ऊपर चन्दन लादा हुआ होवे तो न तो उसको उसकी सुगन्धि आती है न शीतलता; उसके लिये तो केवल भार मात्र ही है। तैसे जिसने विद्या तो बहुत पढ़ी है परन्तु क्रोधका त्यागनहीं किया उसको न तो शीतलतावत् शान्ति और न सुगन्धिवत् यश है। विद्या उसको केवल भार रूप है, क्योंकि क्रोध करने से सम्पूर्ण शुभ गुण नाश हो जाते हैं:—

दो०—मान नम्रता प्रीति त्रय, शीघ्र क्रोध ते नाश ॥
ह्वै प्रतीति हत कपट कर, शुभ गुण लोभ प्रनाश ॥

गुरु प्रमाणः—कठन क्रोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सब बिसराई।
रतनु गिआनु सभको हिरि लीना तासिउ कछुन बसाई ॥(गउड़ी म०९पृ०२१९)

क्रोध से सब सुधि कैसे भूल जाती है:—

ऐसा सुना गया है कि ज़िला गुजरांवाले के एक ज़मींदार ने लायलपुर के ज़िले में ज़मीन मोल ली और उस गांवमें मकानादिक भी बना लिये। पुनः गुजरांवाले की अपनी ज़मीन और मकानादि को व्यर्थ जानकर बेच दिया और नोट लाकर अपनी स्त्री को देदिये। उसने लेकर रख दिये और कहा, 'तुम थोड़ा ध्यान रखना, मैं पानी का घड़ा कुएँ से लेने जारही हूं, लौट कर सम्हाल लूँगी।' वह चली गई और ज़मींदार किसी दूसरे ध्यान में लग गया। उसका एक लड़का तीन चार वर्ष का था जो वहां खेल रहा था। उसने नोटों की पोटली को उठाकर जलते हुए तन्दूर में फैंक दिया। नोट जल कर राख हो गये। जब ज़मींदार को पता लगा तब इतना क्रोध आया कि लड़के को उठाकर तन्दूर में फैंक दिया। वह भी जल गया। उसकी लड़की अपनी मां के पीछे भागी भागी कुएँ पर गई और उसको सारा हाल सुनाया। उसने सोचा, हमारा एक ही लड़का था, वह जल गया, और धन भी चला गया; अब मैं भी जीकर क्या करूंगी। ऐसा विचार कर कुएँ में कूद

पड़ी और मृत्यु भाव को प्राप्त हो गई। जब लड़की ने यह देखा तो लौटकर अपने पितासे कहा। पुनः ज़मींदार ने सोचा कि धन, पुत्र और स्त्री, सब गये; अब मेरे को कौन छोड़ेगा। इससे अंदर जाकर फाँसी लगा कर मर गया। क्रोध का फल यह हुआ कि धन और कुटुम्ब का नाश होगया। इसलिये क्रोध विषसे भी अधिक दुःखदाई है:-

दोहा-काल कूट अरु क्रोध में, बड़ो अंतरो आहि।
क्रोध निजाश्रयको दहे, विष नहिं स्वाश्रय दाहि॥ (सारुक्तावली)

क्रोधपर एक और इतिहास श्रवण करें:-

एक चेले ने अपने गुरु से कहा महाराज! आपकी सेवा करते हुए बारह वर्ष हो गये; परन्तु मुझे शान्ति की प्राप्ति न हुई। गुरु-हे प्यारे! तुम्हारे अन्तःकरण में क्रोध रूपी अग्नि है। जहां क्रोध तहां शान्ति कहां? जैसे जिस स्थान में अग्नि जलती है वहाँ फूल कैसे उत्पन्न हो सकता है? चेला-महाराज जी! मैं क्रोध नहीं करता, आप परीक्षा कर लेवें। तब गुरु ने एक भक्त को सिखला दिया कि जिस समय यह कथा कर रहा हो तब तुम जाकर अग्नि मांगना। कुछ दिन बाद अपने चेले से कहा आज तुम कथा करो और भक्तों से कहा, तुम सुनो। जब चेला बहुत प्रेम से कथा करने लगा तब उस भक्त ने जाकर अग्नि मांगी। दो वार तो उसने बहुत नम्रता से उत्तर दिया, भाई! इस स्थान पर अग्नि नहीं है; परन्तु तीसरीवार फिर जब अग्नि मांगी तब वह बड़े क्रोध में आकर दुर्वचन कहने लगा, "क्या तू अन्धा है? तुझे दिखाई नहीं देता? इस स्थान पर अग्नि कहां है?" भक्त बोला महाराज, धुआं निकल रहा है, अनुमान प्रमाण से प्रतीत होता है। यह नियम है कि जहां धुआँ होता है वहां अग्नि अवश्य होती है। चेला लज्जित हुआ-परीक्षा में पूरा न उतरा। तब गुरुजी बोले कि अपने दोष को निवारण न करते हुए हम पर दोषारोपण करता था। यदि शान्ति की आवश्यकता है तो क्रोधका सर्वथा त्यागकर क्योंकि यह शान्ति आदि शुभ गुणों को ऐसे बिगाड़ देता है जैसे दूध को खटाई॥

पुनः, जैसे जेष्ठ आषाढ़ के दिनों में आंधी से आकाश मैला हो जाता है और कार्तिक में निर्मल, तैसे क्रोध रूपी अंधेरी से हृदयाकाश मैला होजाताहै और क्षमा, समतादिक शुभ गुण धारण करने से शुद्ध। इसलिये महात्मा जन क्रोध के त्याग का उपदेश देते हैं:-

दोहा—क्रोध न कबहूं कीजिये, क्रोध दुखों की खान।
ज्यों भूतों की खेल में, सुखी न होवत प्रान॥
क्रोध न कबहूँ कीजिये, यह बहु पाप कमाइ।
शुभगुण ऐसे काटता, ज्यों घुण लकड़ी खाइ॥
इसलिए छोड़ो क्रोध को, जो सुख चाहो नीत।
सतरहु मीठे बोलकर, सब जग तुम्हरामीत॥
सो०—क्रोध अनरथन मूल, क्रोध जन्म अरु मरण दे।
क्रोधधर्म निर्मूल, ताते क्रोध त्याग शुभ॥ (सारुक्तावली)

श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मणजी को उपदेश देते हैं, हे भाई ! क्रोध करने से बड़ेभारी दुःख होते हैं और काम क्रोधादिक मोक्ष मार्गमें वैरी हैं:-

* चौपाई *

कामऽरु क्रोधादिक हैं जेते। मोक्ष पंथ के वैरी तेते॥
शत्रुसूदन* ताहिं निवारो। मेरे वचन भले उर धारो। *शत्रुओं के नाशक
तिनमें क्रोध आहि जग जोई। मोक्ष विनाशक एको सोई॥
क्रोध सङ्ग जग जो नर करे। सुहृद भ्रात तात संहरे॥
क्रोध मूल तन ताप पछानो। क्रोधमूल जग बन्धन जानो॥
क्रोध करै निज धर्म सु घात। ताते क्रोध तजो मम भ्रात॥
क्रोध बड़ो जग शत्रु सु हैये। तृष्णा नदी वैतरणी पैये॥
सन्तोषनाम नन्दनबन जानो। शान्तिसु कामधेनु पहिचानो॥
ताते शान्ति भजो उर माहीं। शत्रू तेरो को इक नाहीं॥

सार सिद्धान्त यह है कि जब पुरुष क्रोध से डरकर ईश्वर की शरण को प्राप्त होता है तब इसके भयसे छूटता है। इससे छूटने का अन्य कोई उपाय नहीं है ताते जिज्ञासु को क्रोधादिकों का त्याग करके शान्ति, करुणा, आदिक शुभ गुणों को धारण करना चाहिये। जिनके धारण करने से पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है और सर्वदा के लिये जन्म मरण के दुःखों से छूट जाता है॥

॥ भजन ॥



साधो क्रोध बड़ो दुःखदाई ॥१॥ रहाउ ॥
पहिले आग लगे मन अपने, पाछे अवर जलाई ॥२॥
जो जो औगुण अन्तर होवें, सो सो प्रगट दिखाई ॥३॥
विषतें अधिक क्रोध हत्यारा, ऐसे बुद्ध समझाई ॥४॥
क्रोध अग्नि जां भरके अन्तर, ज्ञान ध्यान बिसराई ॥५॥
क्रोधमान पण्डित भी मूरख, क्रोधी तपा कसाई ॥६॥
क्रोधी राजा न्याय न जाने, रैयत मूल न भाई ॥७॥
क्रोधी जोगी जुगत न जाने, विरथा देह सुखाई ॥८॥
क्रोधी त्यागी दर दर भटके, कहूं न आदर पाई ॥९॥
क्रोधी दाता अपयश पावे, विरथा माल गंवाई ॥१०॥
क्रोधी भक्त न शोभा पावे, पचपच जन्म बिहाई ॥११॥
क्रोधी गुरु की शिक्षा थोथी, रञ्च न सुख उपजाई ॥१२॥
क्रोधी बेटा बाप न भावे, क्रोधी सुता न माई ॥१३॥
क्रोधी नार न चाहे भर्ता, बोल कबोल सुनाई ॥१४॥
क्रोधी कहूं न आदर पावे, जित कित चोटां खाई ॥१५॥
क्रोधी हृदा तपे निसवासर, ज्यों चूल्हा भरकाई ॥१६॥
आप दुखे औरन दुःख देवे, जिंह घट क्रोध समाई ॥१७॥
व्यापक ब्रह्म अखण्ड विराजे, क्रोधी बूझ न आई ॥१८॥
तांते क्रोध त्यागो निस दिन, शांति सरोवर नाई ॥१९॥
बिना विचार नहीं धीर्य आवे, बारबार समझाई ॥२०॥
आनंदसिंधु समायो हेमां, क्रोध अग्नि बिसमाई ॥२१॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



प्रश्नः—भगवन् जी ! क्रोध का प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा भयभीत हुआ है। कृपया इसकी निवृत्ति का साधन वर्णन करें॥

उत्तरः--हे प्यारे ! क्रोध की निवृत्ति का साधन—क्षमा—एकाग्रचित होकर श्रवण करो। क्षमा का स्वरूप—जब कोई पुरुष क्रोध करे तो उत्तर में चुप रह जावे। यदि कोई गालियां देवे तो भी उसको मीठी वाणी से समझावे, यदि कोई धिक्कार करे तो धैर्य रक्खे, यदि कोई शरीर को ताड़न करे तो मनमें प्रसन्नरहे और यह समझे मेरे पूर्वले पापों का फल मिल रहा है और इस प्रकार मेरा पाप नाश होरहा है॥

॥ क्षमा उवाच—विवेक राजाप्रति ॥

सवैया— क्षमा कहि देव सुनो मनमें, नर क्रोध करे तब मौन गहीजै।
वह गारि बकै मुख भीतर जो पुनि ता प्रति कोमल वाक्य भनीजै॥
जो धिक्कार करे तो परे तिह आपद पेखि महा करुणा उरकीजै।
तनु ताड़नमें हरषै उरमें कृत पूर्व पाप सो मे अब छीजै॥ (प्रबोधचन्द्र नाटक)

भाव—जो पुरुष क्षमा आदि शुभ गुणों को धारण करता है उसको आध्यात्मिक आदि तीनों ताप रूपी रोग दुःख नहीं देसकते और ना ही उसको यम ताड़ना कर सकता है। गुरु प्रमाणः—

खिमा गही ब्रतु सील संतोखं। रोग न बिआपै ना जम दोखं॥
मुकत भय प्रभु रूप न रेखं॥ (गउड़ी म० १ पृ० २२३)

हे प्यारे ! जिन्होंने क्षमा रूपीव्रत धारण किया है वह क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्षमाको नहीं त्यागते। इसपर दृष्टान्तः—

दक्षिण देश में एक विद्वान् गृहस्थ ब्राह्मण रहता था जो शम,

दम, आदि दैवी सम्पदा के गुणों का पुंज था। क्रोध रूपी अग्नि से उसका हृदय कभी जलता ही नहीं था, जैसे हिमालय में तपत का अभाव है। उस देश में सब जानते थे कि इसने क्षमा रूपी व्रत धारण किया हुआ है, इसलिये इसको क्रोध नहीं होता। एक दिन एक बनिये और एक ब्राह्मण का परस्पर विवाद हो गया। बनिये ने कहा कि इस ब्राह्मण को कभी क्रोध नहीं आता; और ब्राह्मण कहता था कि ऐसा कौन देह धारी है जिसको क्रोध न आता हो? मैं इसमें क्रोध प्रगट कर दिखाता हूं। तब बनिये ने कहा कि यदि तुम छः मास पर्यन्त इसको क्रोध उत्पन्न करा दो तो पाँच सौ रुपये हम तुमको देंगे नहीं तो हम तुम्हारे से पांच सौ रुपये ले लेंगे। ऐसे दोनों ने परस्पर शर्त (होड़) बांधी तब वह ब्राह्मण उस ब्राह्मण के घर में रसोइया बन कर रहने लगा॥

एक मास पर्यन्त तो वह अनेक प्रकार के भोजन बनाकर खिलाता रहा। महीने भर बाद कभी किसी वस्तुको कच्ची रखदे, और कभी किसी वस्तु को जलादे; परन्तु पंडित जी को जिस प्रकार का अन्न प्राप्त हो, हर्ष शोक से रहित भोजन करके चले जावें, कुछ भी भला बुरा न कहें। कभी कोई बरतन तोड़दे, कभी वस्त्र धोते समय फाड़दे, कभी दाल सब्ज़ी में नमक अधिक डालदे कभी अलोनी बनादेवे। इस प्रकार उसने अनेक यत्न किये, परन्तु पण्डितजी को क्रोध न हुआ। तब वह बहुत चिन्तातुर हुआ कि छः मासमें एक दिन शेष रहता है, अब मुझे पांच सौ रुपये उस बनिये को अवश्य देने पड़ेंगे। दैवयोग से अगले दिन पण्डित जी के यहां ब्रह्म भोज था। जब भोजन के निमित्त ब्राह्मणों की पंक्ति बैठी तब पण्डित जी अपनी पत्नी सहित उनके चरण पखारने लगे। उस काल में वह ब्राह्मण जल देता था। पण्डित जी को क्रोध दिलाने के निमित्त उसने उनकी पत्नी का स्तन सर्व ब्राह्मणों के देखते ही हाथ से ग्रहण कर लिया। ब्राह्मणी चिल्लाने लगी और पंडित जी से कहा कि देखो यह भृत्य क्या करता है, इसको आप दण्ड दीजिये, हमारी रक्षा करना आपका धर्म है। पण्डित जी ने मुसकराकर

कहा, "हे सुन्दरी ! तुम शोक मत करो। दास व पुत्र तुल्यही होते हैं। पुत्र यदि अपनी माता का स्तन ग्रहण करे तो इसमें क्या आश्चर्य है? तब सब ब्राह्मण चकित हो गये और पण्डितजी से कहने लगे कि कौन ऐसा गृहस्थ है जो ऐसे निमित्त के हुए भी क्रोधाग्नि में दग्ध न हो? आपकी सहन शीलता और विचार धन्यवाद के योग्य हैं ? उधर वह ब्राह्मण रुदन करता हुआ पण्डितजी के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा हे स्वामिन ! मैं अनाथ मारा गया हूं। एक बनिये से मैं प्रतिज्ञा करके आपके गृह में रसोइया बनकर रहा और अनेक यत्न क्रोध उत्पन्न कराने के किये। अन्त को यह भी यत्न किया कि जिस से कोई गृहस्थ क्रोध किये बिना नहीं रह सकता, परन्तु असफलता ही मिली। अब मुझको पांच सौ रुपये उस बनिये को देने पड़ेंगे। यह सुन कर पण्डित जी ने उसे धैर्य दिया और बनिये को बुला कर कहदिया कि इससे रुपये मत लेना। तब सब लोग पंडितजी की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार के विरले मनुष्य ही इस क्रोध रूपी अग्नि से रहित होते हैं और वही शान्त आत्मा मोक्ष रूपी सुख को पाते हैं। इसी लिये जिज्ञासु पुरुषों को दैवी सम्पदा के 'क्षमा' नामी गुण को अवश्य धारण करने के लिये कहा है। इसी आशय पर क्षमा विवेक राजा से कहती है:–

दो०–देव अनुग्रह पाइ तव, महा मोह रण नास।
करौं सु मैं क्षण एक में, कहा क्रोध तिंह दास॥

भाव–हे देव ! 'तव' कहिये आपका अनुग्रह पाकर महा मोह जो राजा है उसका मैं एक क्षण विषे ही रण में नाश कर दूंगी। क्रोध 'तिंह' कहिये तिस मोह के दास का 'कहा' कहिये क्या कहना है। अर्थात् उस क्रोध का भी नाश कर दूंगी। इसपर इतिहास:–

एक माई को सन्तों ने उपदेश किया, हे माई ! क्रोध धर्म का नाश कर देता है, इस लिये तुम क्षमा को धारण करना। ऐसे क्षमा रूपी व्रत को धारण करती हुई माई को जब बहुत समय व्यतीत होगया तब सारे शहर में ऐसे प्रसिद्ध हो गया कि माई बड़ी क्षमावान् है। उसकी परीक्षा

का समय आया। एक दिन उसके मकान के पास लड़के खेल रहे थे। एक ने कहा कि यहां पर शोर मत करो, माई के भजन का समय है। वह बहुत क्षमाशील है, किसी पर क्रोध नहीं करती। उत्तर में लड़के कहने लगे, ऐसा कौन मनुष्य है जिसको क्रोध नहीं आता? हम तुमको अभी दिखलाये देते हैं। लड़के उस माईके मकान की छत पर चढ़ कर कूदने लगे। माई ने पूछा, 'कौन है?' उन्होंने उत्तर दिया, 'तेरे ख़सम।' माई शान्ति से बोली, 'यदि तुम ख़सम हो तो ख़समों वाला काम करो। ख़सम छत गिराते नहीं, लीप पोत कर रखते हैं।' ऐसे माई के शान्ति-मय वचन सुनकर लड़के लज्जित होगये और माई के चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगी। इस प्रकार क्षमा धारण करने वाले पुरुष का चित्त शान्त होता है जो दूसरे के चित्त को भी शान्त कर देता है। इसी आशय पर एक और दृष्टान्त लिखते हैं:-

एक शिष्य ने अपने गुरु के आगे प्रश्न किया, 'हे भगवन्! मैंने बहुत यत्न किये परन्तु ज्ञान और शान्ति नहीं मिली।' गुरु-हे शिष्य! तुम्हारे में क्रोध बहुत है। जब तक इसका त्याग न करोगे, शान्ति नहीं होगी। शिष्य-महाराज! मैं किसी पर क्रोध नहीं करता, परन्तु जो मुझको दुःख देता है उस पर अवश्य करता हूं। ऐसा मेरा प्रण है। गुरु-तुमको क्रोध दुःख देता है या नहीं? शिष्य-क्रोधसेदुःख तो अवश्य होता है। गुरु-जब क्रोध दुःख देताहै तब इस क्रोध पर भी कभी क्रोध किया है या नहीं? शिष्य-क्रोध पर तो मैंने कभी क्रोध नहीं किया। गुरु-क्रोध पर क्रोध करो ताकि वह तुमको दुःख न देवे। शिष्य-हे गुरो! वह कौनसा क्रोध करूं? गुरु-हे प्यारे! क्रोध पर क्षमा करो जिससे वह न रहे और तुमको शान्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति हो। इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:-

खिमा सीगार करे प्रभ खुमीआ मनि दीपक गुरु ज्ञान बलईआ ॥

(बिलावल म० ४ पृ० ८३६)

पुनः-सत संतोष रहहु जन भाई। खिमा गहहु सतिगुर सरणाई ॥

आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इह निसतारा है ॥

(मारू म० १ पृ० १०३०)

ताते सिद्ध हुआ कि क्षमा के धारण करने से ज्ञान द्वारा शान्ति की प्राप्ति होती है। इस लिये जिज्ञासु क्षमा रूपी गुण को अवश्य धारण करे ॥

धारणा—(खिमा दा सिंगार पहिरलै, तातूँ रावे लाल पिआरी)

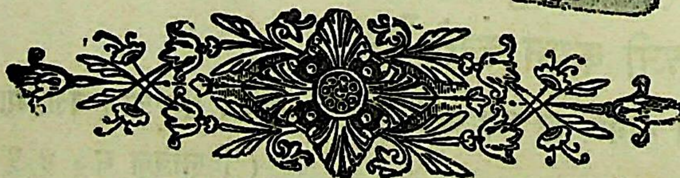
मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी ॥ क्षमा दा० ॥
खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिआरी ॥ क्षमा दा० ॥
लाल बहु गुणु कामणि मोही तेरे गुण होहि न अवरी ॥ क्षमा दा० ॥
हरि हरि हारु कंठि ले पहिरै दामोदरु दंतु लेई ॥ क्षमा दा० ॥
करि करि करता कंगन पहिरै इन विधि चितु धरेई ॥ क्षमा दा० ॥
मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसर पट लेई ॥ क्षमा दा० ॥
धीरजु धड़ी बंधावै कामणि स्री रंगु सुरमा देई ॥ क्षमा दा० ॥
मन मंदरि जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई ॥ क्षमा दा० ॥
ज्ञान राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई ॥ क्षमा दा० ॥

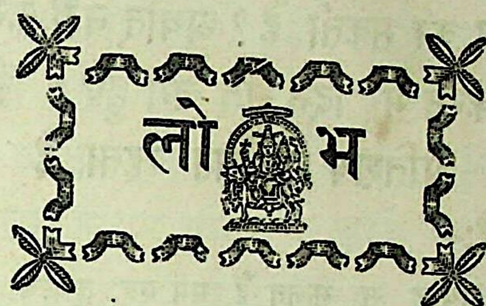
(आसा० म० १० पृ० ३५६)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः









प्रश्नः–भगवन् जी ! क्षमा द्वारा क्रोध की निवृत्ति का प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। अब आप कृपया लोभ का वर्णन करें॥

उत्तरः–हे प्यारे ! एकाग्र चित्त होकर श्रवण करोः–

लोभ और लोभ की स्त्री तृष्णा, यह दोनों ही पुरुष के हृदय में इकट्ठे रहते हैं, जिससे लोभी पुरुष धन की प्राप्ति से तृप्त नहीं होता। तृष्णा आगे आगे बढ़ती जाती है। गुरु प्रमाणः–

सहस खटे लख कउ उठि धावै॥ तृपति न आवै माया पाछै पावै॥
अनिक भोग बिखिआ के करै॥ नहि तृपतावै खपि खपि मरै॥

[गउड़ी सुख० म० ५ पृ० २७८]

लोभ अपना बल वर्णन करता हैः–

सवैया–जिनके शिर ऊपर हाथ धरों, तिनकी सुदशा सुन मीत बतावै।
सु मनोरथ की सरिता परकूलहि, नाहि कदाचित ते नर पावै॥
तिनके उर अन्तर शान्ति कहाँ, नर जो धनको दिन रैन धिआवै।
अब क्रोध सखे सुनिये सु कहौं, जिहि भाँतिनते धनमें मन लावै॥

भावार्थ–लोभ कहता है हे मित्र क्रोध ! जिन पुरुषों के शिर पर मैं हाथ रखता हूं अर्थात् जिनके हृदय में मैं निवास करता हूं उन (लोभी पुरुषों) की दशा सुनो। जिनके पास धन है वह और बढ़ाने का और जिनके पास नहीं है सो होने का चिन्तवन करते हैं। इस प्रकार से लोभी पुरुष मनोराज रूपी 'सरिता' कहिये नदी विषे बहा करते हैं, 'परकूलहिं' कहिये सन्तोष रूपी जो परला किनारा है 'ते नर' कहिये सो

लोभी पुरुष कदापि नहीं पाते; जिस से जन्म मरण रूपी प्रवाह में गोते खाते रहते हैं। जो पुरुष धनका दिन रात ध्यान करते हैं उनके अन्दर शान्ति कहाँ निवास कर सकती है? अर्थात् नहीं कर सकती। सो लोभी पुरुष धनके एकत्र करने में दिन रात लगे हुए हैं जिससे उनका चित्त धन की लालसा से अतिशय विक्षिप्त रहता है और मेरे प्रताप से पुरुष ऐसे कहता है:-

सवैया-इह मत्त गयन्द सु झूलत हैं, मम एहु तुरङ्गम भौन सुहाए।
लिख पत्र सु भूपति मोहि दयो, धन ल्यावो और बंगालहि जाए॥
इह गाउं दये कछु और कहै नर, जे इहि भाँति मुचीत धिआए।
तिनके उर शान्तिकी कौनकथा, इमि चिन्ततही जग माहिं बुढ़ाए॥

भावार्थ-यह 'मत्त' कहिये मस्त हुए 'गयन्द' कहिये हाथी मेरे द्वार के आगे खड़े झूल रहे हैं और यह बहुत सुन्दर घोड़े मेरे घरके आगे बांधे हुए शोभा दे रहे हैं और मेरे को राजा साहब ने पत्र लिखकर दिया है कि बंगाल देश में जाकर और धन ले आओ। यह गांव राजा ने मेरे को दिये हैं और भी कुछ देने को कहे हैं। जो पुरुष चित्त में इस प्रकार ध्यान करते रहते हैं तिन के हृदय में शान्ति कहां? अर्थात नहीं रह सकती, जैसे प्रकाश और अंधकार एक काल में एक स्थान पर इकट्ठे नहीं रह सकते। वे धनका चिन्तवन करते करते ज्यों ज्यों बूढ़े होते जाते हैं त्यों त्यों तृष्णा बढ़ती जाती है। जैसे समुद्र नदियों करके तृप्त नहीं होता तैसे लोभी पुरुष का हृदय भी धन करके तृप्त नहीं होता। जैसे बांस की टोकरी में ऊपर से कितना भी जल डालो, कदापि नहीं भरती; ऐसे ही लोभी पुरुष का हृदय, चाहे कितना ही धन प्राप्त होजावे, तृप्त नहीं हो सकता। इसपर इतिहास श्रवण करें:-

एक कोढ़ी पुरुष प्रार्थना किया करता था, 'हे अन्तर्यामिन्! मैं आपसे, और कुछ नहीं, केवल स्वास्थ्य ही माँगता हूं जिससे अपने हाथ की कमाई करके निर्वाह कर सकूं।' अन्तर्यामी की कृपा से उसका कोढ़ दूर होगया और वह लकड़ियां बेच कर निर्वाह करने लगा। एक दिन उसके पास चार आने बच गये। उसने विचारा कि कभी समय असमय

कोई वस्त्रादि की आवश्यकता होती है, यदि एक रुपया हो जावे तो अच्छा है। कुछ दिनों में जब एक रुपया होगया तो विचार आया कि यदि पांच रुपये हो जावें तो एक झोंपड़ी बनालूं क्योंकि सर्दी गर्मी में कष्ट होता है। करते करते पांच रुपये होगये तब विचारा कि झोंपड़ी में तो वर्षा काल में अधिक सुख नहीं मिलेगा, इसलिये यदि सौ रुपये हो जावें तो एक कच्चा मकान बनालूं। करते करते जब सौ रुपये हो गये तब प्रार्थना करने लगा, हे अन्तर्यामिन्! यदि एक हज़ार रुपये हो जावें तो दुकान खोललूं जिससे इतना अधिक परिश्रम करने से छुट्टी पाऊं, मकान तो किरायेपर भी लेकर निर्वाह करलूंगा। जब अन्तर्यामी की कृपा से एक हज़ार रुपया होगया तो दुकान खोलली। फिर प्रार्थना करने लगा कि यदि दस हज़ार रुपया हो जावे तो बज़ाज़ी की दुकान करलूं। कुछ समय उपरान्त जब दस हज़ार रुपया होगया तो बज़ाज़ी की दुकान करली। फिर विचारा कि यदि बीस हज़ार रुपये होजावें तो आढ़त की दुकान खोललूं। कुछ काल पाकर जब बीस हज़ार होगये तब आढ़त की दुकान करली, परन्तु उसकी मांग समाप्त न हुई। करते २ वह कोढ़ी करोड़ों रुपये का मालिक बन गया और शहर में बड़े नामी साहूकारों की गिनतीमें होगया। एक समयराजा नेआवश्यकता पड़ने पर उससे कुछ रुपया ऋण लिया। तब से राजा के साथ बड़ा प्यार होगया और उसने उसको अपना धर्म भाई बना लिया। कुछ समय पाकर जब राजा का देहान्त हो गया तो मन्त्रियों ने सोचा, राजा का पुत्र दुराचारी और शराबी है, यह तो राज्य को नष्ट कर देगा। इसलिये चाहिये कि राजा के धर्म भाई को गद्दी पर बैठा दिया जावे क्योंकि राज्य ने इसका ऋण भी बहुत देना है। इस प्रकार विचार कर उस को गद्दी पर बैठा दिया। जब राज्य प्राप्त होगया तब कुछ समय उपरान्त अन्तर्यामी से फिर प्रार्थना करने लगा यदि यह साथ वाला राज्य और मिल जावे तो आप की महान कृपा होगी; आप सदैव कृपा करते आये हैं। तब आकाश वाणी हुई कि अब तो सन्तोष कर। पहले तू कहता था कि

मेरा कोढ़ दूर होजावे तो मैं अपने हाथों की कमाई करके खाऊँगा, फिर धीरे २ तेरी तृष्णा बढ़ती ही गई, और अब तेरे को राज्य प्राप्त होगया है; फिर भी तू और मांगता है इस प्रकार तेरी कभी तृप्ति नहीं होगी। जैसे एक महात्मा कथन करते हैं:-

सवैया-जो दस बीस पचास भये, शत होय हजारन लाख मंगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, पृथ्वी पति होन की चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करों, तृष्णा अधिकी अति आग लगैगी।
सुन्दर एक संतोष बिना शठ, तेरी तो भूख कबी न भगैगी॥१॥
भूख नचावत रंकहि राजहिं, भूख नचाया जो विश्व बिगोई।
भूख नचावत इन्द्र सुरासुर, और अनेक जहाँ लगि जोई॥
भूख नचावत अधहिं उरधहि, तीनोंहू लोक गिने कहं कोई।
सुन्दर जाय तहाँ दुखही दुख, ज्ञान बिना न कहूं सुख होई।२॥

इसी आशय पर भर्तृहरि जी लिखते हैं:—

सवैया-तृष्णा जीरण भई न अबलों, मैं ही भयो जरजरो आप।
वृद्ध भयो दुरबुद्धि गई नहिं, मो उर मों यह गुरु संताप॥
अधम काममों अवधि गईसब, लब्ध भयौ अबलों कछु नाहिं।
हा हाना हरि के पां पकरे, हर पाप करे मैं अहिनिशि माहिं॥

गुरुजी भी कथन करते हैं:-

आखणु आखि न रजिआ सुनखि न रजे कन।
अखीं देख न रजीआ गुण गाहक इक वन॥
भुखिआ भुख न उतरै गली भुखन जाइ।
नानक भुखा ता रजै जा गुण कहि गुणी समाइ॥

(वारमाझ म० १ पृ० १४७)

पुनः- हे लोभा लंपट संग सिरमोरह अनिक लहरी कलोलते।
धावंत जीआ बहु प्रकारं अनिक भांति बहु डोलते॥
नच मित्रं नच इष्टं नच बांधव नच मातपिता तव लजया।
अकरणं करोति अखाद्य खाद्यं असाज्यं साजिसमजया॥
त्राहि त्राहि सरणि स्वामी बिज्ञापित नानक हरि नरहरह॥

(श्लोक सहसकृती म० ५ पृ० १३५८)

भावार्थ-जगद्गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं हे लोभ! तू कैसा है? जो सर्व के शिरोमणि पण्डित आदिक हैं वह भी तेरे संग से विषय

लम्पट होरहे हैं। इस पर इतिहास:-

एक राजाने अपने प्रोहित के आगे पांच प्रश्न किये:-
(१) तीन जन्मों का भूखा, (२) तीन जन्मों का तृप्त, (३) इस जगह सुखी और आगे दुःखी,(४)इसजगह दुःखी और आगे सुखी, और(५)पापका बाप कौनहै ? प्रोहितने कहा हे राजन् ! आप एक महीने का समय देवें तब मैं इनका उत्तर देदूंगा। राजाने कहा, "बहुत अच्छा"। प्रोहित समय लेकर घर रहने लगा। समय दिन रात करते व्यतीत होता जावे और पंडित जी को प्रश्नों का उत्तर न फुरे; इससे वह चिन्तातुर रहा करें। उनकी एक लड़की थी जो परमेश्वर की प्रेमिन और सत्संगिन थी। उसने पूछा हे पिताजी ! कई दिनों से आप चिन्तातुर मालूम होते हैं, न आप अच्छी तरह से खाना खाते हैं और न अच्छे वस्त्र ही पहनते हैं; इसका क्या कारण है ? तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। लड़की ने कहा हे पिताजी ! आप कुछ चिन्ता न करें, राजा से जाकर कह देवें इन प्रश्नों का उत्तर आपको मेरी लड़की देवेगी। यह सुनकर प्रोहित ने जाकर राजा से कह दिया। नियत दिन से पहिले लड़की ने एक घास खोदने वाले को, एक दानी साहूकार को, एक तपस्वी को और एक वैश्या को राज दरबार में अपने साथ ले जाने के लिये तैयार किया। एक परिडतजी से कहा कि यह एक छोटासा कुत्ते का बच्चा मरा पड़ा है, इसको साफ़ रूमाल में लपेट कर कल राज दरबार तक आप ले चलें। जो लेवें वह हम देने को तैयार हैं। पंडित जी ने कहा, "रामराम ! कभी ब्राह्मण भी ऐसा काम करते हैं ?" लड़की ने कहा पांच हज़ार रुपया आप लेवें और एक घण्टे के लिये इसको आप लेचलें। ऐसा सुनकर पंडित जी के हृदय में लोभ ने प्रवेश किया और मनमें विचारा कि पाँच हज़ार रुपया एक घंटे में मिलता है। क्या हानि है, इतना तो यदि मैं आयु पर्यन्त लगा रहूं तो भी प्राप्त होना कठिन है। लोभ में आकर कह दिया, 'ले चलूंगा।' दूसरे दिन वह लड़की सबको साथ लेकर राजदरबार में

गई। राजा ने उसे बड़े सत्कार के साथ बैठने को आसन दिया। लड़की ने राजा से प्रश्न करने के लिये कहा॥

राजा बोला, "तीन जन्म का भूखा कौन है?" लड़की ने घास खोदने वाले को सन्मुख किया और कहा हे राजन्! देखो, इसने पिछले जन्म में कुछ पुण्य दान नहीं किया, इसलिये इस जन्म में इसको कुछ प्राप्त नहीं, घास खोदकर बड़ी कठिनाई से पेट पालता है। आगे के लिये कुछ पुण्य नहीं करता, क्योंकि पुण्य करने की शक्ति इसमें है नहीं। इससे अगले जन्म में भी कुछ प्राप्त न होगा। राजा ने दूसरा प्रश्न पूछा, "तीन जन्मों का तृप्त कौन है?" लड़की ने दानी साहूकार को सन्मुख किया और कहा देखो, यह साहूकार पूर्वजन्म में धनी था और बड़ा पुण्य दान किया करता था। पिछले पुण्यों के प्रभाव से इस जन्म में भी धनी होने से तृप्त है। नित्य प्रति दान पुण्य करता है इससे अगले जन्म में भी इसको बहुत धन प्राप्त होगा। इसलिये यह तीन जन्मों का तृप्त है। राजा ने तीसरा प्रश्न किया, "इस जगह सुखी और आगे दुःखी कौन है?" लड़की ने वेश्या को सन्मुख किया और कहा, हे राजन्! देखो, यह वेश्या इस जगह अच्छा खाती और अच्छे २ वस्त्र पहिनती है, अब सुखी है; परन्तु यह व्यभिचारादि खोटे काम करती है, इससे इसका फल अगले जन्म में इसको दुःख ही होगा। राजा ने चौथा प्रश्न किया "इस जगह दुःखी और आगे सुखी कौन है?" लड़की ने तपस्वी को सन्मुख किया और कहा हे राजन्! इस जगह यह दुःखी है, क्योंकि यह सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, वर्षा, आदिक अनेक प्रकार के दुःख सहन कर रहा है और भजन स्मरण करता है। इसका फल इसको आगे सुख होगा। राजा ने पांचवां प्रश्न किया "पाप का बाप कौन है?" लड़की ने कहा कि पण्डितजी महाराज! कृपा करके आगे आइये। तब तो पण्डितजी ने मारे लज्जा के आंखें नीची करलीं और राजा के सन्मुख हुए। लड़की ने कहा हे राजन्! देखो, यह पण्डित लोग मुर्दे को स्पर्श नहीं करते। इनसे पूछिये कि

इस रूमाल में क्या है और यह इसे क्यों उठाकर ले आये हैं ? तब राजा ने पण्डित से पूछा तो पण्डित ने खोलकर दिखलाया और सारा हाल अपने मुख से कहा। लड़की ने कहा हे राजन् ! पाप का बाप लोभ है। राजा इस प्रकार युक्ति सहित प्रश्नों के उत्तर सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और लड़की को बहुत पारितोषक दिया। ताते सिद्ध हुआ कि लोभ करके ही सब पाप होते हैं; इसलिये सब पापोंका बाप लोभ है।

गुरु प्रमाणः– पड़िआ मूरख आखिऐ जिसु लबु लोभ अहंकारा ॥
(वार माझ महला १ पृ० १४०)

पुनः–वडे वडे राजन अरु भूमन ताकी तृसन न बूझी ।
लपटि रहे माइआ रंग माते लोचन कछू न सूझी ॥१॥
बिखिआ महि किनही तृपति न पाई ॥
जिउ पावकु ईधनि नहीं ध्रापै बिनुहरि कहाअघाई ॥रहाउ॥
दिनु दिनु करत भोजन बहु बिंजन ताकी मिटै न भूखा ॥
उदमु करै सुआन की निआई चारे कुंटा घोखा ॥२॥
(धनासरी म० ५ पृ० ६७२)

पुनः–लब लोभ अहंकार की माती माइआ माहि समाणी ॥
इनी वाती सहु पाईऐ नाहीं भई कामणि इआणी ॥
(तिलंग म० १ पृ० ७२२)

पुनः–मन का सूतक लोभ है जिहवा सूतकु कूड़ु ॥ (वार आसा म० १ पृ० ४७२)

पुनः–हउमै माइआ मोहि खुआइआ दुखु खटे दुखु खाइ ॥ अंतरि लोभ हलकु दुख भारी बिन बिबेक भरमाइ ॥ (भैरउ म० ३ पृ० ११३२)

जो पाप होता है वह लोभ से ही होता है ॥

'अनिक लहरी कलोलते'

जैसे समुद्र अनेक प्रकारकी मणियों से पूर्ण होता है; परन्तु फिर भी लोभकर आतुर हुआ २ अनेक प्रकार की लहरों को उठाता रहताहै कि मुझको कुछ और भी प्राप्त हो जावे, और स्वयं कुछ देनेको तैयार नहीं; तैसे ही लोभी पुरुष धनसे पूर्ण होनेपर भी लोभ से व्याकुल, धन प्राप्ति के लिये अनेक प्रकारकी लहरें रूप सङ्कल्प उठाता रहता है और दान नहीं करता; और वह जो कुछ करता है धन प्राप्ति के लिये ही करता है ॥

अधिकतर मनुष्य धन की तृष्णा कर ही देश परदेश में भटकते फिरते हैं, परन्तु बिना भाग्य के कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। प्रमाण:-

चारे कुण्डा जे भवहिं बिनु भागा धननाहिं। करमीपलै पाईअनि नही त वधा दुखसहाइ॥

भाव—यदि यह जीव चारों दिशाओं में धन प्राप्ति के हेतु भ्रमता फिरे तो भी बिना भाग्य के कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। काहे ते कि पूर्वले कर्मों कर धनकी प्राप्ति होती है और किसी उपाय से नहीं। इसलिये हे प्यारे! यदि यह पुरुष अपने भाग्य पर संतुष्ट रहता है तब तो परम सुख को पाता है नहीं तो यमादिकों द्वारा जन्म मृत्यु रूपी रस्सी से बँधा हुआ नाना प्रकार के कष्ट सहन करता है। इसी से कहा है:-

'नच मित्रं नच इष्टं'

भाव—न तो लोभी पुरुष का कोई मित्र है, न इष्ट देव और न बान्धव; और ना ही वह माता पिता की लज्जा करता है। अर्थात् लोभी पुरुष किसी का भी मित्र नहीं बनता, केवल अपने स्वार्थ की ओर ही हर समय ध्यान रखता है॥

गुरु प्रमाण:—लोभ लहरि सभु सुआन हलकु है हलकिओ सभहि बिगारे॥

[नट म० ४ पृ० ९८३]

हे प्यारे! तिस लोभी पुरुषका स्वभाव पागल कुत्ते जैसा होता है। सो इस लोभ रूपी पागल कुत्ते ने सबही मनुष्य बिगाड़ दिये हैं अर्थात् लोभ के कारण सब के अंतःकरण दूषित होगये हैं इस लिये उनके हृदय में नाम जप आदि उत्तम गुण नहीं ठहरते॥

प्रश्नः—हे भगवन्! गुरुजी ने लोभी पुरुष को पागल कुत्ते के समान कहा है सो पागल कुत्ते में चार लक्षण होते हैं जिनके कारण उसको पागल जाना जाता है:-

(१) उसके मुख में से झाग चलती है। (२) जलसे डरता है-तिस के समीप नहीं जाता। (३) अपना-पराया नहीं समझता—जो सन्मुख आवे उसी को काट खावे है। (४) उसकी पूँछ सीधी होती है। लोभी पुरुष में यह चार लक्षण कैसे पाये जाते हैं?

उत्तरः-हे प्यारे ! लोभी पुरुष में ऐसे चार लक्षण पायेजाते हैं:-

(१) लोभी पुरुष के मुख से याचना तथा निन्दा स्तुति रूपी झाग चलती है। भाव-यदि कोई लोभी पुरुष को कुछ दे देता है तो तिस पुरुष की वह बड़ाई करता है और जो कुछ नहीं देता उसकी निन्दा करता है॥

(२) सत्संग रूपी जलके पास नहीं जाता। (३) लोभी अपना-पराया, दान-कुदान, जूठ मीठ को भी कुछ नहीं जानता जो पुरुष उसके सामने आ जाता है तिसी के आगे याचना करने लग जाता है॥

(४) पूंछ रूपी हाथ भी लोभी का सीधा ही रहता है-सबसे दे, दे कहा करता है, किसी काल भी शान्ति को नहीं ग्रहण करता है॥

पागल कुत्ते के और भी लक्षण हैं सो सुनो। जिस को काटता है वह भी पागल हो जाता है; तैसे लोभी पुरुष जिसके आगे याचना करता है वह भी क्रोध युक्त होकर तिसको उत्तर में डाटता है और तिसके भी झाग चलने लगती है। पुनः जैसे पागल कुत्ता दशों दिशाओं में दौड़ता फिरता है, चैन से नहीं बैठता। तैसे धन प्राप्ति के लिये लोभी पुरुष दशों दिशाओं में दौड़ता हुआ कष्ट उठाता फिरता है। इस पर गुरुजी कथन करते हैं:—

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।
लोभि ग्रसिउ दसहू दिसि धावत आसा लागिओ धनकी॥
सुख के हेत बहुत दुखु पावत सेव करत जन जन की।
दुआरहिदुआरि सुआन जिउडोलत नहसुध रामभजनकी॥
(आसा म० ६ पृ० ४११)

इससे सिद्ध हुआ कि लोभी पुरुष पागल कुत्ते के समान है॥

'अकरणं करोति अखाद्य खाद्यं असाज्यं साज समजया।'

भाव-जो मित्र का धन लेना है वह ही अकरणं कार्य का करना है। जो इष्ट यानी गुरु जन व धर्म स्थान वालों से छल वल करना है यही अखाद्य वस्तु का खाना है। और जो माता पितादि से ठगी करके धन लेना है यही असाज्यं वस्तु का साजना है।

गुरु प्रमाणः–जिउ कूकरु हरकाइया धावै दहदिस जाइ ।
लोभी जंतु न जाणई भखु अभखु सभ खाइ ॥
काम क्रोध मदिबिआपिआ फिर फिर जोनी पाइ ।
माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ ॥
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ । (श्रीराग म०५पृ० ५०)

पुनः–दरबातुर जे जन आहि घना । तिनको गुरु साक न बंधु जना ॥

भाव–'जे जन' कहिये जो पुरुष 'घना' कहिये बहुत 'दरबातुर' कहिये धन करके दुःखी हैं अर्थात् लोभी हैं 'तिनको' कहिये उन लोभी पुरुषों को 'गुरु' कहिये पूज्य स्थान वा पूज्य वृद्ध पुरुष 'साक' कहिये सम्बन्धी 'बन्धु' कहिये भाई जनों से न तो लज्जा है और न लोक परलोक का भय है । हर समय यह ही धुन रहती है कि धन आवे । पुनः जैसे बावले कुत्ते को खाने की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, तैसे लोभी पुरुष को नाम रूपी अमृत अच्छा नहीं लगता; क्योंकि उसका मन अधिक विक्षिप्त रहता है ॥

'त्राहि त्राहि सरन सुआमी'

जब मनुष्य अन्तर्यामी की शरण होकर विनती करता है, 'हे अन्तर्यामिन् ! सर्व के स्वामी !! लोभ रूपी बावले कुत्ते से मेरी रक्षा करो !!!' तब उसे वह पाप के बाप लोभ से बचा लेता है ॥

उत्तम पुरुषों को लोभी का विश्वास किसी काल भी नहीं करना चाहिये । गुरु प्रमाणः–

लोभी का वेसाहु न कीजै जेका पारि वसाइ ।
अंति कालि तिथै धुहै जिथै हथु न पाइ॥ (सलोक वारां ते वधीक म०१पृ०१४१७)

पुनः–कबीरा जहा ज्ञानु तह धरमु है, जहाँ झूठु तह पाप ।
जहाँ लोभु तह कालु है, जहां खिमा तह आप ॥ (सलोक कबीर पृ० १३७२)

लोभ से कैसे मृत्यु होती है, इसपर इतिहास श्रवण करें ।

एक ब्राह्मण ने आकर राजा को आशीर्वाद दी, राजा ने उसके शरीर को बहुत दुर्बल तथा फटे पुराने वस्त्र धारण किये हुए देखा। फिर नमस्कार करके सत्कार पूर्वक बैठाया और आने का कारण पूछा।

ब्राह्मण ने कहा, मेरी लड़की विवाह योग्य है; उसके लिये मुझे अन्न, धन तथा वस्त्रों की आवश्यकता है। राजा बड़ा उदार चित्त था उसने कहा, "महाराज जी ! सवेरे आना, अन्न, धन, वस्त्रोंके कोष खोल दिये जावेंगे। दिन भर तुम अकेले जितना उठाकर लेजा सको ले जाना। वह ब्राह्मण लौट गया और दूसरे दिन सवेरे ही आगया। राजा ने नौकरों को आज्ञा दी कि अन्न, धन, वस्त्रों के कोष खोलदो और दिन भर में जितने पदार्थ यह ब्राह्मण ले जा सके वह ले जाने देना, रोकना नहीं; आज्ञा पाकर नौकरों ने कोष खोल दिये। पण्डित जी पोटली बाँध २ कर ले जाने लगे। मनमें लोभ ने ऐसा प्रवेश किया कि खाना पीना सब भूल गये। चित्त में यही धुन लग रही थी कि कहीं एक आध गठरी ले जाने की कसर न रह जावे। दिन भर लगे रहे। जब सूर्यास्त होने का समय समीप आया तब अन्तिम गठरी धन की बड़ी भारी बांधी; किन्तु अभी उठाई नहीं थी कि सूर्यास्त हो गया और राजा ने आकर कहा, "अब दिन छिप चुका है, यह गठरी अब आप नहीं लेजा सकते, दिन भर में तुमने अन्न वस्त्र और धन बहुत ढोलिया है।" ब्राह्मण बोला, जिस समय मैं धन गठरी में डालने लगाथा उस समय दिन था, इसको लेजाने दीजिये। राजा ने कहा, "अच्छा, उठालो।" । वह गठरी बड़ी भारी थी, अकेले ने बड़ी कठिनता से उठाई। जब दरवाजे से बाहर निकलकर सीढ़ियाँ उतर कर सड़क पर आने लगे तब बोझा अधिक होने से सीढ़ी उतरते समय पांव फिसल गया, तो ब्राह्मण देवता नीचे और धनकी गठरी ऊपर। बोझ से दबगये और वहां ही प्राण निकल गये। इस प्रकार लोभ करके काल कहिये मृत्यु की प्राप्ति हुई॥

दो०-अती सनेह न कीजिये, फसे न निकलन होइ।
भंवर बेधियो कंवल में, दीप पतंगे लोइ॥

पुनः-मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लिपटाइ।
उड़ने का संसा रह्यो, लालच बुरी बलाइ॥

गुरु प्रमाणः-मरकट मुसटी अनाज की मन बउरारे लीनी हाथि पसारि।
छूटन को सहसा परिआ मन बउरारे नाचिओ घर घर बारि॥ (गउड़ी कबीर पृ० ३३६)

पुनः-काम क्रोध त्रिसना को लीनो गति नहीं एकै जानी ।

फूटी आंखै कछू न सूझै बूडि मूए बिनु पानी ॥ (केदारा छन्द म० ५ पृ०११२४)

इसी आशय पर एक और महात्मा लिखते हैं:-

बावन रूप भगवान ने लोभ कीता, होना बलि दा प्या दरवान भाई ।
लोभन पूतना भी मर गई ओथे, ज़हिरनाल सी मारने कान्ह आई ॥
लोभ करे सुदामा चने चबावने दा, बन गया दरिद्र दी खान भाई ।
सिकंदर जोड़के धन बेअंत मोया, ख़ाली हथ लटकदे जान भाई ॥

लोभोवाच-

चौ०-तृष्णे आओ बेगि इत ओरा । मेरो बैन सुनो श्रुत भोरा ॥
तृष्णा बैठ समीप उचारे । आज्ञा करो सु प्राण प्यारे ॥
लोभ कहे सुनु प्राण प्यारी । क्षेत्र ग्राम पुनि नगर उदारी ॥
पुर अरु द्वीप भूमि को चहै । आस पास जिनके मन गहै ॥
तिन पर कृपा सु ऐसी करियो । ब्रह्माण्डलाख नह तहमन भरियो ॥
तृष्णे ! जा उर चरण टिकै है । शान्ति कहाँ जगते नर पै है ॥

तृष्णा उवाच-दो०:-आरयसुत मैं आपही, सदा चहौं सब भौन ।
अब आयसु तुम्हरी भई,मम तृप्तावै कौन ॥ (प्रबोधचन्द्र नाटक)

इसी आशय पर और महात्मा लिखते हैं:-

कवित्त-तृष्णा घनेरी लगरही सारे जग उत्ते,
हर इक जीव ताईं फिरे है भ्रमावंदी ।
राज भाग त्याग जेढ़े दुनियां तों अड्ड होए,
उन्हां दे वी दिलां विच ज़रा क समावंदी ॥
धाँवदी संसार उत्ते टिकन न देवे किसे,
पर गुरुमुखां तों एह दूर है नसावंदी ।
ताते एहनूं दूर कर राखिए संतोष दिल,
जीवनूँ भगत साध संगति बचावंदी ॥

हे प्यारे ! अन्तःकरण की शुद्धि के लिये धनी पुरुषों को दान करना चाहिये और निर्धन पुरुषों को नाम जपना चाहिये । परन्तु विपर्य स्वभाव से जीवों की बुद्धि ऐसी हो रही है कि जिस पर प्रबोध चन्द्र नाटक में लिखा है:-

छप्पयछन्द-धनी धरम धनदान, न रंचक मन में आने ।
निरधन भजै न नाम, दान हित उद्यम ठाने ॥

धार फ़क़ीरी वेष, मूढ़ कृतारथ माने ।
बिन सन्तोष श्वान वृत्ति, आप उत्तम कर जाने ॥
इहि तरुन अवस्था माहिंजन, तजे विषय सुउपरत अति ।
पुनि उभय भ्रष्ट जरठापने, धन सुत दारा विषय रति ॥

इस संसार मंडल में ऐसा कौन प्राणधारी जीव है जो लोभ को धारण करके दुःखी नहीं होता ? अर्थात् सब होते हैं:—

सवैया—नादके लोभ तजै मृग प्रान,सुबीन सुने अहि आप बंधाए ।
मीन सु त्यागि अगाध जलं,उर लोभ जगे गल लोह फंसाए ॥
कागदकी पुतली करिखी वस,मत्त गयन्द सु अंकुश खाए ।
या भव मंडल माहिं सुनो,उर लोभ करे दुःख कौन न पाए॥१॥
गीभन मांस गहे मुख में, पुनि तुंडन ते निज मुंड कटाए ।
भृङ्ग बली पिख कञ्ज प्रभा,उर लोभ लगे तिहि माहिं बंधाए ॥
रूपके लोभ पतङ्ग दहे, अरु चोगके लोभ बिहङ्ग फंसाए ।
या भव मंडलमाहिं सुनो,उर लोभ जगे दुख कौन न पाए॥२॥

भाव—जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ के दिनों में जंगल विषे प्यासा पुरुष जल की पवित्रता अपवित्रता को नहीं देखता—जैसा मिले, पी लेता है; तैसे ही तृष्णालु पुरुष धर्म अधर्म का विचार नहीं करता, जिस प्रकार का भी धन प्राप्त हो, ग्रहण कर लेता है। ताते सिद्ध हुआ कि लोभ से ही पाप होते हैं और पापों से दुःख होता है। इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि लोभ का त्याग करके सन्तोष को धारण करे जिससे सुखी होवे। कैसे ? जैसे बबंडर (वाविरोला) में भ्रमते हुए तृण को सहारा मिले तो स्थिर भाव को प्राप्त होता है ॥



धारणा—(बिरथा कहउ कउन सिउ मनकी)

बिरथा कहउ कउन सिउ मनकी ॥
लोभि ग्रसिउ दसहू दिस धावत आसा लागत धनकी ॥ रहाउ ॥ बिरथा० ॥
सुख कै हेत बहुतु दुख पावत सेव करत जन जन की ॥ बिरथा० ॥
दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नहिं सुध राम भजन की ॥ बिरथा० ॥
मानुस जनमु अकारथ खोवत लाज न लोक हसन की ॥ बिरथा० ॥
नानक हरि जसु किउ नहि गावत कुमति बिनासै तनकी ॥ बिरथा० ॥

(आसा म० ९ पृ० ४११)

सन्तोष

प्रश्नः—भगवन् जी ! लोभ का प्रसंग सुनकर हमारा चित्त बड़ा भयभीत हुआ है। कृपया इसकी निवृत्ति का साधन वर्णन करें।

उत्तरः-हे प्यारे ! लोभ निवृत्ति का साधन—सन्तोष, एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। गुरु जी कथन करते हैं:—

सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेनि ॥ होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि ॥सबरु एहु सुआउ जे तूं बंदा दिड़ु करहि ॥ वधि थीवहि दरीआउ टुटि न थीवहि वाहड़ा ॥ [सलोक फ़रीद पृ० १३८४]

इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि इस शरीरको मिट्टी रूप निश्चय करे और रूखा सूखा खाकर निर्वाह करता हुआ सन्तोष के रास्ते पर चले। भाव—दूसरों की आस त्याग कर सन्तोष को धारण करे। इस पर एक महात्मा लिखते हैं:—

सो०—रूख सूख निरवाह, माटी मय येहि तन सदा।
सन्तन के पर राह, आस तिआगो आनकी ॥

इसपर इतिहास श्रवण करें:—

एक राजा प्रति वर्ष जन्माष्टमी पर एक हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराया करता था। एक वार राजा ने इस अवसर पर अपने नियमानुसार ब्राह्मणों को निमन्त्रण भेज दिया। भोजन का समय हुआ तब दूर २ से ब्राह्मण आने लगे। एक तपस्वी ब्राह्मण भी कहीं से वहां पर आ निकला। राजा सब ब्राह्मणों के चरण धोने लगा। तपस्वी के चरण धोते समय राजा उनको मिट्टी से भरे हुए तथा नीचे से फटे हुए देखकर बोला, महाराज ! आपके चरण तो खुरदुरे हैं। वह बोला,

राजन् ! ऐसा प्रतीत होताहै कि अबतक तुमने पत्री बांचने वाले पंडितों के ही चरण धोये हैं, ब्राह्मणों के नहीं । अतः उनकी पहचान नहीं है। ब्राह्मणों ने तो शरीर को भी मिट्टी रूप ही निश्चय किया है, चरणों की क्या चिन्ता करें ? ऐसे सुनकर राजा चुप हो गया। चरण धोने के उपरान्त पत्तलें परोसीगईं और सब भोजन करने लगे। पहिले यह रीति थी कि जब ब्राह्मण भोजन कर लेते थे तब भोजन कराने वाला कहता था 'एक लड्डू और लीजिये, चार आना प्रति लड्डू दक्षिणा अधिक मिलेगी।' जब एक एक सब खा लेते तब आठ आना कर देते, फिर बारह आने और फिर एक रुपया प्रति लड्डू कर देते थे। दक्षिणा के लोभ से ब्राह्मण भी पहली वार तृप्त होकर भोजन नहीं करते थे, फिर से खाने को पेट में स्थान रख छोड़ते थे। परन्तु इस तपस्वी ब्राह्मण ने पहली वार ही तृप्त होकर भोजन कर लिया और आचमन करके बैठ रहा। इतने में राजा ने कहा, "एक लड्डूके चार आने मिलेंगे।" तब सब ब्राह्मण फिर से खाने लगे। जब एक एक खा चुके तब राजा आठ आने बोला, फिर बारह आने, फिर एक रुपया बोला। सब ब्राह्मण खाते ही रहे। राजा ने तपस्वी ब्राह्मण को चुपचाप बैठे देख कर उससे कहा महाराज ! सबब्राह्मण तो भोजन कर रहेहैं, आप क्यों नहीं करते ? उसने उत्तर दिया, हमने भोजन करके आचमन कर लिया है, बार बार हम भोजन नहीं करते। राजा बोला, यदि आप एक लड्डू और भोजन करें तो आपको पाँच रुपये दक्षिणा दूंगा। जब उसने न माना तब राजा दस रुपये बोला, तब भी वह नहीं माना। राजा ने बढ़ते बढ़ते एक हज़ार रुपये एक लड्डू खाने के बदले में देने को कहा। ब्राह्मण—यदि आप एक लाख रुपये दें तो भी मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूंगा। अर्थात् आचमन किये पीछे दूसरीबार नहीं खाऊँगा। राजा—महाराज ! आपको ऐसा दाता नहीं मिलेगा जो एक लड्डू के बदले इतने रुपये देता हो। ब्राह्मण ने हंसकर कहा, "हमको तो आप सरीखे दाता बहुत से मिले हैं और मिलेंगे ; परन्तु आपको ऐसा संतोषी ब्राह्मण विरला ही

मिलेगा।" इस बात को सुनकर राजा चुप हो रहा और ब्राह्मण हाथ धोकर अपने आश्रम को चला गया।

संतोष से रहित सब जीवों की दीन दशा हो रही है। इस पर एक महात्मा लिखते हैं :-

दोहा-दीन दशा संतोष बिन, पशु आदिक सब जीव।
चाह रहित संतोष युत, जीव न जानों शीव॥

भाव-तृष्णा से रहित संतोषी पुरुष कल्याण स्वरूप है।

गुरु प्रमाणः-सचु मिलै सन्तोखिया हरि जपि एकै भाइ॥ (सिरीराग म० १ पृ०१८)

भाव-जिन्होंने एक 'हरि' को 'भाइ' कहिये प्रेम से जपा है उनको परमात्मा की प्राप्ति से आनन्द आया है और आनन्द आने से सन्तोष आगया है, वह किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखते। इस पर इतिहासः-

एक दुकानदार सन्तोष से निर्वाह करता था, उसने एक छोटी सी दुकान नदी के घाट पर बनाई हुई थी। गृहस्थियों को तो वह मूल्य लेकर सौदा देता था, परन्तु सन्तों की बड़े प्रेम पूर्वक निष्काम सेवा किया करता था। ऐसा करते हुए उसे बहुत समय बीतगया। एक दिन वहां पर एक रसायनी महात्मा आये और उसकी दुकान के आगे जो तख्त बिछा हुआ था उस पर बैठ गये। दुकान दार अपने नियमानुसार उठ कर प्रेम से सेवा करने लगा। जब महात्मा की दृष्टि उसकी दुकान पर पड़ी तो देखा कि सामान बिलकुल साधारण है। उन्होंने सोचा यह ग़रीब है, इसको रसायन देदें तो इसका निर्वाह भली प्रकार होता रहेगा। चलते समय महात्मा रसायन वाला बिल उसे दे गये। एक वर्ष के पश्चात् महात्मा विचरते हुए उसी स्थान पर आये तो उस दुकान की व्यवस्था पहले जैसी ही पाई। तब उन्होंने विचार किया कि हमने इसको बिल तो देदियाथा परन्तु सोना बनाने की विधि नहीं बतलाई थी, इसलिये यह ग़रीब ही रहा। इतने में वह दुकानदार आकर सन्तजी के पैर दबाने लगा; सन्त पूछने लगे भक्तजी! तुमने हमको पहिचाना? दुकान दार बोला महाराज! यहां अनेक सन्त आते रहते हैं इस लिये हमको

आपकी पहिचान नहीं रही है। सन्त बोले एक वर्ष हुआ हम यहां आये थे, तुमको ग़रीब जानकर रसायन का एक बिल दिया था, तुमने जंगले में रक्खा था; तब वह दूकानदार बिलको निकाल लाया। सन्त-इससे सोना बनता है, परन्तु हम तुमको बता नहीं गये थे। दुकानदार-महाराज! अब बतला दीजिये। सन्त-तांबा लाकर एक मिट्टी की कुठाली बनाकर उसमें रक्खो और नौसादर और सुहागा उसमें मिलादो, फिर कोयले सुलगाकर उस पर उस कुठाली को रखदो। जब तांबा गल कर पानी के समान हो जावे तो उसमें बिल से औषधि डालदो, सोना बन जावेगा। दुकानदार-ताँबा लाने, सुहागा और नौसादर डालने और कुठाली आदि बनानेमें समय क्यों बिगाड़ें ? क्या आपको सोनेकी आवश्यकता है ? सन्त-हां, चाहिये। दुकानदार ने अपनी लाठी लेकर वहां जो पत्थर पड़े थे उनके साथ छुवादा, पत्थर तत्काल सोना बन गये; जिस वस्तु से लाठी छुवावे वही सोना हो जावे; तब वह बोला बाबा! जितना सुवर्ण चाहिये लेलीजिये। फिर कहने लगा आपने सोना बनाने के निमित्त घर छोड़ा था या त्याग करने के लिये ? आपने वैराग्य से शून्य होकर अनात्म पदार्थों में सुख मान रक्खा है इस से आत्म ज्ञान से रहित हो। तब सन्त ने उस भक्त के चरणों में नमस्कार कर अपनी भूल मानी और कहा, 'आप धन्य हो जिन्होंने गृहस्थी में रहते हुए ही सन्तोष धारण किया हुआ है; मैं भी आज से ऐसा ही करूंगा।' यह कहकर बिल को फैंककर चलदिया और सुख पूर्वक विचरा, क्योंकि सन्तोष जैसा और कोई सुख नहीं:-

दो०-सम सन्तोष न और सुख, तप न क्षमा सम जान।
ब्रह्म ज्ञान सम दान नहिं, धर्म न दया समान॥

सन्तोष पर एक और इतिहास श्रवण करें :-

एक गृहस्थ स्त्री पुरुष बहुत ग़रीब, परन्तु सन्तोषी थे। वह अपना निर्वाह मज़दूरी करकेकिया करतेथे। एकबार वर्षाआरम्भ होगई और कई दिन मज़दूरी न मिली तो एक दिन उनके घर खाने को कुछ न रहा।

तब पुरुष ने स्त्री से कहा हे सुन्दरी ! तू रोटी के समय पर तन्दूर जला देना ताकि पड़ोसियों को धुआं देखकर पता लग जावे कि इनके आज रोटी बनी है। यदि धुआं न निकला तो वह समझेंगे आज इनके घर रोटी नहीं पकी और वह कुछ देने को आवेंगे। जिससे हमारे सन्तोष में अन्तर आवेगा। स्त्री ने तन्दूर जला दिया और आप ईश्वर चिंतन में बैठ गई; इतने में पड़ोसिन उनके घर आग लेने के लिए गई और देखा कि रोटियां पक कर लाल हो रही हैं, तब उस माई का नाम लेकर पुकारा और कहा आपकी रोटियां पक चुकी हैं, उतारने में विलम्ब हुआ तो गिर जावेंगी। ऐसे दो तीन वार पड़ोसिन के कहने पर वह माई रोटियां उतारकर लेगई और स्त्री पुरुष दोनोंने आनन्द से भोजन किया। अब तो उनको दृढ़ विश्वास हो गया कि सन्तोष धारण के बराबर सुख नहीं है, क्योंकि अन्तर्यामी परमात्मा को सन्तोषी पुरुषोंके ही खान पान का हर समय ध्यान रहता है। जिसको सन्तोष आया है उसको किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा या तृष्णा नहीं रहती। गुरु प्रमाणः—

संतोखु आइआ मनि पूरा पाइ। फिरि फिरि मांगन काहे जाइ ॥

(रामकली म० ३ पृ० ८६१)

इस पर इतिहास श्रवण करें :—

एकसन्तोषी फ़क़ीर जंगलमें एक पेड़के नीचे रहता था और अपना निर्वाह शाक आदिक खाकर किया करता था, कभी शाक भी न मिले तो उपवास कर लेता था; परन्तु किसी से कुछ मांगता नहीं था। एक दिन हुमा पंछीने उससे कहा हे फ़क़ीर साईं ! मैं आपको बहुत तकलीफ़ में देखता हूं क्योंकि कभी आपको शाकादिक खाने को मिलता है और कभी भूखा रहना पड़ता है; मुझे अन्तर्यामी का वर है कि मैं जिसके सिरपरसे उड़कर चला जाऊं उसको बादशाही मिल जातीहै, यदि आज्ञा हो तो मैं ऐसा करूं ताकि आपकी यह तकलीफ़ दूर हो जावे।

फ़क़ीर बोला—

ऐ हुमा ! पेशे फ़क़ीरी सल्तनत क्या चीज़ है।
बादशाह आते हैं क़दम बोसी रवां के लिये ॥

भाव–फ़क़ीर ने कहा ऐ हुमा! इस फ़क़ीरी के आगे बादशाही क्या चीज़ है? अर्थात् तुच्छ है, क्योंकि फ़क़ीर के क़दम चूमने के वास्ते बादशाह भी आकर अपना सिर झुकाते हैं; इसलिये मैं बादशाही की कुछ भी इच्छा नहीं रखता। गोसाईं तुलसीदासजी लिखते हैं:–

दो०–सौ गांठें कौपीनकी,भाजी बिन जो लौन। तुलसी जिहिउरहरि बसे,इन्द्रचापरो कौन॥

जैसे पश्चिम दिशाके किसी एक गाँवमें एक स्त्री पुरुष खुदा के प्यारे, सन्तोष को धारण कर खुदा की बन्दगी किया करते थे; उनके पास कपड़े की इतनी तंगी थी कि केवल एक ही चादर थी–जो बाहर जावे सो चादर ओढ़ कर जावे, दूसरा घर में नग्न बैठारहे। इतनी तंगी होते हुए भी किसी से याचना नहीं करते थे; उदर पूर्ति के लिये किसी उद्यम में केवल उतना ही समय घर पर लगाते थे जितने में चार पैसे प्राप्त हो जावें, शेष समय खुदा की बंदगी में व्यतीत करते थे; इसी प्रकार कुछ समय बीत गया। एक दिन उस गांव में पैग़म्बर साहब आये और वह खुदा का प्यारा भी गांव के लोगों के साथ उनके दर्शन करने को गया; जब निमाज़ का समय हुआ तब एक आदमी ने पैग़म्बर साहब से कहा कि इसको घर भेजिये, क्योंकि इन दोनों (स्त्री पुरुष) के पास केवल एक चादर है, इसलिये इसकी स्त्री इन्तिज़ार में होगी,ऐसा सुनकर पैग़म्बर साहब ने उससे कहा कि जल्दी जाओ और निमाज़ पढ़ो। जब वह चला गया तो पैग़म्बर साहब ने बाक़ी आदमियों से कहा, बड़ी लज्जा की बात है कि तुम्हारे गाँवमें एकभाई इतनी तंगीसे निर्वाह करता है और तुम उसकी कुछ परवाह नहीं करते, इसलिये तुम्हारी निमाज़ व रोज़े खुदा को मंज़ूर नहीं होंगे, अब जल्दी करो,कुछ कपड़े और अनाज उसके यहां पहुँचाओ। तुरन्त ही एक आदमी दोनों चीज़ें लेकर उसके घर पहुँचा और पुकार कर कहा, 'दरवाज़ा खोलो, यह सामान पैग़म्बर साहब ने भेजा है सो लेलो।' अन्दर से माई बोली, 'जो कुछ लाये हो सो वापिस ले जाओ, हमको किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं' और अपने मन में पश्चाताप करने लगी कि मेरे

स्वामी ने अपनी परिस्थिति पैग़म्बर साहब के आगे कही होगी इसीलिये उन्होंने कपड़े और अन्न भेजा है। इतने में उसका पति भी घर आगया तो उससे सब हाल कहा और पूछा कि आपने सन्तोष छोड़ कर अपनी ग़रीबी की दशा पैग़म्बर साहब से क्यों कही ? उसने उत्तर दिया, मैंने तो कुछ नहीं कहा, परंतु मेरे सामने एक आदमी ने उनसे कहा था कि इनके पास एक ही चादर है। इसलिये उन्होंने सामान भेजा होगा ॥

उधर जब सामान वापिस लेकर वह मनुष्य पैग़म्बर के पास पहुँचा और सारा हाल जाकर कहा तो पैग़म्बर सुनकर चकित हुए और कहा कि इनमें फ़कीरों के लक्षण हैं, क्योंकि ऐसा लिखा है:–

फे फ़ाक़ाते क़ाफ़ क़िनाइत, पूरी करन निशाणे।
येदे माइने याद ख़ुदानूं, दम दम हाज़िर जाणे ॥
फ़ाक़ा माइने बहुता रोज़ा सुख विच साबर रहिणा।
नाम क़िनाइत मिले जो थोड़ा खाकर ख़ुश हो बहिणा ॥
रे रियाज़त विच जिगरदे, करनी तलब जलालों।
ओही इश्क इलाही वाले, पावन मज़ा वसालों ॥
एह सब मंज़ल जिसदे अन्दर अमल बराबर आवै।
जाइज़ है उसताईं जेकर नाम फ़क़ीर सदावै ॥

यह गृहस्थ में रहते हुये भी फ़क़ीर हैं, इसलिये इनका दर्शन करना चाहिये। तब पैग़म्बर साहब उसके घर पर आये और बाहर खड़े होकर दरवाज़ा खोलने के लिये कहा तो अन्दर से माई बोली, आप कौन हैं और क्या काम है ? पैग़म्बर साहब ने कहा, मैं आप के दर्शन के लिये आया हूं और मैंने ही अन्न और वस्त्र आपके लिये भेजे थे; आपने क्यों इनकार किया है ? माई ने पूछा "क्या आप पैग़म्बर हैं ?" उन्होंने कहा, "जी हां"। माई–पैग़म्बर के माने क्या हैं ? पैग़म्बर–जो ख़ुदा का पैग़ाम अर्थात् सन्देशा पहुंचाने वाला हो उसको पैग़म्बर कहते हैं। माई–क्या ख़ुदाने आपको यह पैग़ाम दिया है कि जिन लोगों ने संतोष धारण किया हो उनको उससे हटादें ? ऐसा सुनकर पैग़म्बर साहब निरुत्तर होगये और उसको शाबाश देकर चले गये ॥

इसी आशय पर फ़रीदजी कथन करते हैं कि जिज्ञासु सन्तोष धारण करने के लिये इस प्रकार अपने मनको समझावे।

रुखी सुखी खाइ कै, ठंडा पानी पीउ।
फ़रीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥ [पृ० १३७९]

पुनः–हरि रुखी रोटी खाइ समाले॥ हरि अंतरि बाहरि नदरि निहाले॥ खाइ खाइ करै बदफ़ैली जाणु विसू की बाड़ी जीउ॥ (माझ म० ५ पृ० १०५)

पुनः–सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेनि। होइ नजीक खुदाइ दे भेतु न किसै देनि॥ (सलोक फ़रीद पृ० १३८४)

सन्तोषको धारण किये बिना मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं हो सकती, उसके सब काम और मनोराज स्वप्न के समान व्यर्थ हैं। इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:–

बिना सन्तोष नहीं कोऊ राजै॥ सुपन मनोरथ बिरथे सब काजै॥
(गउड़ी सुखमनी म० ५ पृ०२७९)

पुनः–सेव कीती संतोखईं जिन्हीं सचोसचु धिआइआ॥ (वार आसा म० १ पृ०४६६)

इसी आशय पर कबीर जी कथन करते हैं कि हे जिज्ञासुओ! सत्य, संतोष को धारण करके ब्रह्मज्ञान को कथन करना चाहियेः–

चउदसि चौदह लोक मझारि॥ रोम रोम महि बसहि मुरारि॥
सत संतोष का धरहु धिआन॥ कथनी कथीऐ ब्रह्म गिआन (गउड़ीकबीर पृ०३४४)

ताते सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु गुरु तथा शास्त्र के आशय अनुसार संतोष को धारण करे।

धारणा–(है सर्व सुखों का मूल धारलै संतोष बंदिआ)
है संतोषी सर्व का राजा। राज करे वह बे मुहताजा॥
लावें सब चरणों की धूल। धार लै संतोष बंदिआ॥है०॥
चातृक स्वांती बूंद को चाहि। और जल नाहीं उसभाइ॥
एक बूंद ही है अनुकूल। धारलै संतोष बंदिआ॥है०॥
है सन्तोष सुखों की खान। धारन उरमें पुरुष सुजान॥
पुट देवे दुख तरु मूल। धारलै सन्तोष बंदिआ॥है०॥
सन्तोष मित्र है सबसे आला। लोक प्रलोक में है रखवाला॥
है पक्का इस दा रूल। धारलै सन्तोष बंदिआ॥है०॥



प्रारब्ध कर्म पर सन्तुष्ट रहना

प्रश्नः– भगवन् जी ! सन्तोष का प्रसंग सुन कर हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है । कृपा करके आप यह वर्णन करें कि सन्तोष किस प्रकार धारण किया जावे ?

उत्तरः–हे प्यारे ! सन्तोष धारण करने के लिये शिक्षा को एकाग्र चित्त हो कर सुनो और उसको धारण करोः–

(१) प्रारब्ध कर्म पर सन्तुष्ट रहना, अर्थात् जो हमारे प्रारब्ध में लिखा है वह हमको अवश्य प्राप्त होगा । (२) ईश्वर की आज्ञा समझकर दुःख सुख में प्रसन्न रहना । (३) ईश्वर पर विश्वास रखना ॥

वास्तविक दृष्टि से यह तीनों एक हैं, परन्तु जिज्ञासु के बोधार्थ तीन प्रकार से वर्णन किये गये हैं । गुरुजी कहते हैं:–

कका कारन करता सोऊ ॥ लिखिओ लेखु न मेटत कोऊ ॥
नहीं होत कछु दोऊ बारा ॥ करनै हारु न भूलन हारा ॥

(गउड़ी बावन अखरी पृ० २५३)

एक बार जगद् गुरु गुरु नानकदेव जी के आगे योगियों ने प्रश्न किया कि अन्तर्यामी के आगे किस प्रकार सच्चे होवें और झूठे शरीर के पालने की चिन्ता से कैसे छूटें ? तब उत्तर में गुरु जी ने कहाः–

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआनालि ॥ (जपु जी पृ० १)

'रजाई' कहिये परमात्मा के 'हुकमि' कहिये आज्ञा में चलना–दुःख सुख में, ईश्वरेच्छा समझकर प्रसन्न रहना; इस प्रकार तो सच्चा होता है और 'लिखिआ' कहिये जो हमारे प्रारब्ध में लिखा है वह छूटे हुए बांण

के समान हमारे 'नाल' कहिये साथ है—वह हमारे को अवश्यमेव प्राप्त होगा; इस प्रकार झूठे शरीर की पालना करने की चिंता छूट जाती है, क्योंकि जो तीर भत्थे (तरकश) से निकल गया है और उसको जितने बल से छोड़ागया है, वह उतना ही अपना काम करके गिरेगा; तैसे छूटे बाणवत् प्रारब्ध कर्मों का फल भी अवश्य मिलेगा। इस पर इतिहासः—

एक नगर में एक पुरुष, उसकी स्त्री और एक उनका पुत्र, बड़े दरिद्री, रहते थे जोकि वन से शुष्क काष्ट काट कर लाते और उसको बेचकर अपनी उदर पूर्ति करते थे। एक दिन वनमें तीनों काष्ट काट रहे थे कि दैव योग से श्री महादेव जी भगवती उमा के साथ विचरते हुए वहां आगये; उनकी दीन अवस्थाको देखकर सतीजी का हृदय दया से पूर्ण हो गया और महादेव जी से पूछा हे स्वामिन्! ईश्वर की तो सर्व में समदृष्टि है, यह जीव क्यों इतनी दीन दशा को प्राप्त हो रहे हैं; क्या ईश्वर विषम कारी भी है? महादेव जी—हे सती! ईश्वर तो सदा समदर्शी है, विषमकारी नहीं, परन्तु जिसके जैसे कर्म होते हैं उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है, न्यूनाधिक नहीं होता। सतीजी—हे नाथ! आप मेरी प्रसन्नता के अर्थ इन तीनों को एक एक वर प्रदान करें; यदि फिर भी इनको ऐश्वर्य का लाभ न हुआ तो मेरा सन्देह दूर हो जावेगा। महादेवजी—हे सती! तुम्हारी प्रसन्नता के अर्थ में एक २ वर इनको दिये देता हूं, परन्तु इससे इन्हें कुछ लाभ न होगा, क्योंकि इनके प्रारब्धमें ऐश्वर्य नहीं है; जाओ इनसे तुम कहदो कि यह हमारे से वर मांगलें। सतीजी प्रसन्न होकर पहिले उस स्त्री के पास आईं और उससे किंचित् वार्तालाप करने के अनन्तर कहा हे सुन्दरी! आज तेरे बड़े उत्तम भाग्य हैं जो त्रिलोकी नाथ श्री महादेवजी तुमपर प्रसन्न हुए हैं; उठो और शीघ्र उनके पास चलकर अपनी इच्छानुसार एक वर मांगलो। यह सुन कर वह बड़ी प्रसन्न हुई और विचार करने लगी, कि कौनसावर मांगूं, यदि धन सम्पत्ति मांगूं तो मेरा स्वामी और विवाह करके मेरा त्याग करदेगा तो मुझे असह्य दुःख होगा, पतिका सर्वकाल

अनुकूल रहना स्त्री के लिये परमसुख है, परन्तु पति सुन्दर स्वरूप और युवावस्था के आधीन होता है; इसलिये मैं यही वर मांगूं। ऐसे विचार कर सती जी के साथ श्री महादेव जी के समीप गई और दण्डवत प्रणामकिया, तब श्रीमहादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा, "हे पुत्री! तू एक वर माँगले।" वह बोली, "हे जगन्नाथ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो यह वर दीजिये कि मैं षोड़ष वर्ष की और सती जी के समान रूप वाली हो जाऊं।" महादेवजी बोले "तथास्तु;" वह तत्काल ही एक षोड़ष वर्ष की सुन्दरी बन गई और महादेवजी सतीजी सहित अन्तर्धान हो गये। जब स्त्री वर लेकर पति और पुत्रके पास आई तो एक राज पुत्र वहां आपहुँचा और देखा कि अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाली एक युवा स्त्री है और दो पुरुष कृष्ण वर्ण और कुरूप उसके समीप खड़े हैं, मानों चन्द्रमा को राहु आच्छादन करने को तैयार होरहा है; उसने समझा यह कोई डाकू हैं और किसी धनी की कन्या को पकड़कर यहां ले आये हैं; ऐसे जान कर राजपुत्र ने उनको बहुत भय दिया और तत्काल उस स्त्री को अपने अश्व पर बिठा कर ले गया। पीछे सती जी ने उस पुरुष से उसी प्रकार शिवजी के पास जाकर एक वर माँगने को कहा; उसने विचार किया कि धन सम्पति का वर तो अब मेरे किसी अर्थ का नहीं, क्योंकि मेरी स्त्री को राजा बलात्कार से हर ले गया है, मैं ऐसा वर मांगूं जिससे वह राजा के साथ न जावे। यह सोचकर वह महादेवजी के पासगया और दण्डवत् प्रणाम करके कहा, हे जगत्पिता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो यह वर दीजिये कि मेरी स्त्री शूकरी बन जावे। महादेव जी बोले "तथास्तु" और तत्काल ही वह स्त्री शूकरी बनगई; जब राजकुमार ने वह बड़ी भयंकर शूकरी के रूप में देखी तो भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही उसे अश्व से नीचे गिरा दिया और छल जानकर अश्व को दौड़ा कर वहां से चला गया। पीछे सती जी ने उसके पुत्र से वर मांगने को कहा; उसने सोचा यदि मेरी माता दुःखमें हो तो धन सम्पदा से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध

होगा; क्योंकि पुत्र वही होता है जो स्वयं दुःख उठाकर भी माता पिता के दुःख दूर करे, इसलिये माता को दुःख से बचाकर मैं पुत्र नाम को सफल करूं। ऐसे विचार कर श्री महादेव जी के समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम किया और बोला, हे त्रिलोकीनाथ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो जैसे हम अपने घरसे तीनों शरीर आये थे वैसे ही होजावें। महादेव जी बोले, "तथास्तु;" तब तीनों जैसे पहिलेथे वैसे ही होगये। तब श्री महादेव जी ने कहा सती जी! अब बतलाओ कि ईश्वर में कैसे विषमता है, जैसा इन का कर्म था उसके अनुसार ही इनको फल प्राप्तहुआ, उससे न्यूनाधिक नहीं होसका। तब सतीजी ने श्रीमहादेवजी को नमस्कार करी और दोनों अन्य स्थान में विचरने लगे। लिखा है:-

दो०—भाग्यहीन को ज्यों मिलै, चिन्तामणि कहि ठौर।
देखत ही तजि देत है, जानि लेत कछु और॥

सवैया—नाहि फले जग मांहि निशेश, दिनेश फले न कबी भव माहीं।
नाहिं सुरेश फले जग में, सुमहेश फले जग में कछु काहीं॥
पुण्य विना फल आहि कहां, विधि लोक सुभूमि रसातल माहीं।
और फले नहीं को जगमें, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माहीं॥

जैसे सिकन्दर बादशाह आबेहयात् (अमृत) को चिरकाल (मुद्दत) तक ढूंढ़ता फिरा, परन्तु जब मिला तो अंजुली में आया हुआ भी त्याग दिया क्योंकि मनमें विचार हुआ मालूम नहीं यह कैसा पानी है। इस पर गुरुजी कथन करते हैं:-

कर महि अमृत आणि निसारिओ॥ खिसरि गइओ भूमि परि डारिओ॥२॥
(आसा म० ५ पृ० ३८६)

पुनः—मन मूरख काहे बिललाईये॥ पूरब लिखे का लिखिआ पाईऐ॥
(गउड़ी सुख मनी म० ५ पृ०२८३)

एक लोकोक्ति (मिसल) है कि, "परे प्रेरे जाह, अपने करमांदा खटिआ खाह" (जाअ पूत दक्षिण, वही कर्म के लक्षण)। जैसे गागरको चाहे कूप से भरो, चाहे समुद्र से, परन्तु उसमें जल उतना ही आवेगा जितना उसमें स्थान है, तैसे ही जिस प्रारब्ध कर्म से शरीर

बना है उतना ही फल प्राप्त होगा चाहे कितना ही देश देशान्तरों में फिरें। इसी आशय पर लिखा है:-

कवित्त-काहे कौ वघूरा भयो फिरत अज्ञानी नर,
तेरो तो रिज़क तेरे घर बैठे आइ है।
आवें तू सुमेर जा आवें जा मारू देश,
जितनाकु भाग लिखिओ तितनाकु पाइ है॥
कूप मांझ भर आवें सागर के तीर भर,
जितनाकु भांडो नीर तितनो समाइ है।
ताही ते सन्तोष कर सुन्दर विश्वास धर,
जितनो रच्यो है घट सोई जू भराइ है॥

सवैया-देश फले न विदेश फले, कछु पूरब उत्तर मों फल नाहीं।
दच्छिण पच्छिम माहिं नहीं फल, नाहिं अहै सरिता तट माहीं॥
बैठन नाहिं फले जग में अरु, नाहिं फले रटनों जग माहीं।
और फलै नहीं को जग में, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माहीं॥

पुनः-करम गति टारी नाहिं टरे॥
गुरु वसिष्ठ महामुनि ज्ञानी गिन गिन लगन धरे।
सीता हरण मरण दसरथ को वन वन राम फिरे॥ करम०

पुनः-गुरु प्रमाणः-अन कीए लागत नहीं कीए न विरथे जाइ॥

पुनः-दो०-होन हार ही होइ है, अन होनी नहिं होइ।
यह चिंता विष नाशनी, औषध पीवे जोइ॥
होन हार को जगत में, जेकर हुतो इलाज।
तब काहे दुख होत नल, राम युधिष्ठिर राज॥

पुनः-तू कछु और विचारत है नर, तेरो विचार धर्यो ही रहेगो।
कोटि उपाय करे धन के हित, भाग लिख्यो तितनो ही लहेगो॥
भोर को साझ घड़ी पल माहिं, सो काल अचानक आइ पड़ेगो।
राम भज्यो न कियो कछु सुकृत, सुन्दर यों पछिताइ रहेगो॥

इस पर इतिहास श्रवण करें:-

एक साहूकार था, जिसका कोई ऐसा पाप कर्म उदय हुआ जिससे उसका सब धन नष्ट हो गया और वह जंगल से लकड़ियां बीन कर और उन को बेचकर अपना निर्वाह करने लगा। एक दिन जंगल में लकड़ियां बीनता फिरता था, दैव योग से भाग्यदेव और लक्ष्मी भी

विचरते हुए उसी जंगल में आ निकले। लक्ष्मी ने भाग्य देव से कहा देखो, इस पुरुष के पास जब तक मैं थी यह आनन्द करता था और अब मेरे विना इसकी यह दशा हो रही है। ऐसा सुनकर भाग्यदेव ने कहा, हे लक्ष्मी ! तुम कुछ नहीं कर सकतीं; यदि करसकती हो तो अब इसको साहूकार बनादो। तब लक्ष्मीजी ने उस पुरुष को बुलाकर दो लाल बहुमूल्य देदिये, उसने लेकर अपनी जेब में डाल लिये और घर को चल पड़ा। रास्ते में प्यास लगी, जब नदी में झुक कर पानी पीने लगा तो दोनों लाल नदी में गिर पड़े और उनको एक मछली ने निगल लिया। बहुत खोज करने परभी वह उसे न मिले, तब पश्चाताप करता हुआ घर चला गया। जब दूसरे दिन फिर जंगल में लकड़ियां लेने गया तब लक्ष्मी ने पूछा कि अब क्यों लकड़ियां लेने आया ? उसने सारा हाल कह सुनाया। फिर लक्ष्मी ने नौलखाहार दिया, उसने लेकर पगड़ी में रख लिया और आनन्द मग्न चला जारहा था कि एक चील की दृष्टि हार पर पड़ी और तुरन्त ही झपट्टा मार कर उसे लेगई तब फिर पश्चाताप करता घर चला गया। तीसरे दिन फिर जंगल में लकड़ियाँ लेने गया और लक्ष्मी के पूछने पर उसने सारा हाल कह सुनाया तो लक्ष्मी ने एक मुहरों की थैली देदी और कहा,इसको सम्हाल कर लेजाना। वह बोला, 'अब इसको नहीं छोड़ूंगा;' जब घर को चला जारहा था तो बड़े ज़ोर से लघु शंका लगी, परन्तु दौड़ता दौड़ता घर पहुँच गया; पहुँचते ही अपनी स्त्री को पुकार कर कहा, " सम्हालना " और थैली रखकर लघुशंका को चलागया। उसकी स्त्री उस समय घर में नहीं थी, उसकी बात को पड़ोसिन ने सुना और जाकर देखा तो मुहरों की थैली पड़ी थी; जल्दी से उठालाई। जब वह पुरुष घर आया तब तक उसकी स्त्री आगई थी, उससे पूछा, 'थैली रखली थी' ? स्त्री ने उत्तर दिया मैंने तो देखी भी नहीं, तब फिर पश्चाताप करने लगा। जब फिर लकड़ियों को लेने गया तो लक्ष्मी के पूछने पर उसने सब समाचार सुना दिया। तब भाग्य देव ने कहा हे लक्ष्मी ! तुमने अपना

पूरा बल लगा लिया, अब बताओ ? लक्ष्मी ने कहा कि यह बेचारा बड़ा दुःखी हो रहा है, अब आपही कृपा करें। तब भाग्य देवने केवल दो पैसे दिये, जब पैसे लेकर चला तो मार्ग में मछलियां बिकती पाईं, उसने एक मछली मोल लेली फिर विचारा कुछ पतला और सूखा ईंधन ले चलूं; इधर उधर देखा तो एक पेड़ पर एक बड़ा सा घौंसला दिखाई दिया, जब ऊपर चढ़ा तो नौलखा हार पड़ा दीखा; उसने उसे उठा लिया और आनन्द में मग्न हुआ हुआ घर आया। दरवाज़े के अन्दर घुसते ही कहा, "मिल गया है! मिल गया है!! जब भाग्य जाग्रत हो जाता है तो गया हुआ धन भी मिल जाता है!!!" इस बात को पड़ोसिन ने भी सुना और मनमें विचारा इनको कुछ पता लग गया है, यदि यह पुलिस लाकर हमारे घर की तलाशी करवादें, तो हमारी बदनामी होगी; यह विचार कर वह पीछे की ओर से थैली उसके घर के अन्दर डाल गई। जब मछली को चीरा तो दोनों लाल उसके पेट में से निकल आये। देखो, जब तक भाग्य में न था तब तक पदार्थ प्राप्त हुए भी नष्ट होते रहे और जब भाग्योदय हुआ तो नष्ट हुए पदार्थ भी प्राप्त हो गये। ताते सिद्ध हुआ कि सबको अपने किये कर्मों के अनुसार ही धन प्राप्त होता है। इसीपर कबीरजी का उपदेश व एक दृष्टान्त सुनें:-

काहू दीने पाट पटंबर काहू पलंघ निवारा ॥
काहू गरी गोदरी नाहीं काहू खान परारा ॥१॥
अहिरखवाद न कीजै रे मन ॥
सुकृतु करि करि लीजै रे मन ॥१॥ रहाउ ॥
कुम्हारै एक जु माटी गूंधी बहुबिधि बानी लाई ॥
काहू महि मोती मुकताहल काहू बिआधिलगाई ॥२॥
सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनमेरा ॥
जमका डंडु मूंडमहि लागै खिनमहिं करै निबेरा ॥३॥
हरि जनु ऊतमुभगतु सदावै आगिआमनि सुखुपाई ॥
जोतिसु भावै सति करि मानै भाणा मंनि वसाई ॥४॥
कहै कबीर सुनहुरे संतहु मेरी मेरी झूठी ॥
चिरगट फारि चटारालै गइओ तरीतागरी छूटी ॥५॥३॥१६॥ [आसा कबीर पृ०४७६]

राजा जनक ज्ञानवान् और बड़े धर्मात्मा हुए हैं। पिछले समय में राजा लोग रात्रि को वेष बदलकर अपनी प्रजा के सुख दुःख की सुधि लिया करते थे, इसी नियमानुसार राजा जनक कभी २ अर्द्ध रात्रि से लेकर ब्रह्म मुहूर्त पर्यन्त सिपाही का वेष बना कर भ्रमण किया करते थे। एक दिन फिरते फिरते एक स्थान पर आये तो देखा कि एक छः महीने का बच्चा अपनी माता के स्तन को वारम्वार मुंह में लेता है और छोड़ता नहीं, माता जब छुड़ाती है तो रुदन करने लगता है; ऐसी दशा देखकर एक पतिव्रता माई मार्ग में चलते चलते हंसने लगी। सिपाही के वेष में राजा जनक ने उसके हंसने का कारण पूछा तब वह बोली, मेरे को इतना समय नहीं जो मैं इस बालक और इस माई की कथा सुना सकूं। राजा ने समय न होने का कारण पूछा। वह बोली आज मेरे मरने का दिन है इसलिये मैं नदी पर स्नान करने जा रही हूं, स्नान करके अपने पतिदेव के लिये जल की गागर भर कर जब मैं घर पहुँचूंगी तो मेरे ऊपर मकान की छत गिरजावेगी और मेरी मृत्यु हो जावेगी, इसलिये मैं कुछ ईश्वर चिन्तन करलूं; ऐसे कह कर वह चल पड़ी। राजा भी उसके पीछे चल पड़ा और कहा, मैं राजा जनक हूं और यह पूछता हूं कि तुझे इसका पता कैसे लगा? वह बोली, मैं पतिव्रत धर्म के प्रभाव से सब बात जानती हूं। राजा—तब तुम वहां जाती ही क्यों हो? न जाने से तो बच जाओगी? वह बोली भावी अमिट है इसके आगे किसी का बल नहीं चल सकता। राजा—किसी राजा महराजा, देवदानव व और ईश्वर कोटि में आयेहुए ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंका तो बल चल जाता होगा? अर्थात् वह तो भावी को मेट देते होंगे? वह बोली "नहीं"। इसपर गुरु प्रमाण:-

नाराइण निंदसि काइ भूलीगवारी ॥ दुक्रित सुक्रित थारो करमुरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
संकरा मसतकि बसता सुरसरी इसनान रे ॥ कुल जल मधे मिल्यो सारंग पान रे ॥
करम करि कलंकु मफीटसिरी ॥ १ ॥ बिस्व का दीपकु स्वामी ताचेरे सुआरथी ॥
पंखी राइ गरुड़ ताचे बांधवा ॥ करम करि अरुण पिंगला री ॥ २ ॥
अनिक पातिक हरता त्रिभवण नाथुरी ॥ तीरथि तीरथि भ्रमता लहै न पारुरी ॥

करम करि कपालु मफीटसिरी ॥ ३ ॥ अमृत ससीअ धेन लछिमी कलप
तर सिखरि सु नागर नदीचे नाथं ॥ करम करि खारु मफीटसिरी ॥ ४ ॥
दाधी ले लंका गढ़ु उपाड़ीले रावण बणु सलि बिसलि आणु तोखीले हरी॥
करम करि कछउटी मफीटसिरी ॥ ५ ॥ पूरबुलो कृत करमु न मिटेरी॥
घर गेहणि ताचे मोहि जापीअले रामचे नामं ॥ बदति त्रिलोचन रामजी ॥ ६ ॥

(धनासरी सिरी त्रिलोचन जी पृ० ६९५)

भाव-यह कि भावी किसी से भी नहीं टलेगी। राजा ऐसी भविष्यवाणी सुन कर बड़ा आश्चर्य करने लगा और पतिव्रत धर्म की श्लाघा करते हुए उस माई के पीछे पीछे चल पड़ा। जब माई नदी पर जाकर स्नान करके जल की गागर भर कर घरको लेचली तो राजा भी उसके पीछे पीछे चल दिया। उस माई ने पति के स्नान के लिये गागर घरमें रखदी और आप किसी कामके लिये भीतरगई तो अचानक छत गिरने से वह उसके नीचे दबकर मर गई। राजा जनक उसके मरने को देखकर बड़े दुःखी हुए परन्तु भावी के आगे कुछ वश न चला।

इसी आशय पर और महात्मा लिखते हैं :—

ग़ज़ल-तक़दीर के लिखे पर तदबीर क्या करे। बादशाह सुनता नहीं तो वज़ीर क्या करे॥
लाखों तबीब पृथ्वी पर होगये सियाने। जब आगया बुढ़ापा तो अक्सीर क्या करे॥
रावण को घेरा मौत ने सीताको ले गया। अजल उसकी आगई रघुबीर क्या करे॥
कृष्ण को आप कंसने मथुरा बुलालिया। मरना था उनके हाथसे बलबीर क्या करे॥

भजन० धारणा-[इह मिटै नहीं तक़दीर जी लख यतन करो]

पांडवों के घर होणी आई। राज पाट सब दिया हराई। होकर फिरे फ़क़ीर ॥ जी०
कैरवांनूं इस मार मुकाया। यादव कुल का नाश कराया। मरगये लड़कर वीर ॥ जी०
होणी विच अयोध्या आवै। रामचन्द्रजी बन को जावे। दशरथ तजे शरीर ॥ जी०
राजा नल दे घर जद आई। दर२ दे विच भीख मंगाई। मिले न तन नूं लीर ॥जी०
लंकपुरी का रावण राजा। जलगये महल तख़्त अरु ताजा। होणी होई वज़ीर ॥जी०
होणी है सबतों बलवांन। नाथ न पावे अन्त जहान। मरगये पीर फ़क़ीर ॥ जी०

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



ईश्वर की आज्ञा मानना

प्रश्नः—भगवन् जी! सन्तोष धारण करने के लिये प्रारब्ध कर्म पर सन्तुष्ट रहने का प्रसंग श्रवण करनेसे हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपने कथन किया है कि प्रारब्ध को कोई मिटा नहीं सकता, सो हमने निश्चय किया। आपने सन्तोष धारण करने के लिए दूसरा अंग भाणा मानना (ईश्वर आज्ञा का पालन करना) कहा है, इसलिये आप कृपया उसे वर्णन करें।

उत्तरः—हे प्यारे! सो दृष्टान्त प्रमाण सहित श्रवण करो।

गुरु प्रमाणः—गुर मुखि तेरा भाणा भावै॥ सहजे ही सुखु सचु कमावै॥

(मारू म० ३ पृ० १०६३)

पुनः—मन मुखु अंधु करे चतुराई॥ भाणा न मने बहुत दुखु पाई॥

(मारू म० ३ पृ० १०६४)

जैसे किसी नगर में एक मनुष्य ने एक दुकानदार से जाकर आग मांगी तब उसने कहा कि दो तीन घंटे बाद इस दुकान में आग लगेगी, उस समय जितनी आग चाहिये ले जाना। वह बोला जब तेरे को इस बात का पता है तो अपना सामान दुकान से क्यों नहीं निकाल लेता? दुकानदार—मेरेको तो समय नहीं, यदि तुझे पूछना है तो समुद्रके किनारे एक सौदागर जहाज़ भर रहा है, उससे जाकर पूछले। तब वह समुद्रके किनारे पर गया और सौदागर से पूछा। उसने कहा हे भाई! मैं इस समय जहाज़ भर रहा हूं, यह दो तीन मील पर जाकर डूब जायगा;

इस लिए मुझे जल्दी होने के कारण उत्तर देने का अवकाश नहीं। वह पुरुष यह सुनकर चकित हुआ और कहने लगा कि यह उससे भी बढ़कर निकला है। सौदागर बोला आश्चर्य क्यों करता है? यदि तेरा मन नहीं मानता तो यहां से एक मील की दूरी पर एक सन्त बैठे हैं,उनसे जा कर पूछले। वह सन्तके पास जाकर नमस्कार करके बैठ गया और हाथ जोड़ कर दुकानदार व सौदागर का सब समाचार सुनाया और कहा मुझे तो दोनों मूर्ख प्रतीत होते हैं। सन्त बोले हे भाई! तू उनको मूर्ख कहता है और आप चतुर बनता है;आजके आठवें दिन तुझे उससामने वाले पेड़ पर फांसी लगेगी; तू अपना मन चाहा उपाय करके देखले। वह बोला, महाराज! आठवें दिन तो मैं वहां पर पहुँचूंगा जहां पर इस पेड़ की वायु भी न लगेगी,ऐसे कहकर वह वहां से चल पड़ा। दिन भर चलता रहेऔर रात्रि को खा पी कर सो जावे, प्रातःकाल फिर चल पड़े; इस प्रकार बड़े यत्न से चलते चलते दो सौ मील की यात्रा कर डाली और थकित होगया। आठवें दिन उसने मार्ग में एक रथ आता हुआ देखा जिसमें एक युवा स्त्री सुन्दर रूप वाली वस्त्राभूषणों से सुसज्जित बैठी थी। उस मनुष्य ने उससे पूछा तू कहां जा रही है? स्त्री-मैं वर की खोज में हूं। मनुष्य-यदि तू वर चाहती है तो मेरे को ही वर बनाले। स्त्री-तू इस रथपर सवार होजा। वह रथमें बैठ गया और थके हुये होने के कारण उसको निद्रा आ गई; तब उस स्त्री ने बड़े वेग से रथ चलाया और उसी शहरके बाहर लाकर खड़ा कर दिया, क्योंकि वह तो भावी ने ही स्त्री का रूप धारण किया हुआ था। उसने उस पुरुष को जगा कर कहा मुझे भूख लगी है, यह लो नौलखाहार,इसको बाज़ारमें बेचकर भोजन की सामिग्री लेआओ, इस प्रकार उसे बाज़ारमें भेजकर आप अन्तर्धान होगई। जब उस पुरुष ने बाज़ार में एक सराफ़ की दुकान पर जाकर हार दिखाया तब उसने उसे देखते ही पहचान लिया और कहा यह तो वही हार है जो राजा के यहांसे चोरी हुआ है। उसी समय कोतवाल को बुलाकर उसेहार समेत उनके हवाले कर दिया।

जब कोतवाल ने उसे राजा के सन्मुख उपस्थित किया तो राजा ने पूछा यह हार तुमने कहां से लिया है ? वह बोला यह मेरी स्त्री का है। राजा–तेरी स्त्री कहां है ? वह बोला शहर के बाहर बैठी है। राजा–हमारे इस आदमी के साथ जाओ और उसे ले आओ। जब शहर के बाहर उस स्थान पर आये तो वहां पर न रथ था न स्त्री। तब राजा का आदमी उसको राजा के पास ले गया और कहा यह झूठा है, वहां पर कोई स्त्री नहीं। राजा ने कहा यह चोर है, इसलिये इसको फांसी दे दो (पहिले समय में चोर जार को फांसी ही दी जाया करती थी)। जब उसको फांसी देने के लिये उस पेड़ के पास लेगये तब उस स्थान पर वह सन्त भी आगये और उसको पहचानकर बोले हे भाई ! तूने अपना मन चाहा उपाय करलिया ? तुझको पता भी था कि मुझे आठवें दिन फांसी लगनी है और तूने यत्न करके भी ज़ोर लगा लिया, परन्तु जो होना था वह होकर रहा। तू दुकानदार और सौदागर को मूर्ख कहता था सो वह मूर्ख नहीं, वह तो गुरुमुख हैं क्योंकि उनको जगद्गुरु के वाक्यों पर निश्चय है; परन्तु तू मनमुख है इस लिये तूने बहुत दुःख पाया है। यदि इन आठ दिनों में तू प्रभु का भजन स्मरण करता तो तेरा परलोक सुधर जाता; यह समय तो टलना ही न था। सन्त का ऐसा उपदेश श्रवण कर वह पुरुष बहुत पश्चाताप करने लगा, परन्तु अब पछताने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था; उसी समय फांसी पर चढ़ा दिया गया। इसलिये जिज्ञासु दुःख सुख को परमेश्वर की आज्ञा समझकर प्रसन्न रहते हैं और मनमुख पुरुष काल से बचने के लिये कई प्रकार के यत्न करते हैं, मरना नहीं चाहते; परन्तु काल रूपी शिकारी पीछे लगा हुआ है, उसके आगे क्या वश चल सकता है। इस पर गुरुजी कथन करते हैं:–

दिनते पहर पहर ते घरिआं आव घटै तनु छीजै ॥
कालु अहेरी फिरै बधिक जिउ कहहु कवन विधि कीजै ॥

(धनासरी भक्त कबीर जी पृ०६९१)

पुनः—डखि धाले सभ दिवस सास नह बढन घटन तिलु सार ।
जीवन लोरहि भरम मोहु नानक तेऊ गवार ॥
(गउड़ी बा० अ० म० ५ पृ०२५४)

पुनः—तेरा कीआ मीठा लागै । हरिनाम पदारथु नानकु मागै ॥ (आसा मः ५ पृ० ३८४)

इस पर इतिहासः—

एक वृद्ध माई आंखों से अन्धी और कानों से बहरी होगई, उसका पति भी मरगया और वह निर्धन होगई । उसका एक पुत्र था जिसको एक दिन गौ चराते समय शेर ने मारडाला; एक पुरुष ने जाकर उसकी माता को लड़के की मृत्युका समाचार सुनाया । यह सुनकर उसने परमेश्वर को धन्यवाद दिया और कहा कि यह सब भगवान् ने मुझ पर उपकार किये हैं, जो मुझे अन्धा, बहरा, और निर्धन बनाया है, क्यों कि नेत्र अनेक प्रकार के पदार्थों को देख कर भ्रमाते हैं और कान वृथा निन्दा के वचन सुनाते हैं जो सब पापों से बुरी है, भगवान् ने मेरी इन सब से रक्षा करी है और ईश्वर ने मुझे निर्धन करके पापों तथा चोरों के भयसे भी बचाया है क्योंकि माया से मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करता है, तथा चोरों से भय पाता है । अब जो मेरा पुत्र सिंह ने मार दिया है उस का भी मुझे शोक नहीं क्योंकि जो जन्मा है उसको अवश्य मरना है।

गुरु प्रमाणः—जनमं त मरणं हरखं त सोगं ॥ (सलोक सहसकृती पृ०१३५५)

यदि वह बीमार होकर मरता तो मेरे को बड़ी असुविधा होती क्योंकि मेरे पास औषधि तथा दाह संस्कार के लिये पैसा नहीं था और न मैं उसके क्रिया आदिक कर्म करा सकती थी; उसका शरीर शेर के अर्थ लग गया है यह भी परमेश्वर ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। सो गुरुजी कथन करते हैं हे परमात्म देव ! जिन पुरुषों को आपका किया हुआ मीठा लगता है वह उत्तम पुरुष हैं और वही तुम्हारे भक्त हैं।

एक समय पाक पट्टन शहर के समीप की नदी ने किनारे को काट कर गिराना आरम्भ कर दिया तब लोगों ने फ़रीद जी के आगे जाकर विनती की कि महाराज ! शहर को बचाओ, आप महात्माजन ईश्वर के प्यारे होते हैं। तब फ़रीदजी नदीके किनारे पर जाकर ऐसे कहने लगेः—

कंधी वहण न ढाहि तउ भी लेखा देवणा ॥
जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे ॥ (सलोक फ़रीद पृ० १३८२)

भाव–हे नदी ! तू किनारों को न गिरा क्योंकि शहर के गिरने से बहुत जीवों का नाश होगा, इसका तेरे को लेखा (हिसाब) देना पड़ेगा; इतना कहने पर भी जब किनारों का गिरना बन्द न हुआ किन्तु और तेज़ी से गिरना आरम्भ हो गया तो फ़रीदजी ने लोगों से कहा कि सब लोग फावड़े ले आओ। जब फावड़े आगये तो फ़रीदजी किनारे को काट २ कर जल में गिराने लगे, लोगों ने कहा महाराज ! यह क्या करते हो ? फ़रीदजी ने कहा हे भाई ! नदी अपने आप क्या कर सकती है, वह तो परमेश्वर की आज्ञा में चलरही है; इसलिये हमको उचित है कि परमेश्वर की इच्छा के साथ अपनी इच्छामिलावें। जैसे जो स्त्री अपने पति की आज्ञा माने वह पति की प्रसन्नता प्राप्त कर सकती है और जो पुत्र पिता की आज्ञा माने उस पर पिता प्रसन्न होता है; तैसे परमेश्वर की प्रसन्नता वही प्राप्त कर सकता है जो उसकी आज्ञा में चलता है। इस पर एक और इतिहास श्रवण करें:–

एक 'जीवा' नाम का गुरु अंगददेव जी का प्रेमी शिष्य था, वह प्रतिदिन नियम से गुरुजी के लिये खिचड़ी प्रेम से बनाया करता था और महाराज को भोजन कराकर सीत प्रसाद संगत को बांट देता था। एक दिन गर्मी की ऋतु थी और धूप बड़ी कड़ी थी, जब खिचड़ी का समय हुआ तो आँधी चलने लगी; भाई जीवा ने अपना नियम पूरा करने के लिये आग जलाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु न जल सकी तो फिर निरुपाय होकर गुरु अंगद देवजी से विनती करने लगा:–

छेकड़ उसने सत गुरु आगे, बिनती इह उचारी ॥
दीनानाथ हुकम करदे हो, पवण सु देहो खलारी ॥
खिचड़ी रिझ जान दे मगरों, वगे ज़ोर कर भारी ॥
मैं बल हीन अनाथ दास हां, सतगुरु कृपाधारी ॥
हस्स गुरुजी बोले जीवे, गुरु मुख बन प्यारे ॥
एह कचिआई कढ अन्दरों, मन मतां दे जारे ॥

झक्खड़ चलै हुकम विच साईं, तूँ चाहैं न झुलै ॥
बुल्हे वगण पउण चाहे तू, लुट मौज दे बुले ॥
तेरी मौज वासना तेरी, तैनूं बन्ह बहाले ॥
रब रज़ा तूँ तोड़ सटावें, मारे मार जीवाले ॥
अपनी मरज़ी दी सुर प्यारे, खेल रज़ा सुरनाले ॥
जो बोले फिर वार रज़ादी, तुरब तेरी भी नाले ॥
उहो सुर बोले हे प्यारे, होर न वरण निकाले ॥
इक सुर नाल साईं दे रहिणा, होर खुटेरे चाले ॥
नाल तार दे तुरब ना बोले, सुर उलटी जो कड्ढे ॥
रसिक न होवे रस ना माणे, रस देखो दिल कड्ढे ॥
हाकम हुकम बणाइया पूरा, हुकम कराए कारा ॥
उसनूं मोड़ चाहे निज मरज़ी, उह मुलज़म है भारा ॥
गुरु मुख बण सिर धरी रज़ानूं, रहीं रज़ाते खड़िआ ।
सिर देईं पर रज़ा ना मोड़ीं रहीं हुकम ते जड़िआ ॥
झखड़ ओह चलावे साईं, अनिक सवारे काजा ।
लखां ताईं आराम पहुँचावै, बे अन्त बे मुहताजा ॥
तेरी खिचड़ी कारन उसनूं, रोकिआ किकूं बणदा ।
जद इस रोकिआं लखां ताईं, दुखां पेटा तणदा॥ (गुरुसिख वाड़ी)

इस प्रकार जब गुरु अंगद देवजी ने भाई जीवा को ईश्वरेच्छा में अपनी इच्छा मिलाने का उपदेश किया तब उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार की और कहा, "हे भगवन् ! अब मैं आपकी आज्ञानुसार ही चलूंगा और जैसी परमेश्वर की आज्ञा होगी उसमें प्रसन्न रहूंगा ॥"

जिस समय गुरु अर्जुन देव जी महाराज को चन्दू दुष्ट कष्ट देरहा था उस समय पराणा आदि पांच शिष्य जो महाराज जी के साथ थे उनको एक अलग कोठरी में बन्द किया हुआ था, तो भाई पराणा सद्गुरुजी के आगे ऐसे विनती करता है:-

चो०-खड़ा होइ कर दूर पराणा । शक्ति दिखावण हेत बखाणा ॥
हे प्रभु रह्यो जात ना मोते । रावर के एते दुख होते ॥
दिल्ली लव पुर नगर बसाले । अब चाहूं निज हाथ उठा ले ॥
दोऊ भिराऊं जिउ करतारी । करौं नाश लगै नहिं बारी ॥
गुरु कहिआ तूं कितते पाई । जो चाहें शक्ति दिखलाई ॥

हे सतगुरु कर सेव तुम्हारी। भयो कृपा ते प्राक्रम भारी॥
गुरु कहिआ जिनकी कर सेवा। लई शक्ति धारत अहमेवा॥
तिन में शक्ति आहि कै नाहीं। किम जानत अपने मन माहीं॥
हमने है इमे ही करना। रबदा हुकम सिर परहै धरना॥ (सूर्य प्रकाश)

भावार्थ—महाराज जी ने स्वयं ईश्वर की आज्ञा मानी और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही करने का उपदेश दिया। क्योंकि ईश्वर की आज्ञा मानने से ही सुख की प्राप्ति होती है। गुरुजी कथन करते हैं :—

भाणा मंने सदा सुखु होइ॥ नानक सचि समावै सोइ॥ [आसा म० ३ पृ०३६४]
पुनः—भाणा मंने सो सुखुपाइ भाणै विचि सुखु पाइदा॥ [मारू म० ३ पृ १०६३]

इस पर इतिहास श्रवण करें :—

एक समय छःवीं पातशाही श्री गुरु हरिगोविन्द साहिब जी महाराज के सुपुत्र बाबा गुरांदित्ताजी पहाड़ी राजा के राज्य में शिकार खेलने को गये, उनके सेवक ने हिंसक पशु समझकर बन्दूक चलाई, निशाना गाय को लगा और वह मृतक हो गई। राज कर्मचारियों ने कहा आप गुरु कहलाते हैं, गाय को जिवा दीजिये नहीं तो हम राजा से कहेंगे। बाबा गुरांदित्ता जी ने मन में सोचा श्री अटलराय जी ने मोहन को जिवा दिया था तो पिता जी उनसे असन्तुष्ट हुए थे। अब यदि हम गाय जिवाते हैं तो पिताजी असन्तुष्ट होंगे, यदि नहीं जिवाते तो गुरु घर को लान्छन लगेगा, लोग यह कहेंगे कि गुरु घर में अब शक्ति नहीं रही, इसलिये ऐसा काम करना चाहिये जिस से गुरु घरकी बदनामी न हो क्योंकि शरीर को तो एक दिन रहना ही नहीं है; यह विचार करके गाय जिवा दी। एक शिष्य ने जाकर गुरु हरिगोविन्द साहब जी को यह समाचार सुनाया, जब बाबा गुरांदित्ता जी महाराज जी के समीप गये तो महाराज जी ने अपना मुख फेर लिया; बाबा जी समझ गये कि पिता जी असन्तुष्ट हैं, अतः वह बाहर चले गये और अपने प्राण दसवें द्वार में चढ़ाकर शरीर त्याग दिया। जब संगतें परचावने वास्ते (मातमपुरसी के लिये) आईं तो उनमें से दो शिष्य भाई भाना और राइ जोध ने पूछा, "महाराज ! बाबा गुरांदित्ताजी की आयु

अभी छोटीथी, किस कारणसे शरीर का त्यागन हुआ, और उनका बड़ा लड़का धीरमल क्यों नहीं आया ? गुरु साहिब जी ने उत्तर दिया :-

चौ०—जिउं कूकर को मारत कोई। दोष लष्टिका जानत सोई॥
मुख पसारि तिसे गहिलेत। हतन हार त्यागि सो देत॥
जिउं केहरि को लाठी हाने। हतन हार पर दृष्टी ठाने॥
श्वान दृष्टि इह मन मुख धारे। कलपे नरन विषे इह मारे॥
शेर दृष्टि नित गुरु मुख धारे। सुखत दुखत जाने करतारे॥
राग द्वेष तिसते नहिं होत। लखे परमेश्वर शांत अदोत॥
याते लखो न कारन कोई। जो विधिकरे सहित सिरसोई॥
हतन जिवावन अपरे कौन। सगल संतजानत हैं तौन॥
जेते श्वास लैन हैं लिखे। तेते लेत जीव तन विखे॥
बहुड़ न होवे अलप उदारा। करने हार न भूलन हारा॥

भाव—धीरमल ने श्वान दृष्टि धारण करके विचारा कि हमारे पितामह जी के असन्तुष्ट होने के कारण पिता जी ने अपना शरीर त्याग दिया है, इसलिये वह नहीं आया; परन्तु गुरुमुख जानते हैं कि मारने और जिवाने हारा ईश्वर आप ही है, जितने श्वास लिखे होते हैं उतने ही जीव लेता है ; इस लिये सब संगत ईश्वराज्ञा पर प्रसन्न रहे तब ही सुख की प्राप्ति हो सकती है। इसी आशय पर एक मुसलमान फ़कीर भी अपने शिष्यों को उपदेश देते थे किसी सम्बन्धी आदि की मृत्यु होने पर रोना अनुचित है ; जब समय पाकर उनका अपना लड़का मृत्यु को प्राप्त हुआ तब उनकी आंखोंमें आंसू आये देखकर शिष्योंने प्रश्न किया।

रोवण तुसां मन्हां फ़ुरमाया आलम द्या सिरदारा॥
वली कहया मैं मन्हां ना कीता ऐसे रोवण ताईं।
जिस विच अमर रज़ापर मोमन बोलन हमद सनाईं॥
कपड़े पाड़न खाक उड़ावन पिट्टन शोर मचावन।
रोज़ क़िआमत कुत्ते होसन दोज़क़ डाले जावन॥

इस लिये जिज्ञासु को चाहिये कि सत्संग में आकर इस बात को धारण करे और जो प्रभु करे उसको भलाही समझे। गुरु प्रमाणः—

जो प्रभ कीनो सो भल मानिओ इह सुमति साधूते पाई॥ (कान० म०५ पृ० १२६६)

इस पर इतिहास श्रवण करें:—

एक मुसलमान फ़क़ीर ने गर्मी की ऋतु में रोज़ा रक्खा हुआ था, परन्तु चार बजे ही उसको प्यास ने विवश कर दिया और उस के प्राण कण्ठ गत हो गये; तब उसने अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त एक लोटा कुएँ में फांसा, जब खेंचने लगा तो लोटा मिट्टी का था, अतः ठोकर लग कर फूट गया; तब उस ईश्वराज्ञा पर प्रसन्न रहने वाले ने इस प्रकार उच्चारण किया:—

भजिआसी, पर न भजिआ, ना भजदा तां भजिआसी ॥

भाव–रोज़ा भंग हो गया होता परन्तु न हुआ, यदि लोटा न फूटता तो रोज़ा भंग होजाता। फिर विचारा कि तीन चार घंटे हैं, कहीं छाया में बैठकर बिता दूंगा। उस कुएँ पर एक मकान था उसकी ओर गया; जब दरवाज़े के अन्दर घुसने लगा तो एक ततैये ने काट खाया, तब वहां पर रुक गया। जब भीतर दृष्टि गई तो एक काला नाग बैठा देखा, तब ऐसे उच्चारण किया:–

लड़दासी पर न लड़िआ न लड़दा तां लड़िआसी ॥

भाव–सांप काट खाता, पर न काटा, यदि ततैया न काटता तो सर्प अवश्य काटलेता; ख़ुदा ने भला किया। इससे गुरुमुख यही समझते हैं कि जो परमेश्वर करता है हमारे भले के लिये ही करता है॥

इन दृष्टान्तों, प्रमाणों और इतिहासों से यह सिद्ध होता है कि भाणा मानना (परमात्मा की आज्ञा पालन करना) योग्य है; जिज्ञासु गुरु तथा शास्त्र पर श्रद्धा रखता हुआ प्रभु की आज्ञा में दुःख सुख सम समझकर धन्यवाद करे, तब सन्तोष धारण हो सकता है॥

धारणा–(हुकमि मनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी)
साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी ॥ हुकमि० ॥
सो सेवकु सेवा करे जिसनो हुकम मनाइसी ॥ हुकमि० ॥
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी ॥ हुकमि० ॥
खसमै भावै सो करै मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी ॥ हुकमि० ॥
ता दरगह पैधा जाइसी ॥ हुकमि० ॥ (वार आसा० मः १ पृ० ४७१)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ईश्वर पर भरोसा

प्रश्नः—हे भगवन् जी ! सन्तोष धारण करने के लिये भाणा (ईश्वर आज्ञा) मानने का प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। आपने कथन किया था कि जिज्ञासु ईश्वर पर भरोसा रक्खे, तब सन्तोषकी प्राप्ति हो सकती है। सो अब कृपा करके ईश्वरपर भरोसा रखने का प्रसंग भी वर्णन करें।

उत्तरः—हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। गुरु प्रमाणः-

ददा दाता एक है, सभ कउ देवन हार। देदे तोटि न आवई, अगनत भरे भंडार॥
दैन हारु सद जीवन हारा। मन मूरख्ख किउ ताहि बिसारा॥
(गउड़ी बावन अखरी म० ५ पृ०२५७)

इस पर इतिहास श्रवण करें :—

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी के दीवान (सभा) में आनन्दपुर विषे एक शिष्य बीस कोस से चल कर मंगल के दिन आया करता था और कड़ाह (हलुआ) प्रसाद लेकर चला जाता था; क्योंकि वह चार आने प्रतिदिन की मज़दूरी करके अपने कुटुम्ब को पालता था। एक बार गुरु साहिब जी ने उसको बुला कर कहा कि तू ईश्वर पर भरोसा रखकर दोदिन लंगरकी सेवा कर, उसने न माना और कहा मेरा परिवार भूखा मर जावेगा। तब गुरुजी ने आज्ञा पत्र देकर उसको साईं बुद्धू शाह के पास भेजा, उन्होंने गुरुजी की आज्ञानुसार उस शिष्य को नौ महीने एक कोठरी में बन्द कर रक्खा। दो तीन दिन तो वह मोह से रोता रहा, फिर अमृतवेले जपुजी का पाठ करने से उसको शान्ति आई; समय पूरा होने पर साईं बुद्धूशाह ने उसको दस रुपये और शिरोपाव देकर लौटा

दिया। वह उसी रात अपने गांव में आ गया और दूर से उसे झोंपड़ी के स्थान पर एक पक्का मकान बना हुआ दिखाई दिया। यह देखकर वह रुदन करने लगा और सोचा कि जैसा मेरा विचार था वही हुआ यानी मेरी स्त्री और पुत्र भूखे मर गये और किसी ने हमारी झोंपड़ी खसोट कर अपना पक्का मकान बनवा लिया है; जब उस घरके द्वार पर आया तो देखा अन्दर उसके स्त्री पुत्र बड़े ठाट वाट से रह रहे हैं। उसने अंदर जाकर अपनी स्त्री से पूछा कि मेरे पीछे कैसी बीती ? वह बोली आपके पीछे तीन दिन भूखे रहे हैं, फिर एक सरदारनी हमको अपने घर लेगई और उसने अपनी लड़की के विवाह पर हमको काम पर लगा लिया; मेरी लड़कियां मिट्टी खोदकर लाने लगीं तो उनको मुहरोंकी एक थैली पृथ्वी में से मिल गई जिससे हमने यह पक्के मकान बनवाये हैं, अब हम खूब सुखी हैं। उसे देख कर उसके पुत्र बोले, "पिता दरिद्री फिर कहां से आ गया !" पुत्रों से ऐसा सुनकर वह लज्जित हुआ और सोचा जो गुरुजी कहते थे कि अन्तर्यामी सर्व का पालक है सो बात ठीक है। ऐसा विचार करके वह घर से उपराम होकर फिर गुरुजी के पास लौट आया, अपना अपराध क्षमा कराया और कहा हे गुरुजी ! मैं भूल रहा था जो अपने को परिवार का पालन करने वाला समझता था। अब आपकी कृपा से मैंने अपनी आंखों से देख लिया है कि सब का पालक परमात्मा ही है। एक और इतिहास श्रवण करें :-

एक समय भाई गुरुदास जी श्री अमृतसर में चल कर आये, दोपहर का समय था; श्री गुरु अर्जुनदेवजी श्री दरबार साहिब में विराजमान थे। जब लंगर तैयार हुआ तब रसोइया ने आकर विनती करी महाराजजी ! अन्न तैयार है; सद्गुरुदेवजी भाई गुरुदास जी और संगत के समेत भोजन करने गये; रसोइयाने दो-दो मिस्सी रोटी, एक-एक प्याज़ और एक-एक लस्सी (छाछ) का कटोरा सब के सामने रख दिया। भाई गुरुदास जी भोजन करते हुए अपने मन में विचार करने लगे कि प्रथम तो आज के दिन मैं पाहुना था, दूसरे मेरा निकटका सम्बन्ध है, तीसरे

मैंने कभी मिस्सी रोटी खाई नहींथी; इसका कारण यह मालूम होताहै कि गुरु साहिबजी अब धन एकत्र करने लगे हैं। जब भोजन पाकर संगत उठी तो श्री गुरु अर्जुनदेवजी अन्तर्यामी घट-घट की जाननहार ने भाई गुरुदास जी से कहा भाई साहिब जी! जो आपने अपने मन में संकल्प किया है सो अपनी बहिनजी से पूछ लेवें। जब भाई गुरुदासजी बीबी भानी से मिलने के लिये गये तो पूछा हे बहिन जी! यह क्या कारण है जो लंगर में मिस्सी रोटी परोसी जाती है, क्या अब गुरुसाहिबजी धन एकत्र करने लगे हैं? उन्होंने कहा भ्राता जी! मिस्सी रोटियों का कारण यह है कि जो क़ाबुल आदि से संगतें भेंट लेकर आती हैं सो पृथ्वी चन्द रास्ते में रोककर आप लेलेता है, उससे जो कुछ बचकर आजाता है सो दरबार साहिब की सेवा में व्यय होजाता है। तब भाई गुरुदास जी पिपली साहिब गये और पृथ्वीचन्द से भी आगे संगतों से मिलकर उनको समझाते और भेंट आदि वहां ही लेलेते; इस पर धन लेकर वह श्रीगुरु अर्जुन देवजी के पास आये। उस समय सद्गुरु देवजी ने यह शब्द भाई गुरुदासजी के प्रति उच्चारण किया:—

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगै कर धरिआ ॥
(राग गूजरी मः ५ पृ० १०)

टीका—हे भाई! तुमने क्यों मनमें उद्यम चिन्तवन किया है, जब सबके लिये 'आहरि' कहिये उद्यम में हरिजी आप लग रहे हैं, जो पत्थरों की शिलाओं के बीच उस परमात्मदेव ने जन्तु उत्पन्न किये हैं उनके लिये भी भोजन आगे से ही बना रक्खा है। इसी आशय पर भक्त धन्ना जी भी उच्चारण करते हैं:—

रेचित चेतसि की न दयाल दमोदर बिबहि न जानसि कोई ॥
जेधावहि ब्रह्मण्ड खण्डकउ करता करै सुहोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जननी केरे उदर उदक महि पिंडु कीआ दस दुआरा ॥
देइ अहारु अगनि महि राखै ऐसा खसमु हमारा ॥ १ ॥
कुंमी जलमहि तन तिसु बाहरि पंख खीरु तिन नाही ॥

पूरन परमानंद मनोहर समझि देखु मन माही ॥ २ ॥
पाखणि कीटु गुपतु होइ रहता ताचो मारगु नाही ॥
कहे धंना पूरन ताहू को मतरे जीअ डरांही ॥ ३ ॥
[आसा वाणी भक्त धंना जी पृ० ४८८]

भावार्थ–भक्त धन्ना जी एक प्रेमी भक्त के प्रति समझाते हुए सर्व जिज्ञासुओं को उपदेश करते हैं 'रे' कहिए हे प्यारे ! 'चेतसि की न' अर्थात् चिन्तन क्यों नहीं करता 'दयाल दमोदर' यानी ईश्वर को, जिसके बिना जीवों के कर्म फलको 'बिबहि' कहिये दूसरा कोई नहीं जानता; इससे तिस ईश्वर से बिना हे मन ! जो 'धावहि' अर्थात् ब्रह्मागडों वा भारतादि खंडों में धावेगा तो भी तेरे किये से कुछ नहीं होवेगा, वही होवेगा जो ईश्वर करेगा। इस कारण हे प्यारे ! तू तिस उपकारी प्रभु को स्मरण कर जिसने 'जननी केरे' यानी माता के 'उदर महि'–पेट में, रक्त वीर्य रूप पानी से 'पिगड' कहिये दश द्वारों वाला शरीर बनाया है और ऐसा शरीर रचके जो 'देइ अहारु' कहिये बच्चे को आहार देकर माता के पेट में जठराग्नि से रक्षा करता है, ऐसा समर्थ हमारा स्वामी है ॥

प्रश्नः–माता के गर्भ में उसके किये हुए आहार से नाड़ी द्वारा बच्चे का पालन होता है, भगवान् उसमें क्या करता है ?

उत्तरः–'कुंमी जल महि' कहिये कछुए की मादा जल में रहती है 'तन तिसु बाहरि' अर्थात् बच्चा तिसका बाहर किनारे पर होवे है, और तिस बच्चे के शरीर में पंख नहीं जो कहीं उड़के चुग आवे, कुंमी के शरीर में 'खीर'–दूध भी नहीं जो तिस बैठे हुए बच्चे को पिलादेवे। पूर्ण परमानन्द 'मनोहर' यानी मनको हरने वाला ईश्वर ही उसकी पालना करे है। 'समझ देख मनमाहीं' कहिये यह वार्ता अपने मन में विचार कर देख ॥

प्रश्नः–कुंमी का बच्चा तो हवा खाकर ही पल सकता है तो उसकी ईश्वर ने कैसे पालना करी ?

उत्तरः—'पाखणि कीट'—पत्थर का कीड़ा सबकी दृष्टि से गुप्त पत्थर में ही रहे है और बाहर निकल कर खाने के हेतु 'ताचे' अर्थात् तिसका 'मारग'—रास्ता कोई नहीं और वहां हवा भी नहीं पहुँचती जो वह भक्षण करे। 'कहे धन्ना पूरनताहू को' कहिये भक्त धन्ना जी कहते हैं कि उस को भी पूर्ण परमेश्वर तृप्त करे है। याते 'रे जीअ' अर्थात् हे जीव! तू अपनी पालना के लिये मत डर, किन्तु डर को त्याग कर परमेश्वर की भक्ति कर, वह तेरी आप ही पालना करेगा; और इस इतिहास को तो सब जानते हैं कि रुक्मिणीजी ने परीक्षा करने के लिये कीट को डिब्बी में बन्द किया था और अन्तर्यामी ने उसको वहां ही आहार दिया था॥

दो०— पहिले बनी परारब्ध, पाछे बना शरीर।
तुलसी यह आश्चर्य है, मननहिं बांधे धीर॥

दृष्टान्त जैसे—एक अवधूत महात्मा एक दिन मधूकड़ी के लिये शहर में गये और किसी घर के दरवाजे पर जाकर 'नारायण हरी' उच्चारण किया। घर वाली माई ने अपनी जवान लड़की को रोटी देने के लिये भेजा। महात्मा उस लड़की की छाती को देखकर तिससे पूछने लगे, तेरी छाती पर यह दो फोड़े कैसे निकले हुए हैं, तुम को दुःख होता होवेगा? लड़की ने समझा इन्होंने मुझसे हंसी करी है, अन्दर जाकर यह बात अपनी माँ से कहदी; माता ने कहा हे पुत्री! वह अवधूत महात्मा हैं उनको इस बात का ज्ञान नहीं। तब माई ने जाकर सन्तों से कहा कि आप अवधूत महात्मा हैं, आप स्त्री के शरीर को नहीं जानते, यह फोड़े नहीं दूधके स्रोत हैं। यह लड़की अभी क्वारी है,पहले इसकी सगाई करके पीछे इसका विवाह करेंगे, फिर समय पाकर इसका बच्चा होगा, तब इनमें से उसके पीने के लिये दूध आवेगा; इसलिये अन्तर्यामी ने यह स्तन बनाये हैं। जैसे अरक़ निकालने की दो नालियां होती हैं। फिर जैसे फ़ौज के लिये रसद पहिले पहुंच जाती है तैसे बच्चे के लिये यह दूध का प्रबन्ध ईश्वर ने पहिले से ही करदिया है। अवधूत ने यह

सुनकर विचार किया, देखो अन्तर्यामी ने बच्चे के लिये पहिले सारा सामान बना रक्खा है और अभी उसके नाम रूप का कोई चिन्ह भी नहीं है। इसी आशय पर एक कवि लिखता है।

कवित्त—ब्याह को सामान नाहीं पतिहू को नाम नाहीं,
बालक को निसान नाहीं आगे रची खान जी।
तिसी पेट काज फिरे डोलता क्यों धाम धाम,
नाम को विसार वाह रे मूरख नादान जी॥
जपे नहीं राम नाम ईश्वर मृगेन्द्र कहे,
बारबार धिक्कार तेरे जनमें को आन जी।
सुन यह बयान ते हैरान होय गयो सन्त,
मन हूं को कहे आंख खोल बेईमान जी॥

यह विचार कर सन्त ने भिक्षा मांगनी छोड़दी और उस दिन से सन्तोष धारण कर लिया कि प्रारब्ध आपही पहुँचावेगी इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं:—

कवित्त—सास के भरोसे गढ़ मास में निवास पायो,
आसा मन माहिं करी मानुष शरीरों की।
परम दातार प्रभु ताहिको न याद कियो,
लेत जो खबरि नित पाहन में कीड़ों की॥
भजन बिहीन यम दीन करे अन्त समै,
नीच गती होत मूढ़ निन्दक वेपीरों की।
बिरथा बिहाइ नाहीं अवधि अमोल श्वास,
एक एक घड़ी जात लाख लाख हीरों की॥

इसी आशय पर गुसाईं तुलसीदास जी भी लिखते हैं:—

दो॰—तुलसी दाता एक है, जो कोउ धारै धीर।
पाछे निकस्यो गरभ तें, आगे रचिओ चीर॥
पुनः—अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहे, सबको दाता राम॥

एक ब्राह्मण मन्दिर में रामायण की कथा किया करता था, उस मन्दिर में श्रीरामचन्द्र जी और श्री हनूमान जी की मूर्ति थी, वहां कथा सुनने वाले एक दो ही जाते थे, लोगों ने कहा महाराज! श्रोता तो

आते नहीं आप कथा किनको सुनाते हो और आपको प्राप्त क्या होगा? ब्राह्मण ने कहा जो सबके दाताराम हैं मैं उनको ही कथा सुनाता हूं और जो कुछ मेरी प्रारब्ध में होगा सो अवश्य भगवान् कहीं न कहीं से दिला ही देंगे। इस प्रकार कथा करते करते एक वर्ष होगया; कथा समाप्ति से एकदिन पहिले श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति से शब्द हुआ, "हनूमान! इस ब्राह्मण ने मेरे भरोसे पर यहां कथा बांची है, इसको कुछ देना चाहिये। हनूमान–जो आज्ञा। भगवान्–एक हज़ार रुपये इसको देदेना। इस वार्ता को एक साहूकार ने मन्दिर के पास स्नान करते समय सुना, उसने ब्राह्मण के घर जाकर कहा कि हमारे साथ कथाके चढ़ावेका पांचसौ रुपये में ठेका कर लेवो अर्थात् हम तुमको पांच सो रुपया दे देंगे जो चढ़ावा चढ़ेगा सो चाहे ज्यादा हो या कम, हमारा रहेगा। ब्राह्मण ने कहा मुझे स्वीकार है, पर रुपया पहिले देदो; साहूकार ने पांच सौ रुपये देदिये। जब दूसरे दिन कथा की समाप्ति का समय हुआ तो साहूकार भी जा बैठा, परन्तु चढ़ावा कुछ न चढ़ा; तब ब्राह्मण कथा समाप्त कर अपने घर चला गया और साहूकार ने हनूमान जी की मूर्ति को लात मारी और बोला तुम झूठे हो। उसका पांव तुरन्त ही मूर्ति से चिपक गया, दूसरी ओर से श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति से शब्द हुआ, हनूमान! ब्राह्मण कथा समाप्त करके चलागया है,कुछ उसको दिया है या नहीं? हनूमान–हे भगवन्! पांच सौ रुपये तो दिलवा दिये हैं और पांच सौ की आसामी पकड़ी हुई है, यदि वह पांच सौ रुपये देगा तो छूटेगा। ऐसा सुनकर साहूकार ने अपने घर सन्देशा भेजा कि पांच सौ रुपये ब्राह्मण को और दे दो, उन्होंने रुपये ब्राह्मण को दे दिये और मूर्ति ने साहूकार की लात छोड़ दी, तब उसने निश्चय किया कि भगवान् की वाणी सच्ची है। इस से सिद्ध हुआ कि जो ईश्वर पर भरोसा करता है उसको अवश्य ही अन्तर्यामी किसी न किसीप्रकार धनपहुँचा देता है। इसपर कथनकिया है:–

सवैया–हो निःचिन्त करो मत चिन्तहिं, चोंच दई सोइ चिन्त करेगो।
पाउं पसार पर्यो कि न सोवत, पेट दयो सोई पेट भरेगो॥

जीव जिते जलके थलके पुनि, पाहन में पहुंचाइ धरेगो।
भूखहि भूख पुकारत है नर,सुन्दर तू कहां भूखो मरेगो ॥

गुरुजी कथन करते हैं:-

मानुख की टेक बृथी सभ जानु ॥ देवन कउ एके भगवानु ॥
जिसके दीऐ रहै अघाइ ॥ बहुरि न तृसना लागै आइ ॥
(गउ० सुख० म० ५ पृ० २८१)

एक बार बाबर बादशाह गुरु नानकदेव जी के पास ऐमनाबाद नगर में गया और आगे भाँग के प्रसाद की भेंट रखकर बोला:-

सब्ज बरगस्त तुहफ़ए दरवेश ॥

अर्थात् यह भाँग फ़क़ीरों की भेंट है, तब गुरुजी ने सात मुट्ठी भाँग की उसको दीं अर्थात् सात पातशाहियां भारतवर्ष की देदीं; जब बाबर ने सेवा के वास्ते प्रार्थना करी कि आप कुछ वज़ीफ़ा (ऐमा) स्वीकार कर लेवें, तब गुरुजी ने शब्द उच्चारण किया:-

ऐमा दीआ एक खुदाइ ॥ जिसका दीआ सभको खाइ ।
इक दाता सभ जगतु भिखारी ॥ तिसुको छाडु अवरको
मांगै तिन अपनी सगल पतु हारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
साहु पातिसाहु सब तिस कीए ॥ तिसके साथ न कोइ रलीए ॥
मानुख की जो लेवै ओट ॥ दीन दुनीआ है ताकी टोट ॥
कहि नानक सुण बाबर मीर ॥ तुझते मांगे सो अहिमक़ फ़क़ीर ॥ (नानक प्रकाश)

पुनः—एक ऊपरि जिसु जनकी आसा ॥ तिसकी कटीऐ जमकी फासा ॥
(गउ० सुखमनी म० ५ पृ० २८१)

चौ०-अहो बकरी हुती बिचारी । जो फिरदी सी मारी मारी ॥
पिंडों कड्ढ सुटी सी जट । आई शरन शेर दी झट ॥
सारे दुख दूर हो गए । महा आनन्द परापत भए ॥
हाथी दी मिल गई सवारी । करदी सी ओह मौज बहारी ॥
सीतल निर्मल पीवे नीरा । उम्दा ताज़ा पींवे सीरा ॥
हाथी सेवा करने हारे । जीव पशू सभ आज्ञाकारे ॥ (गुरु नानक
इह विध किस कारन ते होई । शेर शरन उस जाइ फड़ोई ॥ साखी प्रमाण)

इसी आशय पर एक और महात्मा लिखते हैं:-

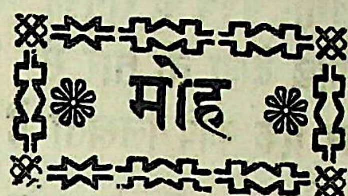
ग़ज़ल-ऐ दिल कहीं तू जाके न अपनी ज़बां हिलाइ ।
और दर्द अपने हाल का किसी को मत सुनाइ ॥

मांग उससे जिसके हाथ से तू पेट भर के खाइ ।
मशहूर यह मिसल है कहूँ क्या मैं तुझ से हाइ ॥
ग़ैर अज़ ख़ुदा के किसमें है क़ुदरत जो हाथ उठाइ ।
मक़दूर क्या किसी का वही दे वही दिलाइ ॥
अहले जहां ये जितने हैं इन सबका छोड़ साथ ।
न पाओं पड़ किसी के तू ऐ दिल न जोड़ हाथ ॥
दो हाथ वाले जितने हैं इन सब से मोड़ हाथ ।
उससे ही मांग जिसके हैं कई सै करोड़ हाथ ॥
गर वह दिलाया चाहे तो दुश्मन से दे दिलाइ ।
गर वह न दे तो दोस्त भी फिर अपना मुखछिपाय ॥
बिन हुक्म उसके रोटी का टुकड़ा न हाथ आइ ।
गर चुल्लू पानी मांगे तो हरगिज़ न कोई पिलाइ ॥
ज़र दार जिसको समझा है तू सेठ साहूकार ।
यह सब उसी से मांगें हैं दिन रात बार बार ॥
हरगिज़ किसी के सामने मत हाथ को पसार ।
पूरी तेरी पड़ेगी उसी के दिये से यार ॥
ज़रदार मालदार के मत फिर तू आस पास ॥
मुहताज होके आप वह बैठा है जी उदास ॥
मां बाप यार दोस्त दिगर सबसे हो निरास ।
हरदम उसी करीम की रख अपने दिल में आस ॥
उमरा हैं जितने ख़लक़ में क्या शाह क्या वज़ीर ।
अल्लाह ही है ग़नी मियां हैं और सब फ़क़ीर ॥
क्या गंजो मुल्क मालोमकां ताज क्या शरीर ।
जो मांगना है उससे मांगो मियां नज़ीर ॥

पुनः—इस बन्दे ने की कुछ खाना रब बडे शिकम भरेंदा ।
हमूँ जहान दी कूच गुज़ारी इक जनावर लेंदा ॥
इहु जहे जनावर मैंडा साईं कीड़िआं वांग पलेंदा ॥
चूहड़ ऐसा राज़क पालक ऐमन तू किउं नहींयाद करेंदा ॥

इन प्रमाणों तथा दृष्टन्तों से यह सिद्ध होता है कि जिज्ञासु पुरुष प्रारब्ध पर सन्तुष्ट रहें, ईश्वर का भाणा (आज्ञा) मानें और उस पर ही भरोसा रखते हुए सन्तोष को धारण करें ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



मोह

प्रश्नः–भगवन् जी ! सन्तोष धारण करने के उपाय, ईश्वर पर भरोसा रखना इत्यादिक प्रसंगों को श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है, अब कृपा करके मोह का वर्णन करें ॥

उत्तरः–हे प्यारे ! एकाग्र चित्त होकर श्रवण करो। इस विषय में गुरुजी जीवों की दशा का वर्णन करते हैं:–

तितु सरवरड़े भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ॥
पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥ [आसा म॰ १ पृ॰ १२]

भावार्थ–हे प्यारे ! देखो तो इस संसार सरोवर में तुम्हारा 'निवास' कहिये रहना हुआ है जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध जल है, तृष्णा अग्नि है और मोह रूपी कीचड़ है जिस में मन बुद्धि रूपी चरण फँस जाने पर यह जीव परमार्थ की ओर नहीं चल सकते। गुरुजी कथन करते हैं कि तिस संसार सरोवर में मन मुखों को हमने 'डूबीअले' कहिये डूबते देखा है। इस पर इतिहास श्रवण करें:—

एक राजा ने नटों के तमाशे में नटनी को रस्से पर चढ़कर नाचते देखा। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और कहा हे नटनी ! हम नदी के इस पार से लेकर उस पार तक तार बंधवाये देते हैं उसके द्वारा तुम नदी को पार कर जाओ तो तुमको आधा राज्य पारितोषक में दिया जावेगा; उसने स्वीकार किया। तब नटनी, उसका बच्चा और राजा आदि सब नदी के किनारे गये। नटनी तार पर वृत्ति एकाग्र करके चलने लगी; जब बीच में पहुंच गई तब मंत्री ने मन में सोचा कि राजा बड़ा भोला है, इस तारपर जाना इसको क्या कठिन है, क्योंकि यह तो इनके नित्य

प्रति का अभ्यास है। तब उसने उसके लड़के को बड़े ज़ोर से एक थप्पड़ मारा, जिससे वह रोने लगा; बच्चे के रोनेकी आवाज़ को सुनकर नटनी ने मोह के मारे मुड़कर पीछे देखा तो तार से गिर पड़ी और मृत्युभाव को प्राप्त हो गई। इस पर एक कवि लिखता है :—

दो०—मोहमहा अतिदुष्ट है, मोह अधीन हो यार।
पहुंच किनारे पर मुई, बाजीगर की नार॥

पुनः—मित्र समझिआ दुखाँ दे देणवाला, वैरी समझ के छड विसार बन्दे।
तैनूं नहीं इतबार जे आवंदाए, दसां खोहल परमाण निखार बन्दे॥
जड़ भरत ने मृग दा मोह कीता, होणा मृगदा पिआ अवतार बन्दे।
दशरथ मोह ने डेगिआ मंदरां तों, दित्ते मोहने प्राण निकार बन्दे॥
झूठी पुत्रदी मौत सुण लई द्रोणे, दित्ता मोह ने जानतों मार बन्दे॥

पुनः—मिठी मोहदी चस न देख भुलीं, नहीं तां दुख पासे जूना पा मित्तर।
कारन जनमते मरनदा मोह समझीं, सिर मोहदे जूता लगा मित्तर॥

इस पर इतिहास श्रवण करें :—

एक समय नारद जी पृथ्वी पर विचरते हुए वैकुण्ठ में गए, वहां पर भगवान् को अकेले बैठे हुए देखकर कहने लगे महाराज! आपके अकेले बैठने का क्या कारण है? भगवान्—यद्यपि यहां पर सर्व प्रकार का सुखहै तो भी यहां आने की कोई इच्छा नहीं करता। नारद—वैकुण्ठ का तो नाम सुनते ही सब लोग आपसे आप चले आवेंगे। भगवान्—अच्छा, तुम जाकर दो चार आदमी तो ले आओ। तब नारद जी बड़े उत्साह के साथ चल पड़े और मृत्यु लोक में आकर एक बूढ़े से कहा बाबा! वैकुण्ठ चलोगे? यह सुनकर वहबहुत बिगड़ा और कहने लगा हे अभागे! तू ही वैकुण्ठ में जा, जिसका न कोई आगे है न पीछे; मैं क्यों जाऊं? मेरे पुत्र, नाती, स्त्री, धन इत्यादि सब हैं; जो अपुत्र हो सो वैकुण्ठ में जावे। यह सुनकर नारदजी वहां से चुपचाप चल दिये, आगे जाकर एक युवक से कहा वैकुण्ठ चलोगे? उसने उत्तर दिया, "बाबा! वैकुण्ठ तो बड़े-बूढ़ों के लिये बना है, जो किसी कामके योग्य न हो वह वहां जावे; हम तो अभी सब काम कर सकते हैं, हम क्यों

जावें ।" वहां से थोड़ी दूर आगे जाकर फिर एक पुरुष से नारद जी ने कहा "वैकुण्ठ चलोगे ?" उसने कहा "किसी लूले लंगड़े को खोजो, यहां पर तुम्हारी दाल नहीं गलेगी ।" इसी प्रकार नारद जी ने बहुत मनुष्यों को वैकुण्ठ जाने के लिये कहा, परन्तु किसी ने भी स्वीकार न किया । अंत में एक वृद्ध साहूकार को तिलक छापे लगाये हुए दुकान पर बैठे देखकर उन्होंने विचारा कि यह भगवान् का भक्त प्रतीत होता है, यह अवश्य वैकुण्ठ चलेगा; यह एक ही चलदे तो भी हमारी बात रह जावेगी क्योंकि हम भगवान् से कह आये हैं कि किसी न किसी को ले ही आवेंगे । नारदजी उसके पास जाकर बैठगये और 'जय सीताराम' कह कर उसके कान में कहा, "सेठजी ! संसार का सुख तो आपने देख ही लिया है, अब चलकर कुछ काल वैकुण्ठ के सुख को भोगो ।" सेठ–महाराज ! मेरी भी यही इच्छा है परन्तु मेरा लड़का अभी सयाना नहीं हुआ, यह थोड़ा सयाना हो जावे और दुकान के काम-काज को सम्हाल ले तब चलूँगा; आप कुछ दिन ठहर कर फिर आना । यह सुनकर नारद जी चले गये और कुछ दिन पीछे उसके पास आकर बोले अब तो तुम्हारा लड़का सयाना हो गया है, चलो; वह बोला अभी इसके सन्तान नहीं हुई, इसके गृह में पुत्र होले तब चलूंगा । नारदजी फिर चले गये, कुछ काल उपरान्त फिर सेठ से आकर कहा अब तो तुम्हारे पौत्र भी हो गया है, अब तो चलो; सेठने कहा महाराज ! नाती की शादी करके चलूंगा । नारदजी कुछ काल पीछे फिर आये और पूछा सेठजी कहां हैं ? उसके लड़के ने कहा उनका तो स्वर्गवास होगया है । नारदजी ने विचार किया हमारे कहने पर तो वह वैकुण्ठ को नहीं गया अब अपने आप किसप्रकार चलागया होगा, कहीं मोह का मारा यहां ही होगा; जब दिव्यदृष्टिसे देखा तो मालूम हुआ कि सर्प बन कर अपने द्रव्य पर बैठा है; तब वह बोले अब तो चलो ! उसने कहा अब धन की रक्षा करता हूं क्योंकि लड़का अभी इस योग्य नहीं है, जब वह समर्थ हो जावेगा तब चलूंगा । जब नारदजी कुछदिन पीछे फिर आये

तब उसे कुत्ता बन कर द्वारपर बैठा पाया, देखकर बोले अबतो चलो! उसने कहा महाराज ! अभी नाती नासमझ है, मैं चोर इत्यादि से रक्षा करता हूं। तब नारदजी ने उस सेठ की स्त्री से कहा तुम ही वैकुण्ठ को चलो; उसने कहा महाराज ! हमारे घर के दो-चार काम अभी बाकी हैं, वह हो जावें तब मैं चलूंगी। कुछ दिन उपरान्त जब नारद जी फिर गये तो वह सेठानी भी मरकर कुतिया बनी हुई द्वारपर बैठी थी; नारद जी ने कहा अब तो चलो ! उसने कहा अभी तो मैं इस जन्म में बड़ी सुखी हूं, फिर चलूंगी। तब नारदजी हारकर वैकुण्ठ में जाकर भगवान से कहने लगे, "महाराज ! आपने सत्य कहा है, संसारी लोग ऐसे मोह ममता में फंसे हुए हैं कि कोई भी उसे त्याग के वैकुण्ठ में आने की इच्छा नहीं करता। इसी आशय पर और भी लिखा है :-

दो०—काज अकाज लख्यो नहीं, गह्यो मोह दृढ़ बन्ध।
सु गुरु खोजि मगु ना चह्यो, बह्यो सिन्धु मति अंध॥
पुनः—सुत मीठी बातें कहे, मनो मोहनी मन्त।
सुनि सुनि आनंद पावई, वशहोत मूढ़ जग जन्त॥
सोरठा—अन्ध कूप सम गेह, पच्यो न जान्यो मरम शठ।
बंध्यो पशू वत नेह, सुत त्रिय क्रीड़ा मृग भयो॥

भावार्थ—वन में अन्धे कुएँ के समान, घरके रक्षण में पुरुष 'पच्यो' कहिये खचित होरहा है, पुत्र स्त्री की प्रीति (मोह) रूप रस्सी से पशु के समान बँधा हुआ 'क्रीड़ा' कहिये उनकी चेष्टा का मृग हो रहा है; 'शठ' कहिये मूर्ख ने 'मरम' कहिये भेद को नहीं समझा है कि यह अपने स्वार्थ के संगी हैं। इसी आशय पर और लिखा है:-

सवैया— जिन लोगन के हित पाप करे, मन ते नहिं ते कछु काज सवारे।
जबलौं तब ते सुख हेरत हैं, तब ही सुख माहिं पुकारत थारे॥
तरु में फल हेर बिहंगम के गन, आवत हैं छद चोंच पसारे।
नर आपद औ तरु दाहि लगे, नर और बिहंगम दूर पधारे॥

गुरु, शास्त्र, तथा महात्मा ढँढोरा देकर सुना रहे हैं; परन्तु विचार से रहित जीव मोह ममता में फंसे हुए दुःखी होरहे हैं, त्यागने की इच्छा नहीं करते। इस पर इतिहास श्रवण करें:-

किसी एक वृद्ध को उसके नाती (पोता) ने किसी बात पर लातों से मारा और घर से बाहर निकाल दिया; तब वह अपने द्वार पर बैठकर रोता हुआ उसे गालियां देने लगा। एक महात्मा उस मार्ग से आ निकले, उन्होंने इस प्रकार उससे रोने का कारण पूछा, वृद्ध ने कहा मेरे पुत्र, पौत्रादिक बड़े दुष्ट हैं, और सब धन को अपने अधिकार में करके अब हमको अच्छी रोटी भी खाने को नहीं देते, जब रोटी के लिये कहता हूं तब मारने को दौड़ते हैं; आज हमको नाती ने लातों से मारा है इसलिये मैं दुःखी होकर रोरहाहूं और गाली भी देताहूं। महात्मा बोले बाबा! यह पुत्र पौत्र तो सब अपने २ स्वार्थके मित्र हैं,जब तक तू इनको सुख देता था तब तक यह सब तेरा आदर करते रहे; जैसे वैश्या तब तक धनी यार की सेवा करती है जब तक वह धन देता है, जब धन से रहित देखती है तब धक्के मारकर बाहर निकाल देती है। अब तुम इनको सुख देने योग्य नहीं रहे, इसी लिये यह तुमको धक्के मारते हैं; संसार में सब लोग अपने २ सुख के लिये एक दूसरे से प्रीति करते हैं। यह संसार 'गद्दों खुरकणी' (गधों का खुजाना) है; जैसे एक गधा दूसरे गधे को दांतों से खुजाता है तो दूसरा उसको खुजाने लग जाता है, जब एक छोड़ता है तब दूसरा भी छोड़ देता है। ताते संसार को स्वार्थ का मित्र समझो और ईश्वर का भजन करके अपनी अन्तिम आयु सफल करलो, वृद्धावस्था में सम्बन्धी इसी प्रकार का आचरण करते हैं; यह तुम्हारे साथ कोई नई घटना नहीं हुई, यह तो अनादिकाल से चली आती है। इस पर एक महात्मा कथन करते हैं:—

आसावरी—जिन्हां नूं तूं आपखा कर पालिआ, कोई न बखदा तेरा।
सभै तैनूं छड खलोते, जद पाइआ बुढेपे फेरा॥
माल धन तेरा पुत्रां लइआ, तेरा अन्धी कोठी विचडेरा।
नाम मुशटंडा धरिआ तेरा, नित रोटी दा पौंदा झेड़ा॥

छन्द—बारबार कह्यो तोहि सावधान क्यों न होइ, ममता की पोट सिर काहे को धरत है।
मेरो धन मेरो धाम मेरो सुत मेरी वाम, मेरे पशु मेरे ग्राम भूल्यो फिरत है॥
तूतो भयो बावरो बिकाय गई बुद्धि तेरी, ऐसो अन्ध कूप ग्रह तामें तू परत है।
सुन्दर कहत तोहि नैक हू न आवै लाज, काज हूं बिगारि के अकाज क्यों करत है॥

ताते हे बाबा ! सम्बन्धियों का आसरा छोड़कर ईश्वर की शरण लो और इस प्रकार प्रार्थना करो:-

सवैया–अब जाठर में तन चीण भये, अरु दूर भये मुख दाँत हमारे ।
जन मोहि को भोजन सोइ धरें, घर भीतर जो कछु पावक जारे ॥
मुखते कछु भाषत हों जबही, तो कहें नहीं ते हित पूप सबारे ।
अब और न ओट निहारत हों, शरणागत हों जल भूधर तारे ॥

पुनः महात्मा ने कहा, हमारे साथ चलो। वृद्ध बोला आपको चौधरी किसने बनाया है जो हमको घर और सम्बन्धियों के छोड़ने का उपदेश करते हैं ? वह हमारा नाती और हम उसके बाबा, यदि बालक मारे भी तो क्या घर छोड़दूं ? महात्मा मनमें कहने लगे देखो मोह की महिमा जो इस प्रकार दुर्दशा होने पर भी मूर्खों को सम्बन्धियों और गृह से वैराग्य नहीं होने देता। देखो, इस मोह ने मनुष्य, पशु, पन्नी, आदि सबको वश में कर रक्खाहै। इस पर एक महात्मा लिखते हैं:-

बैंत–मोह मार दुनियाँ सारी चूर कीती, निक्यां वडिआं दे विच धस्स रिहा ।
पंछी जानवर बनां विच रहिण वाले, जाल इसदे विच सभ फस रिहा ॥
ज्ञान विवेक ताईं एह तां दूर करदा, संगत साध वाला कोई बच रिंहा ।
शस्त्र लै विवेक जिन दूर कीता, भगत जमां दी काण तों बच रिहा ॥

जिन सम्बन्धियों के लिये मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करता है जब उस पर इसलोक विषे ही कोई भयङ्कर रोग या मुक़द्दमा आ बने, तो उसे सब त्याग देते हैं। इस पर महात्मा लिखते हैं:—

कुं०–जिनके कारन पुरुष यह, सदा कमावे पाप ।
रात दिने दुख पावता तीन सहारे ताप ॥
तीन सहारे ताप वास्ते पुत्तर नार ।
कोई ना नेड़े आइ होइ जब अति बीमार ॥
बणे मुकदमा सखत तभी हो जावें भिन्न ।
सभी किनारा करें समझता मित्तर है जिन ॥

एक लड़का बहुत लिखा पढ़ा हुआ किसी बड़े पद पर नौकर था, और उसके माता-पिता व सम्बन्धी सब उसके साथ प्रेम करते थे, उसे देख देखकर प्रसन्न होते और कहते कि तूतो हमारे कुलको प्रकाश करने वाला सूर्य और चन्द्रमा के समान है। दैवयोग से उसका कोई ऐसा

पाप कर्म उदय हुआ जिससे उसे कुष्ट होगया, तब वही सम्बन्धी उससे ग्लानि करने लगे। इस पर विचार सागर में ऐसे लिखा है :—

चौ०—मातु पिता बान्धव सुत नारी। करत प्यार स्वारथ ते भारी॥
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै। तौ उनकूं देखेउ न भावै॥
जा बिन घरी एक नहिं रहते। दुख अपार बिछुरे सब लहते॥
जब देखे आयोघर पौरी १। घरके मिलत भाजि भरि कौरी * ॥१ दरवाज़ा * झेंप,जप्फी।
बिधि अधीन कोढ़ी सो होवे। सब अंगनि में पाणी चोवे॥
अरु झरि परी अंगुरी जाके। भिन-भिनात मुख माखी ताके॥
कहत ताहिते घर के प्यारे। मर पापी अबतौ हत्यारे॥
जेहि देखत अखियां न अघानी। तेहि लखिग्लानि वमन * ज्यों आनी॥ * उल्टी
जोतिय हिय लागत पति प्यारो। किय न चहत पल उरते न्यारो॥
जो पितु मातु गोद में लेते। सकुचत तेहि कर ते कछुदेते॥
मिलत भ्रात जो भर भुज कोरी। सो बतरात बीच दै डोरी॥
ऐसो जग स्वारथ का सारो। बिन स्वारथ को का को प्यारो॥

पुनः—छप्पै छन्द—वृक्षहीन फल चीन विहङ्गम बेगि तिआगें।
कानन दग्धो देखि हिरन आदिक सब भागें॥
फूल माल निरगन्ध गरे ते त्यागें सब नर।
सारस त्यागै बेगि नीर बिन पेखि सरोवर॥
पुनि गणिका निर्धन नर तजै,भ्रष्ट नृपति भृत तजतही।
जन सगरे स्वारथ वश रमे, कोउ काहू प्यारो नहीं॥ (सारुक्तावली)

इसी आशय पर और महात्मा लिखते हैं :—

बैंत—तैनूं आखां लख हजार वारी, बिनां रब दे कोई दिलदार नहीओं।
एहतां साक नीसारे मतलबां दे, बिना मतलब दे कोई यार नहीओं॥
तूतां भुलके इन्हां दे मगर लग्गों, तैनूं मूरखा कुछ भी सार नहीओं।
बेड़ी लोहे दी बैठ करतार सिंहा, होया कदे भी किसीने पार नहीओं॥

दक्षिण देश में वंजरा और गरुड़ गंगा के संगम पर शर्मा नाम करके एक ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्री का नाम सुधर्मा था, उसके कोई पुत्र नहीं था। पुत्रोत्पत्ति के लिये वह संगम पर जल में खड़े होकर गंगा जी की उपासना करता रहा, जब उपासना करते करते उसकी आयु साठ वर्ष से भी अधिक हो गई तब उसके घरमें एक अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ अन्धे पुत्र की प्राप्ति पर भी उसे बड़ा हर्ष हुआ और बड़े प्रेम से

उसका पालन करने लगा। जब लड़का पांच वर्ष का हुआ तब उसका यज्ञोपवीत बड़ी धूम धाम से करा दिया और उसको विद्या पढ़ाने लगा थोड़े वर्षों में वह अन्धा पढ़कर पण्डित होगया। एक दिन पुत्र अपने आसनपर बैठा था, उसी समय उसका पिता आकर उसके पास बैठगया तब पुत्र ने पूछा हे पिता! पुरुष किस पाप करके अन्धा होजाता है? पिता–हे पुत्र! जो पुरुष पूर्व जन्म में रत्नों की चोरी करता व खोटी दृष्टि से पर स्त्री को नग्न देखताहै वह अन्धा होजाता है। पुत्र–हे पिता जी! यह कारण नहीं है क्योंकि शास्त्रकारों ने ऐसा नियम कर दिया है कि कारण के गुण कार्य में आजाते हैं; हे पिता! तुम अन्धे हो इसी से मैं भी तुम्हारे घर में अन्धा उत्पन्न हुआ हूं। पिता क्रोधसे बोला मैं कैसे अन्धा हूं? पुत्र–हे पिता! सालोक्य मुक्ति को देने वाला वंजरा और गरुड़ गंगा का जो संगम है, तुमने उसकी उपासना महान् तुच्छ पुत्र-कामना से करी है, इससे मैं जानताहूं कि तुमही अन्धे हो मैं नहीं।

इसी आशय पर गुरु साहिब जी कथन करते हैं:–

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहिं॥
अंधे सेई नानका जि खसमहु घुथे जाहि॥ (रामकली की वार पृ० ९५४)
पुनः–करे मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥ (रामायण)

हे पिता! तपस्या रूप ब्रह्मास्त्र को धारण करके भी तुमने एक मच्छर को ही मारा, यानी मलमूत्र का शरीर ही मांगा, जो वेद शास्त्र को पढ़कर एक मूत्र के कीट की इच्छा करता है सो अन्धाकहाजाता है जैसे मूत्र से अनेक कृमि उत्पन्न होते हैं तैसे पुत्र भी एक मूत्र का कृमि है; हे पिताजी! जिस की उत्पत्ति के लिये तुमने जन्म भर तप किया है वह तो बिना तप के शूकरादिकों के भी उत्पन्न होते हैं। पुत्र करके किसी की भी गति न तो हुई है और न होगी, वह तो अपने पुरुषार्थ से ही होती है। बहुत से राजाओं ने आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिये पुत्रादिकों का त्याग करके तप किया है, यदि पुत्र से गति होती तो वह ऐसा क्यों करते? ताते सिद्ध हुआ कि ज्ञान बिना मुक्ति नहीं होसकती॥

एक महात्मा जारहे थे, मार्ग में किसी की मृत्यु पर उसके सम्बन्धी रुदन करते हुए कह रहे थेः-

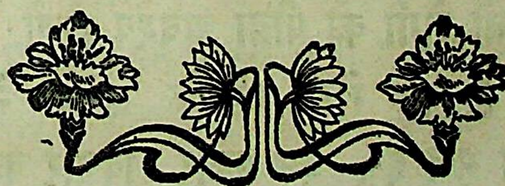
मोइआं होइआं नूं मितरो, सभ कोई वडिआंदा ।
हाहा नारी रोवंदी, पुतर पिआ कुरलांदा ॥
कई नवें उसारदा या चगले ढाहंदा ।

यह सुनकर महात्मा बोलेः—

नाम विहूणा टुर गिआ सिर खेह उड़ांदा ॥

भजन—साधो मोह जैसी नहीं फाई ॥१॥ रहाउ ॥
दानव, देव पशू नर पक्षी, सगली सृष्ट भ्रमाई ॥२॥
धन दारा गृह सुत संपतकी, अद्भुत जाल विछाई ॥३॥
जो जो आवे ताहि फसावे, खाली कोई न जाई ॥४॥
ज्यों ज्यों संग वढ़े आपस में, त्यों त्यों मोह उपजाई ॥५॥
ज्यों-ज्यों मोहबढ़े रिद अन्तर त्यों-त्यों बंधन पाई ॥६॥
जौ लौं संग रहे मित्रनका, तौ लौं चित विगसाई ॥७॥
मित्र गये चित कोपन लाग्यो, छिन छिन शोक बढ़ाई ॥८॥
जो जो बंधन बांधन हारे, सभते मोह अधिकाई ॥९॥
चौदह भुवन मोह की सेना, मर्कट वांग नचाई ॥१०॥
मोह भुलाये पण्डित भूपति, भूली लोग लुगाई ॥११॥
मोह का वेग नदी का कप्पर, गिरेसु गोते खाई ॥१२॥
मोह की धार खड़गते तीचण, जो छोवे सिरजाई ॥१३॥
जो चाहे मुहि शोक न व्यापे, चित ते नेह भुलाई ॥१४॥
जो नर नेह राम स्यों लावे, सहिज मुक्त हो जाई ॥१५॥
धार वैराग जगत रति त्यागी, आतम रति उपजाई ॥१६॥
सकल उपाधि मिटी सुख पाया, सहिज समाधि लगाई ॥१७॥
सर्वातम दृष्टि धारे बिन, मोह न जावे भाई ॥१८॥
मोह त्याग परमपद पाईये, हेमां कहित बुझाई ॥१९॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



मोह की निवृत्ति

प्रश्नः--भगवन् जी ! मोह का प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बड़ा भयभीत हुआ है। अब आप कृपा करके इसकी निवृत्ति का उपाय वर्णन करें !

उत्तरः-हे प्यारे ! विचारमाला में एक शिष्य ने अपने गुरु से इसी विषय पर प्रश्न किया है, उसका उत्तर एकाग्रचित्त से सुनो :-

दोहा--जगत मोह फाँसी अजर, कटै न आन उपाइ।
जो नित सत सङ्गति करै, सहज मुक्त होजाइ॥

क्योंकि सम्पूर्ण साधन सत्संग में आने से प्राप्त होते हैं, जब विवेक और वैराग्य उत्पन्न होता है तब मोह ममता की निवृत्ति हो जाती है। इस पर गुरु जी कथन करते हैं :-

जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइओ उदास।
कहु नानक सुनरे मना, तिहि घटि ब्रह्म निवास॥ (सलोक म० ६ पृ० १४२७)

एक निर्मोह नाम का राजा था, उसने पहिले किसी महात्मा के उपदेश मंत्र का बारह वर्ष अभ्यास किया; फिर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये एक ब्रह्मवेत्ता महात्मा की शरणमें प्राप्त हुआ। महात्माने परीक्षा के लिये ताड़ना करी, राजा उठकर चलाआया परन्तु रात्रि भर उसके मनमें क्षोभ होता रहा। प्रातःकाल विचार करने लगा कि हे मन ! तेरे में ही दोष है, क्योंकि सन्तों की ताड़ना भलाई के लिये होती है; जैसे डाक्टर फोड़ा चीरता है तो रोगी को पीड़ा अवश्य होती है, परन्तु इसमें उसकी भलाई ही होती है, यदि रोगी कहे कि डाक्टर ने मेरे साथ बुरा किया है तो यह उसकी भूल है; इस प्रकार विचार कर उसने अपना चित्त

शान्त किया। दूसरे दिन राजा फिर महात्मा के पास गया, उन्होंने पूछा राजन्! चित्त कैसा रहा? राजा–भगवन्! आपकी ताड़ना से रात्रिभर मन में क्षोभ होता रहा, प्रातःकाल विचार द्वारा चित्त शान्त हुआ है; हे भगवन्! इस दुःख रूप संसार की निवृत्ति का कारण जो ब्रह्मज्ञान है उसकी प्राप्ति मेरे को करावें; मैं आपका दास हूं और आप दया के समुद्र हो, अब आप कृपा कीजिये। महात्मा–अभी तेरा चित्त मलिन है बारह वर्ष और अभ्यास करो। राजाने ब्रह्मचर्य पूर्वक बारह वर्ष और अभ्यास किया। तब महात्मा ने एक भक्त से कहा कि हमने राजा की परीक्षा करनी है, जब वह बाज़ार में जावे तब उसके ऊपर एक टोकरा राख का डाल देना; भक्त ने ऐसा ही किया। राजा के चित्त विषे बहुत क्षोभ हुआ, परन्तु मुंह से कुछ न कहा; जाकर स्नान कर लिया और बैठकर विचार करने लगा कि शरीर भी तो राख ही है, राख के ऊपर राख पड़ गई तो क्या हुआ; ऐसे विचार द्वारा मन को शान्त करता हुआ राजा महात्मा के पास गया और दण्डवत् प्रणाम करके बैठ गया। महात्मा ने पूछा, "हे राजन्! चित्त कैसा रहा?" राजा–महाराज जी! स्नान करने तक क्षोभ रहा, फिर विचारसे चित्त शान्त हुआ। महात्मा–अभी तुम्हारे चित्त में मलिनता है, बारह वर्ष और अभ्यास करो। राजा उसी प्रकार बारह वर्ष पर्यन्त फिर अभ्यास करता रहा। जब छत्तीस वर्ष विधि पूर्वक अभ्यास सम्पूर्ण हुआ तब राजा का चित्त अत्यन्त शुद्ध हुआ। महात्मा जी ने फिर परीक्षा करने के लिये लड़कों से कहा कि चले जाते हुए राजा के ऊपर मिट्टी डाल देना। उन्होंने राजा के ऊपर बहुतसी मिट्टी डाल दी, परन्तु उसको कुछ भी क्षोभ न हुआ; स्नान करके शान्त चित्त से विचार द्वारा वह अपने मन से कहने लगा कि हे मन! शरीर भी मिट्टी है, मिट्टी के ऊपर मिट्टी पड़ गई तो क्या हुआ? यह विचार करता हुआ राजा शान्त चित्त से महात्मा जी के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम करके बैठ गया। महात्मा जी ने उसका चित्त अत्यन्त शुद्ध देखकर महा वाक्य द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर

दिया जिससे उसके कपाट खुल गये। जब राजा को अपने पूर्ण स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान और जगत् का अत्यन्ताभाव निश्चय हो गया तब महात्मा जी की आज्ञा से राज्य करने लगा। पुनः निर्मोह राजा ने अपने सर्व कुटुम्ब को भी ज्ञान करा दिया, जिससे सब सम्बन्धी ज्ञानवान् हो गये ॥

एक दिन राजकुमार विवेकाश्रम बाहर जंगल में एक तपस्वी की कुटिया पर गया और नमस्कार करके बैठ गया; तपस्वी ने पूछा, तुम किसके लड़के हो? कुमार—मैं राजा निर्मोह का बेटा हूं। तपस्वी—तुम झूठ बोलते हो, क्योंकि मनुष्य राज्य व्यवहार में रह कर निर्मोह कैसे रह सकता है? कुमार—हमारे सारे सम्बन्धी ही निर्मोही हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो जाकर परीक्षा कर लीजिये, आपको निश्चय हो जावेगा। तपस्वी—तुम अपना कोई वस्त्र उतारकर हमें देदो। लड़के ने अपना कोट उतार दिया। तपस्वी परीक्षा लेने के लिये शहर को चला और राजपुत्र कुटिया पर बैठ गया। तपस्वी ने मार्ग में कोट के ऊपर रक्तके छींटे डाललिये। जब वह महलके द्वारपरपहुँचा तो वहांराजा की दासीमिली, उसे सिंह ग्रसित कुमार की मृत्यु का समाचार सुनाया।

दोहा—तू सुन चेरी श्याम की, बात सुनाऊं तोहि।
कुंवर बिनास्यो सिंह ने, आसन परिओ मोहि ॥

दासी—दोहा—ना मैं चेरी श्याम की, नहिं को मेरा श्याम।
परारब्ध वश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥

भाव—हे तपस्वी! न मैं किसी की दासीहूं और न कोई मेरा स्वामी है, यह चार दिनका स्वप्नवत् झूठा मेला है; जन्म, मरण, संयोग, वियोग, सब इन्द्रजाल के समान झूठा है। मैंने इस संसार में बड़े २ दुःख देखे हैं जो आपको संक्षेप से सुनाती हूं:—

इस दुःख रूप संसार के पदार्थ देखते ही देखते नाश हो जाते हैं, मैं इनको स्वप्न समान जानती हूं; इसी से मेरे को किंचित् मात्र भी शोक नहीं। पूर्वकाल में मैं एक सौदागरकी स्त्रीथी; वह व्योपारार्थ परदेश चले गये; पीछे में एकदिन सिर स्नान करके अपने कोठे के ऊपर बाल सुखा

रही थी, उस समय राजा की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। मेरे सुन्दर स्वरूप को देखकर राजा का मन अपने धर्म में स्थिर न रहा और अपने नोकरों द्वारा मुझे पकड़ मंगवाने की आज्ञा दी, उन्होंने आकर मुझसे कहा 'चलो तुम्हें राजा बुलाते हैं'। मैंने कहा मेरे पतिदेव घर नहीं हैं, जब वह आजावेंगे तब चलूंगी, वह ज़बरदस्ती पकड़ कर मुझे राजा के पास ले गये, उसने रात्रि के समय मुझसे कहा कि तू मुझसे विवाह करले; मैंने एक वर्ष का समय मांगा, राजा ने स्वीकृति देदी और तलवार सिरहाने रख कर सो गया; मैं चिन्ता और दुःख की मारा राज महल की खिड़की में बैठ कर रोने लगी। जब मेरा पति घर आया और मुझे घर पर न पाया तो मेरे वियोग से अत्यन्त दुःखी हो कर घर सें बाहर निकल आया और गली में कूड़े के ढेर पर उच्च स्वर से रोता हुआ लोट पोट होने लगा; उधर दृष्टि पड़नेपर मैंने चन्द्रमा की चांदनी में देखा कि मेरा पति बहुत दुःखी हो रहा है। मैं बहुत जोश में आई और मन में विचार किया कि इस दुष्ट राजा का तलवार से नाश करके अपने पति के पास चली जाऊं। हे तपस्वी! तब मैंने साहस करके राजा के सिरहाने से तलवार उठाकर उस दुष्ट का शिर काट डाला और खिड़की से कमन्द द्वारा उतर कर पति के पास चली आई; जब पहुँची तो क्या देखा कि पति को एक भयंकर सर्प ने डस लिया है। उस समय के दुःख का हाल मैं आप को क्या सुनाऊं, मैं शोक सागर में डूब गई; मेरा पुत्र घर नहीं था, मैंने रात रोते पीटते बिताई और गली में बेहोश पड़ी रही। जब पिछली रात्रि का समय हुआ तो ऊंट वालों की एक टोली कहीं जारही थी, उन्होंने मेरे को सुन्दर और भूषणों से लदी हुई देखकर बलात्कार से ऊंट पर चढ़ा लिया और कहीं दूर देश में ले जाकर मेरे सब आभूषण उतार लिये और एक वैश्या से बहुत धन लेकर मुझे उसके हाथ बेच दिया; तब मैं वैश्या रूप से रहने लगी॥

उधर प्रजा ने जब देखा कि राजा मृत्यु को प्राप्त होगया है तो राजकुमार को राज गद्दी पर बिठला दिया। राजा का मन्त्री पहिले ही

से मृत्यु वश हो चुका था, उसके स्थान पर मेरा पुत्र मन्त्री बना दिया गया। कुछ समय बीतने के बाद मन्त्री देश देशान्तरों के भ्रमण को निकला और उसी शहर में आकर विश्राम किया जहाँ मैं (उसकी माता) वैश्या होकर रहती थी। रात्रिको उसे गाना सुननेकी इच्छा हुई तो उसने वैश्या को बुला भेजा, मैं ही वैश्या रूप से उसके पास आई और गाना बजाना आरम्भ होगया। जब गाना समाप्त हुआ तो सबलोग चले गये और मैं वहाँ ही रही; मेरा सुन्दर रूप देखकर उसका मन चलायमान हो गया तो उसने मेरे साथ सम्भोग किया। पीछे जब मैंने उसका सारा हाल पूछा तो उसने बताया कि मैं अमुक शहरके रहनेवाले, अमुक साहूकारका पुत्र हूं; परन्तु अब मैं उस देश का राजमंत्री हूं। पिता की मृत्यु के पश्चात् मेरी माताका बहुत दिनोंसे कोई पता नहीं है कि कहां है, केवल एक स्त्री घर में है, फिर कहने लगा कि तू भी मेरे साथ चल कर घर पर रह। मैंने कहा हे पुत्र! मैं ही तेरी माता हूं, यह सारा भेद खुल जाने पर हम दोनों इस भारी पाप कर्म से कम्पायमान हुए, फिर पण्डितों से पाप निवृत्ति का उपाय पूछा; उन्होंने सूखे पीपल के वृक्ष में अग्नि दाह लेकर जल मरने की आज्ञा दी। हम दोनों ने विधि पूर्वक अग्नि दाह लिया, लड़का तो भस्म हो गया परन्तु उसी समय बड़े जोर की आंधी और वर्षा आई तो मैं नदी में बहगई; और एक लकड़ीके सहारे तैरती हुई नदी के किनारे पर जा लगी, क्योंकि मुझे अभी थोड़ी ही अग्नि लगी थी। वहां से मुझे गूजर ले गये और मेरा इलाज करके मुझे दूध बेचने के काम में लगा लिया।

एक दिन मैं दूध बेचने को जा रही थी और राजा निर्मोह घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहा था, तो रास्ते में एक स्थान पर ठोकर लगने से दूध फैल गया; परन्तु मैंने कुछ शोक नहीं किया। राजा ने कहा हे गूजरी! तूने दूध फैलने का कुछ शोक नहीं किया? मैंने सारा हाल कह सुनाया और कहा मैंने इतने दुःख उठाये हैं; अब दूध का क्या शोक करूं? तब राजा मेरे को गूजरों से मोल लेकर अपने घर

ले आया । हे तपस्वी ! अब मैं निर्मोह राजा की दासी हूँ; मैं राजकुमार का क्या शोक करूँ क्योंकि ज्ञान के प्रताप से मैंने सब संसार झूठा जाना है । ऐसा सुनकर तपस्वी मन में विचार करने लगा कि यह तो दासी है, इसको कैसा मोह ? राजकुमार की स्त्री को अवश्य मोह होगा, तब उसकी परीक्षा करने के लिये उसके पास गया और बोला :—

दो०—तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवनवान ।
देवि वाहन दलि मलेउ, तुम्हरो श्रीभगवान् ॥

स्त्री बोली—दो०—तपिया पूरब जनम की, क्या जानत हैं लोग ।
मिले कर्मवश आय हम, अबविधि कीन्ह वियोग ॥

भाव—हे तपस्वी ! पूर्वजन्म के कर्मों को लोग नहीं जानते, किसी पिछले कर्म से मेरा पति के साथ मिलाप हुआ था; अब लेना देना समाप्त हो चुका है सो ब्रह्मा ने वियोग करा दिया है, कल्पित शरीरों का कर्मानुसार अवश्य संयोगवियोग होता है । यथा गुरु प्रमाणः—

संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहिं लेखे आवहि भाग ॥ [जपुजी पृ० ६]

तपस्वी—हे सुन्दरी ! तूने पति के मरने का कुछ शोक नहीं किया ? तेरा चित्त बड़ा कठोर है, इसलिये मैं समझता हूं कि तेरा पतिव्रत धर्म व्यर्थ है :—

दो०—बेमुख नारी पती से, बाणी कटू अलाइ ।
दुख पावै इस लोक में, अन्त नरक को जाइ ॥१॥
आज्ञा पालै पती की, नारी शील सुभाइ ।
सुख पावै इस लोक में, अन्त मुक्तिको पाइ ॥२॥
रोगि वृद्धि जड़ अन्धजो, तृष्णा क्रोध महान ।
पति ऐसा जिस होइ जो, करत नारि अपमान ॥३॥
पावै दुःख अनन्त सो, यम पकड़ैं जब आन ।
निश्चय नर्क सो भोगती, कभी न हो कल्यान ॥४॥
अति पावन वह नारि है, करै पती की सेव ।
चारि वेद यश गावते, परम गती सो लेव ॥५॥

भाव—जो स्त्री पति की आज्ञा नहीं मानती और उसके साथ कलह करती है उसकी इस लोक में निन्दा और परलोक में वह नर्क भोगती है; जो स्त्री पर-पुरुष के साथ व्यभिचार करती है वह परलोक में तपे

हुये खम्भे के साथ लगाई जाती है; जो स्त्री पति की आज्ञाकारिणी होती है, चलते समय सदैव पृथ्वी की ओर दृष्टि रखती है और पति को ईश्वर रूप जानकर नित्य-प्रति प्रातःकाल उठकर उसको नमस्कार करती है उसको इस लोक में यश और परलोक में सुख प्राप्त होता है। जब ऐसा विचार तपस्वी ने सुन्दरी को सुनाया तब उसने उत्तर दिया :-

हे तपस्वी ! जिन स्त्रियों को पति सेवा से ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वह अपने को व पति को देह मात्र ही जानती हुईं उत्तम लोकों के सुखों की इच्छा करतीं हैं जो उनको प्राप्त भी होते हैं, परन्तु मेरे को तो पति देव ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया है। इस बृह्मज्ञान रूपी अग्नि कर के यह देह आदि जगत् दग्ध हो चुका है, मेरे को उत्तम लोकोंके सुख, आत्म सुख रूपी समुद्र में तरंगों के समान दिखाई देते हैं, इसलिये मेरे को परलोक के सुख की इच्छा ही नहीं है; मेरा मन पूर्ण सुख-स्वरूप आत्मा में लीन हुआ है और मेरा पति-देह से भिन्न, चेतन स्वरूप, आत्मा अजर-अमर है; सर्व शरीर रूप तरंग मिथ्या हैं और आत्म स्वरूप समुद्र सत्य है, ऐसा निश्चय होने से मेरे को शोक नहीं हुआ। हे तपस्वी ! जिन स्त्रियों को ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ वह अपने को और पति को देहमात्र ही जानती हुईं मोहवश होकर पति के वियोग में इस प्रकार विलाप करती हैं :—

दो०—यम पकड़ कर ले गये, घर की रोवत नार।
पती मुसाफिर होगया, कौन लवेगा सार॥
लघु सुखके संजोग में, बिछुड़े दुःख हज़ार।
बेटी बेटा मित्र जो, रोवत ज़ारो ज़ार॥

भाव—हे तपस्वी ! जिन स्त्रियों को देह अभिमान है वह पति के शरीर के वियोग से रुदन करती हैं, जो पति की सेवा करती हैं वह सुख भोगती हैं और जो दुःख देती हैं वह सदा नर्क ही भोगती हैं।

दो०—अनेक योनियाँ पावते, स्वर्ग नर्क बहुरङ्ग।
बार बार दुख भोगते, देहऽभिमान के संग॥

भाव—जो अज्ञानी जीव देह का अभिमान करते हैं वह अनेक

योनियां पावते हैं। परन्तु मेरा देहाभिमान निवृत्त हुआ है, इस विचार से मैंने पति के शरीर की मृत्यु का शोक नहीं कियाहै; क्योंकि पूर्व कर्मों से कल्पित शरीरों का सम्बन्ध होता है और जब पिछला लेना देना समाप्त हो जाता है तब वियोग हो जाता है। इसपर में आपको एक उदाहरण सुनाती हूं:-

एक करमलम्भ नामका ब्राह्मण था, उसके घरमें पुत्र उत्पन्न हुआ; उसने उसकी जन्म पत्री देखकर ज्योतिष द्वारा जाना कि यह लड़का हमारा ऋण चुकाने को आया है, जब ऋण चुकती हो जावेगा तब यह मृतक हो जावेगा। करमलम्भ ने उसका नाम ऋणदत्त रक्खा; जब बड़ा होनेपर वह सब विद्या पढ़ गया तब करमलम्भ को भय हुआ कि यदि यह किसी सभा या किसी राजा से धन ले आया तो उसी समय इसकी मृत्यु हो जावेगी; ऐसा विचार कर उसने कहा हे पुत्र! तुम कहीं से भी किसी प्रकार का धन कभी मत लाना। एक दिन करमलम्भ दूसरे शहर की सभा में चला गया, उसके चले जाने के उपरांत पण्डितों की एक सभा लगी और एक बाहर से आये हुये पंडित के साथ शास्त्रार्थ होने लगा; इतनेमें ऋणदत्त भी सभा में पहुँच गया। शहर के प्रसिद्ध पण्डित सब हार गये परन्तु ऋणदत्त ने उस पण्डित पर विजय प्राप्त करली, तब राजा और शहर के ब्राह्मण उस पर बड़े प्रसन्न हुए। राजा ने उसे अपने पास बैठा लिया और दो थाल मुहरों के उसके आगे रख दिये। ऋणदत्त ने एक थाल तो विदेशी पंडित को दे दिया और दूसरा शहर के पण्डितोंको बांटदिया। उसकी ऐसी उदारता देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और जब रात्रि को वह अपने महलों में गया तो उसने ऋणदत्त की विजय का समाचार अपनी रानी को सुनाया और उसकी अत्यन्त प्रशंसा की; रानी ने कहा अपनी सुन्दर कन्या का विवाह उसके साथ कर दीजिये तो वह सुखी रहेगी। राजा ने रानी की बात स्वीकार करके प्रातःकाल ही सगाई का सामान एकत्रित किया और करमलम्भ ब्राह्मण के घर भेज दिया; उसमें बारह गाँवों का पट्टा, चार हीरे, पांच

सौ मुहरें और वस्त्राभूषण, इतना धन था। जब ऋणदत्त को सगाई का सामान मिला तो उसने उसे अपनी माता को दे दिया और अकस्मात ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। बेटे को मृतक देखकर माता रोने लगी; उसी समय ऋणदत्त का पिता भी बाहर से आगया और सगाई के धन की प्राप्ति पर बेटे की मृत्यु देखकर वह भी रुदन करनेलगा तथा नगर के और लोग भी दुःखी हुये। उधर राज कन्या ने ऋणदत्त की मृत्यु का समाचार सुनकर विचार किया कि जिस स्त्री का पति मर जावे उसका संसार में जीवित रहना व्यर्थ है, ऐसा निश्चय करके उसने अपने प्राण त्याग दिये। करमलम्भ और उसकी स्त्री भीपुत्रके वियोग से दुःखी हो तथा संसार को दुःख रूप जानकर अपना सर्वस्वदान करके भगवद्भजन स्मरण के लिये वन को चले गये। इस प्रकार से, हे तपस्वी! ऐसे ही जब लेना देना समाप्त हो जाता है उसी समय जीवों का वियोग हो जाता है, आत्मा का कभी वियोग नहीं होता। जन्म-मरण शरीरों का होता है; इस प्रकार पतिदेव ने हमारे को साक्षात्कार करा दिया है। आत्मा तो जन्म मरण से रहित है, सर्व का स्वरूप, अद्वितीय, अजर, अमर, और अखण्ड है; हे तपस्वी! इस विचार से पति के शरीर की मृत्यु सुनकर हमारे को शोक नहीं हुआ। ऐसा सुनकर तपस्वी ने कहा हे देवी! पिछले जन्म में ऋणदत्त और करमलंभ कौन थे और कैसे ऋण लिया, यह कथा मेरे को सुनाओ। राजकुमार की स्त्री बोलीः-

एक वैश्य था, वह अपने कुटुम्ब सहित तीर्थ यात्रा करता २ मथुरा पुरी के समीप आया और वनमें एक तपस्वी की कुटिया पर रात्रि को निवास किया। जब प्रातःकाल हुआ तो वह अपनी स्त्री से कहने लगा कि हमने बनारस जाना है, रास्ते में चोरों का भयहै, वहाँ बहुत से ठग सुने जाते हैं, इसलिये कुछ धन इस तपस्वी के पास धरोहर रखदेवें; स्त्री ने उत्तर दिया कि आपने बहुत अच्छा विचार किया है। तब उस वैश्य ने चार हीरे, पाँच सौ मोहरें और बारह गांव का पट्टा, इतना धन उस तपस्वी के पास धरोहर रख दिया और कहा कि मैं बनारस की

यात्रा करके वापिस आता हुआ यह धन आपसे लेता जाऊंगा; तपस्वी ने केवल परोपकार समझकर धन को रख लिया और अपनी शिष्या से कहा इस धन को अपनी कुटिया में सम्हाल कर रखले; उसनें रखलिया और वैश्य बनारस को चला गया। दैव योग से एक महीने के पश्चात् वह तपस्वी बीमार हो गया, तब उसने अपने विद्यार्थियों से कहा कि मेरा अन्त समय निकट आगया है अब वैश्य का धन कहाँ रखना चाहिये? उन्होंने उत्तर दिया कि आपके पास जो ऋषि विराजमान् है उसको दे दीजिये, वह मथुरा में किसी सेठ के पास रख देगा। तब तपस्वी ने सब धन शिष्या से लेकर ऋषि को दे दिया, उसने उसे मथुरा के एक सेठ के पास धरोहर रख दिया, पीछे तपस्वी का शरीर शान्त होगया। उधर वह वैश्य भी यात्रा करता हुआ सपरिवार काल वश होगया और मथुरा के सेठ सेठानी, तपस्वी की शिष्या, विद्यार्थी लोग और ऋषि, सबके सब समय पाकर मृत्यु को प्राप्त होगये। हे तपस्वी! दूसरे जन्म में वैश्य (जो बनारस का यात्री था) करमलंभ हुआ, मथुरा के सेठ सेठानी राजा रानी, शिष्या राजकन्या, तपस्वी ऋणदत्त तथा विद्यार्थी शहर के ब्राह्मण हुये और ऋषि विदेश का पण्डित हुआ जो हार गया था। इस प्रकार अपने २ कर्मानुसार सब का संयोग होकर फिर वियोग होजाता है, कर्मों की गति बड़ी विचित्र है, समझ में नहीं आती। तपस्वी—वह राजकन्या तथा ऋणदत्त दोनों मरकर कहां गये? स्त्री—राजकन्या मैं हूं और ऋणदत्त मेरे पति हैं। अब हम दोनों को निस्सन्देह पूर्णब्रह्म स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान हुआ है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप में अभेद हुए हैं, अब आगे हमारा जन्म नहीं होगा। तपस्वी धन्य २ करता हुआ राजकुमार की बहिन के पास गया और मनमें विचारा कि बहिन को भाई की मृत्यु सुनकर अवश्य मोह होगा उसकी परीक्षा के लिये उसने कहाः—

दो०—राज सुता सुन बात मम, करे जो दिलकूं शोक।
वीर विनास्यो बनें में, सिंह हरमें बोक ॥

उत्तर-दो०—बनमें मरते जीव बहु, रचे जो ईश अनन्त।
शोक करूं मैं कौन का, जाउ कुटी तुम सन्त ॥

तपस्वी ने कहा, बहिनों को भाई प्यारे होते हैं। हे देवी! तूने अपने भाई की मृत्युपर किस विचारसे शोक नहीं किया? वह बोली हे तपस्वी! सन्साररूपी बनमें ईश्वर रचित प्राणियोंका जन्म मरण रूप प्रवाह चला आता है अथवा जैसे समुद्र में वायु से अनन्त तरंग उत्पन्न होकर फिर लय होजाते हैं; तैसे परमात्मा रूपी समुद्र में माया रूपी वायु से अनन्त प्राण रूप तरंग उत्पन्न होकर लय होजाते हैं, सो सब झूठे हैं। शोक करना व्यर्थ है। अथवा जैसे किसान खेती बोकर फिर उसका पालन करके, छोटी बड़ी जैसी भी हो, काट लेता है; तैसे ही ईश्वर रूपी किसान अनन्त प्राणी रूप खेती पैदा करके पालन करता है और फिर अपनी इच्छा से काल रूपी दराँती द्वारा काट लेता है; छोटे बड़े सब काल रूपी दरांती से काटे जाते हैं, परमात्मा सबका मालिक है; जीव का शोक करना व्यर्थ है। हे तपस्वी! ऐसे विचार से मेरे को भाई के मरने का शोक नहीं हुआ। तपस्वी धन्य २ कहता हुआ राजकुमार की माता के पास गया मार्ग में विचारता जाता था कि माता को पुत्र बहुत प्यारा होता है, इस लिये उसको अवश्य मोह होगा; तब जाकर कुंवर की माता से कहा:-

दोहा—रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज।
हमने भोजन नहि कियो, ता मिरतक के काज॥
उत्तर-दोहा-एक बिरछ डालें घनीं, पंछी बैठे आय।
पौ फाटी पीली भई, इत उत चहुं दिशि जाय॥

तपस्वी-माताजी! ऐसे सुन्दर बेटे के मरने का तुमको कुछ भी शोक नहीं हुआ? तुम्हारा क्या विचार है? रानी-हे तपस्वी! जैसे एक वृक्ष के ऊपर रात्रि को पक्षी बैठ कर रात काट कर सवेरे चले जाते हैं। तैसे ही यह घर रूपी वृक्ष है तिसमें पक्षी रूपी सम्बन्धी इकट्ठे होकर अपनी अपनी आयु रूपी रात्रि में कर्म भोगकर अपने कर्मानुसार बिछुड़ जाते हैं:-

एक राजा का सुन्दर लड़का युवावस्थामें मृत्यु को प्राप्त हो गया। राजा कचहरी बन्द करके शोकातुर होकर मन्दिर में जा बैठा और

मुक़द्दमे वाले लोग दुःखी हो होकर वापिस जाने लगे। एक माई ने यह देख कर लोगों से कहा, मैं अभी राजा से कचहरी लगवाती हूं; तब वह राजा के पास जाकर कहने लगी हे राजन् ! आप मेरी एक प्रार्थना सुनें। मैं अपने भतीजे के विवाह पर जाते समय अपनी पड़ोसिन से भूषण मांगकर ले गई थी, कल मैं लौट कर आई हूं और वह पड़ोसिन अपने सब भूषण मेरे से ले गई है; अब मेरे को बहुत शोक हो रहा है कि वह क्यों ले गई है, और चिंता से मेरा मन दुःखी होरहा है। राजा ने कहा उसने अपनी अमानत लेनी थी सो लेली, इसलिये शोक करना तुम्हारी मूर्खता है, तेरे को अमानत वापिस दे देने की खुशी मनानी चाहिये; माई ने उत्तर दिया, यही हाल तुम्हारा है, तुमको बेटा परमात्मा ने अमानत (धरोहर) दिया था, अब उसने अपनी अमानत तेरे से वापिस लेली है; तू क्यों बेटे की मृत्यु का शोक करके कचहरी बन्द किये बैठा है ? ऐसा सुन कर राजा ने विचारा कि यह बात सच्ची है, क्योंकि सर्व राज समाज परमात्मा की अमानत है, जब चाहे तब वह इसे ले सकता है, मेरा तो संसार में कुछ भी नहीं है, मैं तो वृथा ही राज्य और बेटे का अहंकार करता था, यह ममता ही शोक का कारण है; ऐसा विचार कर राजा ममता जनित शोक से रहित हो गया और प्रसन्नता से कचहरी लगाई। ऐसा कहकर रानी बोली हे तपस्वी ! बेटा परमात्मा की अमानत था सो उसने लेलिया है, ऐसा विचार कर मुझे शोक नहीं हुआ; यह सुनकर तपस्वी धन्य २ कहता हुआ राजा के पास चला और रास्ते में विचारता जाता था कि उसको अवश्य ही मोह फुरेगा; राजा के पास जाकर बोलाः—

दो०—राजा मुख से राम कहु, पल पल जात घड़ी।
सुत खायो मृगराज ने, कुटिया लोथ पड़ी॥
राजा—दो०—तपिआ तप क्यों छाड़ियो, इहां पलक नहिं शोक।
वासा जगत सराइ का, सभी मुसाफ़िर लोक॥

तपस्वी—तुम्हारा सुन्दर, युवा और अति प्रिय पुत्र मृत्यु को प्राप्त होगया है, तुमने किस विचारसे शोक नहीं किया है ? राजा—हे तपस्वी !

धर्मशाला के यात्रियों के समान मिलाप है, स्वप्नवत् सम्बन्धियों का संयोग-वियोग है; इस पर इतिहास सुनो :—

एक सराय में तीसरे पहर एक ब्रह्मचारी आगया, उसके पीछे और भी यात्री धीरे-धीरे आने लगे, सब सराय भर गई; सवेरे धीरे-धीरे जाना आरम्भ होगया, पहर भर दिन चढ़े तक सब चले गये और ब्रह्मचारी जो पहिले आया था वही अकेला रह गया; यदि वह सराय खाली देख कर शोक करे तो व्यर्थ है। तैसे ही सराय के समान गृहस्थियों के घर हैं, सम्बन्धी रूप मुसाफ़िर सब इकट्ठे होते हैं; पहिले एक दो सम्बन्धी होते हैं, फिर पुत्र पौत्रादिक मुसाफ़िरों से घर भर जाता है, फिर माता पिता मुसाफ़िर जाना आरम्भ होते हैं; ऐसे सम्बन्धी रूप मुसाफ़िरों का संयोग वियोग होता रहता है। याते पुत्र का वियोग मुसाफ़िरोंवत् हुआ है, इसलिये हमारा शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि संसार के सब सम्बन्धी तथा पदार्थ स्वप्न या इन्द्रजालवत् मिथ्या हैं। अपना स्वरूप ब्रह्म अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, चेतन, स्वयम् प्रकाश है और नाम रूप सब कल्पित है; हे तपस्वी! ऐसे विचार से हमारे को शोक नहीं हुआ। ऐसा सुनकर वह तपस्वी धन्य-धन्य करता हुआ कुँवर के भाई के पास चला और रास्तेमें विचारता जाता था कि भाई को अवश्य मोह होगा। उसके पास आकर कहने लगा:-

दोहा—सुन हो राजकुमार तुम, अचरज की इक बात।
टूट्यो भुज तुव आज इक, हतेउ सिंह बन आत॥
उत्तर-दोहा—भाई भये अनन्त मम, कितने पीछे तात।
शोक करूं मैं कौन का, सुपने सम जग जात॥

तपस्वी ने कहा, "किस विचार करके तुमको शोक नहीं हुआ?" वह बोला—हे तपस्वी! पिछले जन्म में कितने भाई मैं छोड़ आया हूं, अथवा स्वप्न के समान जगत सब नाश होता जाता है; मिथ्या शरीरों का संयोग वियोग अवश्य होता है :—

जैसे एक आम का वृक्ष फलों से भरा हुआ था, जब ज़ोरसे आँधी चली तो आधे फल गिर पड़े और आधे पेड़ पर रह गये; तब उन गिरे

हुए फलों में से एक फल वियोग के दुःख से बोलाः—

दो०—फल गिरंता यों कहे, सुन तरुवर बनराइ ।
अबके बिछुड़े कब मिलें, करे न कोइ सहाइ॥
अग्गों तरुवर बोलिया, यह जग सब सराइ ।
संयोग बिछोड़ा होत है, करम न मेट्या जाइ ॥

तब एक यात्री फलोंकी यह दशा देखकर कहने लगा कि अब इनका मेल नहीं होगा, इन गिरे हुए फलों को जीव खालेंगे; ऐसे मोह करता हुआ वह शोक को प्राप्त हुआ । जैसे उस मुसाफ़िर का शोक करना व्यर्थ है तैसे मेरे को भाई का शोक करना भी व्यर्थ है, माया रूपी वृक्षके साथ अनन्त शरीररूपी फल लगे हैं, कर्म रूपी वायुसे कई गिरते और कई भ्रमते दीखते हैं । हे तपस्वी ! ऐसे विचार से मेरे को मोह तथा शोक नहीं हुआ । तपस्वी धन्य धन्य करता चला गया और विचारा कि उसके मित्र को अवश्य ही शोक होगा, इसलिये उसकी परीक्षा भी अवश्य करनी चाहिये । तब वह उसके मित्रके पास जाकर कहने लगाः—

दो०— मित्र तुम्हारो हतभयो, सुतसिंहिनि के हाथ ।
भयो अनर्थजु आजही, काँपत है मम गात ॥
उत्तर— मित्र मुआ सो भला हुआ, गयो मुक्ख में खास ।
हम तुम सबही जाहिंगे, सब जग काल गिरास ॥

तपस्वी—ऐसे प्यारे मित्रकी मृत्यु सुनकर तुम ने शोक नहीं किया, तुम्हारा प्रेम झूठा है । मित्र—हे तपस्वी ! यह सब जगत जो हम देखरहे हैं काल का ग्रास है, सब काल के मुख में हैं, कोई उससे नहीं बचेगा । हमारा मित्र तो ज्ञानवान् था, सो मुक्त हुआ है; शरीर का तो एक दिन अन्त होना ही था, हम भी उसको जा मिलेंगे । हे तपस्वी जी ! तुम शोक मत करो, हमारा मित्र सदाजीता है । इस पर एक उदाहरण सुनेंः—

एक सन्त शहर में भिक्षा लेने गये, वहां एक माई को चक्की से दाने पीसते देखकर रोने लगे; उनका रोना सुनकर लोग इकट्ठे होगये और पूछा सन्तजी ! क्यों रोते हो ? सन्त ने कहा हे भाई ! जैसे यह माई दाने पीस रही है तैसे ही भगवान् की काल रूपी चक्की बड़े जोर

से चल रही है, तिसमें जीवरूपी दाने पीसे जा रहे हैं—भाव—काल रूपी चक्की से सब मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। वह सब जीवों को समाप्त कर देगी, किसी को नहीं छोड़ेगी; इस कारण से मैं भयभीत होकर रोता हूं। इतने में सन्त के गुरुजी भी आगये, उन्होंने अपने शिष्य की दशा देखी और सब हाल जान कर कहा हे शिष्य! जैसे चक्की की कीली के साथ जो दाने लग जाते हैं वह बचजाते हैं तैसे ही जो जीव भगवान् की शरण में आजाते हैं वह बचजाते हैं; वा जैसे जो मछली जाल डालने वाले के पांव के पास आजाती है वह उसके जाल से बच जाती है; तैसे हे शिष्य! तू और मैं भगवान् की शरण में आये हुए हैं अर्थात् उपाधियों और उनके धर्मों को कल्पित जानकर लक्ष्यार्थ में अभेदता रूपी शरण ली है; इस वास्ते कल्पितकाल अपने चेतन स्वरूप की कुछ हानि नहीं कर सकता। जैसे कल्पित स्वप्न नर स्वप्नावी पुरुष की हानि नहीं करसकता, ऐसे ही कल्पित काल आत्मा की कुछ हानि नहीं कर सकता; इससे तू रुदन मत कर। तब सन्त का मन शान्त हुआ और गुरु के साथ अपने आश्रम को चला गया। हे तपस्वी! जड़ शरीर के नाश से आत्मा की कुछ हानि नहीं होती, क्योंकि आत्मा अजर अमर है; जिस पुरुष ने भगवान् की अभदेता रूप शरण ली है वह अमर हो जाता है। हमारी और हमारे मित्रकी सदा आत्म भगवान् में स्थिति है, इसलिये कल्पित काल हमारी हानि नहीं करसकता। यह सुनकर तपस्वी धन्य २ कहता हुआ अपने स्थान को चला और मन में विचारने लगा कि राजकुमार की परीक्षा के लिये उसे ऐसा भयानक वचन सुनाऊं कि जिसके सुनते ही मोह वश होकर रुदन करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़े। अपनी कुटिया पर आकर कुंवर से बोला:—

दो०—तपी कहे सुन कुंवर तू, राज घरहि का हाल।
अगिनि जरायो भवन को, सहित कुटुंब सब माल॥
उत्तर—कुंवर कह्यो सुन ऋषिजी, जो उपज्यो जग माहि।
निःसन्देह मैं जानिआ, काल अगनि मुख माहि॥

तपस्वी—हे कुंवर! तूने कुछ भी शोक नहीं किया ? तेरा कैसा

पत्थर हृदय है ? राज कुमार—हे तपस्वी ! शरीर सब नाश होजाने वाले हैं और जो चेतन आत्मा है उसका नाश कभी नहीं होता; इसलिये झूठे परिवार से मोह करना व्यर्थ है। जो पुरुष मोहमें फंसे हुए झूठे परिवार के लिये पाप और छल करते हैं वह पापी इस हीरे जैसे अमूल्य जन्म को गंवाकर चौरासी चक्कर में आकर जन्मते मरते हैं; और जो पुण्यात्मा पुरुष हैं वह निज धर्म पालन करने के लिये पुत्र, स्त्री, धन, आदि से मोह नहीं करते। जैसे हरिश्चन्द्र आदि राजा व अनेकों ही भक्त पुण्यपरायण होकर कुटुम्बका मोह छोड़कर धर्म का पालन करते रहे हैं, क्योंकि धन, शरीर, वाणी और बुद्धि की शक्ति परमात्मा ने जीवों को धर्म करने के लिये ही दी है, इस लिये जीवों को धर्म करना ही उचित है। हे तपस्वी ! हम तुम भी मोह का त्याग कर 'स्वधर्म' अर्थात् 'ब्रह्म' परायण होवें; इस झूठे कुटुम्बका संग ही न करें, क्योंकि यात्रियों के समान सम्बन्धियों का मिलाप हुआ था और अब वियोग होगया है; मैं क्या शोक करूं ? इस पर उदाहरण सुनोः—

एक बहुत बड़ी नदी थी जिस में यात्रियों से भरी हुई एक नौका चल रही थी; जल बहुत बढ़गया और वायु भी बहुत ज़ोर से चलने लगी, इस कारण नौका नदी के मध्य में आकर डूबने लगी। यात्रियों में से एक बली पुरुष नौका से निकलकर तैरता हुआ पार चलागया, पीछे शेष यात्रियों समेत नौका नदी में डूब गई। जो यात्री पहिले निकल गया था उसको उनका कुछ भी शोक न हुआ। हे तपस्वी ! ऐसे ही यह सम्बन्धी पिछले जन्म के अज्ञात् यात्री हैं जिनसे घर रूपी नौका धीरे धीरे भर गई और अब सन्सार समुद्र विषे कर्म रूपी वायु द्वारा काल रूपी गम्भीर जल में सबको लेकर डूब गई है, अर्थात् कुटुम्ब के नाश का अनुभव हुआ है। इस प्रकार यात्रियों के समान झूठे कुटुम्ब का नाश होने से मेरे को शोक नहीं हुआ क्योंकि मैं तो घर रूपी नौका से पहिले ही निकल आया हूं। मैंने ज्ञान के प्रभाव से ऐसे निश्चय किया हैः—

सीन समां है सभ दे सिर भारू, इथे कोई न रहिसी बाकी जी ॥
उदै अस्त लौं राज जिन्हांदा, सो भी थीसन खाकी जी ॥
काल कला कर बचत न कोई, ब्रह्मा विष्णु पिनाकी जी ॥
इक आनन्द राशी अज अविनाशी, हम रहि जाना बाकी जी ॥

इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:-

जो उपजिओ सो बिनसि है, परो आज के काल ।
नानक हरि गुन गाइले, छाडि सगल जंजाल ॥ [सलोक म० ६ पृ० १४२८]
पुनः-अवर मूए किआ सोग करीजै ॥ तउ कीजै जउ आपन जीजै ॥
मै न मरउ मरिबो संसारा ॥ अब मोहि मिलिओ है जीआवन हारा ॥
[गउड़ी कबीर पृ० ३२३]

दोहा-मोह महातम रूप को, गहन महातम आहि ।
मोहे पुरुष महातमा, जहविवेक रविनाहि ॥ (वैराग्यशतक)

इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं:-

दोहा-कर हमदर्दी बकरा, लड़े कसाई नाल ।
आखे मेरा वीर किउं, कुठां मन्दे हाल ॥
हस कर कहा कसाब ने, ऐ बकरे नादान ।
जे तू बड़ा चलाक हैं, रख ले अपनी जान ॥
वारी वारी लवांगा, सबदे कंन मरोड़ ।
अगां पिच्छा होइ पर, ना देवां इक छोड़ ॥

ऐसा सुनकर तपस्वी बोला:-

दोहा-धन धन तुम्हरा पिता है, धन्य तुम्हारा देश ।
धन्य तुम्हारा सतगुरू, जिन कीआ उपदेश ॥
क्या राजा क्या रङ्क है, क्या तपसी के मान ।
जिस पर प्रभु किरपा करे, सो मूरति भगवान ॥
निस्सन्देह मैं जानिआ, सब कुटुम्ब निरमोह ।
एह जो धारणा धारसी, सुखी होय नर वोह ॥

इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:-

गुरु लागा तब जाणीए, मिटे मोह तन ताप ।
हरख सोग दाझै नहीं तब हरि आपहि आप ॥ (सलोक कबीर० पृ० १३७४)

इसी आशय पर एक इतिहास श्रवण करें:-

छःवीं पातशाही श्रीगुरुहरिगोविन्द साहिबजी महाराज का, भाई वसावा

नाम का एक शिष्य बलख़ बुख़ारा विषे हुआ है। एक समय महाराजजी ने एक शिष्यके हाथ एक आज्ञा पत्र भेजा, जब उसके पास पहुँचा तब उसने आज्ञापत्र को लेकर सिर और आँखों से लगाया, फिर खोलकर पढ़ा; उसमें लिखाथा कि इराक़ देश से घोड़े ख़रीदकर ले आओ, भाई बसावा तुरन्त ही घोड़े ख़रीदनेको चला गया। पीछे उसका लड़का बहुत बीमार हो गया, उसकी स्त्री ने आदमी भेजा और उससे कहा, जाकर कहना कि तुम्हारा पुत्र बहुत बीमारहै, आकर मुख देखलो। वह आदमी तीसरी मंज़िल पर जाकर मिला और भाई बसावा को सारा हाल कह सुनाया, उत्तर में भाई जी ने जो सन्देशा दिया है सो संक्षेप से गुरु सिख वाड़ी से लिखते हैं:-

कहिआ बसावे सुणके अगों मैं मुड़ना हुण नाहीं ॥
पुत्र दौलत चीज न मेरी मेरी ममता नाहीं ॥
धन दौलत ते पुत्र गुरूदा मेरा नहीं सभ उसदा।
रहिजावै जिउं सतिगुरु भावै मेरा जीअ नहीं खुसदा ॥
जैसे करम लिखाय पुत ने जितनी उमर लिखाई।
उहो जिहे भोग भोग के जासी उठ सिधाई ॥
भागां वाला जनम है उसदा सिख सतगुरु का होया ॥
पाप करम दी उमरों पहिले जो निसचे विच मोया ॥
जे बचिआ ओह सेवक गुरुदा सेवा कार कमाऊ।
सफल करेगा जनम आपणा बहुड़ न जूनी आऊ ॥
घर विच बहुता दरब धरिआ बखश्या सतगुरुकेरा।
हुकम गुरूदा मेट न सकां यह निशचा है मेरा ॥
जाय अराक घोड़े लै आवां फिर आवां घर माहीं।
सिखणी ताईं वाक येह कहीओ पूरा सिदक निबाहीं ॥

तब उस आदमी ने घर लौटकर भाई बसावे का सन्देशा दिया, कुछ देर में लड़के की मृत्यु होगई; उसकी स्त्री ने गुरु और पति की आज्ञानुसार ईश्वर आज्ञा को माना, रोना पीटना न करते हुए लड़के का दाह संस्कार किया। यह सब समाचार आज्ञा पत्र लाने वाले शिष्य ने देखा और जाकर सद्‌गुरुदेव जी के आगे वर्णन किया।

सुण सतगुर तब चुप रहाइ फिर बोले येह बानीं।
धंन सिख धंन सिख पिआरे सिखी तों कुरबानीं॥
दम्पति रहु सुखी जग अन्दर दुःख न आऊ नेड़े।
दर्शन वाहिगुरु दा पाओ मिटें चौरासी फेरे॥

तातें सिद्ध हुआ कि जिन्होंने मोह का त्याग किया है उन पर सद्गुरुदेव की प्रसन्नता हुई है और जिन पर सद्गुरु की प्रसन्नता है उनपर ईश्वर की प्रसन्नता है। अब और सुनो :-

अलफ़ इस असार संसार अन्दर दाने ज़रा न चित्त लगान प्यारे।
इथे वांग परदेसिआं रात कटणी जिवें गुज़रदी करन गुज़रान प्यारे॥
मां पिओ ते भैण भरा जेहड़े सभ मतलबी यार तू जान प्यारे।
तेरा किसे दे नाल की देव मतलब तक्कीं आपणा नफ़ा नुकसान प्यारे॥

पुनः—जे ओड़क नूं छड्ड इथे जाणा फिर क्यों प्रीति लगाई हे।
फेर न होसी आवण इथे जे लख जतन कमाई हे॥
झूठा नेहुं ओड़क नूं टुटणा, कर पाछे पछताई हे॥
देवहरी कर प्रीत सचे सिउं फिर ना बिछुड़ जाई हे॥

पुनः- अथवा यहि चक्र संसार। महा मोह तहि प्रेरण हार।
ताको मूल अबोध विचार्यो। तत्त्व बोधकर बने निवार्यो॥

तत्त्व बोधसे मोह कैसे निवारण होता है, इसकी युक्ति श्रवणकरें:-

चौ०- सतसंग रूपी भट्ठी जानों। अंतःकरण देगबरा पछानों॥
सभ शरीर ही फूल कहीजै। पाणी प्रेम बीच पा दीजै॥१॥
दमादि साधन खामहि माखें। विवेक नाल को लाकर राखें॥
अगनि वैराग की खूब मचाओ। संशे विपर्जे काष्ट जलाओ॥२॥
शुध बुद्धी पात्र है भाई। सार वस्तु जहिं माहि समाई॥
सतचित आनन्द सारहिजानों। इसबिधि देह असत्य पछानों॥३॥
सार वस्तु को ग्रहण करीजे। ऐसे जान मोह तज दीजै॥
देह असत्य जान कर भाई। परोपकार में देउ लगाई॥४॥
सार से चहिये करना प्यार। वह तो अपना आप है यार॥
आतम स्थिति सुख है भारी। मोह तम सभी देत निवारी॥

भाव—जैसे फूल कोमलता, सुन्दरता तथा सुगन्धि इन तीन गुणों वाले होने से प्यारे लगते हैं। जब उनको लेकर अत्तार इत्र निकालते

हैं तो भट्ठी के ऊपर एक बड़ी देग को रख कर उसमें जल डालकर फूल डाल देते हैं; फिर देग का मुँह आटे या मिट्टी से बन्द कर देते हैं, लकड़ियों की अग्नि जलाते हैं। तब नाल द्वारा कई बार ऐसा करने से इत्र निकल कर बोतल में आ जाता है। इत्र निकल चुकने के उपरान्त फूलों में उपरोक्त तीनों गुण नहीं रहते, इसलिये फिर उन फूलों से प्यार नहीं रहता; फिर तो सार वस्तु बोतल में होने से बोतल ही प्यारी लगती है और असार फूलों को फेंक दिया जाता है। ताते सिद्ध हुआ कि सार वस्तु से ही प्यार है। इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि इस विचार से मोह को निवृत्त करे और सार वस्तु आत्मा (अपने आप) से प्यार करे।

॥ भजन ॥

धारणा—[है निर्मोह मित्र तेरा भारी, आरफ़ लोग आखदे]

गुरु नानक थे जग निरमोही, जिसकी कीरति घर घर होई।
पूजे चरन दहदिस लोई, आरफ़ लोग आखदे ॥है निरमोह०॥
ऐ मन देख गुरु दसमेश, मोह दी लगी नहीं जिस लेश।
महिमा जिसदी देस बिदेस, आरफ़ लोग आखदे ॥है निरमोह० ॥
निर मोह राजा जनक विदेही, घर में रहते बिना सनेही।
मूल सुखों का मानें एही, आरफ़ लोग आखदे ॥ है निरमोह० ॥
जड़ भरत निर मोहता धारी, फांसी कटने को यह भारी।
आसुरी फ़ौज मार सब डारी, आरफ़ लोग आखदे ॥ है निरमोह०॥
छोटी उमरे ध्रुव प्रह्लाद, तजिआ मोह हुए आज़ाद।
दुनियां नाम जपे करे याद, आरफ़ लोग आखदे ॥ है निरमोह० ॥
नामा कबीर त्रिलोचन साध, जिन्हाँ काटी मोह उपाध।
हर दम तेरा करें अराध, आरफ़ लोग आखदे ॥ है निरमोह० ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



अहंकार

प्रश्नः—भगवन् जी ! मोह की निवृत्ति का प्रसंग सुन कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ है। अब कृपया अहंकार का प्रसंग वर्णन करें ॥

उत्तरः— हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो । गुरुप्रमाणः—

हे जन्म मरण मूलं अहंकारं पापात्मा ॥ मित्रं तजंति शत्रं
द्रड़ंति अनिक माया विस्तीरणहि ॥ आवंत जावंत थकंत
जीआ दुख सुख बहु भोगणह ॥ भ्रम भयान उद्यान रमणं महा
बिकट असाध रोगणह ॥ वैद्यंपार ब्रह्म परमेस्वर आराधि नानक
हरि हरि हरे ॥ (सलोक सहसकृती म० ५ पृ० १३५८)

भावार्थ—गुरुजी कहते हैं हे पाप रूप अहंकार ! जन्म मरण का मूल (कारण) तू ही है यानी तेरे बिना दूसरा जन्म देने वाला कोई नहीं। जो प्राणी तेरा संग करते हैं उनही को तू संसार गढ़े में गिराता है। जैसे बीज में ही तना, पत्र, कांटे, शाखाएँ, फूल, फल, विस्तार, सीधा, टेढ़ा पना सब होते हैं; जल देने से बीज द्वारा अंकुर उत्पन्न होता है, तब सभी क्रम से उत्पन्न होकर विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं। तैसे अहंकार रूपी बीज है, शुभाशुभ कर्म रूपी जल से ममता रूपी अंकुर उत्पन्न होकर बढ़ता है; इस जन्म रूपी वृक्ष के चौरासी लाख योनि रूपी तने हैं, नाना प्रकार के सुख दुःख रूपी पत्र हैं, राग द्वेष रूपी काँटे हैं, स्त्री पुत्र रूपी शाखें हैं, ऊंच नीच योनि रूपी फूल हैं, नर्क स्वर्ग रूपी फल हैं; अनेक जन्मों में घूमना इसका टेढ़ा पना है, कुटुम्बियों में आसक्ति रूपी रस्से हैं और वासना रूपी जड़ें हैं। ऐसे विस्तार को प्राप्त हुआ शरीर रूपी वृक्ष प्रारब्ध रूपी पवन का हिलाया

हुआ बड़े कष्ट को प्राप्त होता है। पुनः तू कैसा है? "मित्रं तजंत शत्रं दृढ़न्त" कहिये मित्र का त्याग करवा देता है और शत्रुओं विषे स्नेह करा देता है–भाव–जो परमेश्वर सर्व का मित्र है तिसका तू त्याग करवा देता है और विषय भोग आदि जो इस जीव के शत्रु हैं तिन विषे दृढ़ प्रीति करा देता है; व दैवी गुण जो इस जीव के मित्र हैं तिन का तू त्याग करा देता है और आसुरी गुण जो शत्रु हैं तिन विषे मन की दृढ़ता करवा देता है, और अनेक प्रकार से जो माया की ममता है तिसका विस्तार करा देता है। ऐसे अहङ्कार रूपी राहुकर ग्रसे हुए जीव जन्म मरण के दुःखों को भोगते हुए थकित होरहे हैं तथा अनेक प्रकार के दुःखों को पड़े भोगते हैं, किंचित् मात्र भी चैन को नहीं प्राप्त होते। पुनः यह अहङ्कार कैसा है, जिसके प्रेरे हुए जीव भ्रमको प्राप्त होकर विषयों रूपी वन में भटकते फिरते हैं और भ्रम रूपी भय को देने हारा जो संसार रूपी उद्यान है तिसमें अहङ्कार रमण कराता है। फिर कैसा है? 'महा बिकट' कहिये भयानक है, 'असाध्य रोगएह' यानी असाध्य रोग है, 'वैद्यं पारब्रह्म परमेश्वर' अर्थात् हे अहङ्कार! तेरे नाश करनेको वैद्य केवल पारब्रह्म परमेश्वर है और हरिनाम तेरी औषधि है; इसलिये जो पुरुष तिस वैद्य की शरण को प्राप्त होकर तिस दीनबन्धु के नाम रूपी औषधि संयम सहित सेवन करते हैं उनके अन्तःकरण में तेरा नाश होजाता है और जो ऐसा नहीं करते वह ही जन्म मरण रूपी दुःखों को प्राप्त होते हैं॥

जो पुरुष राज्य को पाकर अहङ्कार करते हैं वह श्वान योनि को प्राप्त होकर दुःख उठाते हैं, इस पर गुरुजी कथन करते हैं:–

जिसके अंतरि राज अभिमानु॥ सो नरक पाती होवत सुआनु॥

(गउड़ी सुख० म० ५ पृ० २७८)

एक राजा से रात्रि में स्वप्न विषे एक प्रकाश रूप मूर्ति ने कहा–हे राजन्! तू अपवित्र है, सन्तोंकी सेवा करके पवित्र हो। जाग्रत होनेपर सवेरे राजा ने मन्त्री से स्वप्न का वर्णन किया और कहा अब मैं सन्तों

की सेवा करके पवित्र होना चाहता हूं। मन्त्री–हे राजन्! बाहर जंगल में एक महात्मा रहते हैं, आप जाकर उनकी सेवा करें। राजा जंगल में उन महात्मा के पास गया और हाथ जोड़कर विनती करी हे भगवन्! कृपा करके कोई सेवा की आज्ञा देवें। महात्मा जी बोले, हमारे पास केवल एक सेवा है जो चार बजे सवेरे हम नदी के जल से स्नान करके आत्म चिंतन करते हैं, परन्तु नदी यहां से बहुत दूर है; इसलिये यदि चार बजे जल लाने की सेवा कर सको तो करो। राजा–मुझे यह सेवा स्वीकार है। महात्मा–तो हम यह संकल्प दूर कर देवें ? राजा–आप निश्चिन्त रहें, मैं प्रतिदिन समय पर जल ले आया करूंगा। ऐसे कह कर राजा चला गया और दो महीने तक ठीक समय पर नदी से जल लेकर पहुँचता रहा ॥

एक दिन ठण्डी वायु चल रहीथी, राजा को आलस्य ने घेर लिया, साढ़े चार बजे तक जल लेकर न आया। महात्मा सोचने लगे अभी तक जल नहीं आया, साधु को अपनी क्रिया आप कर लेनी चाहिये, किसी के आधीन होना ठीक नहीं; जैसे गुरुजी कहते हैं:–

आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ॥ (आसा दी वार पृ० ४७४)

देखो, राजा के भरोसे पर रहने से आज हमारे नित्य नियम में बहुत बाधा हुई, ऐसा विचार कर महात्मा स्नान करने के लिये नदी पर जाने लगे; मार्ग में आता हुआ राजा भी मिल गया। महात्मा को देख कर राजा ने कहा हे भगवन्! आज ठण्डी वायु के कारण आलस्य आ गया था, इसलिये देरी होगई है; कृपा करके क्षमा करें। ऐसा सुनकर महात्मा असन्तुष्ट हुये और कहा तुमने हमारे नित्य नियम में आज बहुत बाधा डाली है। तब राजा राज्य-मद में आकर बोला, " देखो, मैंने इतने समय तक जो आपकी सेवा की है उसपर कुछ भी ध्यान न देते हुये एक दिन जल लाने में विलम्ब होने पर आप असन्तुष्ट होगये हैं, आपने इतना विचार भी नहीं किया कि मैं राजा हूं, कुछ तो मेरा मान रखते; मैं राजा होकर आपके लिये जल लाता रहा और इस

का फल मुझे यह मिला।" ऐसा कहकर जब वह लौटने लगा तो मार्ग में एक बड़ा सुन्दर बँगला बना हुआ देखा, उसके बराम्दों में मेज़ों पर अनेक प्रकार की मिठाई, फल, इत्यादि तश्तरियों में रक्खे हुये थे; वहां पर मनुष्य कोई नहीं था, केवल एक कुत्ता द्वार पर बैठा हुआ था। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि आते समय वहां कुछ भी नहीं देखा था। अन्तर्यामी ने इस कौतुक द्वारा राजा को सीधे मार्ग पर लाना था, जब वह उसके पास होकर निकला तब कुत्ता बोला हे राजन्! अपना कुछ हाल सुनाओ। राजा—पहिले तू सुना, तू कौन है? कुत्ता—एक समय मैं चक्रवर्ती राजा था, महात्माकी सेवा किया करता था; एक दिन किसी कारणवश ग्लानि हुई तब अन्तर्यामी ने आकाशवाणी द्वारा आज्ञा दी कि तुम सौ जन्म कुत्ते के पाकर फिर चाण्डालके घर जन्म लो, क्योंकि तुमने साधु सेवा अंगीकार करके त्याग दी है। राजा—मेरा भी यही हाल हुआ है। ऐसा कहकर उसने सब समाचार सुनाया। कुत्ता—हे राजन्! यदि तू अपना भला चाहता है तो महात्मा से क्षमा मांग नहीं तो मेरे सदृश तेरी भी दशा होगी। ऐसा सुनकर राजा भयभीत हुआ और महात्माके पास जाकर क्षमा के लिये प्रार्थना की उन्होंने क्षमा कर दिया क्योंकि महात्मा दयालु होते हैं। जब दूसरे दिन जल लाने के लिये घड़ा लेकर चला तब मन में ग्लानि करता जाता था, अन्तर्यामी ने विचारा अभी इसका अहंकार दूर नहीं हुआ; तब उसी घड़े द्वारा आकाशवाणी हुई, "हे राजन्! तू किस लिये इतना अहंकार करता है? तेरा तो एक कौड़ी भी मोल नहीं। देख, मैंने कितने दुःख उठाये हैं—पहिले मैं मिट्टी रूप में था, कुम्हार खोद कर ले गया, उसने कूट कर जल मिलाया, फिर चक्र पर चढ़ा कर मुझे घड़े का नाम रूप दिया, फिर आवे में रह कर मैंने अग्नि का ताप सहन किया, तब मेरा चार पैसे मूल्य पड़ा; परन्तु तू न तो आत्म चिन्तन कर रहा है और ना ही साधु सेवा, इसलिये तेरी क़ीमत एक कौड़ी भी नहीं।" ऐसा सुनकर राजा का अहङ्कार निवृत्त हुआ॥

जो कोई धन और पृथ्वी को पाकर अहंकार करता है वह मूर्ख अन्धा है। इस पर गुरु जी कथन करते हैं :—

धन भूमि का जो करै गुमान । सोमूरखु अंधाअज्ञान [गउ० सुख० म०५ पृ० २७८]

एक देहली के साहूकार ने महात्मा को बड़े प्रेम से भोजन कराया और फिर अपनी विभूति दिखाने लगा—यह मेरे मकान हैं, यह मेरे कारखाने हैं, इत्यादि। महात्माने विचारा इसको अहंकार की बीमारी है, परन्तु इसने हमारी सेवा की है, इसलिये इसका यह रोग दूर करना चाहिये, नहीं तो इसे जन्म-मरण के दुःखों की प्राप्ति होगी। यह विचार कर महात्मा ने एक युक्ति सोची, देखा कि साहूकार का लड़का भारत-वर्ष का चित्र देख रहा है; महात्मा साहूकार को साथ लिए हुये वहाँ जाकर खड़े हो गये और लड़के से पूछने लगे, इसमें दिल्ली कहाँ है? लड़के ने जिस स्थान पर दिल्ली लिखी हुई थी उस पर हाथ रक्खा, महात्मा ने पूछा इसमें तुम्हारा कपड़े का मिल कहाँ है? लड़के ने कहा यहाँ तो दिल्ली का ही निशान मात्र है, हमारे मिल को यहाँ कौन जानता है? महात्मा ने कहा, "सेठ जी! तुम्हें किस बात का अहंकार है? एक से एक बढ़कर साहूकार पड़े हैं, भगवान् को अहंकार अच्छा नहीं लगता; इसलिये इसका त्याग करके नम्रता को धारण करो और सब कुछ परमेश्वर का जानकर साधु, ब्राह्मण तथा अतिथि की भली प्रकार सेवा करो, जिससे अन्तःकरण की शुद्धि होवे। जो धन, सेना, बल, आदि किसी बात का अहंकार करता है उसके लिये गुरु जी कथन करते हैं :—

धनवंता होइ कर गरबावै। तृण समानि कछु संग न जावै ॥
बहु लसकर मानुख ऊपरि करे आस। पल भीतरि ता का होइ बिनास ॥
सभते आपि जानै बलवंतु। खिनमहि होइ जाइ भसमंतु ॥
किसै न बदै आपि अहंकारी। धरम रांइ तिसु करैखुआरी ॥ (गउ० सुख० पृ०२७८)

ऐसे सुनकर साहूकार का अहङ्कार दूर हो गया और महात्मा की आज्ञानुसार सब कुछ परमात्मा का जान कर शुभ कर्म करने लगा। इसी आशय पर एक महात्मा लिखते हैं :—

कवित्त– सबतों वडेरा रोग हैगा अहंकार संदा,
सतगुर बाणी विच आप फुरमावंदे ।
सबद इलाज इहदा दसदे ने गुरु आप,
कमावंदे ने जेहड़े सोई जग तर जावंदे ॥
रखदे ने दिल विच जिहड़े मग़रूरी सदा,
जनम मरन विच सदा दुख पावंदे ।
तांते अहंकार संदा करो ना प्यार दिल,
त्यागया भगत जिन्हां सदा सुख पावंदे ॥

इसी पर गुरु जी कथन करते हैं:–

हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ।
किरपा करै जि आपणी ता गुरका सबदु कमाहि ॥ (आसा दी वार पृ०४६६)
पुनः–जजा जानै हउ कछु हुआ ॥ बाधिओ जिउ नलिनी भ्रमि सूआ ॥
जउ जानै हउ भगत ज्ञानी ॥ आगै ठाकुरि तिलु नही मानी ॥
जउ जानै मै कथनी करता ॥ विआपारी बसुधा जिउ फिरता ॥
[गउ० बा० अ० म० ५ पृ० २५५]

भाव–अहंकारी पुरुष को ही यम दण्ड सहन करना पड़ता है। जिसने खुदी को दूर कर दिया है वह तो खुदा का ही रूप है। इस पर लिखा है :—

दो०—यम के दण्ड को पाइ सु, जो उर खुदी बसाय ।
खुदी तिआगै पुरुष जो, तिसको जान खुदाय ॥
जिसके उर में है खुदी, यम दण्ड तिसको होइ ।
अपनी खुदी मिटाइजो, ताको दण्ड न कोइ ॥

एक महात्मा कहीं जारहे थे और एक चेला भी उनके साथ था, चेले ने गुरुसे कहा हे भगवन् ! कृपा करके कुछ उपदेश करो; गुरु ने कहा हे प्यारे ! अपनी खुदी (अहंकार) दूर करदे । अर्थात् कुछ बनना नहीं, क्योंकि ऐसे कहा है:–

मिटादे अपनी हस्ती को अगर कुछ मर्तबा चाहे ।
कि दाना ख़ाक में मिलकर गुले गुलज़ार होता है ॥

इस प्रकार उपदेश करते हुए चलते २ एक शहर में पहुँचे, वहां मधूकड़ी करके भोजन किया और आगे चले; शहर के बाहर कुछ दूर

पर एक बड़ा सुन्दर बाग़ीचा मिला, विचार किया यहाँ विश्राम करलेवें; जब अन्दर गये तो क्या देखते हैं कि एक सुन्दर बंगला बना हुआ है जिसके कमरों में पलंग बिछे हुए हैं, एक कमरे में गुरु जाके सो रहे और एक कमरे में चेला। कुछ देर पीछे जब राजा के आने का समय हुआ तो पहिले कुछ सिपाही आये, जिस कमरे में चेला सोया हुआ था उसमें गये और देख कर आश्चर्य करने लगे; उसको उठा कर पूछा, "तुम कौन हो ?" उसने कहा, "साधु हूं।" तब सिपाहियों ने पांच सात चाबुक ज़ोर से मारे और कहा, तुम बड़े मूर्ख हो, तुमको पता नहीं कि यह राजा की कोठी है ? इस प्रकार कह कर और धक्के मार कर बाहर निकाल दिया। फिर दूसरे कमरेमें गये जहां गुरु सोये हुऐ थे; उनको भी उठाकर पूछा तुम कौन हो ? वह हंसने लगे और कुछ न बोले, दो चार वार पूछने पर भी न बोले और हंसते ही रहे तो उन सिपाहियों में से एक ने कहा यह कोई महात्मा हैं , इन से कुछ न कहना ; तब उन्होंने हाथसे पकड़ कर बाग़ से बाहर कर दिया। जब गुरु चेला दोनों इकट्ठे हुए तो चेलेने कहा मुझे बहुत मार पड़ी है, गुरुजी ने पूछा क्यों ? चेला बोला उन्होंने मुझे उठा कर पूछा तुम कौन हो ? मैंने कहा साधु हूं तो उन्होंने मुझे मारा और धक्के देकर बाहर निकाल दिया। तब गुरुजी असंतुष्ट होकर कहने लगे, "तुमको हमने उपदेश किया था कि कुछ बनना नहीं; हमारे उपदेश को तुमने नहीं माना, तुम साधु बने, इसलिये मार खाई; हम कुछ नहीं बने तो उन्होंने हमें कुछ नहीं कहा।" तातें जो कोई कुछ बनता है सो मार खाता है। इस पर गुरुजी कथन करते हैं।

जिहि प्रानी हउ मै तजी करता राम पछान ॥
कहु नानक वह मुकति नर इह मन साची मान ॥ (सलोक म० ९ पृ० १४२७)

पुनः-कोटि करम करै हउ धारे। स्रम पावै सगले बिरथारे ॥ (गउड़ी सु०म०५ पृ०२७८)

भाव-जैसे राख में डाली हुई आहुति निष्फल जाती है, तैसे ही अहंकार सहित किये हुए सम्पूर्ण कर्म व्यर्थ होते हैं, उनसे श्रम मात्र ही

मिलता है इसी आशय पर महात्मा लिखते हैं:—

की बुनिआद है बंदिआ तेरी, तू किउं नहिं गल सुणदा ।
सै रुखां नूं नाश करेंदा, की कतरा है घुणदा ॥
जिथे कतरा खुदी दा होंदा, नास करे लख गुणदा ।
खुदी सुलेमान पैगम्बर कीती, गलीआं दे कख चुणदा ॥

भाव—हरि परमात्मा को अहङ्कार अच्छा नहीं लगता, इस बात को सब वेद, शास्त्र, पुकार-पुकार कर कह रहे हैं, अहंकारियों के अहंकार को भगवान् दूर कर देता है; इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:—

हरिजीउ अहङ्कार न भावई वेद कूकि सुणावहि ॥ अहङ्कारि मुए
सो विगती गए मरि जनमहि फिरि आवहि ॥ (मारूवार म० ३ पृ० १०८६)

एक राजाने अपने पुरोहित के आगे पाँच प्रश्न किये :—

(१) परमात्मा से पहिले कौन था ? (२) परमात्मा रहता कहां है ? (३) परमात्मा का मुँह किस तरफ़ है ? (४) परमात्मा क्या काम करता है ? (५) परमात्मा क्या खाता है ?

पंडित ने कहा कि पन्द्रह दिन का समय मिलना चाहिये, राजा ने कहा "अच्छा।" इसप्रकार समय लेकर पुरोहित घर आगया और चिंता में रहने लगा, कुछ दिन बीतने पर उसकी लड़की ने चिन्ता का कारण पूछा, उसने सब समाचार कह सुनाया। लड़की ने कहा, आप चिन्ता न करें और राजा साहब से जाकर कह देवें कि आपके प्रश्नों का उत्तर मेरी लड़की देगी; प्रोहित ने राजा से जाकर कह दिया, उसने कहा बहुत अच्छी बात है। जो दिन नियत था उसदिन प्रोहित अपनी लड़की को लेकर राज सभा में गया, राजा ने बड़े सत्कार से आसन पर बैठाया; लड़की बोली हे राजन् ! आप अपने प्रश्न करो। राजा ने पूछा (१) परमात्मा से पहले कौन था ? लड़की ने दो पैसे वाला एक बालोपदेश मँगवाया और उसे हाथ में लेकर पूछा हे राजन् ! 'अ' से पहले कौन अक्षर है ? राजा बोला कोई नहीं। लड़की बोली, ऐसे ही परमात्मा से पहले कोई नहीं, सबसे पहले एक परमात्मा ही है :—

आदि सचु जुगादि सचु ! है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ (जपुजी पृ०१)

(२) राजा ने दूसरा प्रश्न पूछा, 'परमात्मा कहाँ रहता है ?' लड़की ने दो पैसे का दूध मँगवा कर पूछा हे राजन्! इसमें घी किस जगह है ? राजा बोला, घी तो इसके कण-कण में रमा हुआ है। लड़की बोली ऐसे ही परमात्मा कण-कण में व्यापक है, और जैसे दूध में घी होते हुए भी बिना मंथन किये न तो प्राप्त होता है और न उपयोग में आता है तैसे ही परमात्मा विचार रूपी मंथन से जाना जाता है तब सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। इसपर गुरुजी कथन करते हैं:-

सगल बनसपति महि बैसंतरु सगल दूध महि घीआ ॥
ऊच नीच महि जोति समानी घटि घटि माधउ जीआ ॥१॥
संतहु घटि घटि रहिआ समाहिओ ॥ पूरन पूरि रहिओ
सरब महि जलि थलि रमईआ आहिओ ॥१॥ रहाउ ॥ गुण
निधान नानकु जसु गावै सतिगुरु भरम चुकाइओ ॥ सरब
निवासी सदा अलेपा सभ महि रहिआ समाइओ ॥२।१॥२९॥

(सोरठ म० ५ पृ० ६१७)

(३) पुनः राजा ने तीसरा प्रश्न किया कि परमात्मा का मुख किस ओर है ? लड़की ने दो पैसे की लकड़ी मंगवा कर आग जलाई और पूछा हे राजन्! आग का मुख किस ओर है ? राजा ने कहा, इसका प्रकाश तो दशों दिशाओं में है; लड़की बोली, ऐसे ही परमात्मा का मुख यानी ज्योति भी दशों दिशाओं में पूर्ण है :-

सभ महि जोति जोति है सोइ ॥ तिसकै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुरु साखी जोति परगटु होइ ॥ (धना० म० १ पृ० ६६३)

(४) पुनः राजा ने कहा कि परमात्मा क्या करता है ? लड़की बोली हे राजन्! मैं आपको तीन प्रश्नों का उत्तर दे चुकी हूं, शास्त्र ऐसे कहता है कि जो प्रश्नों का उत्तर दे वह गुरु के तुल्य होता है; इसलिये शेष दो प्रश्न तू शिष्य रूपसे नीचे खड़ा होकर पूछ और मुझे सिंहासन पर बैठा, तब उत्तर दूंगी। राजा ने स्वीकार किया, आप राज सिंहासन से नीचे उतर आया और लड़की को उस पर बैठा दिया; तब चौथा प्रश्न किया। लड़की ने कहा, परमात्मा नीचे से ऊंचा और

ऊंचे से नीचा क्षणमात्र में कर देता है, जैसा कि अभी कर दिया है। इसी आशय पर कबीर जी लिखते हैं :—

राजा स्रम मिति नही जानी तेरी। तेरे संतन की हउ चेरी ॥१॥ रहाउ ॥ हसतो जाइ सु रोवतु आवै रोवतु जाइ सु हसै ॥ बसतो होइ होइ सो ऊजर ऊजर होइ सु बसै ॥१॥ जल ते थल करि थल ते कूआ कूप ते मेरु करावै ॥ धरती ते आकास चढ़ावै चढ़े आकास गिरावै ॥२॥ भेखारी ते राजु करावै राजा ते भेखारी ॥ खल मूरख ते पंडितु करिबो पण्डित ते मुगधारी ॥ ३ ॥ नारी ते जो पुरखु करावै पुरखन ते जो नारी ॥ कहु कबीर साधू को प्रीतमु तिसु मूरति बलिहारी ॥४। (सारंग कबीर पृ० १२५२)

(५) तब राजा ने पांचवां प्रश्न किया, 'परमात्मा क्या खाता है ?' लड़की बोली, परमात्मा अहंकारी का अहंकार खाता है। जिस समय अन्तर्यामी ने सृष्टि की उत्पत्ति की तो सब चीज़ों को बांटते-बांटते दो चीज़ें बचीं—एक गरीबी, दूसरा अहंकार; तब अन्तर्यामी ने कहा, जो गरीबी को धारण करेगा उसकी तो रक्षा करूंगा और जो अहंकार को धारण करेगा उसको समूल नष्ट करदूंगा। गुरुजी कथन करते हैं:—

हउ मै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ ॥ (वडहंसु म० ३ पृ०५६०)

पुनः—चौ०—जैसे प्रकाश तमहि नसावै। तैसे हरि हंकार कु खावै ॥
तातें तुम हंकार निवारो। नम्रतादिक गुणों को धारो ॥
शुभ गुणों को धारो जबही। मोक्ष द्वार ह्वै प्रापत तबही ॥
ज्ञानसु निजस्वरूप जब होवै। जनम मरण सगले दुखखोवै ॥

गुरु प्रमाणः— तीरथ बरत अरु दान करि, मनमैं धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि, जिउ कुंचर इसनान ॥ [श्लोक म० ६ पृ० १४२७]

तातें सिद्ध हुआ कि जैसे हाथी स्नान करके फिर अपने ऊपर मिट्टी डाल लेता है तैसे ही यह पुरुष अहङ्कार करके तीर्थ, व्रत, दानादि का फल निष्फल गँवा देता है; इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि किसी वस्तु का अहंकार न करे, और सब कुछ परमात्मा का ही जाने।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



अहंकार की निवृत्ति

प्रश्नः—हे भगवन् ! अहंकार का प्रसंग सुनकर हमारा चित्त बड़ा भयभीत हुआ है, कृपा कर के अब आप जन्म मरण के बीज अहंकार की निवृत्ति का उपाय वर्णन करें ॥

उत्तरः—हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो । इसकी निवृत्ति का उपाय शास्त्रकारों ने नम्रता वर्णन करी है । इस पर गुरु प्रमाणः—

झूठै मानु कहा करै जगु सुपने जिउजान ।
इन मैं कछु तेरो नही, नानक कहिओ बखान ॥ [श्लोक म० ९ पृ१४२८]

पुनः—जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार ।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार ॥ (श्लोक म०९पृ०१४२७)

पुनः—करि किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै ।
नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै ॥ [गउ० सुख० म०५ पृ २७८]

श्री गुरु अर्जुन देवजी से दातूजी ने पूछा कि आपने इतना लम्बा दाढ़ा क्यों रक्खा है ? महाराज जी ने कहा कि आप जैसे सन्तों के चरण झाड़ने के लिये, उन्होंने कहा कि ऐसी नम्रता धारण करने से ही तुमने हमारी गुरुगद्दी लेली है; महाराज जी बोले कि हमको सद्गुरुदेव की आज्ञा है कि नम्रता धारण करोः—

पखा फेरी पाणी ढोवांजो देवहि सोखाई ॥५॥ नानकु गरीबु ढहि
पइआ दुआरै हरि मेलि लैहु वडिआई ॥ ६ । अखी काढि
धरी चरणा तलि सभ धरती फिरि मत पाई ॥ ७ ॥ जे पासि
बहालहि ता तुझहि अराधी जे मारि कढहि भी धिआई ॥ ८ ॥
[राग सूही म० ४ अष्ट पदीआ पृ० ७५७]

सो हमने सद्गुरुदेव जी की आज्ञा पालन कर के आगे संगतों

को ऐसा ही उपदेश किया है :-

जो दीसै गुरु सिखड़ा तिसु निवि निवि लागउ पाइ जीउ ॥ (सूही म० ५ पृ० ७६३)

पुनः- अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे ॥ नानक दासु इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे ॥ (गउड़ी पूरबी म० ५ पृ० १३)

इस विषय पर मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी महाराज जब वन में भरद्वाज जी के आश्रम पर गये तो नम्रता को धारण करके सन्तों के आगे नमस्कार करी है। प्रमाण रामायण अयोध्याकाण्ड:-

चौ०- यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दशरथ सुवन सुहाये ॥
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू ॥
देहिं अशीष परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई ॥

* * * * * *

मुनि रघुवीर परस्पर नवहीं। वचन अगोचर सुख अनुभवहीं ॥

भगवान् राम रात्रि को भरद्वाजजी के आश्रम में रहकर प्रातःकाल प्रेम पूर्वक नम्रता युक्त मुनीश्वर से बोले हे स्वामिन्! हम किस मार्ग पर जावें? तब मुनीश्वर ने अपने चार शिष्य साथ दिये:-

चौ०—राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। कहहु नाथ हम केहि मगु जाहीं ॥
मुनि बटु चारि संग तब दीने। जिन बहु जन्म सुकृत बड़ कीने ॥
करि प्रणाम मुनि आशिष पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥

ऐसे ही भगवान् श्री कृष्ण नम्रता को धारण कर पाण्डवों के यज्ञ विषे इतर जीवों को शिक्षा देने के लिये ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मणों के चरण धोने तथा जूठी पत्तलें उठाने की सेवा आप करते भए।

इस पर गुरु जी भी कथन करते हैं :-

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥ (आसा दीवार म० १ पृ० ४७४)

भाव-नम्र होने से ही सब गुण और बड़ाई प्राप्त होती है। जैसे एक महात्मा लिखते हैं :-

घघा आखदा घल्लिआ रब्ब तैनूं, रख बंदगी नाल प्यार बन्दे ॥
तैनूं हुकम अकाल दा धुरों मिलिआ, नींवां होइ के उमर गुज़ार बन्दे ॥
नाम जपदिआं मुकति हो जाय तेरी, अठे पहर न नामनूं टार बन्दे ॥
बिरती कैमकर सबद दी धारनां में, टुट्टी जोड़लै प्रेम दी तार बन्दे ॥

इको नूर है सभ दे विच भरिआ, इको रूप सभ शत्रु ते यार बन्दे ॥
ऐ पर फ़रक़ है भगत संसारियां दा, राह वखरा होइ निहार बन्दे ॥
लोक वडे कहाउण नूं चाहन सारे, नीवां होवणां बन्ह करार बन्दे ॥
एहनां वडिआं अंत खुआर होणां, नीवां समझ अख़ीर सरदार बन्दे ॥
मिले माण निमाणयां बन्दिआंनूं, पैंदी उच्यां ताईं है मार बन्दे ॥
नीवें होण वाले कई लख तर गए, ऊंचे डुब जांदे विचकार बन्दे ॥
नीवें गुणां दी खाण तू समझ लैणे, दसां नाल परमाण विचार बन्दे ॥
नीवां अते छोटा होके माण मिलदा, ज़रा समझ होके हुशियार बन्दे ॥
होजा दूज दे चन्द्रमा वांग छोटा, सारी हिंद करसी नमस्कार बन्दे ॥
चीची हथ दी वांग तू होय छोटा, मुंदरी पाउण दा मान चितार बन्दे ॥
मोती वांग छोटा होके माण मिलदा, धनी बादशाह पावंदे हार बन्दे ॥
पैर देख नीवां अंग सारिआं तो, ऊचा सीस झुकदा पैरीं हार बन्दे ॥
ऐ मन होइ छोटा स्वाती बूंद वांगूं, अंत कदर पैणी बेशुमार बन्दे ॥
छोटा पारसां दी वट्टी वांग होजा, अठ धात सोना छोहन सार बन्दे ॥
धरती बहुत नीवीं वडे गुणांवाली, ओपत खपत करदी खाणीचार बन्दे ॥
सन्त चरन धूड़ी वांग होईं छोटा, मथे लावंदा कुल संसार बन्दे ॥
बीज वांग छोटा धरती विच मरना, पिछों होवंदा बोहड़ अनुसार बन्दे ॥
रत्ती देख छोटी सोने संग तुलदी, छोटे होण दी समझले सार बन्दे ॥
छोटा माल बैजंती दे वांग होजा, रखण ऋषी ते मुनी अवतार बन्दे ॥
ऐ मन वाँग पानी होके टुरीं नीवां, गुणां विच बड़ा पारावार बन्दे ॥
भृंगी वांग छोटा होके सोच कर तू, दूजे जीव कर आपणे हार बन्दे ॥
मक्खी बहुतछोटी पूरे गुणांवाली, जीहदा शहद खांदे शाहूकार बन्दे ॥
कीड़ा जीव की गुणांदे विच पूरा, लच्छे रेशमां दे पैदावार बन्दे ॥
ऐमन मांण निमाणिआं होयमिलदा, करीं चित दे विच विचार बन्दे ॥
नाम देव निमाणे नूं माण मिलिआ, देहुरा फेरिआ आप करतार बन्दे ॥
जीवन मुकति अचल्ल आकाश वासा, ध्रुव जितिआ मंन के हार बन्दे ॥
जेहड़ा हारिआ जग तों जित उसदी, लख भगत निंव के होइ पार बन्दे ॥

नींवें होण विच गुणांदी उत्तमताई, ऊंचा होण दे विच अहंकार बन्दे ॥
रुढ़के टील्यां दा पाणी चल आवे, नींवें छपड़ां दे विचकार बन्दे ॥
नींवें विच गुण कुदरती आप हुँदे, नींवां होण दी करीं विचार बन्दे ॥
निउं के बदल वसावंदा जिवें वर्षा, तिवें दान कर होइ दातार बन्दे ॥
फल लग्यां जिवें है वृक्ष निउंदा, फल खाण दा नहीं इनकार बन्दे ॥
तिउं होइ नींवां तू खरैत कर लै, नींवां होइ करलै उपकार बन्दे ।
हिरदा साफ़ करके नींवां होण चंगा, बदी विच है पापदा भार बन्दे ॥
काल हेड़िया वांग ना होईं नींवां, निउं के मिरग नूँ तीर दे मार बन्दे ॥
सरप डंग मारे नींवां सीस करके, ऐसा निवणा चित्त ना धार बन्दे ॥
पाप करम विच निवणां धृग समझो, सीस झुके अकाल दरबार बन्दे ॥
मिठा बोलना चजना होइ नींवां, ग्रंथां विच लिखिआ बार बार बन्दे ॥
ऐ मन अजे नसीहत जे नहीं होई, तैनूं लख वारी धिक्कार बन्दे ॥
मघर सिंह नींवां होके नाम जपलै, रब्ब नींव्यां दा मददगार बन्दे ॥

जैसे उर्दू के हरूफ़ 'जीम' और 'खे' का स्वरूप एक जैसा होता है, केवल नुक़ते (बिन्दी) का अन्तर होता है; 'जीम' के पेट के अंदर नुक़ता है और 'खे' के ऊपर। तैसे ज्ञानी और अज्ञानी का आकार एक जैसा है; परन्तु अज्ञानीके अन्दर से देह खुदी (देहाभिमान) है, इसलिये वह 'जीव' है और ज्ञानी ने अंदर से देहखुदी (देहाभिमान) निकाली है, इस लिये वह 'खुदा' (आत्मा) है। अथवा जैसे 'ऐन' व ग़ैन' का स्वरूप एक सा है; परन्तु जिसके ऊपर नुक़ता है वह 'ग़ैन' है और जो नुक़ते से रहित है वह 'ऐन' है। तैसे ही जिसने खुदी का नुक़ता अपने में ले रक्खा है वह ग़ैरियत (जुदाई–परिच्छिन्नता) में आया हुआ है, जब खुदी का नुक़ता त्यागे तब वह 'ऐन' ही है:–

जैसी सूरत ऐन की, तैसी सूरत ग़ैन॥
दिल से नुक़ता दूर कर, वहीऐनका ऐन ॥

जैसे मजीठ पृथ्वी के अन्दर होती है (नीची है) उसका रंग पक्का होता है और कुसुम्भे का फूल पृथ्वी के ऊपर होता है, उसका

रंग जल्दी उड़जाता है; तैसे ग़रीबी (नम्रता) वाले के अन्दर शुभ गुण दृढ़ होते हैं और अहंकारी के नाश को प्राप्त हो जाते हैं। व जैसे अग्नि का स्वभाव ऊपर जाने का है, उसका मुंह काला होता है और धुआं करके गृह आदिक वस्तुओं को काला करती है; तैसे अहंकारी पुरुषों का भगवान् के दरबार में मुंह काला होता है और उनकी संगत करने वालों का भी चित्त मैला हो जाता है। और जैसे जल स्वाभाविक ही नीचे को जाता है,वह आप निर्मल है और दूसरोंको भी निर्मल करता है तैसे ग़रीबी (नम्रता) वाले पुरुष का मन नम्र होता है और उसकी संगत करने वाले का मन भी नम्र हो जाता है। व जैसे बादलों करके चन्द्रमा आच्छादित हो जाता है और वायु के चलने से उस (चन्द्रमा) का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, तैसे अहंकार रूपी बादलों से आत्मा रूपी चन्द्रमा आच्छादित हो जाता है,और विचार रूपी वायुसे अहंकार रूपी बादल दूर होनेपर आत्मा का भी प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इसलिये जिज्ञासु अपने मन को ऐसे समझावे, "हे मन ! तू किस बात का अहंकार करता है ? यदि धन का अहंकार करे तो तेरे से अधिक धनी हैं, विद्या का करे तो तेरे से अधिक विद्वान हैं और रूप, बल, जाति आदिक किसी वस्तु का अहंकार करना तेरे को उचित नहीं।" क्योंकि संसार में एक से एक अधिक हैं इसमें वेद-शास्त्र प्रमाण हैं॥

गुरु प्रमाणः—जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार॥
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार ॥२२॥ (श्लोक म० ९ पृ० १४२७)

जिस समय रामजी ने बालि को मारा और तारा को पति के मृत्यु की सूचना मिली तब वह विलाप करती हुई रण भूमि विषे आई और पति के मृतक शरीर को देखकर शोकातुर होकर रोती हुई पतिके चरणों के साथ लिपट गई; जब उसने भगवान् रामको साक्षात् सन्मुख खड़े देखा तो बोली हे प्रभो ! जिस बाण से आपने मेरे पति को मारा है उसीसे मेरे को भी मार दो, क्योंकि मैं भी पति के साथ ही जाना चाहती हूं। ऐसा सुनकर भगवान् ने उपदेश किया:—

क्यों शोक भीरू तू करै, पति शोक लाइक नाहिं।
कहि साच मो को भामिनी, पतिजीव कै तनु आहिं॥
त्वच मास हाडसु श्रोणु तो, तन पंच भौतिक जोइ।
कर काल करम सु जो भयौ, वह परो आगै सोइ॥
जो जीव मानै तैं पती, वह रोग बिनु जग आहि।
नहिं मरै जामें बैठ है पथ माहिं चाले नाहि॥
नहिं पुरुष नारि नपुंसको, वह जीव सबगति आहिं।
अद्वितीय एक आकाश सो, नहिं लेपहै कछु ताहि॥
दो०- नित्य ज्ञान मय शुद्ध है, जीव सनातन रूप।
तारा शोक न कीजिए, तजौ सो भ्रम तम कूप॥

॥ तारा उवाच ॥

चौ०-देह काठ वत जो जड़ राम। जीव सनातन चेतन धाम॥
दूख सूख तव किनको होई। राम विचार कहो मम सोई॥

॥ श्री रामोवाच ॥

चौ०- तारा प्रश्न कऱ्यो तुम ऐसे। कोविद कोई करे सु जैसे॥
अहङ्कार को दृढ़ सम्बन्ध। तन इन्द्रिय सो भयोअभिसंध॥
जौलौं है तौलौं संसारा। अज्ञान मूल आतम विकारा॥
मिथ्या यह संसार बताए। तदपि निवृत्त आप नहिं पाए॥
विषय ध्यान जिउं जाग्रत करे। सुपने माहिं अनर्थ न परे॥
अनादि अविद्या अरु तिन कारय। हङ्कारादि जे अहैं अनारय॥
यह संसार सु महाँ असारी। रागद्वेष कर व्याकुल भारी॥
मन ही यह संसार भनीजै। मन ही बन्धन रूप कहीजै॥
आतम मन के होइ समाने। बंधन आपन माहिं सुमाने॥
ज्यों स्फटिक अति उज्वल अहै। लाल कुसुम की संगति गहै॥
लाल वर्ण तिन भीतर होई। वस्तु विचारे वरन न कोई॥
बुधि इन्द्रिय की सङ्गति धारी। आतम भयेउ सुतिमि संसारी॥
आतम लिंग शरीर सँयोग। पाइ लिंग तिन जने सु भोग॥
भोग भोग गुन बांध्यौ जोई। परवश फिरे सु जग में सोई॥
आदि विषे मन गुणहिं निहारे। पाछे ते बहु कामन धारे॥
सात्विक राजस तामस भेदा। पाइ जोन बहु लहे सु खेदा॥
या बिधि कर्मन के आधीना। भ्रमै जीव जग ज्यों जल मीना॥
परलय लौं या बिधि दुख पावें। बहुरो जाइ प्रकृति समावें॥

पूरव कृत उपासक जोई। वासिन कर्म मिले पुनि दोई ॥
अनादि अविद्या के वश परयो। सृष्टि काल बहुरो निहसरयो ॥
या विधि जीव भ्रमै बहुबारा। घटी यंत्र ज्यों दुख अपारा ॥
उदय होइ जब पुराय कमाए। सन्तन की सङ्गति तब पाए ॥
मेरे भगत शान्त उर जेई। मोमें मति उपजावें तेई ॥
पुनि मम कथा श्रवण रुचिहोई। दुर्लभ येह जगत में सोई ॥
बहुरो तत्त्व स्वरूप गिआन। बिना खेद होवै तिह भान ॥
वाक्य अर्थ को ज्ञान सु जोई। गुरु प्रसाद कर उपजै सोई ॥
तन इन्द्रिय मन प्राण ऽहङ्कार। इनते भिन्न जु रूप उदार ॥
सत्य आनन्द सु एक अनूप। ताको जान सु आतमरूप ॥
होवै मुक्ति वार नहिं लागै। बन्धन सर्व सु जग के त्यागै ॥
मोहि बखान्यो भामिनि जोई। सत्य अहे संशय नहिं कोई ॥
या बिधि मोहि बखान्यो सार। करे निरन्तर याहि बिचार ॥
ताको दुःख जगत के जेई। नाहिं कदाचित छूहे तेई ॥
तारा तू पुनि एह निरन्तर। मोहि कह्यो हेरे उर अन्तर ॥
नाहि छुहे तुह को दुखजोला। कर्म बन्धन ते मिटे कराला ॥
स्वभू तोर पूरब भव माहीं। उत्तम भगति करी मनमाही ॥
ताते मेरो दर्शन पायो। अब तो बन्धन सकल मिटायो ॥
मेरो रूप ध्याइ मनमाहीं। मोहि कह्यो हेरो उर माहीं ॥
प्रवाह पतित कारय है जोई। करो निरन्तर लेप न होई ॥
श्रीराम यहि भाँति बखानी। सुनि तारा सीता-पति बानी ॥
तन अभिमान जु शोक तियागी। श्री रघुबर के पायन लागी ॥
आतम अनुभव लहि हरषानी। जीवन्मुक्ति भई दुःखहानी ॥
राम परमात्मा नर अवतार। वाकी संगति पाइ उदार ॥
अनादि बन्ध सब दूर निवारे। मुक्ति भई किलविष सब टारे ॥

[अध्यात्म रामायण]

भाव—तारा ने अहङ्कार अर्थात् अहंता ममता का त्याग किया तब सुख को प्राप्त हुई। ताते सिद्ध हुआ कि अहंकार का त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है; इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि अहंकार को त्याग कर नम्रता को धारण करे, जिससे सब शुभ गुण अंतःकरण में प्रफुल्लित होजावें।

कामादिक पांचों की निवृत्ति



प्रश्नः--भगवन्‌जी ! अहङ्कार की निवृत्ति का प्रसंग श्रवण करके हमारा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ है। अब आप कृपया कामादिक पांचों की निवृत्ति तथा रजो तमो वृत्तियों को त्याग कर सतो को धारण करने के उपाय युक्ति सहित वर्णन करें ॥

उत्तरः--हे प्यारे ! एकाग्रचित्त होकर पहले इस विषे दृष्टान्त, पुनः जैसे इन वृत्तियों को महात्माओं ने प्रतिबंधक जानकर दूर किया है और सतो वृत्ति को धारण किया है, सो सुनो :-

जैसे कोई पुरुष किसी राजा के पास मिलने को जाता है तो जो राजा के पालतू कुत्ते होते हैं वह उसको राजा के अन्तःपुर में प्रवेश नहीं करने देते, यदि वह कुछ साहस करके आगे बढ़ता है तो सन्मुख हो कर ऐसा काटते हैं कि जिसकी पीड़ा कर वह पुकार-पुकार कर चिल्लाता है। यद्यपि वह उनको निवारण भी करता है, तद्यपि वह उसके शब्द को नहीं पहिचानते, वह तो अपने स्वामी के शब्द को ही पहिचानते हैं; जब वह राजा का नाम लेकर पुकारता है तब वह (राजा) अपने कुत्तों को रोकता है, अपने स्वामी का शब्द सुनतेही वह उस पुरुष का त्याग कर जाते हैं; इस प्रकार कुत्तों से बच कर राजा से मिलने पर उसको महान् सुखकी प्राप्ति होती है। तैसे ही दीनबन्धु परब्रह्म परमेश्वर रूप राजा त्रिलोकीनाथ हैं, उनसे मिलने के लिये यह जीव अनेक यत्न करता है; परन्तु काम, क्रोध, आदिक जो कुत्ते हैं सो तिसको काटते हैं अर्थात् वृत्ति को नहीं लगने देते। जब कुछ साधन रूपी चरण आगे को रखता भी है तब विशेष करके अहंकारादिक बड़े बलवान् कुत्ते

तिसको बहुत ही दुःख देते हैं, किसी प्रकार भी इसको आगे नहीं जाने देते। जब यह जिज्ञासु दीन होकर उस दीनबन्धु के नाम को पुकारता है तब वह भक्तवत्सल भगवान् आप ही कामादिकों को हटा लेते हैं और साथ ही आशा, तृष्णा, चिन्तादिक कुतियां भी दूर हो जाती हैं; इस प्रकार बड़े सुख पूर्वक परमेश्वर के साथ मिलाप हो जाता है। मिलाप होने पर तीनों लोकों के सर्व सुख इसके आगे आनकर हाथ जोड़ते हैं, ऐसा कोई सुख नहीं जो दीनबन्धु की शरण प्राप्त होने पर शेष रह जावे। जो परमात्मा की शरणको नहीं प्राप्त होता वह काम क्रोधादिक के वश होकर जन्म जन्मान्तरों में कष्ट पाता है। यथा गुरु प्रमाणः--

काम क्रोधि लोभि मोहि बाधा। महा गरत महि निघरत जाता।
नानक की अरदासि सुनीजै॥ डूबत पाहन प्रभ मेरे जीजै॥

[सूही म० ५ पृ० ७४१]

सवैया--काम सो प्रबल महा जीते जिन तीनों लोक,
सोतो एक साधुके विचार आगे हार्यो है।
क्रोध सो विकारी नाहिं देख्यो कोऊ धीरधरे,
सोऊ साधु क्षमा के हथियार सों विदार्यो है।
लोभ सो सुभट साधु संतोष सों गिराय दीयो,
मोह सो नृपति साधु ज्ञान सों प्रहार्यो है।
सुन्दर कहत ऐसे साधु कोऊ शूरवीर,
ताकि ताकि सबही पिसुन दल मार्यो है॥

भाव--साधु की शूरवीरता देखो--काम कैसा महाबलवान् है जिसने तीनों लोक जीते हैं, तिसको साधु ने एक 'वस्तु विचार' कर जीता है, अर्थात् तीनों लोकों विषे जो महान्बली काम है, उसने बड़े-बड़े बली इन्द्रादिक देवता भी जीते हैं, सो काम साधु के एक 'वस्तु विचार' के आगे हार गया है; दूसरा क्रोध सरीखा उत्पाती और कोई हमने नहीं देखा, उसके आगे कोई धैर्य धारण नहीं करसकता, ऐसे तमोगुण प्रभाव वाले कठिन क्रोध को साधु ने एक 'क्षमा' रूपी हथियार से मार दिया है; लोभ सरीखा बली साधु ने 'सन्तोष' रूपी शस्त्र से मार के गिरा

दिया है; मोह सरीखा राजा जो आसुरी सेना का बड़ा वीर योद्धा है तिसको सन्तों ने 'विवेक ज्ञान' रूपी शस्त्र प्रहार कर मार गिराया है; इससे सुन्दरदास जी कहते हैं कि साधु ही एक ऐसा शूरवीर है जिसने चुगलों की सेना के योद्धा चुन-चुन कर मार दिये हैं।

चौ०–काम क्रोध दुस्तर हैं भारी। इनको प्यारे देहु निवारी॥
तातै प्रभु की शरन गहीजै। आशा तृष्णा दूर करीजै॥

जिन महात्माओं ने प्रभु की शरण ग्रहण करके इनको जीता है उन पर गुरु प्रमाण :–

पंच परवाण पञ्च परधान॥ पञ्चे पावहि दरगह मानु॥
पञ्चे सोहहि दरि राजानु॥ पञ्चा का गुरु एक धिआनु॥ (जपुजी० पृ० ३)

भाव–जिन 'पंच' कहिये महात्माओं में सत्य, संतोष, धैर्य, धर्म, विचार हैं तथा जिन्होंने पांच ज्ञानेन्द्रिय को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, विषयों से रोका है वह इस लोक में प्रमाणीक तथा 'प्रधान' कहिये मुख्य हैं। पुनः जिन्होंने निदिध्यासन द्वारा, आकाश के असंगता रूप गुण वत् अनेक वृत्तियों के होते हुए भी अपने आत्मा को असंग जाना है; दूजा पवन के समतारूप गुणवत् जीवों की शुभाशुभ क्रिया देखते हुए भी किसी में गुण अवगुण का आरोपण न करना; तीसरा अग्नि का गुण यानी उसमें जो कुछ डालो वह राग द्वेष से रहित उसे ग्रहण करती है, ऐसेही यथा लाभ प्राणोंके पोषणमात्र आहार अंगीकार करना; चौथा जलके निर्मलता रूप गुणवत् आप निर्मल रहते हैं और संग करने वालों को भी पाप रूप मल से रहित करदेते हैं; और पांचवां पृथ्वी के धैर्य रूप गुणवत् धैर्यवान् रहना; इन पांच गुणों को धारण किया है वह महात्मा जन 'दरगह' कहिये सन्त सभा में आदर पाते हैं। पुनः 'पंचे' कहिये जिन महात्माओंने काम, क्रोध,लोभ, मोह और अहंकार इन पाँचोंसे मन को जीता है, शब्दादिक पाँच विषयों से इन्द्रियों को जीता है और पृथ्वी आदि के गुणों को तथा सत्य, सन्तोष, आदि को धारण किया है सो 'राजान' कहिये परमेश्वर राजा के 'दरि' कहिये द्वारे पर प्राप्त हुए शोभा पाते हैं। पुनः तिन 'पंचा' कहिये महात्माओं का एक जो 'गुरु' कहिये

बड़ा परमेश्वर है तिसी में ध्यान लग रहा है जिसके प्रभाव से उन्होंने कामादिकों को जीतकर करुणा,मैत्री,मुदिता,उपेक्षा को धारण किया है।

दृष्टान्त–एक पुरुष धन की इच्छा करके घर से वन में गया; वहाँ उसने एक साधु बैठा हुआ देखा, उसके पास जाकर प्रार्थना की हे भगवन्! ऐसी कृपा करो जिससे मेरे को बहुत धन प्राप्त हो जावे। साधु ने उसको एक कुदाली और एक खड़ग दी और पास ही एक मन्दिर बता कर कहा कि इसमें जाओ, तुमको धन प्राप्त होगा; वह उसमें गया और देखा तो चार स्त्रियाँ दीखीं, उनसे पूछा तुम कौन से कुलकी हो और तुम्हारे नाम क्या हैं? स्त्रियों ने अपने २ नाम बता कर कहा कि हम ब्राह्मण कुल की हैं; उसने पूछा तुम कहां रहती हो? तब एक स्त्री ने अग्निशाला, दूसरी ने द्वार, तीसरी ने धर्मशाला और चौथी ने अन्तःपुर अपने निवास स्थान बतलाये और अन्तर्धान हो गईं; फिर चार पुरुष प्रगट हुए। उसने उनसे भी नाम और कुल पूछा, उन्होंने कहा हम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हैं और हमारे अमुक २ नाम हैं;पुनः उसने पूछा,तुम कहां रहते हो? एक ने कहा,मैं अग्निशाला में रहता हूं; पुरुषने कहा,अग्निशाला में तो अमुक नाम की स्त्री रहतीहै, उसने कहा वह मेरी स्त्री है; परन्तु उसका वहां क्या काम है, और जो वहां रहे तो दासी होकर रहे। दूसरे ने अपना निवासस्थान 'द्वार' बतलाया, पुरुष ने कहा वहां तो अमुक नाम की स्त्री रहती है, उसने पहिले के समान ही उत्तर दिया; तीसरेने अपना निवासस्थान 'धर्मशाला' बतलाया, पुरुष ने कहा वहांतो अमुक नाम की स्त्री रहती है, उसने भी पहले के समान ही उत्तर दिया; चौथे ने अपना निवासस्थान 'अंतःपुर' बतलाया, पुरुषने कहा वहां तो अमुक नाम की स्त्री रहती है, उसने भी पहिले के समान ही उत्तर दिया। ऐसा सुन कर पुरुष ने कहा कि तुमने बड़ा अनर्थ कियाहै जो क्षत्री होकर ब्राह्मणियों को घर में रखा हुआ है, इस लिये तुमको दण्ड देना योग्य है; इतना कहकर उस पुरुष ने खड़ग निकाला और एक एक करके चारोंका सिर काट लिया। तब

चारोंस्त्रियां प्रगटहुईं और कहनेलगीं यह हमारे पुरुषथे,हमतो सतीहोवेंगी; तब अन्तःपुरवाली स्त्रीको उसपुरुषने रखलिया और शेष तीनों स्त्रियोंको चारों पुरुषों सहित दाहकर दिया; फिर वह उस स्त्रीको साथ लेकर मन्दिर को देखने लगा। प्रथम द्वार देखा, फिर अग्निशाला देखी, फिर धर्म शाला को देख कर अन्तःपुर में गया; वहां जाकर देखा कि एक शिला लग रही है, जब उस शिला को कुदाली मारी तब एक पुरुष निकल कर उस पुरुष में लीन हो गया। उसके लय होते ही वह स्त्री वृद्ध होगई, उस के वृद्ध होते ही पुरुष की धनकी इच्छा जाती रही और वह उसी स्थान में बैठ रहा। फिर चार स्त्रियां और प्रगट हुईं जिनको उसने अपने पास रख लिया तथा उनके संग विलास करने लगा और वह वृद्धा स्त्री सेवा करने लगी ॥

सिद्धान्त–मुमुक्षु 'पुरुष' है, निज स्वरूपकी प्राप्ति 'धन की इच्छा' है, 'वर्ण अभिमान' रूपी घर को त्याग कर 'सन्यास आश्रम' रूपी वन में गया और वनमें मिले साधु के समान सद्गुरु हैं। निज स्वरूप रूपी द्रव्य की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने पर गुरुने विचार रूपी कुदाली और वैराग्य रूपी खड्ग देकर देह रूपी मन्दिर बताया और कहा इसमें तू प्रवेश कर, तुझे आत्मा रूपी धन की प्राप्ति होगी। जब मुमुक्षु ने संघात रूप मन्दिर में प्रवेश किया तो अन्तर्दृष्टि से चार स्त्रियां देखीं और उनसे नाम, कुल और निवासस्थान पूछा। उन चारों ने अपने को उत्तम कुल की ब्राह्मणी बतलाया; एक ने कहा मेरा नाम लज्जा है, अग्निशाला (नेत्र) में रहती हूं, प्रत्यक्ष देखते हो।

दूसरी–मैं द्वार (मुख) में रहती हूं और मेरा नाम दया है।

तीसरी–मैं धर्मशाला (हृदय) में रहतीहूं और मेरा नाम कीर्ति है।

चौथी–मैं अंतःपुर (अन्तःकरण)में रहती हूं और मेरा नाम धीरता है। (इनको बड़े उत्तम कुल की ब्राह्मणी इसलिये कहा कि यह बड़े पुण्य करके प्राप्त होती हैं) यह कह कर चारों स्त्रियां अन्तर्धान हो गईं; फिर चार पुरुष प्रगट हुए। एक पुरुष ने अपना कुल क्षत्रिय, नाम

'काम' और निवासस्थान अग्निशाला (नेत्र) बतलाया, पुरुष (मुमुक्षु) ने कहा नेत्र में तो लज्जा रहती है; उसने कहा, जहां मैं हूं वहां लज्जा नहीं रह सकती। इसमें प्रमाण–जिस समय इन्द्र काम करके व्याकुल हुआ तो गौतम ऋषि पूजनीय थे, तो भी उनकी स्त्री के अर्थ लज्जा को त्याग कर उनके घर गया; फलस्वरूप उसकी देहमें सहस्र भग हुए। दूसरे ने अपना कुल क्षत्रिय, नाम 'क्रोध' और निवासस्थान द्वार (मुख) बताया, मुमुक्षु ने कहा, वहां दया रहती है; तब उसने कहा जहां मैं हूं वहां दया नहीं रह सकती। इसमें प्रमाण यह है परशुराम जी भीष्म पितामह के पूज्य पात्र (गुरु) थे, तो भी जिस समय क्रोध आया तब दया न रही और परशुरामजीके साथ युद्ध किया। यह एक ही क्षत्री थे जिन्होंने परशुरामजी को नीचा दिखाया, इसी प्रकार वैराग्यवान् पुरुष को भी यदि कोई जगत् का विषय रहजावे तो वही दुःखदाई होता है। तीसरे ने अपना कुल क्षत्रिय, नाम 'लोभ' और निवासस्थान धर्मशाला (हृदय) बताया, मुमुक्षु ने कहा, वहां कीर्ति रहती है। उसने कहा जहां मैं रहूं वहां कीर्ति नहीं रह सकती। इसमें प्रमाण–जिस समय शृंगी ऋषि ने मिठाई का लोभ किया तब उनके तप की कीर्ति जाती रही। चौथे ने अपना कुल क्षत्रिय, नाम 'मोह' और निवासस्थान अंतःपुर (अंतःकरण) बताया, मुमुक्षु ने कहा, अंतःकरण में तो धीरता रहती है, उसने कहा जहां मैं हूं वहां धीरता नहीं रह सकती है; धीरतानाम धैर्य का है। इसमें प्रमाण–जिस समय रण भूमि में अर्जुन ने अपने परिवार को देखा तो मोह हुआ और धैर्य न रहा। कोई ऐसी शङ्का करे कि यह कामादिक क्षत्री क्यों कहे, इसमें गीता प्रमाण है–काम और क्रोध की रजोगुण से उत्पत्ति होती है। यह वार्ता सुनकर पुरुष (मुमुक्षु) ने वैराग्य रूपी खड़्ग खेंचकर विचार किया कि वैराग्यवान् को काम कैसा? ऐसे विचार द्वारा काम का निषेध किया जैसे भगवान् शिवजी ने नेत्र से अग्नि को उत्पन्न करके काम को भस्म कर दिया था। इस प्रकार जब काम का निषेध किया तो फिर विचारा वैराग्यवान् को क्रोध

कैसा ? तो विचार द्वारा क्रोध का भी निषेध किया जैसे भगवान् विष्णु को भृगु जी ने लात मारी फिर भी विष्णु जी ने भृगुजी का चरण पकड़ लिया और कहा महाराज ! आपकेचरण कोमल हैं और मेराशरीर कठोर है, आपके चरणों को दुःख हुआ होगा। ऐसे जब क्रोध का निषेध किया तब फिर विचार किया, वैराग्यवान् को लोभ कैसा ? तो लोभ का भी निषेध किया जैसे नचिकेता ने लोभ का त्याग किया था—उनके पिता उद्दालक नचिकेता के लिये लोभ से तरुण गौओं को रखकर ब्राह्मणों को वृद्ध गौएँदान करने लगे थे तब, नचिकेता आप यमराज को दान हुऐ और यमराज से तीन वर पाकर पिताको लोभ से छुड़ाया। फिर इसी प्रकार विचार द्वारा मोह का निषेध किया जैसे राजा जनक ने राज्य व्यवहार करते हुए भी मोह का त्याग किया। जब मुमुक्षु ने कामादिक चारों का निषेध किया तब स्त्री रूपी लज्जा, दया, कीर्ति और धीरता प्रगट हुईं। मुमुक्षु ने विचार किया कि वैराग्यवान् को लज्जा भी प्रतिबंधक होती है, देखो लज्जासे गोपियों का कैसा हाल हुआ; जैसे गोपियां लज्जा करके कृष्ण भगवान्के पास नहीं गईं और कुब्जा ने लज्जा का त्याग किया तब श्रीकृष्ण को प्राप्त होकर सुख भोगा। फिर विचार किया कि वैराग्यवान् को दया कैसी ? और जो दया करे तो जैसे राजा भरत को मृगके बच्चे पर दया करने से मृग का जन्म लेना पड़ा, ऐसी दशा होगी। फिर विचार किया कि वैराग्यवान् को कीर्ति कैसी ? और जो कीर्ति चाहेतो दुर्योधन की जैसी दशा हुई थीवैसी होगी; भगवान् ने दुर्योधन से कहा था कि पांच गांव पाण्डवों को देदो, उसने न माना और कहा मैं (ऐसा महान् राजा) कैसे मानूँ ? मेरी हानि होती है। न मानने का फल यह हुआ कि न राज्य रहा न प्राण। धीरता रूपी स्त्री को धारण किया, जैसे ध्रुव जी ने धीरज को धारण करके परमात्मा का दर्शन किया। फिर मुमुक्षु पुरुष ने धीरता (धैर्य) को धारण कर के विचार रूपी कुदाली लेकर सन्घात रूपी मन्दिर को गिराना प्रारम्भ किया। प्रथम जो दृश्य है सो जड़ है और अनित्य है, ऐसे

विचार करके द्वार स्थानी स्थूल देह का निषेध किया; पुनः इस प्रकार विचार किया कि इन्द्रियां और प्राण भी पंच भूतों के विकार हैं, जड़ हैं, दृश्य हैं, और मैं इनका द्रष्टा हूं; ऐसा विचार कर उसने अग्निशाला स्थानी इन सब का निषेध किया; फिर विचार रूपी कुदाली को लेकर अन्तःपुर (अंतःकरण) को भी जाना कि यह भी पंच भूतों का विकार है-जड़ है, मैं अंतःकरण नहीं हूं, यह दृश्य है मैं इसका द्रष्टा हूं; जब मुमुक्षु ने अन्तःकरण का, और फिर विचार रूपी कुदाली से बुद्धि रूपी शिला का निषेध किया तब पुरुष स्थानी परमात्मा बुद्धि में प्रगट हुआ-भाव-बुद्धि से परे बुद्धि का साक्षी परमात्मा है, तब बुद्धि में प्रतिबिम्ब कहिये जो चिदाभास था सो अपने बिम्ब रूप आत्मा में लीन होगया। उसके लय होते ही मुमुक्षु को आत्मरूप धन की प्राप्ति हुई, अर्थात् अपने स्व स्वरूप विषे स्थित हो गया। जो धीरता रूप स्त्री साथ थी वह वृद्ध स्थानी प्रारब्ध हो गई यानी प्रारब्ध पर सन्तुष्ट रहने लगा। फिर चारों स्त्रियां जो प्रगटहुईं सो सुनो-वह करुणा, मुदिता, मैत्री और उपेक्षा थीं, इन चारों को धारण किये हुए ज्ञानवान् विलास करते हैं। इस विषय पर ऐसे लिखा है-मैत्री उवाचः-

चौ०-महातमा जन जग भीतर जेते। या विधि बरतें सगले तेते॥
सुखीयन में जन मे उर धरें। दुखीयन में करुणा उर करें।
पुण्य वंतन में मुदिता धरें। दुष्टन माहिं उपेक्षा करें॥
यों करि राग द्वेष कलुषाई। मिटे निजातम की सु मलाई॥ (प्रबोधचन्द्र नाटक)

भाव-मैत्री कहती है कि जितने महात्मा पुरुष जगत में हैं वह सबके सब इस प्रकार हम को वर्तते हैं-सुखी पुरुषों में 'मे' कहिये मुझ मैत्री को हृदय विषे धारण करते हैं और दुखी पुरुषों के प्रति करुणा, पुण्य वन्तनमें अर्थात् विभूतिवानों के प्रति 'मुदिता'-प्रसन्नता को धारण करते हैं (देखते ही प्रसन्न होते हैं) और दुष्टों में उपेक्षा यानी उदासीनता (न मित्रभाव न द्वेष भाव)। इस प्रकार अपने मनकी राग द्वेष रूपी कालिख और मलिनता को मिटाते हैं, जिससे सुखी रहते हैं। जिसको सुख की इच्छा हो वह भी इन चारों को धारण करे।

अब जैसे महात्माओं ने रजो तमो वृत्तियों को हटाकर सतो वृत्ति को धारण किया है सो पहिले रजो आदि वृत्तियों का स्वरूप सुनो- जो आलस्य, निद्रा और प्रमाद करना है सो तामसी वृत्ति है, जो लोभ और अभिमान करना है सो राजसी वृत्ति है और जो नम्रता व विचारादि का धारना है वह सात्विकी वृत्ति है।

प्रश्नः--इनकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तरः--बासी आहार खाने से, बहुत सोने से, मैला वेष रखने से और निन्दा करने से तामसी वृत्ति होती है; मीठे व सलोने भोजन खाने से, स्त्रियों की संगत से व अपनी बड़ाई करवाने की इच्छा से रजो वृत्ति उत्पन्न होती है; स्नान करना, दाल, चावल आदि अल्प आहार व अल्प निद्रा तथा वस्त्र उज्वल रखना, इनसे सात्विकी वृत्ति उत्पन्न होती है। वृत्तियों की परीक्षा यह है-यदि भजन के समय व सत्संग में वृत्ति एकाग्र हो जावे तो सात्विकी समझनी चाहिये, कभी एकाग्र हो कभी न हो तो राजसी जाननी चाहिये और यदि बिल्कुल एकाग्र न हो तो तामसी जाननी चाहिये; सुख सात्विकी वृत्ति से ही प्राप्त होता है। इच्छा, द्वेष, भय, मोह, यह अन्तःकरण के धर्म हैं, यह चारों जिसप्रकार भिन्न-भिन्न सात्विकी, राजसी तथा तामसी पुरुषोंके अन्तःकरण में वर्तते हैं सो श्रवण करो :—

(१) इच्छा-सात्विकी पुरुष को केवल मोक्ष की इच्छा होती है, राजसी को भोग और मोक्ष की और तामसी को केवल विषयों की इच्छा होती है।

(२) द्वेष-सात्विकी पुरुष को विषयों से द्वेष होवे है, क्योंकि वह विचारता है कि विषय मन को मैला करते हैं और इनका परिणाम दुःख है; राजसी पुरुष को शत्रु के साथ और तामसी को शत्रु, मित्र, सबके साथ द्वेष होता है।

(३) भय-सात्विकी पुरुष को प्रमाद से भय होवे है, अर्थात् मन प्रमादी न हो जावे (शुभ कर्मों में आलस्य न करे और मन्द कर्मों में

प्रवृत्त न हो); राजसी पुरुष को नर्कों तथा जन्म-मरण के दुःखों का भय रहता है, इसलिये वह शुभ कर्म करता है; तामसी पुरुष को केवल राजा और राज भृत्योंका भयहै, क्योंकि वहखोटे कर्म छिपकर करता है।

(४) मोह—यह ही अज्ञान है। सात्विकी पुरुष को आत्मा का अज्ञान है और शास्त्र के अर्थ और परमार्थ का ज्ञान है; राजसी पुरुष को आत्मा का और शास्त्र का अज्ञान है, केवल धर्माधर्म का ज्ञान है; और तामसी पुरुष को आत्मा, शास्त्र और धर्माधर्म तीनों का अज्ञान है, ऐसे पुरुष अन्धकूप रूप संसार की ओर जा रहे हैं।

सात्विकी पुरुष मरकर ज्ञानवान् के घर जन्म लेता है और राजसी पुरुष धनवान्-धर्मात्मा के घर तथा तामसी पुरुष मरकर पशु, प्रेत आदि योनियों को प्राप्त होता है। ज्ञानवान् गुणातीत है।

चौ०—सात्विक ते सुर कै ऋषि होई। राजस ते नर दानव होई।
तामस ते पशु आदिक भूत। या विधि त्रिगुण जगत उद्भूत॥

तातें सिद्ध हुआ कि सतो वृत्ति से सुख होता है, इसलिये जिज्ञासु रजो तमो को त्याग कर सतो को धारण करे; तमो का कारण रजो है, जब रजो का त्याग करेगा तो तमो आपही दूर हो जावेगी, पीछे केवल सतो रहेगी। इस आशय पर भर्तृहरि जी लिखते हैं :—

कवित्त—विविध प्रकार वेद अर्थ के संवेद वारी*, *भली प्रकार जानने वाली।
चेतना* मों चंचलाई सो निकाई हत है। *बुद्धि।
नानाविधि वाक्यनके कौतुकमें रस जोऊ,
सोविरस भयो जाहि मांहि विलसत* है॥ *प्रतीति।
भाँति-भाँति संकल्प विकल्पपर शाँति जामें,
रजो तमो ते रहित सतो के सहित है।
ईश्वर की सेव हित ऐसो चित चाहियत,
ऐसे चित ही में सत चित विकसतु* है॥ *प्रकाश।

धारणा—[रब मिलदा गरीबी दावे दुनीआं माण करदी]
राजन कउन तुमारै आवै॥
ऐसो भाउ बिदुर को देखिओ ओहु गरीबु मोहि भावै॥ रब०॥
हसती देखि भरम ते भूला श्री भगवानु न जानिआ॥
तुमरो दूध बिदुर को पानो अमृतु करि मै मानिआ॥ रब०॥

खीर समान सागु मै पाइआ गुन गावत रैन बिहानी ॥
कबीर को ठाकुरु अनद बिनोदी जात न काहू की मानी ॥ २५० ॥
[मारू कबीर पृ० ११०५]

धारणा--[राखहु जी भगवान इनते राखहु जी]
नैनहु नीद पर दृष्टि विकार । श्रवण सोइ सुणि निंद विचार ॥इनते०॥
रसना सोई लोभि मीठै सादि । मनु सोइआ माइआ बिसमादि ॥इनते०॥
इस गृह महि कोई जागतु रहै । साबतु वस्तु ओहु अपनी लहै ॥इनते०॥
सगल सहेली अपनै रस माती । गृह अपुनेकी खबरि न जाती ॥इनते०॥
मूसनहार पंच बटवारे । सूने नगर परे ठग हारे ॥इनते०॥
उनते राखै बापु न माई । उनते राखै मीत न भाई ॥इनते०॥
दरबि सिआणप ना ओइ रहते । साधसंग ओइ दुष्ट वसि होते ॥इनते०॥
करिकिरपा मुहि सारिंग पाणि । संतन धूरि सरब निधान ।इनते०॥
साबतु पूंजी सतिगुर संगि । नानकु जागै पारब्रह्म कै रंगि ॥ इनते०॥
सो जागै जिसु प्रभु किरपालु । इह पूंजी साबतु धनु मालु ॥इनते०॥
[गउड़ी म० ५ पृ० १८२]

॥ प्रथम काण्ड समाप्तम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः








विचार माला

॥ कर्म फ़िलौसफ़ी ॥

॥ मास्टर मुल्कराज जी के शेष प्रश्न ॥

प्रश्न नं० ३४–(इससे पहिले के ३३ प्रश्न जीवन चरित्र सिद्धान्त उपदेश प्रथम भाग में छप चुके हैं)। भगवन् जी ! कर्म तो पिछले जन्मों के शरीरों ने किये और फल यह शरीर भोग रहा है और जो कर्म यह शरीर कर रहा है उनका फल आगे दूसरे शरीरों को भुगतना पड़ेगा, क्या यह न्याय है ? कृपया इस कर्म फ़िलौसफ़ी का विस्तार पूर्वक वर्णन करें ॥

उत्तरः–हे प्यारे ! यह नियम है कि जो कर्ता होता है वही भोक्ता होता है; कर्म कोई करे फल कोई भोगे, यह नहीं हो सकता। इस भ्रान्ति का कारण यह है कि साधारण लोगों को अभी तक यह पता ही नहीं कि कर्ता कौन है और भोक्ता कौन है। हमारा स्थूल शरीर जड़ है और अपने आप कोई कर्म नहीं कर सकता। कुत्ते को जब कोई पुरुष लाठी से मारता है तो कुत्ता, लाठी को मारने वाला समझ कर, उसे ही काटने को दौड़ता है यदि लाठी में मारने की शक्ति होती तो अपने आप क्यों न लगती ? ऐसे ही हमारा स्थूल देह लाठी की तरह अपने आप कुछ नहीं कर सकता, यदि कर सके तो मृतक हो जाने पर स्थूल देह की कोई चेष्टा होनी चाहिये; और होवे नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि स्थूल देह कर्मों का कर्ता नहीं। यदि आत्मा कर्ता हो

तो आत्मा के सदा विद्यमान रहने से सुषुप्ति और मृतक अवस्था में भी कर्म होने चाहियें; और होते नहीं जैसे घट जल की उत्पत्ति, नाश या एक स्थान से दूसरे स्थाने पर ले जानेसे सूर्य में कोई क्रिया नहीं होती। तैसे शरीर रूपी घटकी उत्पत्ति, नाश या गमनागमन रूप क्रिया से सूर्य वत् आत्मा में कर्ता पन नहीं होता। हमारा स्थूल शरीर एक मकान की नाईं है और आत्मा इसके अन्दर लाट की नाईं है। न तो कोई कर्म मकान कर सकता है और ना ही वह लाट (प्रकाश) क्योंकि मकान जड़ है और लाट प्रकाश असंग है। कर्मों का कर्ता मन्दिर अभिमानी पुरुष की नाईं जीव है, इसलिये फल का भोक्ता भी उसी को होना चाहिये। और जीव ही एक शरीर छोड़ने के उपरान्त दूसरे शरीर में प्रवेश करता है, इससे जीव वही का वही रहता है। इसलिये कर्ता और भोक्ता जीव ही है। शरीर के अन्दर दो प्रकार की सूक्ष्म नाड़ियां होती हैं; एक प्रकार की नाड़ियों द्वारा बाहर की दुनियां का ज्ञान नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, घ्राण द्वारा अन्तःकरण में पहुँचता है और दूसरी प्रकार की नाड़ियों द्वारा कर्मेन्द्रियों तक कर्म करनेके लिये आज्ञा पहुँचती है। जो किसी की आज्ञा पालन करे वह भले बुरे का उत्तर दाता नहीं हो सकता; इसलिये कर्ता भोक्ता चिदाभास है। वास्तव में अन्तःकरण भी जड़ है, परन्तु सतोगुण भूतों का कार्य होने से उसमें चेतन का प्रति-बिम्ब पड़ता है; इसलिये उसमें कर्ता भोक्ता पन होता है। कर्म स्वयं जड़ हैं, इनके अन्दर फल देने की या शरीर प्राप्त कराने की शक्ति कैसे हो सकती है? और कर्म समाप्त होने पर नाश हो जाते हैं, वह फल कैसे दे सकते हैं? जो चीज़ स्वयं नाश हो जावे वह फल कैसे प्राप्त करा सकती है? इसका समाधान यह है कि कर्म दो प्रकार के होते हैं— सामान्यकर्म और विशेष कर्म। सामान्य कर्म में कोई रागद्वेष नहीं होता और ना ही उसका परिणाम हर्ष शोक होता है। विशेष कर्म में राग द्वेष होता है और अहंमम भाव युक्त होता है, कामना उसका आवश्यक अंग होता है। जैसे छापे की मशीन में जब शक्ति के ज़ोर से हरूफों

वाले ब्लौक का धक्का काग़ज़ पर लगता है तो सारे के सारे हरूफ़ काग़ज़ पर अंकित हो जाते हैं; तैसे ही जब अहंमम भाव सहित कर्म राग द्वेष संयुक्त अंतःकरण पर, विशेष भाव वाले होने से, धक्का लगाते हैं तो कर्म के संस्कार अंतःकरण पर अङ्कित हो जाते हैं। फिर जैसे ग्रामोफ़ोन के मसाले वाले रैकर्ड आवाज़ों को खेंचकर अपने में भर लेते हैं, ऐसे ही राग द्वेष रूपी मसाले वाला अंतःकरण कर्मों के संस्कारों को अपनी ओर खेंचलेता है। इसप्रकार से कर्मों का तो नाश होता रहता है परन्तु अंतःकरण में उनका संस्कार रहता है। यदि रैकर्ड मसालेदार न हो तो उस में कोई भी शब्द नहीं भर सकता; ऐसे ही जिसके अन्तःकरण में राग द्वेष नहीं है उसमें कर्मों का संस्कार नहीं रह सकता। ज्ञानवान् पुरुष के समान कर्म होते हैं, क्योंकि उन में अहंमम भाव, राग द्वेष और कामना नहीं होती। अज्ञानियों के विशेष कर्म होते हैं, क्योंकि वह अहंमम भाव सहित और राग द्वेष कामना वाले होते हैं; इन विशेष कर्मों के संस्कार अन्तःकरण में रहते हैं और अपने समय पर फल देने के लिये उठते हैं। चिदाभास ही कर्मों का कर्ता है और वही भोगता है; क्योंकि देह के सम्बन्ध से ही कर्म करता है, इस लिये देह सम्बन्ध से ही उसे फल भोगना पड़ता है। यदि कोई पुरुष कानपुर में दुकान करता है अथवा नौकर है, वह वहां से बहुत धन कमाले और फिर बदली होने पर दिल्ली चलाजावे, तो वह उस धन का फल दिल्ली जाके भोगेगा; यह आवश्यक नहीं कि जिस मकान में बैठकर धन कमाया गया हो उसी में उस का फल भोगा जावे, धन का मालिक जहां चाहे वहीं अपने कमाये हुए धन को लेजा सकता है। जो रुपया वह पुरुष कानपुर में कमाता है वह बैंक में जमा करता जाता है; जब कानपुर छोड़कर दिल्ली या किसी और जगह जावेगा तो बैंक के हिसाब की कापी भी अपने साथ ही लेजावेगा, जब आवश्यकता होगी तो उसमें से रुपया निकलवा कर उपयोग में लावेगा; यह कोई अन्याय नहीं है। ऐसे ही यह जीव जो

पुण्य पाप रूप धन इस शरीर में संचय करता है वह इसके संचित कर्म रूपी बैंक में जमा होता जाता है, जब जीव इस शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीरों में प्रवेश करता है तब उन्हीं कर्मों का फल भोगता रहता है: यह नहीं कहना चाहिये कि इस शरीर से किये हुए कर्मों का फल और शरीरों में क्यों मिले। शरीर जड़ होने से दुःख सुख का अनुभव ही नहीं कर सकता जब हमारे शरीर को कोई लाठी मारता है तो शरीर दुःख को अनुभव नहीं करता किन्तु चिदाभास ही अनुभव करता है जो कि अनादिकाल का वह एक ही चला आरहा है, बदलता नहीं। इस लिये पुनर्जन्म में पिछले जन्म के कर्म फल को भोगना कोई अन्याय नहीं किन्तु न्याय ही है॥

(१) विज्ञान शास्त्र के अनुसार कर्म--मनुष्य शरीर के अन्दर तीन प्रकार के कर्म हो रहे हैं--(१) परेच्छित, (२) अनिच्छित और (३) स्वेच्छित।

(१) परेच्छित कर्म--शरीरमें रक्त का प्रवाह चलरहा है, दिल धड़क रहा है, नाड़ियां शुद्ध रक्त को अंग-प्रत्यंग में पहुँचा रही हैं और दूषित रक्त को दिल में ला रही हैं जो कि फेफड़ों में शुद्ध हो रहा है, मेदा (जठराग्नि) आहार को पका कर दो भाग कर रहा है, जिगर मध्यम भाग का रक्त बना रहा है और गुरदा स्थूल भाग को विष्टा और मूत्र रूप में परिणित कर रहा है; यह सब काम ईश्वरीय इच्छा (माया) से हो रहे हैं, इसलिये परेच्छित हैं और इनके अच्छे बुरे फल का भागी जीव नहीं है; यद्यपि देहाध्यास के कारण जीव का उनके अच्छे बुरे काम से सुखी दुःखी होना पड़ता है, तो भी यह कर्म जीव के कर्मों की संख्या में सम्मिलित नहीं हैं।

(२) अनिच्छित कर्म--शरीर के किसी भाग पर खुजली होती है, हाथ तत्काल वहां पहुँचता है और खुजली को दूर करता है; चलते चलते मार्ग में सर्प आता है, मनुष्य शीघ्र ही कूद कर पीछे हट जाता है; नाव में बैठे हुए किसी का लड़का नदी में गिरता है तो वह झट

कूद पड़ता है, चाहे उसके पास नोटों की गड्डी ही क्यों न हो। इन परिस्थितियों में कर्म करते समय सोच विचार से काम नहीं लिया जा सकता क्योंकि उसका अवकाश ही नहीं मिलता, मनुष्य की इच्छा का इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता,इन कर्मों का कारण राग-द्वेष या कामना नहीं, और इनके संस्कार अंतःकरणमें नहीं ठहरते; इस कारण, फल देने में असमर्थ होनेसे, इनकी गिनती भी कर्मों की संख्या में नहीं होसकती।

(३) स्वेच्छित कर्म–इन कर्मों के करने से पहिले अन्तःकरण में सङ्कल्प विकल्प उठते हैं, भली प्रकार चिन्तन किया जाता है और फिर निश्चय किया जाता है; निश्चय के साथ अहंममभाव दृढ़ होता है, कामना कोड़ा हाथ में लिये संकल्पों को उठाती जाती है और उनको रागद्वेष के रँग में रँगती जाती है। इस प्रकार खिचड़ी पकने के उपरांत (सोच विचार कर) जीव कर्म करता है और हर्ष शोक के धक्के से उन कर्मों के संस्कार अन्तःकरण में दृढ़ता से अंकित हो जाते हैं जो फल देने को पूर्ण रूप से समर्थ होते हैं; इसलिये इनका उत्तरदाता जीव होता है। ऐसे कर्मों को शास्त्रकारों ने तीन प्रकार का कथन किया है:-

(१) संचित कर्म—(जन्म जन्मान्तरों में किये हुए)

(२) प्रारब्ध कर्म—(वर्तमान शरीर में भुगतने वाले)

(३) क्रियमान कर्म—(आगे फल देने वाले)

जैसे कोई पुरुष फ़सल काटकर दाने निकाल कर अपने घर भड़ोले (कुठीले) मे डाल देता है, उसमें से एक बोरी दाने निकाल लेता है जिनमें से कुछ को तो पिसवाकर रोटी खाता है और कुछ बाहर खेत में बो देता है जो एक के अनेक होकर फिर उसी कुठीले में एक के ऊपर एक जमा होते जाते हैं; इसी प्रकार किसान की प्रति वर्ष क्रिया होती रहती है और कुठीले में दाने बढ़ते रहते हैं, तैसे ही कुठीले में इकट्ठे पड़े हुए दानों की नाईं हमारे संचित कर्म हैं जो अभी फल देने के लिये बाहर नहीं निकले हैं। इन संचित कर्मों में से जो कर्म फल देने के लिये निकल पड़े हैं और जिन्होंने इस शरीर को बनाया है, वह प्रारब्ध कर्म

कहलाते हैं; ईश्वरीय प्रेरणा के आधीन यह कर्म फल देनें के लिये निकलते हैं, इसलिये प्रारब्ध ईश्वरीय सङ्कल्प है और इसे अवश्य भोगना पड़ता है; जैसे जो गेहूं कुठीले से निकलकर पिस गये हैं वह अवश्य खाने पड़ेंगे तैसे जो कर्म प्रारब्ध के रूप में निकल आये हैं वह जरूर भोगने पड़ेंगे। फिर जैसे किसान हर साल फ़सल तैयार करके दाने कुठीले में डालता जाता है तैसे ही जीव प्रति दिन नये कर्म कर के उनको संचित कर्मों के भण्डार में जमा करता जाता है, इन कर्मों का नाम क्रियमान या आगामी कर्म है। यह मन, वाणी और शरीर करके तीन प्रकार के होते हैं॥

(१) संचित कर्म–पिछले जन्मों के किये हुए कर्मों के संस्कार जो अभीतक फल देने के लिये सन्मुख नहीं हुए वह संचित कर्म कहलाते हैं, उनमें से जो कर्म फल देने के लिये तीव्र रूप से तैयार होते हैं वह प्रारब्ध का रूप धारण करते हैं। संचित कर्मों के सन्स्कारों का एक और प्रभाव यह भी है कि वह हमारे अन्तःकरण में फुरने द्वारा प्रवृत्ति का हेतु हैं; (१) जैसे किसी पुरुष ने पिछले जन्मों में मांस भक्षण किया हो तो मांस के संचित संस्कार उस पुरुष को इस जन्म में भी मांस भक्षण की ओर ले जावेंगे अथवा (२) किसी पुरुष ने पिछले जन्म में सन्त महात्माओं की सेवा करी है तो इस जन्म में भी उसके संचित संस्कार सन्त महात्माओं की ओर ही लेजावेंगे। एक बात और भी याद रखनी चाहिये कि जो कर्म हम इस समय कर रहे हैं वह भी समाप्त हो जाने पर सञ्चित कर्मों में सम्मिलित होकर हमारे आगामी कर्मों पर बहुत प्रभाव डालते हैं। जैसे आज हमने थियेटर का तमाशा देखा, तमाशा समाप्त होने पर यह कर्म हमारे सञ्चित कर्मों में सम्मिलित हो गया आज हमें कलके इसी संचित कर्म द्वारा फुरणा होगी कि फिर तमाशा देखें; जो सत्संग हमने इससे आठ दस साल पहिले किया हुआ है वह भी सञ्चित कर्मों में सम्मिलित है परन्तु उसके संस्कार आज के तमाशे के संस्कारों के सामने दब चुके हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सब से नये

संचित संस्कार हमारे क्रियमान कर्मों पर और आने वाले जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव डालते हैं। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि सञ्चित कर्म अन्तःकरण में केवल फुरना उत्पन्न करते हैं न कि कर्म करने को विवश, केवल पुरुषार्थ ही संचित कर्मों के संस्कारों को पलट सकता है; इसलिये सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग उस पुरुषार्थ का नाम है जो खोटे संचित संस्कारों को अपना काम न करने दे और उन पर प्रभाव डाल कर क्रियमान कर्मों को पवित्रता की ओर ले जावे। यदि हमारा पुरुषार्थ और संचित संस्कार एक ही ओर को जाने वाले होवें तो यात्रा बहुत शीघ्र समाप्त हो सकती है और यदि पुरुषार्थ संचित संस्कारों के विरुद्ध हो तो उनका आपस में युद्ध होता है और बलवान की जय होती है। इस लिये सत्संग का लगातार पुरुषार्थ हमारे आने वाले जीवन को शुभ सांचे में ढाल सकता है॥

(२) प्रारब्ध कर्म—जोफल देनेके लिये तैयार होकर निकलआये हैं और जिन्होंने इस देह को प्राप्त कराया है वह प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं; यह सन्चित कर्मों का वह भाग है जो फल देने के लिये तीव्र रूप से निकल चुका है। जैसे गेहूं कुठीले से निकाल कर पिसालिये जावें वह अवश्य खाने पड़ेंगे मनुष्य का इसमें कुछ वश नहीं है; ऐसे ही प्रारब्ध कर्म के भोगने में जीव पर तंत्र है। प्रारब्ध का भोग ईश्वरीय सङ्कल्प है, इसलिये इसमें न्यूनाधिक नहीं हो सकता। यह प्रारब्ध भी दो प्रकार का है—एक सामान्य दूसरा विशेष। सामान्य वहहै जो सुख दुःख स्वप्न में ही भुगता जाता है और विशेष वह है जो जाग्रतावस्था में भुगता जावे विना भोगे निवृत्ति न हो। इसमें यह शङ्काहोती है कि यदि हमारी प्रारब्ध बदल नहीं सकती तो हमें सन्त महात्माओं के पास जाने से क्या लाभ है? इसका उत्तर यह है कि हम सन्त महात्माओं के पास इस लिये जाते हैं कि हमारे सन्चित कर्मों का नाश हो और क्रियमान कर्म फल रहितहो जावें। प्रारब्धका भोगतो अटलहै, परन्तु इसमें भी दो अति लाभहोते हैं—(१) शूलीका शूल (काँटा) हो जाता है और(२) सन्त

महात्माओं से सत्-असत् का विचार प्राप्त होता है जिसके बल से प्रारब्ध के भोग में दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। जैसे दो पुरुष हों, एक विचारवान् और दूसरा विचार रहित। विचारवान् पुरुष धन प्राप्त करके उसको पाप कर्मों में खर्च करने से बचेगा और उसका ठीक उपयोग करके आनन्दमय जीवन व्यतीत करेगा और जो विचारहीन पुरुष है वह अपने धन को खोटे कामों में खर्च करेगा जिससे उसको दुःख प्राप्त होगा। जैसे विचारवान् और विचार रहित दोनों की प्रारब्ध में उनके लड़कोंकी मृत्यु होना लिखा है; विचारवान् पुरुष इसको प्रारब्ध समझकर परमात्मा की इच्छा मानता हुआ प्रसन्नता से समय व्यतीत कर देता है और इस दुःख से दुःखी नहीं होता, परन्तु विचार रहित पुरुष इस मृत्यु पर दुःख के समुद्र में डूब जाता है। इसलिये प्रारब्ध भोग में भी सत्य असत्य का विचार सहायक है। प्रारब्ध भोग 'शारीरिक' और 'मानसिक' दो प्रकार का होता है। एक पुरुष बैठे बैठे सोचता है कि यदि मेरी दो लाख की लौटरी निकल आवे तो मैं एक सुन्दर मन्दिर बनवाऊँगा, बहुत से नौकर रखूंगा, अनेक प्रकार के भोग भोगूंगा, मैं शहर का चौधरी बन जाऊंगा और सब लोगों पर शासन करूंगा, इस प्रकार के कई मनोराज करता हुआ मन ही मन में आनन्द भोगता है; फिर सोचता है कि यदि मुझे व्योपार में घाटा पड़ गया तो मेरी सब सम्पत्ति नीलाम हो जावेगी, किसी साहूकार के साथ लड़ाई होने पर जेल में जाना पड़ेगा, वर्षों के पीछे जब मैं सम्बन्धियों से मिलूंगा तो फूट-फूट कर रोऊंगा, इस प्रकार के मनोराज करता हुआ मन ही मन में दुःख भोगता है; यह प्रारब्ध का मानसिक भोग है। खाने-पीने के पदार्थ, सुन्दर मकान धन, इत्यादि शारीरिक सुख के और ज्वर आदि व्याधियां, फोड़ा फुन्सी, इत्यादि, दुःख के साधन हैं; यह प्रारब्ध का शारीरिक भोग है। शारीरिक प्रारब्ध भोग भी तीन प्रकार का है —

(१) अनिच्छित, (२) परेच्छित, (३) स्वेच्छित।

(१) अनिच्छित प्रारब्ध भोग—गली में चलते चलते दीवार हमारे

ऊपर आ गिरे और हड्डियां चूर चूर हो जावें, आंधी में चलते २ पेड़ ऊपर आ पड़े, बिजली गिर जाय, आमके पेड़ को पत्थर मारा जाय और वह पत्थर किसी के सिर पर आपड़े, दो कुत्ते लड़ते लड़ते ऊपर आपड़ें, या मार्गमें चलते चलते सोने की ईंट मिलजावे; यह 'अनिच्छित प्रारब्ध' का भोग है ॥

(२) परेच्छित प्रारब्ध भोग—किसी को मार्ग में चलते हुए डाकू मिल जावें और लाठियों से उसकी हड्डियां चूर २ करदें, चोर रात्रि को चोरी करके घर बार उजाड़दें, या किसी को धनी पुरुष मुतबन्ना बनाले (गोद लेले) और सारी सम्पत्ति उसको देदे; इस प्रकारका भोग 'परेच्छित प्रारब्ध' कहलाता है। अब इस में यह शंका होती है कि जब हमारी प्रारब्धानुसार किसी पुरुष द्वारा हमारा हनन होना ही है तो उस पुरुष का क्या दोष ? उसने तो ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण किया, इसलिये उसका पाप नहीं है। इसमें यह नियम है कि जिस पुरुष को जिस प्राणी द्वारा दुःख सुख प्राप्त होना है वह तो होकर ही रहेगा, परन्तु जो पुरुष मारता है वह राग द्वेष पूर्वक अपनी इच्छा से मारता है, इस लिये वह कर्तृत्वाभिमान के कारण पाप का भागी होता है ॥

(३) स्वेच्छित प्रारब्ध भोग—जैसे कोई पुरुष अपनी इच्छानुसार बाज़ार से घी, खांड़ और सूजी लाकर हलुआ बना कर खाले अथवा स्वेच्छा से वस्त्र का धारण करना और स्वेच्छा से दूध, शर्बत, भांग आदिका सेवन करना; इस प्रकार अपनी इच्छानुसार भोगा हुआ भोग 'स्वेच्छित प्रारब्ध' कहलाता है। हमारे लिये यह जानना बहुत कठिन है कि किस सञ्चित कर्म का फल हमें प्रारब्ध के रूप में सुख दुःख दे रहा है। अर्थात् इस जन्म में किया हुआ कर्म सञ्चित कोटि में जाकर फिर प्रारब्ध के रूप में उठ आया है या पिछले जन्म का कर्म फल दे रहा है। किसी पुरुष को ज्वर हो जाता है अब यह पता नहीं कि यह ज्वर उसके किसी पिछले जन्म के पाप कर्म का फल है या इस जन्म के कुपथ्यका; वह औषधि करता है और दस-बारह दिन के उपरान्त ज्वर

उतर जाता है, अब यह पता नहीं कि औषधि के प्रभाव से ज्वर उतरा है या पिछले जन्म के पाप की अवधि समाप्त होने पर; साधारण दशा में यदि औषधि करने पर भी कुछ न बने तो यही कहा जाता है कि 'यह कर्म भोग है'; परन्तु इस में फिर संशय होता है कि रोग की ठीक परीक्षा न हुई हो या औषधि ही अनुकूल न हो। फिर एक पुरुष (जिसका कोई पुत्र नहीं है) पुत्रेष्टि यज्ञ करता है, एक वर्ष के उपरान्त उसको पुत्र-प्राप्ति हो जाती है; अब यह पता नहीं कि पुत्र उस यज्ञ करनेसे हुआ है, या पिछले जन्मके किसी शुभ अथवा अशुभ कर्म का फल योग्य अथवा अयोग्य पुत्र के रूप में मिला है या स्त्री पुरुष के गुप्त रोग दूर होने से हुआ है। इसलिये यह कहना कठिन है कि हमें किस कर्म का फल सुख दुःख के रूप में मिला है।

(३) क्रियमान या आगामी कर्म—क्रियमान या आगामी कर्म वह हैं जो मनुष्य इस जन्म में अपनी इच्छा से करता है। इन कर्मों को करने में जीव स्वतन्त्र है, इनको करने के लिये बुद्धि प्राप्त हुई है। क्रियमान शुभ कर्मों के करने तथा अशुभ कर्मों के न करने के लिये वेद, शास्त्र और अन्य धर्म ग्रन्थों का विधान है। यदि मनुष्य कर्म करने में, स्वतन्त्र न होता तो वेद-शास्त्र क्यों आज्ञा देते कि सत्य बोलो, चोरी न करो, धर्म की उन्नति करो, माता-पिता, गुरु और अतिथि की सेवा करो, इत्यादि। यदि मनुष्य शास्त्रानुसार कर्म नहीं करता तो दण्ड भोगता है। अब देखना यह है कि साधारण रीति से मनुष्य उन कर्मों को किस प्रकार से करता है। हमारे संचित कर्मों के संस्कार अंतःकरण में रहते हैं, उनमें से जो संस्कार अधिक प्रबल होते हैं वह हमारे अंतःकरण पर प्रभाव डालकर उस प्रकार के आगामी कर्म कराना चाहते हैं। अब यहाँ पर मनुष्य को अपनी बुद्धि से कार्य करना चाहिये; वेद, शास्त्र और महापुरुषों की शिक्षानुसार यह निर्णय करना चाहिये कि इस प्रकार का कर्म मेरे लिये सुख का हेतु होगा अथवा दुःख का। जो मनुष्य बुद्धि से इस प्रकार का काम नहीं लेता वह दण्ड के योग्य होता है।

बुद्धिमान् जानते हैं कि इन ही क्रियमान कर्मों को सञ्चित कर्मों में जाकर मिलना है और फिर इनके संस्कारों को ही प्रारब्ध के रूप में आना है। यथा गुरु वाक्य :—

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ॥ [माझ म० ५ पृ० १३४]

वह जानता है कि यदि मैं मनुष्य जन्म को पाकर शुभ कर्म करूंगा तो अगले जन्मों में उनका फल सुख भोगूंगा और यदि अशुभ कर्म करूंगा तो उनका फल दुःख भोगूंगा। परन्तु संसार में कई ऐसे मूर्खानन्द हैं जो यह कहते हैं कि जिस ओर प्रभु चलावेगा उस ओर चलेंगे, उनका यह विचार कथन मात्र होता है: वास्तव में उनका अन्तःकरण उनके सञ्चित कर्मों के आधीन होता है, वह पुरुषार्थ द्वारा उस को बुरी ओर से रोकने का यत्न नहीं करते; इसलिये वह अपनी निर्बलता के कारण बहाना बना कर ऐसा कह देते हैं। मूर्खानन्द यही कहते हैं कि जो होना है सो होकर ही रहेगा, सत्संग में जाने से क्या लाभ है; ऐसे पुरुष संसार में अपने जीवन को हार जाते हैं। पुरुषार्थ और सत्संग का प्रयोजन यही है कि हम अन्तःकरण को सञ्चित संस्कारों के अशुभ फुरनाओं से रहित करें और उसके अन्दर शास्त्रानुसार शुभ संस्कार भरें ताकि उन पर चलकर सरलता से अपने निर्दिष्ट (नियत) स्थान पर पहुँच जावें। ताते यह सिद्ध हुआ कि हमारे आने वाले जन्मों के सुख दुःख की प्राप्ति इन क्रियमान कर्मों के ही आधीन है। बुद्धिमान् पुरुष वेद, शास्त्र और सद्गुरु की शिक्षा लेकर अपने आगामी (क्रियमान) कर्मों को शुभ रीति से करे ॥

(२) हमारे पाप कर्मों का उत्तरदायी कौन है ?

यहाँ पर एक शङ्का उठती है कि हमारे पाप कर्मों का उत्तरदायी कौन है ? आज कल बहुत से मूर्खानन्द यही कहते हैं कि ईश्वर ही हम से पाप कराता है। वह कहते हैं कि जैसे सब गाड़ियां इंजन के पीछे ही चलती हैं और इंजन की कला मरोड़ने वाला ड्राइवर होता है; ऐसे ही हमारा स्थूल शरीर अन्तःकरण के आधीन होता है और अन्तःकरण

का प्रेरक ईश्वर होता है, क्योंकि उसे घट घट वासी सर्व निवासी और प्रेरक कहा गया है; ताते ईश्वर ही हमारे अंतःकरण के अन्दर पाप की प्रेरणा करता है। हम उनसे यह पूछते हैं कि जब तुम मास पर्यन्त दफ्तर में काम करते हो तो क्या उसके पीछे यही कहते हो कि इस काम का उत्तरदायी ईश्वर है ? यदि ऐसा है तो उसको ही वेतन भेजो। जब आप अच्छा काम करते हो और वेतन बढ़ाने के लिये विनय पत्र लिखते हो तो क्या उसमें यही लिखते हो कि ईश्वर ने बहुत अच्छा काम किया है, उसका वेतन बढ़ा दो ? शोक तो इस बात का है कि शुभ कर्मों के कर्ता तो आप बनते हो और पापों का कर्ता ईश्वर को बनाते हो; यही तुम्हारी मूर्खता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईश्वर सत्ता के बिना हम कोई काम नहीं कर सकते, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर स्वयं कराता है। शास्त्रकार इसका इस दृष्टान्त से बोध कराते हैं--जैसे मन्दिर में लैम्प का प्रकाश हो रहा है, उसके विना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, परन्तु वह असंग है; वह तो केवल प्रकाश देता है, उस प्रकाश में जो पुरुष जुआ खेलेगा वह दण्ड पावेगा और जो गीता का पाठ करेगा वह पुण्य प्राप्त करेगा–भाव–उस लैम्प के प्रकाश में जैसा-जैसा कर्म कोई पुरुष करेगा वैसा-वैसा फल पावेगा। ऐसे ही ईश्वर सत्ता देने वाला है, जो पुरुष शुभ कर्म करेंगे वह सुख को प्राप्त होवेंगे और जो पाप करेंगे वह दुःख को प्राप्त होवेंगे। यदि ईश्वर ही हमसे पाप कराने वाला होता तो धर्म शास्त्रों की क्या आवश्यकता थी ? वह तो बार-बार यही पुकारते हैं कि शुभ कर्म करो नहीं तो दण्ड पाओगे। यदि ईश्वर हमसे पाप कर्म करावे और फिर आप ही दण्ड देवे तो वह बड़ा अन्यायी कहलावेगा, यदि हमसे शुभाशुभ कर्म कराने वाला वही हो तो हम उसका फल क्यों भोगें, वही भोगे ? फिर सबसे बड़ा अन्याय तो यह होगा कि एक ओर तो ईश्वर कर्मों का न्यायाधीश (जज) हो और दूसरी ओर वह आप ही हमसे पाप करावे; संसार में ऐसा न्यायाधीश तो कोई देखा नहीं गया

है। फिर यदि पाप के फल में ईश्वर ने हमसे कोई अशुभ कर्म ही कराना है तो उसका अर्थ यह हुआ कि जीव हमेशा के लिये पाप कर्मों और उनके फल दुःखों में ही फँसे रहेंगे। इस लिये बुद्धि इन बातों को कभी मान नहीं सकती। ताते सिद्ध हुआ कि ईश्वर हमसे पाप नहीं कराता। अब यह प्रश्न होता है कि हमसे पाप कौन कराता है? हे प्यारे! पाप का असली कारण 'भोगों के भोगने की इच्छा' है। यह प्रबल इच्छा ही पाप कर्म की उत्तर दाता है। यदि कोई पुरुष छुरी मार कर मुर्गी का गला काटता है तो वह यह महा पाप केवल इस लिये करता है कि उसकी रसना के भोग की इच्छा पूर्ण हो, यदि वह पर-स्त्री गमन रूपी घोर पाप करता है तो केवल अपनी भोग इच्छा के पूर्ण करने के लिये ही, यदि वह रिश्वतें लेकर अन्याय से पैसा इकट्ठा करता है तो केवल सन्सार के विषय भोगों के लिये, यदि चोरी करता या झूठ बोलता है तो केवल इसलिये कि अधिक धन प्राप्त करके अधिक विषय भोग करे, यदि वह किसी पर अत्याचार व कठोरता करता है तो केवल इसलिये कि हमारा तन सुखी हो और सांसारिक विषय भोग सके। ताते सिद्ध हुआ कि सब पापों का मूल विषय भोगों की इच्छा है। कहा जाता है कि पाप का बाप लोभ है; इसका अर्थ यह है कि लोभ से ही सब पाप होते हैं, लोभ धन प्राप्ति के लिये होता है और धन प्राप्ति विषय भोग के लिये होती है; इसलिये विषय भोग की इच्छा ही पाप का बाप है। यदि हमारे मन में हर समय विषय भोग के ही विचार रहेंगे तो हम कर्म भी उसी प्रकार के ही करेंगे; इसलिये पाप से बचने के लिये जहां तक हो सके सांसारिक विषय भोग की इच्छा को अन्तःकरण में स्थान न देना चाहिये॥

(३) शुभ कर्मों का फल—इस में तो किसी को संशय नहीं कि शुभ कर्मों का फल हमेशा सुख ही हुआ करता है। जब हम शुभ कर्म करते हैं तो वह हमारी आने वाली प्रारब्ध के लिये बहुत अच्छी नीव रूप बन जाते हैं। इससे बढ़कर एक औरभी लाभ है कि जब

हम दो-चार वार शुभकर्म करते हैं तो हमारे अन्तःकरणमें उनके संस्कारोंकी एक पगडंडी सी बनजाती है। जैसे एक रेतीले मैदानपर दो-चार मनुष्य इकट्ठे चले जाते हैं तो फिर उनके पीछे आने वाले मनुष्य तिसी मार्ग पर चलते जाते हैं और ऐसे होते होते वह प्रसिद्ध मार्ग बन जाता है; अब जो पुरुष आवेगा वह उसी मार्ग पर चल कर आवेगा। ऐसे ही जब हम दस पांच वार शुभ कर्म करते हैं तो हमारे अन्तःकरण में उनके संस्कारों का मार्ग बन जाता है; फिर तो हमारे सम्पूर्ण क्रियमान कर्म उस शुभ मार्ग पर चलते जावेंगे। इसलिये शुभ कर्म हमें केवल सुख ही नहीं देते हैं किन्तु सदैव के लिये हमें सुख के मार्ग में भी ले जाते हैं॥

(४) तीन प्रकार के कर्मों का नाश कैसे होता है?–

प्रारब्ध कर्म बिना भोगे नाश नहीं हो सकता, सञ्चित कर्म केवल ज्ञानाग्नि से ही दग्ध हो सकते हैं और क्रियमान कर्म निष्काम और अहंमम भाव रहित होने से फल रहित होते हैं। जैसे कुठीले में से दाने निकाल कर कुछ तो खेती में बो दिए जाते हैं और कुछ पीसकर आटा बनजाते है; आटा तो हमें अवश्य खाना पड़ेगा, यदि हम चाहते हैं कि बोये हुए दाने फल रहित हो जावें तो उनको भुनवा कर बोना चाहिये, क्योंकि भुना हुआ दाना उगता नहीं। दाना उगने के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है–(१) भूमि, (२) बीज में उगने वाली शक्ति और (३) पानी। यदि दाने को हाथ पर रक्खें और पानी देवें तो वह उग नहीं सकता, क्योंकि मिट्टी नहीं है; यदि दानेको पृथ्वीमें बो दिया जावे और पानी न दिया जावे तो भी नहीं उग सकता; यदि दाने को भुनवा कर बो दिया जावे और पानी दिया जावे तो भी नहीं उग सकता, क्योंकि उसमें से उगने वाली शक्ति नष्ट हो चुकी है। ऐसे ही हमारे आगामी (क्रियमान) कर्म तब फल देते हैं जब तीन बातें हों–(१) अज्ञान रूपी भूमि, (२) अहंकार रूपी बीज सहित कर्म और (३) वासना रूपी जल॥

यदि हमारे कर्म अज्ञान, राग द्वेष और कामना रहित होंगे तो वह फल नहीं दे सकेंगे और जो कर्म अज्ञान युक्त होंगे, तो भावी जन्मों का कारण होंगे,यदि कामना रहित शुभकर्म किये जावेंगेतो अन्तःकरण की शुद्धि का कारण होकर ज्ञान द्वारा संचित कर्मों का नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त करा देंगे। जैसे कुठीले को आग लग जावे तो सम्पूर्ण संचित दाने जलजाते हैं, ऐसे ही जब ज्ञानाग्नि अन्तःकरण में प्रज्वलित होती है तब, अज्ञान, संचित कर्म और वासना, इन तीनों का नाश हो जाता है। गुरु प्रमाणः-

फल कारन फूली बनराइ। फलु लागा तब फूल बिलाइ ॥ ज्ञानै कारन करम अभिआसु। ज्ञान भइआ तह करमह नासु ॥ (भैरउ रविदास पृ० ११६७)

श्री गीता प्रमाणः-

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्प वर्जिताः।
ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डितंबुधाः ॥(अ०४ श्लो० १६)

ज्ञानाग्नि संचित कर्मों का नाश करती है। यदि हम जंगल के कांटे बीनना चाहें तो बीने नहीं जा सकते; परन्तु एक बार जंगल को आग लगाने से सब कांटे नष्ट हो जाते हैं। तैसे ही यदि हम संचित कर्मों को फल भोग कर समाप्त करना चाहें तो कभी समाप्त नहीं हो सकते; क्योंकि नित्य नये कर्म संचित कर्मों के भण्डार में एकत्र होते हैं। केवल आत्म ज्ञान द्वारा ही हम कर्मों के जाल से छूट सकते हैं॥

अब कर्मों के सम्बन्ध में जो बातें अवश्य याद रखनी चाहियें वह यह हैं कि संचित कर्म तो दृढ़ ज्ञान रूपी अग्नि से नाश हो जावेंगे और प्रारब्ध कर्म भोगे जाने पर समाप्त हो जावेंगे; परन्तु क्रियमान कर्म उसी समय फल रहित होवेंगे जब कि वह निष्काम भाव से किये जावेंगे और उनमें अहंता, ममता, राग और द्वेष न होगा; परन्तु यह काम बहुत कठिन है। मनुष्य ज्ञानवान् होकर संसारमें बहुत मान को प्राप्त होता है, उस समय वह बड़े भारी शुभ कर्म करता हुआ यदि मन में थोड़ी सी भी अहंता करेगा तो उसे उसका फल भोगना पड़ेगा। ऐसी

दशा में हमें यह करना चाहिये कि जब हम कोई शुभ कर्म करें तो एक मिनट के लिये नेत्र बन्द करके ॐ का जाप करते हुए अपने अंतःकरण में से कर्तापनके संस्कारों को धोडालें। अर्थात् यही कहें किः—

सभुगोविन्दु है सभुगोविंद है गोविंद बिनु नही कोई ॥ (आसा नामदेव पृ० ४८५)

भाव—गोविन्द के बिना दूसरा कोई है ही नहीं; जैसे तरंग, फेन बुद बुदा सब जल रूप ही हैं व जैसे भूषण सब स्वर्ण रूप हैं, ऐसे ही निश्चय पूर्वक विद्वान् सम्पूर्ण कर्म मन, वाणी, शरीर के धर्म समझ कर करते हुए स्वरूप से असंग रहते हैं। जैसेः—

दो०— आत्म है अक्रिय सदा, देह क्रिया बहु रूप ।
जैसे दीप प्रकाश में, खेलत जुआरी जूप ॥
विषय बुद्धि पातुर नचे, अहंकार ढिग भूप ।
इन्द्रिय ताल मृदंग युत, आत्म दीपक रूप ॥

ताते जहांतक होसके हमें कर्म करते समय कर्म के फलका ध्यान न करना चाहिये और न हमें फलके साथ कोई सम्बन्ध रखना चाहिये। ऐसे करने से शुभ कर्मों का कर्ता फल का अधिकारी न होगा। व हमारी वृत्ति तो कर्म के साधनों पर होनी चाहिये। जैसे जब चित्रकार चित्र बनाता है तो अपनी सारी वृत्ति उसमें लगा देता है, मूल्य का विचार दिलमें नहीं करता; ऐसे ही विद्वान् पुरुष फलका कभी भी विचार नहीं करते। ऐसा करने वाले को कर्मों का बन्धन नहीं हो सकता। अब इसमें शंका होती है कि शुभ कर्म तो विष्णु अर्पण कर दिये, क्या पाप कर्म करके भी विष्णु अर्पण करदें ? हे प्यारे ! ऐसी शंका वाले मूर्खानन्द यह नहीं जानते हैं कि जब विद्वान निष्काम, रागद्वेष रहित और सबको नारायण रूप जानकर सब के भले के लिये कर्म करता है तो फिर क्या उससे पाप कर्म भी होसकेंगे ? यह बिल्कुल असम्भव है। अच्छा, यदि मान भी लें कि कोई ज्ञानवान् अशुभ कर्म करता है तो फिर यह अवश्य कहना पड़ेगा कि वह कर्म विष्णु अर्पण नहीं हो सकता; जैसे राम को कृष्ण का एक हजार रुपया देना है तो कृष्ण कह सकता है कि मेरा रुपया विष्णु अर्पण है, परन्तु राम यह नहीं कह

सकता कि मेरा ऋण विष्णु अर्पण है, ऐसा करने से वह ऋण से नहीं बच सकता; ऐसे ही हम शुभ कर्मों को विष्णु अर्पण कर सकते हैं, अशुभ कर्मों को नहीं ॥

अब अन्त में यह देखना है कि कर्म का फल पूर्णरूप से अवश्य भोगना पड़ता है या उसमें कुछ न्यून अथवा पूर्ण क्षमा भी हो सकती है। इसमें शास्त्रकारों ने यह कथन किया है:—

प्रभु किरपाते होत है सूली को काँटा।

भाव—ईश्वर कृपा से और सन्त महात्माओं की दया दृष्टि से कई वार ऐसा भी हो जाता है कि दुःख रूप फल संकल्प में ही भोगा जाता है, अर्थात् महात्मा स्वप्न में ही भुगतवा देते हैं; जैसे पंचम पातशाह श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने सुकेत मण्डी वाले राजा को स्वप्न में ही फल भुगतवा दिया था। और विचारवान् पुरुष तो उस सिपाही के समान है जो ढाल धारण किये हुए होता है, प्रारब्ध का दुःख रूपी तीर उनको लग कर भी अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसलिये विचार से और महात्माओं की कृपा से कर्म फल भोगने में न्यूनता भी हो सकती है। यही भगवत् शरण का फल है ॥

प्रश्नः नं ३५—हे भगवन् जी! सुना है कि मनुष्य के पास एक अमूल्य वस्तु है। वह क्या है?

उत्तरः—हे प्यारे! सुनोः—

(१) प्रह्लाद को पहाड़ी से गिराते हैं, जल में डुबोते हैं आग में फेंकते हैं और वह सब दुःखों से रहित कुशलता पूर्वक बाहर निकल आता है, छाती निकालकर प्यारे राम का भजन उच्च स्वर से करता है, लोग आश्चर्य करते हैं और कहते हैं हे भोले बच्चे? तुझे किस शक्ति पर मान है? तुझे कौन हर बार बचाता है? किसकी शक्ति पर तू प्रसन्न होरहाहै? एक भोली भाली ध्वनि होतीहै, "मेरा सत्य स्वरूप—प्यारा राम"

(२) विद्यार्थी गणित का एक कठिन प्रश्न लिये बैठा है, रीति समझ में नहीं आती, ऊधम वाली जगहसे उठकर अलग बैठ जाताहै।

और सब ओर से आँखें बन्द करके भीतर के सागर में डुबकी लगाता है। क्यों विद्यार्थी जी! भीतर कोई गुरु बैठाये हुए हो या कोई कुञ्जी (टीका) रक्खी हुई है? भीतर से किसकी खोज करते हो? शीघ्र ही मुँह से निकलता है, "मेरा ज्ञान का भण्डार!"

(३) महात्मा अपनी कुटियाके अन्दर एकान्त में बैठे हुए हैं, कभी आँखें बन्द कर लेते हैं कभी खोल लेते हैं, प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं, जब उपदेश करना आरम्भ करते हैं तो वेदों और शास्त्रों का सार निकाल देते है; ज़रा आँखें बन्द कीं और उपदेश की बातें फूट निकलीं। महाराज जी! किस धन पर इतने प्रसन्न हो? किस पुस्तक की सहायता से अमृत वर्षा करते हो? गर्जती हुई वाणी से महाराजजी बोले, "मेरा ज्ञान का भण्डार।"

(४) शरीर पर वस्त्र नहीं, पैसा पास नहीं, संसार में कोई सहायक नहीं, और कोई जीविका नहीं; लंगोटी बांधे हुए महात्मा अकेला वन में फिर रहा है। दर्शक--ऐसी दशा में आपकी प्रसन्नता कैसी? महात्मा-क्या मैं निर्धन हूं? क्या मैं सामान रहित हूं? (तत्काल निर्भयता से शब्द निकला) "नहीं! नहीं!! मेरा आनन्द का केन्द्र!!!"

(५) मेरे शरीर पर कठिन फोड़ा है जिसकी पीड़ा से सारा घर सिर पर उठा रहा हूं, डाक्टर भी लाचार हैं, सम्बन्धी सब दुःखी हैं, हज़ारों रुपये न्योछावर हो रहे हैं, परन्तु सबके सब बेकार हैं। क्या मैं निराश हो चुका हूं? नहीं, नहीं, अभी नींद आई और सब दुहाई मिटाई। सब देखने वाले आश्चर्य तथा काना फूसी करते हैं कि किस गुप्त शक्ति से इसे चैन मिला? गुप्त उत्तर मिलता है, "मेरा आनन्द का केन्द्र।"

(६) प्यारे आत्मन्! आज हम एक अद्भुत खोज के लिये निकले हैं, देखना है कि यह अटूट भंडार क्या है और किसको प्राप्त होता है? आज इस बात पर ही विचार करना है। हे भाग्यहीन! घर में सब कुछ होते हुए भी भूखे मर रहे हो, एक अक्षय भण्डार के मालिक होते हुए भी जीवन को दुःखी होकर व्यतीत कर रहे हो, शीतल जल का

कुण्ड मौजूद होते हुए भी गर्मी से व्याकुल हो रहे हों; ऐसी दशा दया के योग्य है ! एक कवि ने लिखा है:—

दो०—भीखा भूखा कोउ नहीं, सब की गठरी लाल।
गांठ खोल नहि जानते, इस विधि भए कङ्गाल ॥

राम की मौजूदगी में किस वस्तु का घाटा रह जाता है ? हे राम के प्यारे ! ज़रा अन्दर से भगवान् का दर्शन तो कर !! और प्यारे की झांकी तो देख !!!

तेरे शरीर और दिल, मेदा, व जिगर की मशीन को कौन चला रहा है ? यह प्यारा राम ही तेरे अन्दर तेरे सारे कार्य कर रहा है। तेरे शरीर के अन्दर अनगिनत कीटाणु हैं, उनमें जान डालने वाला और जान निकालने वाला सिवाय राम के क्या और कोई है ? तेरी जान, नहीं ! नहीं !! जानों की जान—प्यारा राम—हर समय तेरे अन्दर प्रकाशमान् है। इस हाड मांस के थैले के अन्दर चुंबकवत् आकर्षण किस का है ? क्यों सारा संसार इन मूर्तियों पर मस्त होरहा है ? हे प्यारे ! मूर्तियों पर कौन लट्टू है ? आकर्षण करने वाला प्यारा राम ही है। कुरूप से कुरूप बालक भी माता के लिये सुन्दर है, और उसे रूप-बसन्त से भी सुन्दर प्रतीत होता है, किस कारण ? प्यारे राम के कारण ॥

महात्मा आंखें बन्द करके किससे एकमेक होकर एक रस आनन्द प्राप्त करते हैं ? किसके प्रकाश से वह शास्त्रों का सार कुछ मिनटों में वर्णन कर देते हैं ? प्यारे राम के प्रकाश से। किससे तद्रूप होकर विद्यार्थी आंखें बन्द करके दिल के अन्दर उसकी सहायता मांगता है ? प्यारे राम से। अपना राम ही आनन्द का भण्डार है, यह ही अटल सम्पत्ति है, यह राम ही विद्या और आनन्द का सागर है, दुःखी से दुःखी पुरुष भी सुषुप्ति अवस्था में प्यारे राम के आनन्द से ही सुखी होता है; परन्तु मन्द भाग्य दुःख और चिन्ता के सागर में डूबा हुआ प्यारे राम का सर्व आनन्द भूल जाता है। जब इस आनन्द के सागर से बाहर आता है तो कुछ देर शान्त रहकर फिर दुःखी होना आरम्भ हो जाता

है। हे प्यारे! चाहे तुम अनुभव करो या नहीं, तुम हर समय इसी अक्षय भण्डार से आनन्द ले रहे हो, तुम्हारा जीवन इस राम के सहारे ही है। लड्डू, पेड़े तथा अन्य मिठाइयों में जो तुम्हें आनन्द प्रतीत होता है वह इसी आनन्द भण्डार की एक बूंद है; बी० ए०, ऐम० ए० और ऐल० ऐल० बी० की उपाधियां इसी ज्ञान के भण्डार की एक खोटी मुद्रा है। हे प्यारे! केवल खोटे सिक्के पर इतना घमण्ड न करना, शुद्ध विद्या के थैले और कोष को सम्हालो, और फिर तुम सम्राट हो। न्यूटन ने किस कोष से विद्या प्राप्त की? विज्ञान ज्ञाताओं ने किस पुस्तकालय से सारे सिद्धान्त निकाले? हे प्रिय! विज्ञानियों का विज्ञान, विद्वानों की विद्या तुम्हारे ज्ञान का भण्डार है। हे प्यारे आत्मन्! यह जो थोड़ा बहुत विद्या का प्रकाश तेरे भीतर दिखाई देता है वह तेरे ज्ञानभण्डार का ही है। हे प्यारे! राम का प्रकाश अन्तःकरण से फूट २ कर प्रतीत हो रहा है; ज़रा इस अन्तःकरण को शुद्ध करना आरम्भ करो, फिर प्रकाशका स्वाददेखो। जिनके अन्दर यह द्वैतका पर्दा बहुत कमज़ोर हो गया है या बिल्कुल हट गया है उनके अनुभव का अनुमान कौन लगा सके? वह तो सर्वज्ञ और अंतर्यामी हो जाते हैं, सारे संसार की विद्याएँ उनके अन्दर से फूट २ कर निकलती हैं। वह मुख से पुकार २ कर कहते हैं, "मेरा ज्ञान का भण्डार!"

हर दशा में प्रसन्न रहने वाले, दुःख सुख में हंसने वाले, प्रसन्नता से प्रकाशित मुख वाले महात्माजी! यह आनन्द कहां से लिया? हमने तो करोड़ों रुपये एकत्र करके इसका हज़ारवां भाग भी नहीं प्राप्त किया; और फिर वही उत्तर मिला कि "मेरा अटूट भण्डार!" हे प्यारे आत्मन्! वह केवल विद्या का भण्डार ही नहीं है किन्तु अनन्द का भी है; परन्तु किसको इस आनन्द का भाग मिलता है? उसीको जिस की वृत्ति प्यारे राम के साथ एकाग्र हो चुकी है। एक कविने लिखा है:—

रे–रख न शक तूं ज़रा इस विच, अन्दर अनन्द तेरे बाहरों टोलदातूं।
दौलत विषयों में अनन्द जो मानिआं तैं, बांगु कागदे गन्दगी फोलदातूं॥

जे करमिले विषय खुश हो बैठें, नामिले मन विच विष घोलदा तूं।
परमानन्द महानन्द त्याग करके, प्या अरूड़ियां दे कख रोलदा तूं॥

हे प्यारे ! यदि संसार में आनन्द, शान्ति और योग्यता चाहते हो तो अपने अटूट भण्डार की खोज करो, यह तुम्हारे शरीर के अन्दर ही विद्यमान है; हड्डियां, मांस और नाड़ी से अलग इसकी पहिचान करो, इसे विवेक द्वारा चेतन रूप समझ कर जड़ देह से भिन्न निश्चय करो; फिर क्या है, अक्षय भण्डार तुम्हारे हाथ में है ! ज़रा वृत्ति को प्यारे राम में लीन किया, आनन्द के कपाट खुल गये; फिर प्रातःकाल सायंकाल इसी समुद्र में लीन हो जाओ। येही आत्मिक सन्ध्या है, इसी से तेरे सब दुःख और दर्द दूर हो जावेंगे, आशा और तृष्णा का अभाव हो जावेगा और शान्ति का तेज बरसने लगेगा; येही प्यारे राम से मिलाप है। ज्ञान के बारूद से अज्ञान की दीवार उड़ादो, फिर राम का दर्शन प्रत्यक्ष है; जिस समय वृत्ति को एकाग्र करोगे तो दर्शन ही दर्शन होगा। जैसे लिखा है :—

दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब ज़रा गर्दन झुकाई देखली॥

शीशे को एक स्थान पर स्थित किये बिना तस्वीर का दर्शन नहीं हो सकता, मन को एकाग्र किये बिना प्यारे का दर्शन प्रत्यक्ष नहीं होता; बस प्यारे ! अब शंका किस बात की ? कंगालता कैसी ? पराधीनता पाप है क्योंकि अब तू राम से मिलकर शाहंशाह है, अब तुझे भय काहे का ? केवल अपने अक्षय भण्डार पर विश्वास करके इसको प्राप्त करने का यत्न कर, क्योंकि नर्क और वैकुण्ठ अब तेरे आधीन हैं; राम के साथ रहने का नाम वैकुण्ठ है और वियोग का नाम नर्क है, जिसको पता लग जावे कि इस दीवार की दूसरी ओर बहुमूल्य कोष (अक्षय भण्डार) पड़ा है उसको भला कब नींद आती है? वह दीवार में शीघ्र ही छेद करता है और जब तक धन को प्राप्त न कर लेवे, शान्ति नहीं पाता। हे प्यारे ! अब तुम्हें अपने अन्दर अक्षय धन—प्यारे राम—का पता लग गया है !! अब नींद हराम है !!! प्राप्ति

का यत्न करना उत्तम धर्म है। हर एक व्यक्ति शाहंशाह है, चाहे वह अपने धन को भूल कर भिक्षा पात्र ही क्यों न पकड़े हुए हो। प्यारा तुम्हारे साथ आंख मिचौनी का खेल खेल रहा है! उसे इसी महल के अन्दर से ढूंढलो !! फिर देखो क्या आनन्द आवेगा !!! बस प्यारे की खोज में तन मन से लगजाओ, अक्षय धन पाकर सच्चे शाहंशाह बन जाओ और फिर आनन्द से कहो, "यह मेरा अक्षय भण्डार है।" यही सच्चा मिलाप है, यही परमधाम है, इससे परे और कुछ नहीं॥

प्रश्न नं० ३६—भगवन्‌जी! मनके साथ प्रभु का क्या सम्बन्ध है और उनका परस्पर मिलाप कैसे होता है?

उत्तरः—हे प्यारे! इस बात में तो अब कोई शंका ही नहीं रही कि आत्मा का दर्शन इन चर्म नेत्रों से कदापि नहीं हो सकता; यदि आत्मा इन आँखों से दृष्टि में आजावे तो वह भी एक परिच्छिन्न और दृश्य पदार्थ हो जावेगा और जो वस्तु आँखों से दीखे वह सांसारिक पदार्थों की भांति नाशवान् और देश काल वस्तु परिच्छेदवाली होती है। परमात्मा का तो केवल अनुभव हो सकता है और वह भी केवल शुद्ध हृदय में। दिमाग़ (सांसारिक विचार वाली वृत्ति) और दिल (पारमार्थिक विचार वाली वृत्ति) में पृथ्वी और आकाशका अन्तरहै। दिमाग़ चतुराई की ओर लेजाता है और अपनी योग्यता के चमत्कार दिखा-दिखा कर अहंकार को दृढ़ करता है; परन्तु दिल अनुभव का घर है, प्रेम और भक्ति इसी के अंदर उत्पन्न होते हैं। परमार्थ में दिमाग़ की अपेक्षा दिल अधिक आवश्यक है दिमाग़ केवल प्रकाश का कारण है, परन्तु दिल के अन्दर शक्ति अर्थात् आत्मिक बल पैदा होता है। दिमाग़अर्थात् अक्ल संसार के ठाठ को बढ़ाती है, परन्तु दिल अर्थात् प्रेम इससे पल्ला छुड़ाता है। अक़ल और प्रेम का झगड़ा वर्णनः—

अक़ल कहे सिआना हो, प्रेम कहे दीवाना हो।
अक़ल कहे कुछ महल पवाइये, प्रेम कहे सबखाक रुलाइये॥
अक़ल कहे एह धियाँ पूत, प्रेम कहे सब झूठो झूठ।
अक़ल गावंदी अपने गीत, प्रेम गावंदा हरि के गीत॥

अक्ल सिर दर्दी और दिमाग़ी जमनास्टिक का नाम है और अहंकार, क्रोध, स्वार्थ तथा घृणा इसका परिणाम है; प्रेम सच्ची प्रीति का नाम है और मोहसे बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि इसमें पकड़ (फँसाव) नहीं है और सर्वात्म भाव, शान्ति तथा आनन्द इसका परिणाम है। सज्जनो ! परमार्थ के लिये हमारा सम्बन्ध अधिकतर दिल से है, और दिल भी वह जो शुद्ध भाव को प्राप्त हो चुका हो। यदि लोहे के ऊपर से मिट्टी आदि उतर चुकी है तो चुम्बक उसे शीघ्र ही खेंच लेगा, जब तक मिट्टी उसके चारों ओर लिपटी हुईहै तो समीप होने पर भी नहीं खेंच सकता; ऐसे ही जब दिल शुद्ध हो जायगा तो दिलबर उसे शीघ्र खेंच लेगा। यदि प्रियतम हमारा दिलबर है तो उसे हमारे दिल को अपनी ओर आकर्षित करने में किसको शंका है ? परन्तु शोक तो इस बात का है कि यहां पर दिलबर ही कोई और बना बैठा है, स्त्री के प्रेम और पुत्र के मोह ने दिल को अपनी ओर केवल आकर्षित ही नहीं किया हैं किन्तु अपनी दृढ़ शृंखलाओं (जंजीरों) में बांध लिया है, रुपये के लोभ और मन्दिरों तथा महलों के चाव ने दिल को कितने दुर्भावों द्वारा अपराधी कर दिया है, तृष्णा और शत्रुता के भावों ने दिल को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है, बिखरे हुए पारे के समान दिल टूट चुका हैं; एक दिलबर का क्या कहना, यहां तो कई दिलबर उत्पन्न हो चुके हैं। इन दृढ़ शृंखलाओं में जकड़ा हुआ दिल अब कैसे परमार्थ की प्राप्ति करे ? क़ैदी की क्या शक्ति कि एक पग भी चल सके। जिस घोड़े को अगाड़ी, पिछाड़ी और रस्सियों से भली प्रकार जकड़ा हुआहो वह हमारी यात्रा कैसे पूरी करा सकता है। जिस दिल को अपने शरीरकी चिन्ता, सम्बन्धियोंका प्रेम, रुपये का लोभ और स्वर्गादिक की इच्छारूपी क़ैदहो वह प्रियतमके मिलापके लिये कैसे पग उठा सकता है? अर्थात् नहीं। जैसे पहिले क़ैदी के हाथ पांव खोले जावें और घोड़े की अगाड़ी पिछाड़ी के रस्से काटे जावें, तो फिर आशा हो सकती हैं कि यात्रा पूरी होजावे। पुनः जैसे जिसका शरीर बहुतसमय तक जंजीरों से

बंधाहुआ औरचेष्टा रहित रहाहो उसके लिये बंधनमुक्त होनेपरभी एक दम चलना कठिनहै, धीरे२ अंग हिलने लगेंगे तब चलनेकी शक्ति पैदा होगी, ऐसे ही जो मन जन्म जन्मान्तरों से मोह माया के जाल में फंसा हुआ मृतक के समान होचुका है वह इस जाल से मुक्त होकर भी धीरे धीरे यात्रा करने के योग्य होगा। नाम रूप से चित्त उठाकर अधिष्ठान आत्मा में तदाकार करना ही पग उठाना है। चौबीस घंटे दिल मायिक पदार्थों का ध्यान करता है और फिर इच्छा यह करता है कि परमात्मा की प्राप्तिहो। एक मन मिर्च के अन्दर एक छटांक खांड़ डालनेसे उसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? सारा दिन व्यवहार में मग्न रहकर एक घड़ी भजन करनेसे परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है व जैसे रस्साकशीके खेल में एक ओर के खिलाड़ी यद्यपि बहुत बल लगावें, तद्यपि जबतक दूसरी ओर के खिलाड़ियोंसे अधिक बल न होगा तबतक उनकी विजय नहीं होगी, किन्तु यह कहना उचित होगा कि लगाया हुआ बल भी निष्फल जायगा; यह माना कि उनका कुछ परिश्रम होजावेगा, सम्भव है कि वह किसी और मैच में उनकी सहायता कर सके, तद्यपि न जाने फिर मैच कब होवे और कौन जाने कि उस वार मुकाबिले वाली टीम कितनी शक्ति शाली होवे। ऐसे ही परमार्थ के पुरुषार्थ में जबतक हमारा बल मायिक पदार्थों की आकर्षण शक्ति और व्यवहार की विक्षेप शक्तिकी अपेक्षा प्रबल न होगा तबतक हमारी विजय कभी नहीं हो सकेगी और यह सारा पुरुषार्थ इस जन्ममें तो निष्फल होहीजावेगा और अगले जन्म की राम जाने। ताते सिद्ध हुआ कि उत्तम विचार के वारम्वार अभ्यास से दिलको बलवान बनाना, निष्काम कर्मों से इसे शुद्ध करना और मोह माया के बन्धनसे छुड़ाना हमारा परम धर्म है। फिर मिलाप में ज़रा भी देर नहीं। जैसे मैलसे रहित शुद्ध लोहेको चुम्बक शीघ्र ही आकर्षण कर लेता है, तैसेही शुद्ध हृदयको दिलबर शीघ्र अपनेसाथ तद्रूप कर लेताहै। प्यारे ! याद रक्खो कि परमात्माके खोजने कीतुम्हें कोई आवश्यकता नहीं; लोहा चुम्बक को ढूँढने के लिये कहीं अकुलाकर घूमता नहीं फिरता,

केवल अपने आपको मिट्टी और ज़ंग से शुद्ध करता है, चुम्बक की समीपता होने पर तत्काल ही वह लोहे को आकर्षित करके अपने साथ मिला लेता है। तुम भी अपने दिलबर की खोज में परेशान न फिरते रहो, वह तुम्हारे अति समीप है; केवल दिलको शुद्ध करो और इस मोह माया की काई को धोडालो, फिर मिलाप में देरी नहीं है। परमात्मा का नाम दिलबर है, अर्थात् वह स्वयं दिल को अपनी ओर खेंच लेता है, यानी अभेद निश्चय होजाता है जैसे कि लिखा है:—

मन तू शुदम तू मन शुदी, मन दिल शुदम तू जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बादे अज़ीं, मन दीगरम तू दीगरी॥

अर्थात् मैं और तू एक हो गये जैसे दिल और जान होते हैं, ताकि इसके बाद कोई यह न कहे कि तू और है और मैं और हूं। इसी का नाम मिलाप है॥

प्यारे! सनातन धर्म की महत्ता को ध्यान से देखो। पतिव्रता स्त्री का उदाहरण तुम्हारे सामने है, केवल अपने पति को अपना दिलबर समझती हुई वह अपने दिल को पूर्ण रूप से पति के अर्पण कर देती है; यदि भोजन पकाने में दिल देती है तो भी पति के लिये ही, यदि हाथ पांव से कोई काम करती है तो भी पति के लिये ही, यदि आंखों से दर्शन करती है तो भी पति का और यदि मन से ध्यान करती है तोभी पति का। सारांश यह कि उसका लक्ष्य पति की प्रसन्नता ही है, एक पति के अतिरिक्त सारा संसार उसके लिये लय भावको प्राप्त होचुका है; उसके लिये संसारमें दो ही वस्तुहैं—दिल और दिलबर; और दिल भी दिलबर में लीन होचुका है शेष केवल दिलबर ही दिलबर रह गयाहै॥

ऐसे ही स्त्री रूप जिज्ञासु जिन्होंने सद्गुरु को अपना सर्वस्व अर्पण करके निज स्वरूप रूप पति को प्राप्त कर लिया है, अर्थात् जिनका सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म के साथ अभेद दृढ़ निश्चय हुआ है, उनकी सेवा के लिये सम्पूर्ण प्रकृति हाथ बांधे खड़ी रहती है, और वह लोक हितार्थ उपदेश देते हुए अनेकों का कल्याण करते हैं। उनकी मुक्त अवस्था में

जितनी भी क्रिया होती है वह सब के हितार्थ ही होती है, और वह सर्वदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके इस प्रकार के आचार से उनके सम्बन्धियों को भी ऊंचगति की प्राप्ति होती है। सारांश यह कि उन का सम्पूर्ण जीवन कल्याणार्थ ही होता है। फिर जैसे जो पुरुष राजा के घर पर महमान बन कर जाता है, सारे अमीर, वज़ीर, नौकर चाकर उसके दास बन जाते हैं और उसकी प्रसन्नता के अभिलाषी होते हैं। उस महमान को अब वज़ीरों और नौकरों की सफ़ारश या आश्रय की क्या आवश्यकता है? उसकी सेवा तो राजा स्वयं करता है। ऐसे ही जिसने अपना दिल दिलबर को समर्पण कर दिया है। उसकी रक्षा के लिये सारी प्रकृति और सूर्यादि देवता तैयार खड़े हैं। उसका अहंकार अब मिट चुका है और वह परमात्मरूप हो चुका है, इसलिये उसका संकल्प अब ईश्वरीय संकल्प है, उसके पूर्ण होने में शङ्का ही नहीं हो सकती। हे प्यारे! सन्सार में रहते हुए अपने सम्बन्धी स्त्री और बच्चों को अन्य सब पदार्थ बिना सोचे समझे दे दे, परन्तु दिल किसी को मत दे, यह दिलबर की अमानत (धरोहर) है, अमानत में ख्यानत (बेईमानी) मत करो; दिल दिलबर के लिये रक्खो और शेष सब कुछ बांटदो। फिर प्रातः व सायंकाल एकान्त में बैठकर दिल में मोह वान्छा, लगाव, मित्रता, शत्रुता, हर्ष, शोक, ऊंच, नीच, आदि के ज़ंगाल को धोना आरम्भ करो। वारम्वार यह अभ्यास करो कि इस हाड मांस के थैले में रक्त, मांस, हड्डियां, चरबी, बलग़म, विष्टा, आदि के सिवाय और क्या है? जिस प्रकाश के कारण सम्बन्धियों के शरीर प्यारे प्रतीत हो रहे हैं वह तो तेरा आत्मा ही है, तू किस वस्तु के पीछे लोट पोट होरहा है? जब सब से प्रिय वस्तु आत्मा—तेरा अपना आप—ही है तो फिर किसकी इच्छा करता है? पदार्थों की इच्छा तो इसलिये होती है कि वह आनन्द रूप प्रतीत होते हैं; आनन्द का भण्डार तो तू आप है! तुझे और किस आनन्द की इच्छा होनी चाहिये? जब सब आत्मा ही है और सारा संसार तेरा स्वरूप है

तो फिर मित्रता शत्रुता किससे ? जब इस प्रकार के विचार से मन शुद्ध हो जावेगा तो फिर चुम्बक का आकर्षण इसे स्वयं खेंच लेगा; परन्तु लोहे को चुम्बक उसी दशा में खेंचेगा जब कि वह बंधन-मुक्त होगा, यदि वह किसी रज्जु आदि से बँधा हुआ है तो उसे चुम्बक नहीं खेंच सकेगा ॥

प्रियतम उस मन को अपने साथ तद्रूप करेगा जो सांसारिक मोह आदि से विरक्त है यदि मन किसी और पदार्थ या सम्बन्धी के प्रेम या अपने शरीर के मोह में जकड़ा हुआ है तो उसे दिलबर कैसे खेंच सकता है ? तात्पर्य यह कि यदि दिल में दिलबर का मिलाप करना चाहते हो तो इसे विरक्त और शुद्ध करो । भगवान् कृष्ण को संसार में अवतार लेने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इस लिये कि अपने प्यारे भक्तों, देवी देवताओं और सबको मोहनी रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनका दिलबर बने । सब देवी देवताओं को पहिले ही से ब्रज में भेज दिया, गोपियों और ग्वालों के रूप में उनको स्थित करके आप उनके दिलबर बने । बस फिर क्या था ? गोपियों के शरीर तो घर में ही हैं, परन्तु दिल दिलबर के पास है; माता-पिता कहते हैं कि तुम किस रंग में हो ? उत्तर में मौन हैं, लुहार की धौंकनी की भांति श्वास तो ले ही रही हैं, परन्तु अनुभव करने की शक्ति दिलबर के पास है; माता-पिता की लानत-मलामत (खरी-खोटी सुनाने) का कोई फल नहीं है, उनको सुख में सुख और दुःख में दुःख का अनुभव नहीं होता, क्योंकि दिल दिलबर के पास है । इसी बात के लिये भगवान् कृष्ण ने अवतार लिया और दिल दिलबर की कहानी को फिर से नया किया; जिन गोपियों के इतिहास को सुनकर आज हम हंसी करते हैं उनको साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति हुई है । भगवान् ने ऐसा मोहनी रूप धारण किया कि खोटेसे खोटे दिलके भी दिलबर बन गये, सैंकड़ों जन्मों में मनकी शुद्धि के लिये जो पुरुषार्थ करना था उस कष्ट से तत्काल बचाकर यात्रा को क्षण भर में पूरा करा दिया । आज हम मन्दिरों में इसीलिये जाते हैं

कि भगवान् की मोहनी मूर्ति हमारे दिल का दिलबर बन सके, परन्तु हमारा कच्चा निश्चय हमें कुछ नहीं करने देता; केवल निश्चय की ही न्यूनता है नहीं तो मन्दिर में भगवान की मूर्ति हमारा दिलबर क्यों न बने जब कि धन्ने भगत ने अपने दृढ़ निश्चय से पत्थर से दिलबर निकाल लिया। प्यारे! भगवान् के अवतार की सच्ची महत्ता इसी में है कि हम इसे अपना दिलबर बनासकें। दिलबर को अपना दिल देनाही परम प्रयोजन है! यही परम धाम है!! इसके सिवाय और कुछ नहीं!!!

प्रश्न नं० ३७–भगवन् जी! आप कहते हैं कि ज्ञान होने पर शीघ्र ही मोक्ष हो जाती है; फिर ज्ञानी का शरीर क्यों दीखता है?

उत्तरः--हे प्यारे इस में कोई संशय नहीं कि दृढ़ ज्ञान होते ही तुरन्त मोक्ष हो जाती है, परन्तु मोक्ष दो प्रकार की है–एक जीवन्मुक्ति और दूसरी विदेह मुक्ति। यदि प्रारब्ध शेष हो तो दृढ़ ज्ञान हो जाने पर वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्ध भोगता हुआ भी अभोक्ता होता है, शरीर रखता हुआ भी अशरीरी है, उसके सब कर्म आभास रूप ही होते हैं; जीवन्मुक्त पुरुष ही प्रारब्ध समाप्ति पर विदेह मुक्त होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं–(१) संचित, (२) क्रियमान् और (३) प्रारब्ध। ज्ञानाग्नि से सञ्चित कर्म तो बिल्कुल दग्ध हो जाते हैं और आगामी कर्म भी फल रहित हो जाते हैं; परन्तु प्रारब्ध कर्म शेष रह जाते हैं जिनको भोगकर ज्ञानवान् पुरुष विदेह मुक्त होता है। वास्तव में तो यह (प्रारब्ध) कर्म भी दग्ध हुए वस्त्र वत् हैं, परन्तु ईश्वरीय संकल्प के आधीन होते हैं इस लिये उनका स्वरूप प्रतीति मात्र ही रहता है। जैसे महाभारत के युद्ध में एक दिन रणभूमि में जाते समय श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन के रथ में बैठने से पहिले ही यह शुद्ध सङ्कल्प किया कि आज सायंकाल को इसी रथ में बैठ कर हम घर लौट आवेंगे; यद्यपि अश्वत्थामा के अग्न्यास्त्र से रथ और घोड़े अन्दर से दग्ध हो गये थे, तथापि भगवान् कृष्ण के सत्य संकल्प के कारण वह गिरने नहीं पाये; जब सायंकाल

श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन निवास स्थान पर पहुँचे तो पहले अर्जुन को रथ से उतारा पीछे भगवान् के उतरते ही वह रथ घोड़ों समेत भस्मी भूत हो गया। तैसे ही ज्ञानवान् का शरीर ईश्वर के सत्य संकल्प रूपी प्रारब्ध समाप्ति पर्यन्त रहताहै, तत्पश्चात् वहविदेह मुक्तिको प्राप्तहोताहै॥

प्रश्न नं० ३८—भगवन् जी! सुना है कि जब तक कर्मों का पर्दा रहता है तब तक ज्ञान नहीं हो सकता। यदि प्रारब्ध कर्म शेष हों तो ज्ञान कैसे हो सकता है?

उत्तरः—हे प्यारे! इस नियम के समझने में तुझे थोड़ी सी भूल लगी हुई है। कर्मों के नाश से ज्ञान नहीं होता है किन्तु ज्ञान से कर्म नाश होते हैं। कर्मों का नाश भोगने से कभी नहीं हो सकता, आगामी कर्म एक से अनेक होकर सञ्चित कर्मों में सम्मिलित होते रहते हैं। जैसे कुठीले में पचास मन गेहूं हैं, उसमें से चार-पांच मन तो खाने को निकाल लिये जावें और एक मन खेत में बो दिये जावें, तो प्रतिवर्ष एक मन के तीस चालीस मन होकर कुठीले में मिलते रहेंगे, खाने में केवल चार-पांच मन ही उठेंगे, इसी प्रकार प्रतिवर्ष गेहूं बढ़ता जाता है और खाने से समाप्त नहीं हो सकता; ऐसे ही कर्मों का विस्तार भोगने से समाप्त नहीं हो सकता, किन्तु ज्ञानाग्नि से दग्ध होकर समाप्त हो जाता है॥

दृष्टान्त—जैसे एक मन्दिर में गैस की बत्ती जगमग कर रही है और दूसरे मन्दिर में कोई पुरुष बैठा है, दोनों मन्दिरों के बीच में काग़ज़ और गत्तों (पट्ठों) की दीवारें हैं; तो जब तक पर्दा है तब तक गैस के प्रकाश का अनुभव नहीं हो सकता। ऐसे ही जब तक कर्मों का पर्दा है तब तक आत्मा के प्रकाश का (जो सदा विद्यमान है) अनुभव नहीं हो सकता, यदि गत्तों की दीवार को उठा दिया जावे, केवल एक काग़ज़ का पर्दा ही शेष रह जावे तो गैस का प्रकाश रुक नहीं सकता, उल्टा वह प्रकाश नेत्रों के लिये बहुत सुखदायक होता है और सम्पूर्ण व्यवहार की सिद्धि भी करताहै। ऐसे ही यदि ज्ञान रूप अग्नि से सञ्चित

कर्म गत्तोवत् समाप्त होजावें और काग़ज़वत् प्रारब्धका पर्दा शेष रहजावे तो स्वरूप के प्रकाश में क्या रुकावट रह सकती है ? उलटा प्रारब्ध कर्म के पर्दे के रहते हुए ही ज्ञानवान् पुरुष जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द को प्राप्त करता है और वही ज्ञानवान्, स्वरूप के प्रकाश में ब्रह्म विद्या का उपदेश रूपी व्यवहार भी भली प्रकार करता है। इसलिये हे प्यारे ! ज्ञानाग्नि से कर्मों को दग्ध करके आत्म ज्ञान का आनन्द लो ॥

प्रश्न नं० ३९–हे भगवन् ! मोक्ष का हेतु कर्म है या ज्ञान या उपासना ?

उत्तरः–हे प्यारे ! पहिले मोक्षका स्वरूप समझो, फिर तुम स्वयं ही निश्चय कर लेना। मोक्ष नाम छुटकारा पाने का है, जब जीव जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा पाता है तो फिर उसकी मोक्ष हो जाती है। जन्म देने की शक्ति अज्ञान और देह अहंता से किये हुए संचित कर्मों के संस्कारों में है, जब तक अज्ञान दूर न हो और संचित कर्मों के संस्कारों का नाश न हो तब तक जन्म होता ही रहेगा; यदि जन्म होगा तो प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर मरण भी होता ही रहेगा। अज्ञान ज्ञान के बिना दूर हो नहीं सकता। जैसे अंधेरे को डंडे से मारें या उसके आगे हाथ जोड़कर प्रार्थना करें कि यहां से निकल जा तो वह कभी दूर नहीं हो सकता, केवल प्रकाश से ही दूर हो सकता है; ऐसे ही अज्ञान रूपी अंधेरा ज्ञान रूपी प्रकाश से ही दूर होसकता है। और संचित कर्म भी ज्ञानाग्नि से ही दग्ध हो सकते हैं, भगवान् ने गीता में कहा है कि जैसे अग्नि से कांटों का जंगल दग्ध हो जाता है तैसे ही ज्ञानाग्नि से संचित कर्म दग्ध होजाते हैं इसलिये हे प्यारे ! केवल ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। यदि यह कहो कि वेदों में तो उपासना से ही मोक्ष लिखी है तो वह अभेद उपासना से मोक्ष लिखी है न कि भेद उपासना से। उपासना दो प्रकार की होती है। भेद उपासना और अभेद उपासना। भेद उपासना का यह अर्थ है कि सच्चिदानन्द परमात्मा को सर्व शक्तिमान् समझना और अपने

आपको भिन्न और अल्पज्ञ जीव समझ कर उपासना करनी; जैसे कि हे प्रभो ! तुम सबके दाता हो, मैं आपका याचक हूं, तुम स्वामी हो, मैं सेवक हूं, तुम सर्वज्ञ हो, मैं अल्पज्ञ हूं, इत्यादि । यथा गुरु प्रमाण:-

जाचकु मंगै दानु देहि पिआरिआ ॥ देवन हारु दातारु मै नित चितारिआ ॥

(गउड़ी की वार पृ० ३२०)

पुनः- तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता, तूं मेरा बंधपु तूं मेरा भ्राता ॥

तूं मेरा राखा सभनी थाई ता भउ केहा काड़ा जीउ ॥ १०३ ॥

(माझ म० ५ पृ० १०३)

पुनः- अपने सेवक की आपे राखै आपे नामु जपावै ॥

जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै ॥

सेवक कउ निकटी होइ दिखावै ॥ (आसा म० ५ पृ० ४०३)

ऐसे उपासक सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियों को प्राप्त होते हैं। यह चार प्रकार की मुक्तियां केवल रोचक रूपसे ही कही गई हैं, वास्तव में यह मुक्तियां नहीं। जिह्वा-गुड़ न्याय से इनको मोक्ष कहा गया है। जैसे अन्जान बालक जब दवाई नहीं पीता तो माता उसे गुड़ या मिठाई का लालच देकर कहती है कि यदि तुम दवाई पी लोगे तो तुम्हें गुड़ या मिठाई दूंगी, जब वह दवाई पी लेता है तो फिर वह कहती है कि 'कौआ लेगया', वास्तव में उसका तात्पर्य दवाई पिलाने का होता है। ऐसे ही सालोक्य,सामीप्य, आदि मुक्तियाँ केवल रुचि दिलाने के लिये कथन की गई हैं, ताकि मनुष्य अशुभ कर्मों को छोड़ कर शुभ कर्मों और उपासनाओं में प्रवृत्त होवे। वेद-शास्त्रों में तीन प्रकार के वाक्य आते हैं-भयानक, रोचक और यथार्थ। भयानक वाक्यों द्वारा पामर पुरुषों को नर्कों का भय दिखला कर मन्द कर्मों से रोकने का तात्पर्य है, रोचक वाक्यों द्वारा स्वर्ग आदिकों का सुख दिखा कर शुभ कर्मों और उपासना में प्रवृत्ति कराने का तात्पर्य है और यथार्थ वाक्यों से ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का तात्पर्य है; सो जैसा रोगी हो वैसी ही औषधि होती है। भेद उपासना भी दो प्रकार की है-एक तो पाषान आदि में देव दृष्टि से उपासना करनी या

देवी देवताओं की उपासना करनी; यह कनिष्ट उपासना है और इसका फल मल विक्षेप की निवृत्ति और उपास्य देव के लोक की प्राप्ति है। दूसरी भेद उपासना 'मध्यम उपासना' कही गई है; परब्रह्म को सर्व व्यापी और सच्चिदानन्द समझना और अपने आपको उससे भिन्न जीव समझ कर उपासना करनी, यह इसका स्वरूप है; इससे भी कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, केवल अभेद उपासना ही कैवल्य मोक्ष का हेतु है। अभेद उपासना उत्तम उपासना है, इसका स्वरूप यह है कि 'सच्चिदानन्द ब्रह्म से अपने आपको अभिन्ननिश्चय करना और अपनी अहंता त्यागकर सबको गोविन्द रूप निश्चय करना'; इसका नाम अहंग्रह उपासना है, और यही स्वरूप तत्त्वज्ञान का है; इसलिये अभेद उपासना और तत्त्वज्ञान एक ही होने से उसको मोक्ष माना है। यदि तुम यह कहो कि भगवान् ने गीता में 'कर्मों से संसिद्धि' कही है क्योंकि अर्जुनको भगवान् ने कर्म न त्यागने का उपदेश किया है, सो यहां संसिद्धि का अर्थ मोक्ष नहीं है किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि है। अन्तःकरण में तीन दोष होते हैं—मल, विक्षेप और आवरण। मल नाम जन्म जन्मान्तरों में किये हुए पाप कर्मों के अथवा कामना सहित किये हुए कर्मों के संस्कारों का है जो हमेशा जीव को वासना के आधीन करके मन्द कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। जैसे गुरुजी कथन करते हैं:—

जनम जनम की इस मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ॥

(सलोक म० ३ पृ० ६६१)

विक्षेप नाम मन की चंचलता का है और आवरण नाम पर्दा या अज्ञान का है जो सच्चिदानन्द परब्रह्म से अभिन्न होते हुए भी जीव को भिन्न दिखा रहा है जिसके कारण हम यह कहते हैं कि 'अहं न जानामि अहं किमस्मि' अर्थात् मैं नहीं जानता हूं कि मैं कौन हूं। मल दोष की निवृत्ति निष्काम कर्मों से और नाम जपने से होती है, विक्षेप की निवृत्ति उपासना से होती है और आवरण की निवृत्ति केवल ज्ञान से ही होती है। जैसे रात्रि को चन्द्रमा और सितारे दूर नहीं कर सकते, केवल

सूर्यसे ही दूर होती है, और फिर जैसे बर्फ़ को दीपक आदि के प्रकाश नहीं पिघला सकते, केवल सूर्य ही उसे पिघला सकता है; ऐसे ही आवरण दोष की निवृत्ति कर्म उपासना से नहीं होती, केवल ज्ञान से ही होती है। नमक को तेल या घी में डालें तो वह नहीं गलता, केवल जल में डालने से ही गलता है क्योंकि वह जल से ही उत्पन्न हुआ है; ऐसे ही कर्म उपासना से आवरण की निवृत्ति नहीं होती, केवल ज्ञान से ही होती है। यदि यह कहो कि कई उपासकों को क्षणमात्र के लिये साक्षात्कार हुआ है और उस समय आवरण की निवृत्ति हुई है; सो ऐसा नहीं है। इसका कारण यह है कि जिस समय उपासक उपासना में इतना लीन हो जाता है कि उसे अपना आप भूल जाता है और वह अपनी अहंता को अपने उपास्य के स्वरूप में बिल्कुल लीन कर देता है, उस समय विक्षेप दोष की निवृत्ति होने से उपासना द्वारा दृढ़ किये हुए दर्शन संस्कार मूर्तिमान होते हैं और चमत्कार दिखा कर लोप हो जाते हैं; इसका अर्थ यह नहीं है कि आवरण दोष दूर हो जाता है, यह तो अपना सङ्कल्प ही अभ्यास द्वारा दृढ़ होकर एक क्षण के लिये मूर्तिमान होकर भासता है, आवरण की निवृत्ति तो केवल ज्ञान से ही होवे है। निस्सन्देह निष्काम कर्म उपासना के सहायक हैं और उपासना श्रवण की; श्रवण मनन का, मनन निदिध्यासन का और निदिध्यासन साक्षात्कार का सहायक है। इस प्रकार से निष्काम कर्म पहिली कक्षा है और आवश्यक है, पहिली कक्षा के पास किये बिना कोई पुरुष बी०ए० की परीक्षा पास नहीं कर सकता। निस्सन्देह जो छोटी कक्षाओं को पास कर चुका है उसके लिये फिर उनमें प्रवृत्त होना केवल परिश्रम ही नहीं किन्तु मूर्खता भी है; क्योंकि छोटी कक्षाओं में पढ़ी हुई विद्या का ज्ञान तो उसे स्वतः ही रहे हैं और अभ्यास भी अपने आप ही होता रहता है, फिर वह समय को व्यर्थ क्यों खोवे? उसके लिये तो अब आगे पग रखना ही योग्य है। ऐसे ही निष्काम कर्म परमार्थ में प्रवृत्त होने वाले के लिये आवश्यक हैं,

परन्तु जब अन्तःकरण की शुद्धि हो जावे तो फिर उपासना आदिक में प्रवृत्त होना योग्य है, न कि कर्मों में ही लगे रहना; निष्काम कर्म तो उससे स्वाभाविक ही होते रहेंगे, इसलिये उसको अपनी पूर्ण वृत्ति ऊपर की श्रेणियों को पार करने में लगानी चाहिये। जहां भगवान् ने यह कहा है कि मनुष्य कभी कर्मों का त्याग न करे वहां उसका अर्थ यह है कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म करता रहे; सकाम कर्मों से निष्काम कर्म श्रेष्ठ हैं, निष्काम कर्मों से भेद उपासना श्रेष्ठ है, भेद उपासना से श्रवण श्रेष्ठ है, श्रवण से मनन श्रेष्ठ है और मनन से निदिध्यासन श्रेष्ठ है; इसलिये निम्नकोटि के कर्मों का त्याग, करता हुआ उच्चकोटि के कर्मों में प्रवृत्त होता जावे और अंत में अभेद उपासना या तत्त्व ज्ञान के अभ्यास रूपी कर्म में सदैव काल दृढ़ रहे; इससे बढ़कर और कौनसा श्रेष्ठ कर्म होसकता है ? यह कौन कहता है कि पढ़ाईको छोड़दो, परन्तु छोटी कक्षाओं की पुस्तकें (जिनको तुम पढ़ चुके हो) वारम्वार पढ़ने से क्या लाभ ? इसलिये तत्त्व ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है न कि कर्म उपासना। जिस वस्त्र में मैल होती है उसको ही साबुन सज्जी से साफ़ करके रंग चढ़ा दिया जाता है; ऐसे ही जिस के अंतःकरण में मल दोष हो उसके लिये निष्काम कर्म आवश्यक हैं, मल दोष से रहित के लिये परिश्रम मात्र हैं। और जैसे रंगे हुए वस्त्र को साबुन सज्जी देना उसका रंग उतारना है, तैसे जिसको आत्मज्ञान रूपी रंग चढ़ चुका है उसका फिर कर्मों में प्रवृत्त होना आत्मज्ञान को शिथिल करना है, जो कि हानिकारक है। इसलिये मल दोष की निवृत्ति के लिये ही निष्काम कर्म करने चाहिये। आवरण दोष तो आत्मज्ञान से ही दूर होवे है और मोक्ष केवल ज्ञान से ही होवे है॥

प्रश्न नं० ४०--अज्ञान (माया) अनादि है, और अनादि वस्तु अनन्त होती है। जब माया अनन्त है और नाश नहीं हो सकती तो मोक्ष असम्भव है; इसलिये मोक्ष के लिये पुरुषार्थ करना निष्फलहै॥

उत्तरः—इसमें कोई संशय नहीं कि माया अनादि है। जिसका

आदि न हो वह वस्तु अनादि होती है, परन्तु यह नियम नहीं कि हर एक अनादि वस्तु अनन्त होती है, केवल ,अनादि सत्य'ही अनंत होती है। परन्तु 'अनादि कल्पित' वस्तु में यह नियम नहीं होता है। जैसे रज्जुमें सर्प की भ्रान्ति कल्पित है; यदि कोई पूछे कि रज्जु में कब से सर्प की भ्रान्ति चलीआरही है? तो इसका उत्तर कोई नहीं देसकता। भ्रान्ति होना अन्तःकरण का प्राकृतिक गुण है। रज्जु में कल्पित सर्प का आदि किसीको ज्ञात नहीं है, इसलिये कल्पितसर्प अनादि है। अब देखना यहहै कि कल्पित सर्प अनन्त भी है या नहीं। प्रत्यक्ष प्रगट है कि प्रकाश होने पर भ्रान्ति का अभाव होने से कल्पित सर्प का भी अभाव हो जाता है; इसलिये यहां अनादि कल्पित वस्तु अनन्त नहीं है। फिर देखो स्वप्न में हमने कई बूढ़े आदमी देखे, बड़े २ ऊंचे पीपल के पेड़ देखे, कई पुराने महल देखे; अब विचारना यह है कि वह स्वप्न काल में ही बने या प्रहिले से ही बने हुए थे। क्षण मात्र में ही ऊंचे ऊंचे पेड़, बूढ़े पुरुष और पुराने महल तैयार नहीं हो सकते। यदि उनका आदि ढूंढना चाहो तो कुछ पता नहीं लगता, इसलिये वह भी अनादि हैं; परन्तु जाग्रत होने पर उनका भी नाम व निशान नहीं रहता–तत्काल शान्त हो जाते हैं; कारण यह है कि वास्तव में वह कोई वस्तु न थे। जो वस्तु वास्तव में न हो उसके नाश होने में क्या देर लगती है? ऐसी वस्तुओं के आदि का ज्ञान न होने से अनादि तो कहलाती हैं, परन्तु (क्योंकि वह कल्पित हैं और वास्तव में उनकी कोई सत्ता नहीं होती) भ्रान्ति का कारण दूर होने से तत्काल ही उनका अभाव हो जाता है। फिर देखो, एक मेज़ है, उसके बनने से पहिले उसका अभाव था, वह अभाव कबसे चला? कोई नहीं बता सकता, इसलिये वह अभाव अनादि है; मेज़ बन जाने पर वह अभाव शान्त होगया। इसलिये सिद्ध हुआ कि कल्पित वस्तु चाहे अनादि क्यों न हो, अनन्त नहीं होसकती। माया तत्कार्य सहित कल्पित अनादि है, अर्थात् यह वास्तव में कोई वस्तु नहीं है, शुद्ध ब्रह्म में भ्रान्ति से इसकी केवल प्रतीति होती है; ब्रह्मज्ञानसे

यह निवृत्त हो जाती है। इससे इसका नाम सान्त अनादि है; जो वस्तु ब्रह्मज्ञान से निवृत्त हो जावे वह सान्त अनादि कहलाती है। यदि यह कहो कि "रज्जु में सर्प भ्रान्ति से प्रतीत होता है, और बुद्धिमान् मनुष्य जानता है कि यह केवल भ्रान्ति है; परन्तु मायाके पदार्थ तो क्या अज्ञानी क्या ज्ञानवान्, सबको प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं, इसलिये कोई प्रत्यक्ष उदाहरण होना चाहिये जो जाग्रत के मायिक पदार्थों से लियाजावे," तो एक और दृष्टान्त सुनो :—

जैसे गेहूंका दाना और उसका पौदा दोनों अनादि हैं। यदि विचार दृष्टि से देखें तो हमें दोनोंकी आदिका कोई पता नहीं चलेगा कि कौन पहले और कौन पीछे है; अधिक से अधिक यही कहेंगे कि दानाही आदि है। परन्तु दाना बिना पौदे के हो नहीं सकता, इससे उसके आदि का भी कुछ निश्चय नहीं; बस, कहना पड़ेगा कि दानाही अनादि है। अब देखना यह है कि यह अनन्त भी है या नहीं। यदि दाने को भून दिया जावे तो चाहे उसेबोकर अनेकों जन्म पानी देतेरहो, तोभी गेहूंका पौदा नहीं उग सकेगा। ताते सिद्ध हुआ कि गेंहू का पौदा दाना भून देने से शान्त होगया—अनादि होता हुआभी सान्त होगया। इसलिये हे प्यारे! जो वस्तु अनादि होते हुए सत्य भी हो उसका कभी अन्त नहीं होता। अनादि सत्य वस्तु केवल ब्रह्म ही है, शेष सब अनादि कल्पित हैं। शास्त्रकारों ने जो षट् पदार्थ अनादि माने हैं उनमें केवल एक ब्रह्म ही सत्य अनादि होने से अनन्त है। इसलिये माया (अज्ञान) वास्तव में कल्पित होने से आत्मज्ञान से तत्काल ही निवृत्त हो जावेगी और पुरुषार्थ निष्फल न होगा। इसलिए दृढ़ निश्चय से पुरुषार्थ करते जाओ।

प्रश्न नं० ४१—हे भगवन् ! संसारमें आपसरीखे ब्रह्मज्ञानियों को छोड़कर सब लोग दुःखी दृष्टि आते हैं, इसका क्या कारण है? दूसरे, संसार में दुःख क्यों बढ़ रहा है?

उत्तरः—हे प्यारे! प्रश्नों का उत्तर आप देकर फिर हमसे पूछते

हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है। ज्ञानवानों को छोड़कर शेष सब लोगों का दुःखी दृष्टि आना यह सिद्ध करता है कि दुःख अज्ञान में ही है, ज्ञान होने पर दुःखों का नाश हो जाता है। यद्यपि तुम्हें प्रत्यक्ष में दुःख के कारण अनेक दिखाई देंगे, परन्तु सबका मूल कारण अज्ञान ही निकलेगा। यदि किसी को स्त्री पुत्र से दुःख पहुँच रहा है तो वह भी अज्ञान के ही कारण; क्योंकि अज्ञान से ही स्त्री पुत्र में कल्पित सम्बन्ध आरोपित करता है और व्यर्थ ही उनके अंदर अपनी ममता करता है, जिससे दुःखी होता है, । यदि स्त्री पुत्र दुःखके कारण होते तो अन्य पुरुषों और गली मुहल्ला वालों को भी दुःख देते, परन्तु ऐसा नहीं है; दुःख तो इसी से है कि अज्ञान के कारण तुमने उनसे झूठा सम्बन्ध स्थापित किया है। यदि तुम कहो कि दुःख कंगालता में है तो यह भी अज्ञान के कारण ही है, क्योंकि अज्ञानी पुरुष ही अपने आत्मिक आनन्द से भूलकर धन में आनन्द की कल्पना करता है और दुःखी होता है। यदि धन का अभाव अर्थात् कंगालता दुःख रूप होती तो सन्त महात्मा और पशु पक्षी आदि धन के अभाव से सदा दुःखी रहते; परन्तु ऐसा कभी देखने में नहीं आता। साधारण लोग कर्मों से दुःख सुख मानते हैं, उनका विचार है कि दुःख कर्मों से होता है; परन्तु यह भी असम्भव है, क्योंकि कर्म जड़ हैं, उनमें दुःख देने की शक्ति नहीं। जिस शरीर से कर्म किये वह तो चिता के ऊपर जल गया और जो कर्म किये गये उनका भी अभाव हो गया; फिर कर्म दुःख का कारण कैसेहो सकतेहैं ? अर्थात् नहीं हो सकते। वास्तविक दृष्टि से देखें तो दुःख का कारण अज्ञान है। अज्ञान से ही अहं मम भाव होता है, अहंमम भाव से कामना होती है, कामना से राग द्वेष होता है, राग द्वेषसे योग्य अयोग्य कर्म होताहै और योग्य अयोग्य कर्मसे शरीर होता है और शरीर सेही दुःख होता है;इसलिये दुःख का कारण अज्ञान ही है। शास्त्रों में जो कर्म फ़िलौसफ़ी कथन की गई है और कर्म के फल का वर्णन किया गया है,उसका अर्थ यह है कि अज्ञान सहित जब कर्म

किये जाते हैं तो कर्म में रहने वाला अज्ञान कर्मों के सूक्ष्म संस्कार रूप भाव को पकड़ लेता है और दूसरे जन्मों में फल को प्राप्त कराता है; इसलिये अज्ञान से ही दुःख होता है। यदि कर्म से भी दुःख मानें तो कर्म भी अज्ञान से होते हैं, इसलिये अज्ञान ही दुःख का कारण है ॥

दुःख दिन प्रति दिन क्यों बढ़ रहे हैं ? इसके उत्तरमें एक छोटासा उदाहरण सुनाते हैं। किसी शहर में एक सेठ रहता था, उसके पास एक माई गई और कहा सेठजी ! यह पैसा लेलो और सूद पर चढ़ादो; और यह भी पूछा कि सूद क्या दोगे ? सेठ ने हंसकर कहा प्रति दिन इसे दोगुना कर देंगे। माई एक वर्ष के बाद फिर आई और सेठ से कहा, मेरा हिसाब बताओ। जब मुनीम ने हिसाब किया तो करोड़ों रुपये बन गये। सब लोग दांतों में उंगलियां दबाकर आश्चर्य करने लगे, कि एक पैसे के बढ़ते बढ़ते वर्ष में करोड़ों रुपये होगये। ऐसे ही एक वार जब यह भूल लग गई कि 'देहोऽहं' (मैं देह हूं) तो प्रति-दिन इसी अज्ञान में कर्म करते रहने से दुःख जो अज्ञान का फल है बढ़ते बढ़ते करोड़ों गुना बढ़ जाता है। इस लिये हे प्यारे ! एक वार भूल जाने से हम कोसों दूर जा निकलते हैं। यदि दुःख की निवृति चाहतेहो तो तत्काल आत्मज्ञानकी प्राप्ति द्वारा अज्ञान की निवृत्ति करो ॥

प्रश्न नं० ४२–हे भगवन् जी ! अज्ञान तो अवस्तु, असत्य और जड़ है अवस्तु से दुःख कैसे हो सकता है ?

उत्तरः–हे प्यारे ! अवस्तु को वस्तु समझनेसे ही दुःख होता है। जैसे अंधकार में किसी पुरुष ने रज्जु में सर्प देखा, वह अत्यन्त दुःखी होकर चिल्लाने और दौड़ने लगा। अब आश्चर्य की बात यह है कि रज्जुने उसे कैसे दुःख दिया ? यदि वह रज्जु जान लेता तो कभी दुःखी न होता; परन्तु रज्जु न जानने से ही दुःखी होताहै। फिर किसीने स्वप्न में शेर या सर्प देखा, यदि वह उसी समय जान लेता कि यह स्वप्न का शेर या सर्प (अवस्तु) है तो दुःखी न होता; परन्तु उन्हें सच्चा मानने से ही दुःखी होकर चिल्लाने लगा। अंधकार में वृक्ष के ठूठ को यदि

कोई ठूठ ही जान लेवे तो दुःखी न हो; परन्तु उसे सचमुच चोर जान कर ही दुःखी होताहै। ऐसे ही यदि अज्ञान को अवस्तु समझा जावे तो वह दुःख का कारण नहीं हो सकता; परन्तु हम तो उसको सच्चा समझकर उसकी आवरण और विक्षेप शक्तियों से दुःखी हो रहे हैं। इसलिये हम अज्ञान को जब तक अवस्तु रूप न जानेंगे तब तक यह दुःख ही देता रहेगा॥

प्रश्न नं० ४३–हे भगवन् जी! ज्ञान अज्ञान किसको होता है?

उत्तरः–हे प्यारे! तेरा यह प्रश्न ऐसा है जो कई एक साधारण पुरुषों की बुद्धि को चकित करता है। यदि यह कहो कि आत्मा को ज्ञान होता है तो यह असम्भव है क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है; ज्ञान स्वरूप में अज्ञान कैसे हो सकता है? जैसे प्रकाश में अंधकार कैसे रह सकता है? और ज्ञान स्वरूप आत्मा को अन्य ज्ञान भी कैसे हो सकता है? इसलिये आत्मा में ज्ञान अज्ञान नहीं है। यदि कहो कि इस देह अथवा माया में ज्ञान अज्ञान है, तो यह भी असम्भव है। माया और उसका कार्य शरीर अज्ञान स्वरूप जड़ हैं, जड़ वस्तु चेतन नहीं होसकती; इसलिये माया और मायिक शरीर में भी ज्ञान अज्ञान नहीं है। फिर ज्ञान अज्ञान किसमें हैं? पहिले ज्ञान का स्वरूप दिखाते हैं। जब इन्द्रियों द्वारा अन्तःकरण की वृत्ति किसी पदार्थ को ग्रहण करती है तो साभास अन्तःकरण अर्थात् जीवको उस वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। नेत्र से रूप का, त्वचा से स्पर्श का, रसना से रस का, घ्राण से गंध का और श्रोत्र से शब्द का ज्ञान होता है। श्रोत्र से शब्द का ज्ञान दो प्रकार का है–परोक्ष और अपरोक्ष। जो वस्तु दूर होवे उसका शब्द से केवल परोक्ष ज्ञान होता है जैसे शास्त्र रूप शब्द से स्वर्ग नर्कादिक लोकों का और इन्द्रादिक देवताओं का परोक्ष ज्ञान होता है। और जो वस्तु समीप होवे उसका शब्द से परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार का ज्ञान होता है। जैसे 'वस्तु है' इस शब्द से परोक्ष ज्ञान होताहै और 'वस्तु यह है' ऐसा कहने से अपरोक्ष ज्ञान होता है। यह भेद ज्ञान का नियम है। जैसे

दसवेंको दसवें का परोक्ष अपरोक्ष दो प्रकार का ज्ञान हुआ, परन्तु दसवें को दसवें का अभेद ज्ञान हुआ है अर्थात् दसवां मैं हूं ऐसे ही आत्मा निज स्वरूप होने से अति समीप है। सो आत्मा का ज्ञान भी दो प्रकार का होता है। जब जिज्ञासु ने सद्गुरु से यह श्रवण किया कि आत्मा असंग और सर्व व्यापी है, तो इन शब्दों के अर्थ के साथ अन्तःकरण की वृत्ति तदाकार हुई और अन्तःकरण से हटकर आत्मा को जाना; यह आत्मा का परोक्ष ज्ञान है। परन्तु जब गुरु ने बताया कि असंग और सर्व व्यापी आत्मा तू ही है तो फिर साभास अन्तःकरण की वृत्ति अन्तर साक्षी आत्मा से तद्रूप हो गई, अर्थात् 'सच्चिदानन्द आत्मा परब्रह्म मैं ही हूं' ऐसा अभेद ज्ञान हुआ; इसका नाम अपरोक्ष ज्ञान है। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान साभास अन्तःकरण को ही होताहै। जिसको ज्ञान होताहै उसीको ही अज्ञान होता है। साभास अन्तःकरण न तो देह समान जड़ ही है और न आत्मावत् चेतन, किन्तु मध्यभावी अवस्था वालाहै। इसलिये ज्ञान अज्ञान मध्यभावी अवस्था वाले साभास अन्तः करण को ही होता है ॥

प्रश्न नं० ४४—भगवन् जी! भगवान् ने सन्सार को वृक्ष रूपसे वर्णन कियाहै,सो अब आप कृपया इस सन्सार रूप वृक्षका वर्णनकरें ॥

उत्तरः—हे प्यारे! भगवान् ने संसार को वृक्ष की उपमा इसलिये दी है कि तुम्हें संसार बन्धन को काटने की युक्ति आजावे। इस दृष्टांत की विशेषता इस बात में है कि हम इस वृक्ष को काट सकें। जैसे वृक्ष के काटने से पहले यह ज्ञान होना आवश्यकहै कि इसकी जड़ कहांहै ? शाखें किस ओर फैली हुई हैं पहले किस को काटना चाहिये ? किस हथियार से काटना चाहिये ? ऐसे ही सन्सार वृक्षको काटने के लिये हमें यह ज्ञान होना चाहिये कि इसका मूल क्याहै ? शाखें कौनसीं हैं ? पत्ते, फूल, फल क्या हैं और हमारा इनसे क्या सम्बन्धहै ? किस शस्त्रसे हम इसका छेदन कर सकते हैं ? हमारे छेदन करनेसे सन्सार छेदन होजावेगा या नहीं ? हे प्यारे! दो प्रकार के सन्सार के साथ हमारा हर समय

सम्बन्ध होतारहता है। एकतोबाहरका सन्सार और दूसरा अंतरीत्रसन्सार बाहरके संसार वृत्तका मूल माया उपहतब्रह्म है, जो स्व-प्रकाश, परमानंद, सबसे उत्कृष्ट और नित्य है। जिसको भगवान् ने गीता में 'ऊर्ध्व' कहा है। वह अपनी माया शक्तिसे सब सन्सार का कारण और सन्सार का बाध होने पर भी बाध से रहित है। जैसे वृत्त का तना होता है, तैसे सन्सार वृत्तका तना हिरण्यगर्भादिक हैं। जैसे तनेसे बड़ी शाखेंफूटती हैं; तैसे ही हिरण्यगर्भादिक से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूपी शाखें उत्पन्न होती हैं। शाखों से पत्ते उत्पन्न होते हैं; ऐसे ही सन्सार वृत्त की आकाशादिक शाखाओं से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूपी पत्ते होते हैं। पुनः पत्तों के अनन्तर सुगन्धि या निर्गन्धि वाले फूल लगते हैं; ऐसे ही सन्सार वृत्त के शब्दादि विषय रूपी पत्तों के अनन्तर धर्म अधर्म रूपी फूल लगते हैं। जैसे लोक प्रसिद्ध वृत्तके फूलही फल का आकार बन जाते हैं; ऐसे ही सन्सार वृत्त के धर्म अधर्म रूपी फूल ही सुख दुःख रूपी फलमें परिवर्तित होजाते हैं। जैसे वृत्त अनेक पत्ती आदिकों का उपजीव है अर्थात् जीविका का कारण है; ऐसे ही यह सन्सार रूपी वृत्त भी नाना प्रकार केजीवों का उपजीव है। इस सन्सार रूपी वृत्त का नाम ही 'ब्रह्मवन' है, क्योंकि जीवात्मा रूपी ब्रह्म का यह भोग स्थान है। इसमें शुद्ध ब्रह्म बिल्कुल असंग और सात्ती है, किसी भी गुण से लिपायमान नहीं होता। लोक में ऐसा कोई वृत्त नहीं है जिस का मूल ऊपर हो और शाखायें नीचे को हों। हां, यदि किसी नदी के ऊंचे तटपर स्थित होकर वृत्त को नदी में देखें तो उसका मूल ऊपर और शाखें नीचे दिखाई देती हैं, क्योंकि वह आभास रूप होता है और आभास होने से मिथ्या होता है। यह सन्सार रूप वृत्त भी स्वरूप से नाशवान् तथा मिथ्या और प्रवाह से अनंत है। कर्म काण्ड रूपी जल से सिंचित होता है और ब्रह्मज्ञान से खंडित होता है। इस सन्सार वृत्त की शाखें नीचे ऊपर को फैली हुई हैं। सतो, रजो और तमो गुण से यह शाखायें बंधी हुई हैं। पशु आदिक नीच योनियां और परस्त्री

गमन, चोरी, जुआ, हिंसा, मदिरापान, झूठी गवाही, परनिन्दादि अशुभ कर्मों के करने वाले तथा नर्क लोक तामसी शाखायें हैं, जो नीचे की ओर हैं। श्राद्ध व दान करने वाले, कूप तथा धर्मशाला बनवाने वाले तथा सकाम कर्म योगिओं के लोक रजोगुण की शाखायें हैं। इस दूसरी शाखा में पित्र लोक, देवलोक, स्वर्गलोक और सगुण उपासना वालों के लोक सम्मिलित हैं। विवेक वैराग्य और षट् सम्पत्ति द्वारा श्रवण मनन आदि साधनों वाले राजयोगी और जीवन्मुक्ति के फल भोक्ता पुरुष यह सब सतो गुणी शाखायें हैं। दूसरा संसार जिससे जीव को अधिक दुःख प्राप्त होता है वह अन्तरीव संसार है। इस संसार का मूल 'वासना' है। इसे अवान्तर मूल कहते हैं, माया वशिष्ट ब्रह्म मुख्य मूल है। सतो, रजो, तमो इसकी शाखायें हैं जो बुद्धि रूपी स्कन्ध अर्थात् तने से फूटती हैं। पापमयी तामसी वृत्तियाँ अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादिक तमो शाखायें हैं; सकाम कर्म–यज्ञ, दानादिक राजसी वृत्तियाँ रजो शाखायें हैं तथा क्षमा, ग़रीबी, विवेक, वैराग्य षट् सम्पत्ति, मोक्ष इच्छा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, आदिक सात्विकी वृत्तियां सतो शाखायें हैं। जैसे शाखायें जल सिंचन से स्थूलभाव को प्राप्त होती हैं तैसे ही देह इन्द्रियां विषय आदिक विकारों से परिणाम को प्राप्त होती हैं। यह शाखायें विषय रूपी 'सूक्ष्म अंकुरों' वाली हैं। इन्द्रिय जन्य विषयों के साथ शब्दादिक गुणों का सम्बन्ध है, इससे यह विषय ही इन शाखाओं के कोमल अंकुर हैं। वासना जो मूल है सो रागद्वेष का रूप धारण करती है, रागद्वेष रूपी वृत्तियों से धर्माधर्म और पुण्य पाप रूप फूल उत्पन्न होते हैं। और पुण्य पाप से ही सुख दुःख रूपी फल होता है। अनादि अज्ञान से ही मूल बंधा हुआ है। इस वृक्ष को छेदन करने के लिये आत्मज्ञान रूपी खड्ग की ही आवश्यकता है। 'अहंब्रह्मास्मि' रूपी खड्ग से यह अन्तरीव वृक्ष मूल सहित छेदन हो जाता है और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' से बाह्य संसार रूपी वृक्ष का बाध होता है। इसलिये अपने वास्तव स्वरूप को जानना और फिर शरीरके

धर्मों से असंग रहना ही इस अन्तरीव सन्सार का छेदन करना है। जब अन्दर का संसार काटा गया तो फिर अभ्यास द्वारा यही निश्चय करना चाहिये कि अस्ति, भाति, प्रिय रूप होने से यह बाह्य सन्सार ब्रह्म रूप ही है। ऐसा निश्चय करनेसे ही सन्सार वृक्ष का बाध हो जाता है। फिर यह भासता है कि जैसे स्वप्न के पदार्थ, मृग तृष्णा का जल, आदि केवल प्रतीति मात्र (मिथ्या) हैं, ऐसे ही यह सन्सार मिथ्या है। इस मिथ्यापने और स्वरूप की असंगता और ब्रह्म दृष्टि के अभ्यास से ही सन्सार का बाध होता है। जैसे कुल्हाड़े आदि शस्त्रों को पत्थर पर रगड़कर पैना किया जाता है तैसे ही असंगता और स्वरूप निष्ठा के शस्त्रों को अभ्यास द्वारा तेज़ किया जाता है, जिससे सन्सार वृक्ष का छेदन हो जाता है और जिज्ञासु आत्मज्ञान द्वारा परमपद को प्राप्त करके जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। यह ही सन्सार वृक्ष के जानने और छेदन करने का फल है ॥

प्रश्न नं०४५-- हे भगवन्! परमधाम या परमपद का क्या अर्थ है और इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?

समाधानः--हे प्यारे! शास्त्र-कारोंने परलोक में कई धाम और पद कथन किये हैं। उन धामों की सन्सारी मनुष्य अपनी अपनी बुद्धि और वासना के अनुसार इच्छा करते रहते हैं। कोई तो स्वर्ग लोक की इच्छा करता है और कोई वैकुण्ठ धाम की, कोई गोलोक को जाना चाहता है और कोई ब्रह्मपुरी या शिवपुरी में। तात्पर्य यह है कि उपासक, शरीर छोड़ने पर, अपनी दृढ़ उपासना के अनुसार अपने अपने उपास्य देव के स्थान को प्राप्त होते हैं। परन्तु याद रखना चाहिये कि जहां गमनहै वहां से आगमन भी अवश्य होताहै; इसी नियमानुसार यदि जीव को इनमें से किसी लोक की प्राप्ति होती है तो वहां से किसी समय लौट कर आना भी आवश्यक है। इस प्रकार सर्व उपासकों की अपने उपास्य देव के लोक में रहने की अवधि अधिक से अधिक महा-प्रलय पर्यन्त है। इस लिये यह सब धाम और पद पुनरावर्ती स्वभाव

वाले हैं। ब्रह्मधाम या परम पद वह है जहां से लौट कर फिर आना न होवे; और वह भगवान् का निर्गुण स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जो भी धाम हैं वह सब अनित्य हैं और पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं। अब ऐसे निर्गुण परब्रह्म की प्राप्ति कहना भी दोष से रहित न होगा; क्योंकि जहां मिलाप है वहां वियोग भी है। इसलिये परमधाम की प्राप्ति से यह तात्पर्य नहीं है कि जीव ने ब्रह्मरूप होना है; किन्तु दृढ़ता से यही निश्चय करना है कि कूटस्थ की ब्रह्म के साथ मुख्य समानाधिकरण द्वारा सदा एकता है और जीवका पारमार्थिक स्वरूप ही निर्गुण परब्रह्म है। इस अडोल निश्चय का नाम ही परमधाम है। जैसे घटाकाश की महाकाश से स्वतः ही एकता है, केवल घट उपाधि से प्रतीति भिन्न रूप से हो रही है; ऐसे ही जीव और ब्रह्म की एकता तो है, परन्तु अन्तःकरण उपाधि से भिन्नता भास रही है। अन्तःकरण नाम सङ्कल्पादि वृत्तियों का है और सङ्कल्प विकल्प आदिक के शान्त होने से अन्तःकरण का पर्दा हट जाता है। ताते अन्तःकरण के अभाव पूर्वक जीव ब्रह्म की एकता ही परमधाम की प्राप्ति है; इससे परे और कोई धाम नहीं। इस निश्चय ज्ञान के निदिध्यासन से पुनरागमन (लौट कर आना) नहीं होता, क्योंकि अज्ञान जो पुनर्जन्म का कारण है उसका तूला भाग तो ज्ञान प्राप्ति पर ही नाश होजाता है, मूला भाग अन्तःकरण की वृत्ति में बाधक नहीं है और अज्ञान के अभाव होने पर पुनर्जन्म हो ही नहीं सकता; इसलिये जीव के परमार्थ स्वरूप का निश्चय अर्थात् जीवब्रह्म की एकता का ज्ञान ही परमधाम है। ऐसे धाम में तत्त्वों की भी पहुँच नहीं, यहां तक कि सूर्य-चन्द्रमा आदिक ज्योतियां भी वहां प्रकाश नहीं कर सकतीं। सूर्य नेत्रों का देवता है, इसलिये नेत्रों के व्यवहार में ही सहायता कर सकता है, जब चक्षु बन्द होते हैं तो सूर्य का प्रकाश किसी वस्तु का दर्शन नहीं करा सकता। परब्रह्म नेत्रों का विषय नहीं है, क्योंकि नेत्र रूप गुणको विषयकरते हैं और ब्रह्म रूप रहित है; जो वस्तु नेत्रों का विषय होती है वह दृश्य, असत्य और अनात्मा होती है। जब स्वरूप नेत्रों का विषय ही

नहीं तो फिर सूर्य के प्रकाश का उसमें हस्तक्षेप ही क्या हो सकता है, अर्थात् कुछ भी नहीं। चन्द्रमा मन का देवता है और अग्नि वाक् इन्द्रिय का देवता है; स्वरूप अवाङ्मनसगोचर होने से मनवाणी का विषय ही नहीं है, अर्थात् मन इसका अनुभव नहीं कर सकता और वाणी इसे कथन नहीं कर सकती; तो फिर चन्द्रमा और अग्नि का परम पद में प्रकाश कैसे ? अर्थात् किसी प्रकारसे नहीं करसकते। भगवान् ने भी गीता में कहा है कि जहां सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाश नहीं कर सकते वही मेरा परमधाम है, अर्थात् वही मेरा वास्तव स्वरूपहै। फिर यह नियम है कि जो वस्तु किसी प्रकाशक का प्रकाश्य हो वह वस्तु अपने प्रकाशक को प्रकाश नहीं कर सकती, जैसे घट सूर्य का प्रकाश्य होने से सूर्य को प्रकाश नहीं कर सकता; ऐसे ही जिस परब्रह्म की सत्ता स्फूर्ति से संसार की प्रतीति द्वारा सूर्यादिक ज्योतियां जानी जाती हैं और जिस सत्ता के अभाव से इन का अभाव हो जाता है उस परब्रह्म-प्रकाशक को यह प्रकाश्य ज्योतियां कैसे जान सकें ? इसलिये सूर्य-चन्द्रमा आदिक लोक प्रसिद्ध ज्योतियों का स्वरूप में लेशमात्र भी प्रकाश नहीं, उलटा उसी के प्रकाश से यह प्रकाशमान् हो रही हैं।

जैसे आत्मा की चेतन शक्ति से ही बुद्धि चेतन होकर भास रही है, परन्तु वास्तव में बुद्धि जड़ है; ऐसे ही आत्मा के प्रकाश से ही सूर्य आदि प्रकाशमान् भास रहे हैं, वास्तव में प्रकाश रहित हैं। फिर जैसे बुद्धि की आत्मा तक गमता नहीं, ऐसे ही सूर्यादिक ज्योतियां स्वरूप को प्रकाश नहीं कर सकतीं; आत्मा स्वयं प्रकाश है और अपने प्रकाश से ही आप सिद्ध होता है। जैसे सूर्य के ढूंढने के लिये दीपक हाथ में ले जाना अत्यन्त मूर्खता है, ऐसे ही परब्रह्म को सूर्य आदि ज्योतियों के प्रकाश में अनुभव करने का विचार भी मूर्खता है। परमधाम को ऐसे कथन करना कि 'यह मेरा परमधाम है' अनुचित है; काहे ते, जो वस्तु ममता का विषय होती है वह ममता वाले पुरुष से भिन्न ही होती है। ऐसे ही 'मेरा परमधाम' कहने से परमधाम को अपने आपसे भिन्न

मानना होगा, जो कि शास्त्र विरुद्ध है; अतः स्वरूपाकार वृत्ति का नाम ही परम धाम है। 'अहंब्रह्मास्मि' कहने में भी जीव और ईश्वर के वाच्यार्थ को त्याग कर लक्ष्यार्थ में एकता का जो अनुभव होता है; वह भी साधन कोटि में ही है। परमधाम वही वृत्ति है जो तैल धारावत् स्वरूपाकार हो, यानी जहां केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जावे और अहं का अनुभव भी न हो; अर्थात् 'निर्विकल्पावस्था' का ही भान हो। जैसे किः—

सभु गोबिंद है सभु गोबिंद है गोबिंद बिनु नही कोई ॥ [श्रासा नामदेव पृ०४८५]

प्रश्न नं० ४६—हे भगवन् जी ! यदि परमधाम इसी का नाम है कि केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जावे और यदि परम धाम को प्राप्त होकर जीव का पुनर्जन्म नहीं होता तो फिर सुषुप्ति में तो केवल गोविन्द ही गोविन्द है; जीव एक वार सुषुप्ति में जाकर मुक्त क्यों नहीं होता ? वह प्रति दिन नये सिरे से जागता है और सुख दुःख भोगता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तरः—हे प्यारे ! तुम्हारी यह शङ्का प्रगट करती है कि तुम्हें सुषुप्ति अवस्था का पूरा पूरा ज्ञान भी नहीं है । सुषुप्ति अवस्था को भली प्रकार समझनेसे सारा भेद खुल जावेगा। अंतःकरण, ज्ञान इन्द्रिय और कर्म इन्द्रिय जब अपने अपने व्यवहार से थकित हो जाते हैं तो अपने कारण अज्ञान में लीन हो जाते हैं। जैसे घट रस्सीसे बंधा हुआ कूप जल में लीन हो जाता है और फिर रस्सीके खेंचने से बाहर निकल आता है, ऐसे ही सारा संघात सुषुप्ति रूप कूप, अविद्या रूप जल में लीन हो जाता है और फिर वासना की रस्सी से खेंचा हुआ जाग्रत में आजाताहै। अब देखना यह है कि जीव सुषुप्ति समय किस में लीन हुआ, ब्रह्ममें या अज्ञानमें ? अज्ञान में लीन होनेसे पुनरावर्ति आवश्यक है; क्योंकि अज्ञान, आवरण तथा विक्षेप शक्ति वाला है, और विक्षेप शक्ति से ही गमन आगमन होता है। जीव सुषुप्ति अवस्था के समय अविद्या में लीन होता है इस लिये पुनरावर्ति होती है। यदि ब्रह्म में लीन हो जाता अर्थात् द्वैत का पर्दा हट जाने से जीव को

ब्रह्म की एकता का अनुभव होता तो पुनरावर्ति असम्भव थी; परन्तु सुषुप्ति में तो अन्तःकरण और उसकी वृत्ति ब्रह्म में लीन न होकर अज्ञान में लीन होती है, इसलिये फिर जागना और जन्म लेना आवश्यक है। परमपद की प्राप्ति में केवल अज्ञान और उसके कार्य अन्तःकरण का पर्दा है और सुषुप्ति में अज्ञान भी है तथा उसका कार्य अन्तःकरण भी उसके अन्दर लीन है, तो फिर परमपद की प्राप्ति का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है? अर्थात् नहीं उठ सकता और परमपद के बिना पुनर्जन्म अनिवार्य है। इसीलिये सुषुप्ति अवस्था से मुक्ति नहीं हो सकती। यदि सुषुप्ति अवस्था ही परमपद होती तो यह प्राणी मात्र को आती है और पाषाण वृक्ष आदि में हर समय रहती है; इससे पुरुषार्थ का अभाव होने से वेद, शास्त्र सब निष्फल हो जावेंगे। ताते हे प्यारे! तुम्हारी शङ्का सिद्धान्त के विरुद्ध है।

प्रश्न नं० ४७–हे भगवन्! यदि सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण एक ईश्वर ही है तो सृष्टि की भिन्न-भिन्न प्रतीति क्यों होती है?

उत्तरः–हे प्यारे! पहिले तो यह विचार कि सृष्टि का कर्ता घट-पट आदि के प्रत्यक्ष कर्ताओं के समान है या विरुद्ध? घट का उपादान कारण मिट्टी है क्योंकि घड़ा मिट्टी की ही परिवर्तित (बदली हुई) दशा का नाम है। कुम्हार घट का निमित्त कारण है, क्योंकि उसकी सत्ता से ही घड़ा बनता है और वह स्वयं घट से पृथक है। यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानें तो यह बन नहीं सकता। काहे ते, कि उपादान कारण ही स्वरूप बदल करके कार्य बनता है; ऐसा मानने से ब्रह्म विकारी हो जावेगा, परन्तु वह निर्विकार है। यदि ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण मानें तो भी ठीक नहीं है। काहे ते, कि निमित्त कारण कार्य से हमेशा पृथक होता है; परन्तु ब्रह्म में द्वैत ही नहीं, इस लिये वह किस से पृथक होवे? ताते शुद्ध ब्रह्म न तो उपादान कारण है और ना ही निमित्त कारण। यदि माया को जगत् का कारण

मानें तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि माया जड़ है और जड़ वस्तु में सृष्टि पैदा करने की शक्ति नहीं हो सकती। इसलिये सृष्टि का कारण न तो शुद्ध ब्रह्म है और न माया, क्योंकि ब्रह्म से भिन्न जगत् की सत्ता ही नहीं सिद्ध होती। फिर भी जगत् की प्रतीति होती है, इसलिये इस प्रतीति का ही कोई न कोई कर्ता तथा कारण अवश्य मानना पड़ेगा। वेद भगवान् कहते हैं कि जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ईश्वर है, और ईश्वर ब्रह्म से अभिन्न है। माया उपाधि से इसकी ब्रह्म से पृथक संज्ञा हो गई है। ईश्वर की उपाधि (माया) ही जगत् का प्रणामी उपादान कारण है, अर्थात् यही जगताकार हुई २ है; और विशेष चेतन भाग निमित्त कारण है क्योंकि इसकी सत्ता से जगत की उत्पत्ति होती है। जैसे घट का कर्ता (कुम्हार) तो घट से पृथक है परन्तु जगत् का कर्ता ईश्वर जगत् से भिन्न नहीं। जैसे मकड़ी के स्थूल शरीर से तन्तु निकलते हैं, वह स्थूल शरीर तो उपादान कारण है और उस की इच्छा जो चेतन भाग है वह उनका निमित्त कारण है; ऐसे ही ईश्वर भी जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। प्रकृति अनादि है, इसलिये जगत् की उत्पत्ति माननी असम्भव है। काहेते कि अनादि वस्तु कभी उत्पन्न नहीं हो सकती। सतो, रजो, तमो गुण की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इन गुणों में क्षोभ होता है तो जगत् की प्रतीति होती है। ताते जगत् की उत्पत्ति नहीं, केवल प्रतीति है। जगत का कर्ता ईश्वर और घटका कर्ता कुम्हार है। इसमें केवल इतना ही भेद है कि पदार्थों के कर्ता तो राग द्वेष और हानि लाभ के आधीन हो कर व्यवहार करते हैं, परन्तु ईश्वर स्वरूप से निर्लेप है और क्रिया करता हुआ भी अक्रिय और असंग है; जैसे जीवन्मुक्त मनुष्य व्यवहार करता हुआ भी असंग रहने से अकर्ता हैः—

दो०- क्रिया स्वप्न प्रतिबिम्ब ते, बिम्ब परबुद्ध अरङ्ग।
तथा त्रिधाकृत काल त्रय, जीवनमुक्त असंग॥

ऐसेही ईश्वर भी जो नित्य मुक्त तथा रचना करता हुआ भी असंग

है। इसमें यह शंका उत्पन्न होती है कि जब सारी सृष्टि का कर्ता एक ईश्वर ही है तो जगत् में भिन्न भिन्न रचना क्यों प्रतीत होती है? कोई रोगी है कोई स्वस्थ, कोई धनी है कोई दीन, कोई भक्त है कोई अभक्त। इसका समाधान यह है कि कारण दो प्रकार का होता है-(१) सामान्य और (२) विशेष। सामान्य कारण असंग और समष्टि होता है और विशेष कारण संग और व्यष्टि अर्थात् भिन्न भिन्न होता है जगत् का सामान्य कारण ईश्वर है और विशेष कारण जीवों के कर्म। ईश्वर की सत्ता और उपाधि माया से पाँच तत्त्व हुए। जीवों ने अपनी बुद्धि से मिट्टी और पानी मिलाकर ईंटें बनाईं, वायु से सुखाकर अग्नि में पकाईं और उनसे अनेक प्रकार के मकान अपने लाभ के लिये बनाये; ताते इन मकानों का सामान्य कारण तो ईश्वर है, परन्तु विशेष कारण जीवों के कर्म हैं। जैसे जैसे जीवों के कर्म होते हैं वैसे वैसे ही उनके अन्तःकरण बनते हैं, अन्तःकरणों के अनुसार ही नाना प्रकार की शुभ अशुभ क्रियाएँ होती हैं, भिन्न भिन्न क्रियाओं से जगत् की प्रतीति भिन्न २ होती है; ताते भिन्न २ प्रतीति के कारण जीवों के अपने अपने कर्म हैं न कि ईश्वर। जैसे एक मंदिर के अंदर लाट बत्तीपर आरूढ़ होकर प्रकाश कर रही है और उस प्रकाश के सहारे एक आदमी ग्रन्थ पढ़ रहा है और दो तीन आदमी जुआ खेल रहे हैं। तो इस भिन्न २ क्रिया की उत्तरदायी लाट (प्रकाश) नहीं किंतु जीवों के अपने अपने कर्म हैं। ऐसे ही ईश्वर सर्व सृष्टि का सामान्य कारण होनेसे भिन्न २ प्रतीति का उत्तरदायी नहीं है। जैसे एक ही पृथ्वीपर यदि गन्ने का बीज बोया जावे तो पृथ्वी उसके अंदर मिठास पैदा करती है और यदि नीम बोया जावे तो उसमें कड़वाहट। अब पृथ्वी ने तो दोनों को रस अर्थात् पानी ही दिया, परंतु गन्ने ने अपने स्वभाव से उसे मिठास में परिवर्तित कर दिया और नीमने कड़वाहट में। अब पृथ्वी दोनों का सामान्य कारण है, और उनके अपने अपने बीज विशेष कारण हैं और भिन्न भिन्न प्रतीति विशेष कारण से है न कि सामान्य से। अब ज़रा कपड़े के कारखाने की

सैर करो। किसी स्थान पर रूई काती जाती है, कहीं पर सूत्र से ताना बाना हो रहा है, कहीं कपड़ा बुना जा रहा है। अब शक्ति तो सब मशीनों को एक इंजन से मिलती है, परन्तु हर एक व्यवहार भिन्न २ होता है। इंजन सामान्य कारण है और नाना प्रकार की मशीनें विशेष कारण। व्यवहार की भिन्न २ प्रतीति विशेष कारण से है न कि सामान्य से, इसलिये सृष्टि की भिन्न २ प्रतीति, विशेष कारण अर्थात् जीवों के कर्मों के कारण है न कि सामान्य कारण (ईश्वर) के। एक ही कक्षा में बैठे हुए अनेक विद्यार्थियों को एक ही अध्यापक पढ़ाता है, परन्तु परीक्षा होने पर कोई प्रथम श्रेणी में पास होता है, कोई दूसरी और कोई तीसरी में: अर्थात् सब के नम्बर अलग २ होते हैं। अब इस भिन्न भिन्न परीक्षा फल की उत्तर दायी सामान्य कारण-अध्यापक की विद्या नहीं है किन्तु विशेष कारण-विद्यार्थियों के भिन्न भिन्न अंतःकरण हैं। दो पुरुष एक ही पात्र में से एक एक गिलास लस्सी (छाछ) पीते हैं। एक तो तृप्त होकर डकार मारताहै और दूसरा चार पांच मिनट के बाद पीड़ा से लोट पोट हो जाता है;दोनों की भिन्न भिन्न दशा का कारण सामान्य कारण 'लस्सी' नहीं है किन्तु विशेष कारण-उन दोनों के भिन्न २ मेदे की दशाहै। श्रावण भादों के महीनों में शीतल वायु चलती है, एक रोगी पुरुष को उससे निमोनिया हो जाता है और वह मर जाता है और शेष मनुष्य अति प्रसन्न होकर मीठी निद्रा का आनन्द लेते हैं; इस भिन्न २ दशा का सामान्य कारण ठण्डी वायु है और विशेष कारण भिन्न२शारीरिक दशायें। इन भिन्न २ दशाओं का दायित्व विशेष कारण पर ही है न कि सामान्य पर ॥

भिन्न २ मनुष्यों के लिये जगत् की प्रतीति के दो ही कारण हैं-मुख्य कारण अज्ञान और गौण कारण मन। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के मन की दशा पृथक २ होती है, इस लिये जगत् की प्रतीति भिन्न२ है ॥

प्रश्न नं० ४८-हे भगवन्! परमात्म देव का देह से क्या सम्बन्ध है?

उत्तरः--हे प्यारे ! साइन्स तो अबतक यही कहती आई है कि यह शरीर प्रकृति के तत्त्वों का कार्य है और तत्त्व स्वतः ही इस शरीर को रचते रहते हैं और उनके परिणाम से ही शरीर का परिणाम होता रहता है। उनका विचार है कि जैसे इञ्जन में अग्नि और जलके मिलाप से भाप पैदा होती है जिसका नाम इञ्जन के चलाने वाली शक्ति है; ऐसे ही अन्न और जल का मेदे के अंदर मिलाप होने से शरीर में शक्ति पैदा होती रहती है, जिससे यह शरीर क्रिया करता रहता है। परंतु दो एक प्रश्नों का उत्तर साइंस भी नहीं दे सकती। वह यह हैं कि लोहा होते हुए भी क्या इञ्जन अपने आप बन सकता है ? अग्नि और जल को भिन्न २ स्थान पर रखकर फिर अग्नि का जलके साथ सम्बन्ध कराने वाला क्या कोई चेतन पुरुष नहीं है ? अग्नि और जलसे पैदा हुई भाप से काम लेने वाला क्या कोई चेतन पुरुष नहीं है ? हे प्यारे ! बिना चेतन पुरुष के न तो इंजन बन सकता है और ना ही क्रिया कर सकता है। ऐसे ही पांच तत्त्वों के होते हुए भी देह अपने आप कैसे बन सकती है ? आहार और जलसे यह तो मान लिया कि क्रिया शक्ति पैदा होती है; परन्तु यह बताओ कि ज्ञान शक्ति कहां से आगई ? हे प्यारे ! आस्तिकों का सिद्धान्त इससे अलग है। परमात्म देव ने ही अभिन्न-निमित्तोपादान कारण होकर इस देह को रचा, फिर जीव रूप से इसमें प्रविष्ट हुआ और कूटस्थ रूपसे साक्षी बना। जैसे मकड़ी अपने आप से ही जाला निकालती है और आपही उसका निमित्त कारण होती है, ऐसे ही परमात्मदेव ने अपनी माया शक्ति को सत्ता देकर यह शरीर रचे और फिर आपही उनमें प्रविष्ट हुआ। जैसे सूर्य का प्रकाश सब जगह पूर्ण होता है, परन्तु जहां अग्नि यंत्र (आतशी शीशा) होता है वहां निर्यत्न ही विशेष रूप से प्रविष्ट हुआ उसके अन्दर अपनी दाहक शक्ति पैदा करदेता है। ऐसे ही परमात्मदेव देह के अंग २ में प्रवेश करके अन्तःकरण में, (जोकि सतोगुणभूतों का कार्य है और स्वच्छ है) विशेष रूप से प्रवेश करके उसको अपनी चेतनता से चेतन बनाता है

और उसके अन्दर स्मृति ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान आदि की शक्ति अपनी चेतनता से प्रदान करता है। फिर जैसे सूर्य अग्नि यन्त्र में अपनी शक्ति देता हुआ आप सब दाह क्रिया का साक्षी रहता है, ऐसे ही परमात्मा भी अंतःकरण को चेतनता प्रदान करता हुआ भी आप कूटस्थ रूप से अंतःकरण की वृत्तियों का सदा साक्षी रहता है। यह ही परमात्मदेव का देह के साथ सम्बन्ध है। एक और भ्रान्ति को दूर करना योग्य है। कई फ्लौसफ़र तो यों कहते हैं कि जैसे सर्प बिल में प्रवेश करता है ऐसे ही परमात्म देव देह में प्रवेश करता है और फिर मृत्यु के समय परमात्म देव देह से निकल आता है। हे प्यारे! यह बिल्कुल भ्रान्ति ज्ञान है। किसी स्थान पर आना जाना तो परिच्छिन्न वस्तु में होता है परमात्म देव सब जगह पूर्ण होने से कहीं आता जाता नहीं है। जैसे आकाश के अन्दर घट ही बनते हैं और घट ही नाश हो जाते हैं, आकाश न कहीं आता है और न जाता है। जब घट बनता है तो पूर्ण आकाश अर्थात् महाकाश की घट उपाधि देश में घट उपाधि करके घटाकाश और घट जल उपाधि करके जलाकाश संज्ञा हो जाती है, वास्तविक आकाश में आना जाना नहीं; ऐसे ही परमात्म देव जो अन्दर बाहर पूर्ण है उसकी देह उपाधि से कूटस्थ संज्ञा हो जाती है और अन्तःकरण उपाधि से परमात्म देव की जीव संज्ञा हो जाती है; वास्तव में परमात्म देव में आना जाना नहीं है। यदि परमात्म देव देह से निकल जाता तो प्राण निकल जाने के अनन्तर मृतक देह के एक दिन पड़ा रहने पर जो अनेक कृमि उसमें उत्पन्न हो जाते हैं वह कैसे होते? यदि देह में परमात्म देव न होता तो इस दुःख रूपी देह में जीव एक क्षण मात्र भी नहीं रह सकता था। वास्तव में बात यह है कि प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर परमात्म देव की अन्तःकरण में जो विशेष सत्ता है उसका अभाव हो जाता है न कि सामान्य सत्ता का। ताते सिद्ध हुआ कि परमात्म देव ही सब संघात में प्रविष्ट हुआ-हुआ इस शरीर यंत्र की क्रिया का हेतु होता है और अंतःकरण की सब चैतन्यता भी

परमात्मदेव ही की चेतन शक्ति के कारण है, अर्थात् अन्तःकरण के साथ तादात्म्य सम्बन्ध से यह परमात्मदेव ही जीव रूप से कर्ता भोक्ता प्रतीत होता है; और फिर यह परमात्मदेव ही कूटस्थ रूप से देह में साक्षी होकर संघात की सब चेष्टा को प्रकाशता है। फिर देखो, देह का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण भी परमात्मदेव ही है, अर्थात् देह का उपादान कारण जो पांचतत्त्व आदि हैं वह भी परमात्म रूप ही हैं और देह का निमित्त कारण भी परमात्मदेव आप ही है। परमात्मदेव की माया शक्ति ही देह का उपादान कारण बनती है और सत्ता निमित्त कारण। ताते देह कल्पित होने से अधिष्ठान परमात्म रूप ही है। जब सब नाम रूप कल्पित होने से अधिष्ठान-परमात्म रूप ही है तो फिर देह का और परमात्मदेव का परस्पर सम्बन्ध कहना अनिर्वचनीय है। यही परम सिद्धान्त है। इससे परे और कुछ नहीं।

प्रश्न नं० ४६—हे भगवन् जी! योग किसे कहते हैं? शास्त्र में योग कितने प्रकार का कथन किया गया है? और हमें कौनसा योग धारण करना चाहिये?

उत्तरः—हे प्यारे! योग नाम मिलाप का है। जैसे सूर्य प्रकाश में एक बाल्टी जल की पड़ी हुई है। यदि जल में हलचल हो तो विक्षेपता होती है और जब जल ठहर जावे तो जलाभास भी ठहर कर सूर्य में मिल जाता है। अब देखना यह है कि योग (मिलाप) या अयोग (मिलाप न होना) किसमेंहै और किसमें नहीं। यहप्रत्यक्ष प्रगट है कि जलाभासमें ही मिलाप या न मिलापहै। ऐसेही जबमन एकाग्रहोकर स्वरूप में मिल जाता है तब मन का योग है और जब विक्षेपता के कारण स्वरूप में मन एकाग्र नहीं होता तो यह मन का अयोग है। ताते योग और अयोग मन का धर्म है। मन के मिलने या न मिलने से इन दोनों दशाओं का साक्षी रहना 'परम योग' है। इसलिये हे प्यारे! तुम्हारे स्वरूप में मन ही योग करता है, तू तो योग अयोग दोनों का साक्षी है। शास्त्रकारों ने मन का योग चार प्रकार का लिखा है।

१—मंत्र योग, २—हठ योग, ३—लय योग, ४—राज योग। मंत्रयोग के आचार्यों का सिद्धान्त यह है कि "पहिले सगुण ब्रह्म में इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊं। ऐसी इच्छा रूप माया ही तीन गुण होकर नाम रूप संसार वाली हो गई। अब मोक्ष प्राप्ति के लिये नाम रूप से ही लौट चलना चाहिये।" इसलिये वह नाम का उच्चारण अर्थात् मन्त्र की सिद्धि और मूर्ति के ध्यान को ही मोक्ष का साधन मानते हैं। दूसरा हठयोग कहलाता है। हठयोग का सिद्धान्त यह है कि मन का और शरीर का सम्बन्ध है और मन का और प्राणों का भी सम्बन्ध है। यदि मन को वश में करना हो तो शरीर और प्राणों को वश में करना चाहिये। इसलिये हठयोग से प्राणायाम और आसन सिद्धि द्वारा मन को वश में करे तब मन का स्वरूप में योग होता है। तीसरे 'लययोग' का सिद्धान्त यहहै कि समष्टि व्यष्टि सम्बन्ध से ब्रह्माण्ड और पिण्ड (शरीर) एकही है। पिण्डके ज्ञानसे ब्रह्माण्ड का ज्ञान होताहै और प्रकृति को पुरुषमें लय करनेसे लययोग होता है। चौथा 'राजयोग' सबका शिरोमणि है। सब योगों का राजा होनेसे इसका नाम राजयोग है। इसलिये यही सब प्रकार के योगों से अधिक श्रेष्ठ है। मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग साधन अवस्था में हैं और राजयोग सिद्ध अवस्था में है। पहिले तीनों योगों के लिए ब्रह्मचर्य, शारीरिक बल और कठिन तपस्या की आवश्यकता है और राजयोग के लिये वेदान्त शास्त्र के सांगोपांग ज्ञान की आवश्यकता है। ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के अनन्तर ही यह योग किया जासकता है। जगद्गुरुजी ने भी इसी योग की ही प्रशंसा की है। राजयोग की सिद्धावस्थामें जीव ब्रह्म की एकता सिद्ध होकर सर्वत्र अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। इस योग का उद्देश्य यह ही है कि माया से अतीत निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार होसके। सन्सार संकल्पमयही है; संकल्प विकल्प मनका धर्म है; मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, अन्तःकरण की वृत्तियां हैं; आत्मा इन सबका द्रष्टा है। जब द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध होता है तब ही संसार होता है।

चित्त वृत्ति को निरोध करके स्व-स्वरूप का जानना अर्थात् दृश्यको द्रष्टा में लीन करना ही राजयोगहै। राजयोगके ध्यान का नामही ब्रह्मध्यान है और राजयोग की समाधि का नाम निर्विकल्प समाधि है। राजयोग के साधनों तथा अंगों का स्थूल शरीर की क्रिया से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, इनका सम्बन्ध मानसिक क्रियाके साथही है। विज्ञान धर्मके अनुसार अब उन साधनो और अंगों को नीचे वर्णन किया जाता है। संस्कृत के श्लोकों का केवल टीका लिखा जाता है:—

(१) यम—सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है, अर्थात् आत्मा से भिन्न और कुछ नहीं है। आनन्द स्वरूप अपना आप होने से इन्द्रिय और मन किस पदार्थ की इच्छा करें? इस प्रकार इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से हटाये रखने का नाम यम है ॥

(२) नियम—सजातीय वृत्ति का प्रवाह और विजातीय का तिरस्कार अर्थात् स्वरूपाकार वृत्ति का प्रवाह और पदार्थाकार वृत्ति का तिरस्कार करते रहना; मनको ऐसा वश में करना कि हर समय स्वरूप का ही ध्यान रक्खे, दृश्य (सन्सार) में मन की वृत्ति को न जाने दे। इस विचार को नियम कहते हैं ॥

(३) त्याग—सत्य असत्य का निर्णय करने के अनन्तर प्रपंच का त्याग करना ही त्याग कहलाता है। यही मोक्ष की शीघ्रप्राप्ति का मुख्य साधन है ॥

(४) मौन—जिसको मन और वाणी विषय नहीं कर सकते और जिसका अनुमान केवल योगी जन ही कर सकते हैं, ऐसे परब्रह्म पद को ही मौन कहते हैं। इस पद के लाभ के लिये ही विद्वानों को यत्न करना चाहिये। जब वाणी प्रपंच को ही कथन नहीं कर सकती तो स्वरूप को कैसे कथन करे? इसलिये राज योग के अभिलाषियों को चाहिये कि अभ्यास करते २ उस पद को पहुँचजावें जहां मन और वाणी की गमता न हो। यही सिद्धावस्था है। वाक् इन्द्रिय को रोक कर चुप हो रहना यह बालकों वाली मौन है ॥

(५) देश–जिस देश के साथ आदि में, मध्य में और अन्त में जीवों का कोई सम्बन्ध न हो तथा जो देश सदा परमात्मा से व्याप्त हो, वही देश सम्बन्ध से शून्य विजन देश है; अर्थात् आत्म स्वरूप ही योगियों का देश है।

(६) काल–जिसके निमेष मात्र से ब्रह्मा से लेकर सारी सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है वही अखण्ड आनन्द रूप अद्वितीय भाव काल कहलाता है; इसी का नाम महाकाल है, क्योंकि यह लोक प्रसिद्ध काल को भी खाजाता है। यह काल भी काल का सच्चिदानन्द रूप आत्मा ही है॥

(७) आसन–जिस अवस्था में सुख के साथ आत्मचिन्तन हो सके उसे आसन कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो स्थूल भाव वाले आसन हैं वह शरीर को कष्ट देने से हो सकते हैं। तुम्हारा उद्देश्य आत्मचिन्तन है न कि शरीर के आसन। यदि लेटने से या कुर्सी पर बैठने से आत्मचिन्तन सुगमता से हो सके तो वही आसन है। जो सब भूतों का आदि, संसार का अधिष्ठान और निरावयव है और जिस स्वरूप में सिद्ध लोग अर्थात् ज्ञानवान् स्थित हैं उसे सिद्धासन कहते हैं॥

(८) देह साम्य–देह और उसके अंगों को ब्रह्म भाव में लीन करने का नाम देहसाम्य है न कि सूखे हुऐ वृक्ष के समान देह को कष्ट देने का। ब्रह्माभ्यास में इस प्रकार लीन होना कि देह और उसके अंगों का कुछ स्मरण न रहे इसका नाम देह साम्य है॥

(९) दृगस्थिति–दृष्टि को ज्ञानमयी करके समस्त प्रपंचमयी जगत् को ब्रह्म स्वरूप देखने का नाम ही दृगस्थिति है। नासिका के अग्र भाग में देखने को दृगस्थिति नहीं कह सकते। नासिका के अग्रभाग को देखना मांस को ही देखना है, इससे क्या लाभ हो सकता है? ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा सब जगत् को ब्रह्म रूप देखना ही दृगस्थिति है। अथवा जिस अवस्था और जिस भाव में द्रष्टा, दर्शन और दृश्य का ऐकीकरण द्वारा त्रिपुटी भाव दूर हो जावे और केवल द्रष्टा ही द्रष्टा रह जावे

उस अवस्था का नाम दृगस्थिति है ।।

(१०) मूलबन्ध–जो सर्व भूतों का मूल है और जो चित्तवृत्ति निरोध का कारण है वही आत्मा मूलबन्ध है इसी में निष्ठा प्राप्त करना राजयोगियों का परम कर्तव्य है ।

(११) प्राणायाम–जब सब प्रकार के सृष्टि सम्बन्धी भावों को ब्रह्म भाव में लीन कर लिया जावे और सब वृत्तियों का निरोध कर लिया जावे उसी अवस्था का नाम प्राणायाम कहलाता है । भावना द्वारा सब प्रपंच का नाश कर देने का नाम रेचक प्राणायाम है और 'मैं ब्रह्म हूं' इस प्रकारकी वृत्ति का नाम पूरक प्राणायाम है; इसके बाद निश्चल रूप से ब्रह्मभाव में स्थित रहने का नाम कुम्भक प्राणायाम है । परन्तु अज्ञानी जन नासिकाको पीड़ा देकर प्राणायाम किया करते हैं । इस स्थूल प्राणायाम का इतना लाभ है कि मन अचल रहता है स्वास्थ्य अच्छा बनता है और आयु भी बढ़ती है; परन्तु राजयोग के प्राणायाम से ब्रह्म भाव दृढ़ होकर मोक्ष प्राप्त होती है ।

(१२) प्रत्याहार–विषयों के बीच आत्म तत्त्व को देखते हुए अर्थात् विषयानन्द को अपना स्वरूपानन्द समझते हुए मन को चैतन्य स्वरूप में लगा रखने का नाम प्रत्याहार है ।।

(१३) धारणा–जहां-जहां मन जावे वहां-वहां ही ब्रह्म स्वरूप का दर्शन करते हुए जो मनकी स्थिरता का साधन है उसीको सब से उत्तम धारणा कहते हैं ।

(१४) आत्म ध्यान–मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार की शुद्ध वृत्ति द्वारा तैल धारावत् स्वरूप में जो स्थिति है उसे आत्मध्यान कहते हैं ।

(१५) समाधि–निर्विकार चित्त होकर अपने आपको ब्रह्म स्वरूप निश्चय करके सम्पूर्ण वृत्तियों सहित सृष्टि भाव से रहित हो जाने का नाम समाधि है । परमात्मा अन्दर बाहर, नीचे ऊपर सब जगह अद्वैत रूप से पूर्ण है ; यह पूर्ण भाव ही समाधि है ।।

(१६) लय–पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु

आकाश में, आकाश सूक्ष्म तत्त्वों में, तत्त्व माया में, और माया ब्रह्म में लीन करके सिद्ध पुरुष का अपनी व्यष्टि सत्ता को परमात्मा की समष्टि सत्ता में लीन करने का नाम लय है। घट नष्ट होने पर जैसे घटाकाश महाकाश में लीन होजाता है, ऐसे ही देह नाश पर उस का जीव ब्रह्म में लीन होजाता है। उस समय अनेक जन्मों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं। यही राजयोग की अन्तिम अवस्था है, इससे परे और कुछ नहीं। राजयोग की इन षोड़स(१६)अवस्थाओं और अंगों का ध्यान करने से ज्ञात होगा कि ब्रह्म विद्या प्राप्ति के अनन्तर त्यागवृत्ति द्वारा व्यापक रूप से आत्म-अभ्यास करना ही राज योग है। इसलिये स्वरूप चिन्तन ही योग और ज्ञान का अंतिम फल है॥

प्रश्न नं० ५०–हे भगवन्‌जी! अब विचार माला का अन्तिम मणका आगया है, यानी अन्तिम प्रश्न है। अब कृपया आप वर्णन करें, कि सन्सार में अनेक प्रकार के कर्म, धर्म, यज्ञ, तप, दान, पूजा, पाठ, उपासना, ज्ञान, किस जगह आकर समाप्त होते हैं?

उत्तरः–हे प्यारे! सन्सार में जो भी काम होता है वह किसी आदर्श तक पहुँचने के लिये ही होता है। अनेक मिस्त्री और मज़दूर प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक काम कर रहे हैं, बढ़ई लकड़ी चीर रहे हैं; मज़दूर चूना और सुर्ख़ी बनारहे हैं; उनमें से कोई गारा बना रहा है, कोई सीमेन्ट तैयार कर रहा है, कोई ईंटें पकड़ा रहा है और कोई टोकरी उठा रहा है। उन सबकी अनेक प्रकार की क्रियाओं का आदर्श एक सुन्दर मन्दिर है जिसका चित्र मिस्त्री के मस्तिष्क में पहिले से ही विद्यमान् है। यह सब चेष्टा आदर्श तक पहुँचने के लिये ही है। फिर देखो रात्रि को बाबू साहिब उठते हैं और नौकर को आज्ञा देते हैं कि लैम्प जलाओ, काग़ज़, क़लम, दवात लाओ और मुन्शी को बुलाओ। मुन्शी आता है और बाबू साहिब उसे चिट्ठी लिखाते हैं। जब चिट्ठी लिखी जाती है तो फिर मुन्शी अपने घर चला जाता है, लैम्प बुझाया जाता है, दवात, क़लम सब उठाये जाते हैं;

केवल एक चिट्ठी ही रहजाती है जो पहिले से ही बाबू साहिब के दिमाग में थी। कागज़, कलम, दवात और मुंशी द्वारा सब क्रिया का आदर्श चिट्ठी ही थी। जब चिट्ठी लिखी गई तब सब साधन और क्रियाएँ समाप्त होगईं। इसी प्रकार अनेकों दृष्टान्तों से यही सिद्ध होता है कि सन्सारमें जो भी क्रियाएँ होरहीहैं वह किसी न किसी आदर्शतक पहुँचने के लिये ही होरही हैं। ऐसे ही सब कर्म, धर्म, यज्ञ, दान, भजन, उपासना, ज्ञान और अनेक प्रकारकी क्रियाएँ केवल एक ही आदर्श तक पहुँचने के लिये हैं। वह आदर्श आत्मा अर्थात् अपना आप है। जब आत्मज्ञान द्वारा अपने आपका अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है तो धर्म कर्मादि सर्व साधन आत्म ज्योति में ही लीन होकर समाप्त हो जाते हैं। जैसे लैम्प, कलम, दवात, कागज़ और मुन्शी ने आदर्श में अपनी ओर से न कुछ बढ़ाया और न घटाया; वह तो पहिले से ही बाबू साहिब के मस्तिष्क में था, केवल उस आदर्श को इन साधनों ने प्रत्यक्ष किया। ऐसे ही धर्म कर्मादि सर्वसाधन आत्म स्वरूप में न कुछ बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं, केवल उसे प्रत्यक्ष करने में सहायता देते हैं। जैसे घटके नीचे गैस जल रहा हो तो वहां तेल, बत्ती, दियासलाई आदि की आवश्यकता नहीं होती, वहां तो केवल घट को उठाना होता है, गैस तो आगे ही स्वयं प्रकाश है। ऐसे ही कर्म, उपासना, ज्ञान द्वारा हमने उन पर्दों को दूर करना है जोकि आत्म प्रकाश के प्रत्यक्ष होने में बाधा डालते हैं; आत्मा तो अपने प्रकाश में सदा प्रकाशमान् है। इस लिये यह सम्पूर्ण कर्म, धर्म साधन कोटि में हैं और आदर्श अर्थात् आत्माके प्रत्यक्ष ज्ञानका साधन हैं। इस विषयमें गुरुजी कथन करते हैं:-

फल कारन फूली बनराइ। फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥
ज्ञानै कारण कर्म अभ्यासु। ज्ञान भइआ तह करमह नासु॥
घृत कारन दधि मथै सयान। जीवत मुक्त सदा निर्वान॥

[भैरउ रविदास जी पृ० ११६७]

—* द्वितीय काण्ड समाप्तम् *—

श्री १०८ स्वामीजी महाराज से

श्रीमान् गोविन्द हरि जी का मिलाप



अपनी लेखनी द्वारा लिखते हैं:—

यह शरीर पहलेसे ही कुछ उदास रहताथा क्योंकि संवत्१९७८वि० में शरीर की स्त्री का देहान्त होगया और उसके उपरान्त बड़े भाई की भी मृत्यु होगई, जिसके कारण वैराग्य होगया; और संवत् १९८४ वि० में बहुत टोटा होने के कारण दुकान का काम भी न रहा; तब यह शरीर जैतोमण्डी से श्री गंगा नगर चला गया। शरीर का भाई जोधाराम और उसकी स्त्री वीरांबाई ने पहले ही स्वामीजी से उपदेश लिया हुआ था और इस शरीर को भी प्रेरणा करते रहते थे; परन्तु भाग्योदय में अभी कुछ विलम्ब था। जब उनकी वारम्वार प्रेरणासे, यह शरीर व्यास पूजा पर कोट ईसाशाह पहुँचा और महाराज जी का पवित्र उपदेश श्रवण करने से मनको कुछ धैर्य हुआ तो वहाँ पर भाई हरीसिंह और इस शरीर ने एक साथ ही उपदेश मन्त्र लिया। जैसे गुसाँईं जीने कहा है:—

नारि मरी गृह सम्पति नासी। मूंड़ मुड़ाय भये सन्यासी॥

सो ठीक यही बात शरीर के साथ हुई और वैराग्य कुछ अधिक होगया। अगले वर्ष व्यास पूजा पर फिर यह शरीर लाला मूसा पहुँचा, कुछ दिन सत्संग किया और विनती की हे भगवन्! यह शरीर आप के साथ रह कर सेवा और सत्संग किया चाहता है; परन्तु स्वामी जी ने आज्ञा दी, 'नहीं तुम घर जाकर अभ्यास करो, अभी तुम्हारे अभ्यास में कमी है'। उसके उपरान्त पत्र व्यवहार होतारहा जिनमें से एक पत्र नीचे लिखा जाताहै जो स्वामीजी महाराज की ओर से इस शरीरको पहुँचा:—

"अज़ीज़ राम शरन जोधाराम !

कार्ड तुम्हारा कोट नक्का से फारवर्ड होकर मुझ को आज १४-१०-३२ को सांगला संगत में आय मिला है। अहवाल मुन्दर्जह से आगाह होकर जवाबन् तहरीर है कि हमारा शरीर १५ कतक तक सांगला संगत में ठहरेगा। अज़ां बाद १६ कतक के, भाई हरीसिंह या और संगत के आ जाने पर, कोट ईसा शाह संगत में चला जावेगा और वहां की संगत को सत्संग करावेगा। भाई हरीसिंह जी २७ असूज को हमारे पास सांगला में आये और वायदा करके कोट ईसा शाह को चले गये हैं। मुत्तला रहो।

यारो कुछ मुश्किल नहीं मिलना खुदा का।
मगर है मुश्किल मिलना कामल पेशवा का॥
मुतलाशी* को नहीं मुश्किल मिलना पेशवा का।
मगर है मुश्किल मिलना तालबहक+ दिलसफ़ा का॥
दरोगगोई× वा नफ़स अमार्हा। से जो फ़ारिग़£ हुआनहीं।
पेशवा का उस को मारफ़त पर चलाना रवा नहीं॥

अज़ सांगला हिल॥"

इसके बाद यह शरीर भी कोट ईसा शाह सत्संग के लिये पहुँचा और कुछ दिन अभी विचार किया ही था कि कोट ईसा शाह में परमात्मदेवकी आज्ञानुसार स्वामीजी महाराज अपना पंच भौतिक शरीर त्यागकर निज स्वरूप में लीन होगये; उसके उपरान्त वर्तमान् स्वामीजी महाराज से विचार करके वापिस चला गया। फिर लाला मूसा में महोत्सव पर पहुँचा और महाराज जी के साथ ही रहा। जो प्रश्न इस शरीर ने वर्तमान् स्वामी जी के आगे किये और उन्होंने जो उत्तर दिये सो जिज्ञासु जनों के लाभार्थ लिखे जाते हैं :–

*जिज्ञासु। +जिज्ञासु। ×झूठ बोलने से।
।आज्ञा देने वाले मन से यानी विषयों से। £रहित।

❋ विवेक-माला ❋

प्रश्न नं० १–हे भगवन् जी ! देह ही आत्मा है :–

(१) यदि देह से भिन्न आत्मा होवे तो घटवत् प्रतीत हुआ चाहिये और होवे नहीं; इसलिये देह ही आत्मा है।

(२) अहंज्ञान के विषय में आत्मा का किसी मत विषे विवाद नहीं, और अहं प्रतीति देह में होवे है; इसलिये देह से भिन्न आत्मा कोई नहीं, किन्तु देह ही आत्मा है।

(३) जो मुख्य प्रीति का विषय होवे सो आत्मा होवे है, सो मुख्य प्रीति अपनी देह में है; क्योंकि स्त्री पुत्र से आदि जो हमारे शरीर के साथ प्यार करें तो हमें प्यारे लगते हैं और न करें तो नहीं। ताते देह ही आत्मा है।

उत्तरः–हे प्यारे ! यही प्रश्न देहात्म-वादी ने मोक्ष पन्थ में किया है। इसका उत्तर जैसे सिद्धान्ती ने दिया है सो श्रवण करोः–

देह अनात्मा है, इसमें आत्माका लक्षण कोई नहीं घटता क्योंकि देह घट समान प्रतीति का विषय है, जड़ है और भूतोंका कार्य होने से नाशवान् है ॥

शङ्का– चौ०– चूना कथा मिले ताम्बूल* । ते जिम्रों हैं लाली का मूल ॥ * पान
देहाकार मिले ते जबही । चेतनता भूतन में तबही ॥
चेतन आतम यों तहि होई । जड़त्व हेतु मानो नहि कोई ॥

समाधान– चौ०– देह विषे जड़त्व दिखावों । तेरे सगल कुतर्क मिटावों ॥
मूर्छा पुनि मरणे के माहीं । देह परी दीखै घर माहीं ॥
नहिं चेतनता यामें पैये । सो आतम कहु कैसे दैये ॥

चूना कथा पान ते जेई । चेतन बिन मिलते नहिं तेई ॥
भूत कहो चेतन बिन कैसे । मिले दृष्टान्त नहीं को तैसे ॥
मेल न करता चेतन जोई । पञ्चम एक पदारथ सोई ॥
ताते देह न आतम हैये । आतम चेतन औरे पैये ॥

इसलिये देह जड़ सिद्ध होती है। और जड़ वस्तु स्वतः कोई क्रिया नहीं करसकती, यह नियम है; इसपर स्वामी गोविन्दानन्दजी लिखते हैं:-

कुं०- जड़ वस्तू ठहरै नहीं, बिन चेतन आधार।
ना उतपति होवै स्वतः, देखो खूब विचार ॥
देखो खूब विचार, स्वतः ही नाश न पावे ।
हिले जुले वह नहीं, जभी कोइ नहीं हिलावे ॥
स्वतः न बाजा बजे, बजाया बोले तड़ तड़ ।
सत्ता चेतन पाइ, करे कार्य त्यों देह जड़ ॥

इसी विषय में देह और लारी (मोटर) का दृष्टान्त देते हैं सो सुनो:-

चौपाई-देह लारी दृष्टान्त सुनाऊं । तेरे सकल संदेह मिटाऊं ॥
आपै ही जिऊँ चलै न लारी। तिउं जानो यह देह बिचारी।
पाकर सत्ता ड्राइवर केरी। लारी भगी फिरे बहुतेरी॥
त्यों चेतन सत्ता को पाये। देह चलत ये नजरी आये ॥

और कथन करते हैं:-

चेतन सत्ता से काल चलाउंदा, जिसम बना है लारी जी।
मां की रक्त पिता का वीरज, घाड़त घड़ी निआरी जी ॥
आब खाक आकाश मिलाया, वादी नूरी नारी जी ।
पंजे वज़न बराबर रक्खे, सूरत खूब संवारी जी ॥
नौ सौ नाड़ बहत्तर कोठी, पुरज़ा नीमाकारी* जी । *चित्रकारी
अन्दर इसदे जोड़ जोड़िआ, किट किट करदी नाड़ी जी ॥
हाड मांस पर त्वचा लपेटी, पालश कीनी भारी जी।
दो नैणा दी जड़ी बैटरी, जिसदी चमक निआरी जी ॥
नौ दुआर जिसमदे जेहड़े, खोल दिखाई बारी जी ।
पंजे प्राण मन बुधि चित अहं, बैठी आन सवारी जी ॥
बीच बिठा लई जिन्द निमाणी, जिसदी खातर सारी जी ।
लै चलिआ है मुलक अदम नूं, करके खूब तैयारी जी ॥
फिर फिर देंदा काल बकारा, है कोई होर सवारी जी।
कटी जांदा दिन ते रात्ती, मंज़िल दूर दुरारी जी ॥

चवी हज़ार कोहां दा पैंडा, जांदा स्वास दिहाड़ी जी।
अच्चन चेती ठोकर लागी, आई मौत बीमारी जी॥
टुट गया जिंदगी दा पुरज़ा, कीमत जिसदी भारी जी।
मुक गया पैट्रोल करमांदा, पंचर होगई लारी जी।
दासा रोंदी जिंद निमाणी, कर कर गिरिआज़ारी जी॥

(१) जो तुमने कहा कि यदि देह से भिन्न आत्मा होवे तो घट के समान प्रतीत होना चाहिये तिसका समाधानः–

जैसे दूध मंथन करने से पहिले घृत की भिन्न प्रतीति नहीं होती, मंथन करने के उपरान्त होवे है; तैसे आत्मविचार के बिना देह से भिन्न आत्मा की प्रतीति नहीं होती, आत्म विचार के अनन्तर होवे है। सो जब तुम्हारे विचार रूप चक्षु खुलेंगे तब देह से भिन्न आत्मा की प्रतीति होवेगी॥

(२) जो तुमने कहा है कि अहं प्रतीति का विषय आत्मा होवे है, सो अहं प्रतीति इस देह में होवे है; तिसका समाधानः–

अहं प्रतीति दो प्रकार की होती है–एक मुख्य और दूसरी गौण। अहं प्रतीति का मुख्य विषय विद्वानों की दृष्टि में साक्षी आत्मा है और गौण प्रतीति का विषय मूर्खों की दृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म और कारण संघात है। जैसे व्यवहार में कहा जाता है कि लोहा जलाता है व जल गरम है; परन्तु मुख्य जलाना या गरम होना अग्नि में है और गौण जलाना लोहे में है। काहेते, अन्वय व्यतिरेक से कारणता का निश्चय होता है। जिसके हुए से जो होवे सो अन्वय होवे है और जिसके न होने से जो न होवे सो व्यतिरेक होवे है; जैसे जहां अग्नि होवे तहां दाह होवे है और जहां अग्नि नहीं तहां दाह भी नहीं। इसलिये अन्वय व्यतिरेक से दाह का मुख्य कारण अग्नि है, और "जहां लोहा होवे तहाँ दाह होवे," ऐसा नियम नहीं; ताते लोहा दाह का कारण नहीं, क्योंकि जिस अग्नि के सम्बन्ध से लोहे में दाहक शक्ति होती है सो मुख्य दाहक शक्ति अग्नि में है। तैसे अहं प्रतीति का मुख्य विषय तो साक्षी आत्मा ही है, संघात नहीं। इसलिये विद्वानों की दृष्टि में अहं

प्रतीति का मुख्य विषय न होने से देह 'आत्मा' नहीं किन्तु 'ममता प्रतीति का विषय' है।

चौपाई–मेरो तन छोटो अति हैये। तेरो तन दीरघ अति पैये॥
या विधि ममता भी तन माहीं। ताते आतम सो तन नाहीं॥

इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:–

ए सरीरा मेरिआ इसु जग महि आइकै क्या तुधु करम कमाइआ॥
[राम कली म० ३ पृ० ६२१]

प्रश्नः– ममता बुद्धि जाहि में होई। कहा अनातम हेर्‍यो सोई॥
उत्तरः– घट अरु पट मन्दिर केमाहीं। ममता बुद्धि होइ जेहि जाहीं॥
तेहि तेहि सगल अनातम हेरे। नहीं कदाचित आतम टेरे॥

(३) जो तुमने कहा कि देह मुख्य प्रीति का विषय होने से आत्मा है, ताका समाधान :–

हे प्यारे! देह में मुख्य प्रीति नहीं है, किन्तु आत्मा में ही मुख्य प्रीति है; काहे ते कि इस देहमें द्वेष भी देखनेमें आवे है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को मृतक देखकर अपने पति के सम्बन्ध जन्य परलोक के सुख को अधिक मान कर इस शरीर विषे द्वेष बुद्धि करके इसे अग्नि में जला कर अपने पति के पास जावे है; इसलिये देह में द्वेष होने से इसमें मुख्य प्रीति नहीं। ताते यह देह अनात्मा है और सच्चिदानन्द रूप जो आत्मा है तिसमें ही मुख्य प्रीति है। देह षट् विकारवान् है और आत्मा निर्विकार है।

दो०– जन्म अस्ति अरु वृद्धि पुन, विपरण क्षय तन नाश।
षट विकार यह देह के, आतम स्वयं प्रकाश॥

पुनः देह अशुद्ध गन्द मन्द का थैला है जो किसी प्रकार से शुद्ध नहीं हो सकती और आत्मा शुद्ध है। इस पर गुरु प्रमाणः–

जलि धोवै बहु देह अनीति। सुध कहा होइ काची भीति॥
[गउडी सुखमनी म० ५ पृ० २६५]

और देह दस दोषों वाली है तथा आत्मा निर्दोष है:–

सवैया–सौच अशुद्ध भरी दुरगन्ध लसे बहु खण्ड स्थूल निहारो।
रोग ग्रसे बहु भाँति जरै शिथिलै पुनिआमिष पूम अधारो॥

होत न होत घटे दिन में छिन में मिटि जात न लागत वारो ।
देह सदा दस दोष भरी अरु आतम नित्य अदोष विचारो ॥
दो०—वेद कहत बुध कहत हैं, तू पुनि चित विचार ।
आतम चेतन नित्य है, देह अनित्य निहार ॥

भाव—इस वार्ता को वेद कहता है और 'बुध' कहिये बुद्धिमान् वेदव्यास, वसिष्ठादिक भी कहते हैं; पुनः तू भी अपने चित्त विषे विचार कर 'निहार' कहिये देख कि आत्मा चैतन्य और सत्य है और देह 'अनित्य' कहिये नाम रूपवाली है। ताते सिद्ध हुआ कि स्थूल देह—अन्न मय कोष अनात्मा है॥

प्रश्न नं० २—हे भगवन् ! स्थूल देह अनात्मा है, इसको मैंने भली प्रकार जान लिया है परन्तु इन्द्रिय आत्मा हैं; क्योंकि:—

(१) जीवन मरण व्यवहार जिसके आधीन होवे सो आत्मा का लक्षण है। सो जीवन मरण इन्द्रियों के आधीन है, क्योंकि जब तक इन्द्रियां देह में होती हैं तब तक जीवन व्यवहार होता है।

(२) अहंता प्रतीति का विषय होने से भी इन्द्रिय आत्मा हैं, क्योंकि कहा जाता है कि मैं देखता हूं, सुनता हूं, सूंघता हूँ, ग्रहण त्याग और गमन आगमन करताहूं; इसलिये अहंता प्रतीति इन्द्रियों में होवे है। ताते इन्द्रिय ही आत्मा हैं।

उत्तर:—चौ०—इन्द्रिय नहिं आतम परधान। करण + हेतु तामें पहिचान ॥ + हथियार
कुठारादिक * दृष्टान्तहिं मान। ताते आतमता तिह हानि ॥ * कुल्हाड़ा

जहाँ जहाँ करणताहै तहाँ तहाँ अनात्माहै। इस वार्ता को सिद्ध करने केलिये दृष्टान्त कहे हैं। जैसे कारीगर के हथियार तेसा (बसूला) आरी, सथरा (पटासी) आदिक स्वतः अपना अपना कार्य चेतन कारीगर के बिना नहीं करसकते और ना ही एक दूमरे का काम करसकते हैं। तैसे:—

सवैया—कान को काम न नाक करे अरु नाक को काम न कान ते होई।
आंख को काम न जीभ करे अरु जीभ को काम न आंखन जोई ॥
हाथ को काम न पांव करे अरु पांव को काम न हाथन जोई।
जानत अपने स्वादन को दस इन्द्रियन मांझ न चेतन कोई ॥

चौ०– कानों करके शब्द सुनीजै। नैनन सों घटरूप गहीजै॥
या बिधि सगल करण निरधारे। आतम काहे ताहि उचारे॥

यदि दुर्जन तोष* न्याय× से बिना विचारे इन्द्रियोंको आत्मा मानें तो समूह को मानें व एक-एक को ? यदि एक-एक को मानें तो बहुत स्वामी का दोष कहे हैं:–

चौ०– एक एक जे आतम भइओ। स्वामि नानत्व दोष तब अइओ॥
तिनको एकमतो नहिं होई। भिन्न प्रयोजन जांते सोई॥

दृष्टान्त से दोष कहे हैं:–

मतगयंद+सम बल है जाको। कंदलि÷ खंभ बँधै नर वाको॥
तेसब दिसदिस ओर पधारे। कदली खंड-खंड कर डारे॥
त्योंजुग=पद आतम यहि सबही। दिसदिस ओर सिधावें जबही॥
देह विदीरणता क्षण होवै। तुल्य स्वामी[ib] घर इकखोवै॥
तां समूह जे आतम कहै। अन्ध मूक नहिं जीवत रहै॥
नैन घटत समुदाय न है्ये। अन्ध मूक क्यों जीवत पैये॥
जीवत देखे सगले तांही। तिह करते आतम भव नांही॥

दोनों पक्षों में समान दोष इन्द्रियों के समूह विषे दिखावें हैं:–

मूर्छा मरण सुषोपति जबही। लीन करण गण होवें तबही॥
मूर्छा मरण विषे डर जैसो। माहि सुषोपति होवे तैसो॥
बहु डर मान सवैं नहिं कोई। जाग्रत माहिं दुःख बहुहोई॥
नं० २ उ०चौ० अरुपुनि अहं प्रतीतहि तोहि। आतम साधक भाषीमोहि॥
तांको हेतु सुनो चित लाई। जाते ते संसै मिटि जाई॥
अहंप्रतीति इन्द्रिय महिं जोई। चिद अध्यास जन्य है सोई॥
अरु पुनि ममता तामें होई। नहिं सन्देह याहि में कोई॥
मेरे श्रोत्र मेरे नैना। ऐसे सब जन बोलें बैना॥

इसी ममता प्रतीति के आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:–

---

*दुर्जन पुरुष की बात को उसकी प्रसन्नता के लिये एक क्षण को मानना। ×दृष्टांत। +मस्त हाथी। ÷केले के मूल। =एक काल विषे। [ib]समान बल वाले बहुत स्वामी।

ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई ॥
पुनः—ए श्रवणहु मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए ॥ (राम कली म० ३ पृ० ६२२)

यह अनुभव पुनि कैसे होई । जो नहि आतम तां बिन कोई ॥
मम प्रतीत विषय कर देखे । कुठार बरोबर तां जन पेखे ॥
ज्यों कुठार इन्द्रिय त्यों हैये । आतमता नहि तां में पैये ॥

भाव—इन्द्रियों में अहं प्रतीति आत्मा की अध्यास जनक है। जैसे अग्नि के सम्बन्ध से लोहे में दाह करने की शक्ति है तैसे आत्मा के तादात्म्य अध्यास से इन्द्रियों में अहं प्रतीति होवे है। और सुषुप्ति में इन्द्रियों के लय हुऐ भी पुरुष जीवे हैं, याते जीवन मरण व्यवहार भी इन्द्रियों के आधीन नहीं। और जैसे घट का द्रष्टा घट से और पटका द्रष्टा पट से भिन्न होवे है तैसे ही इन्द्रियों का द्रष्टा इन्द्रियों से भिन्न है । ताते सिद्ध हुआ कि इन्द्रिय अनात्मा हैं ॥

प्रश्न नं० ३—हे भगवन् जी ! इन्द्रिय आत्मा नहीं, यह तो मैंने भली प्रकार समझ लिया है; परन्तु प्राण आत्मा हैं:—

(१) जीवन मरण प्राणों के आधीन है, क्योंकि जब मनुष्य अति रोगी होता है तब नाड़ी देखते हैं। यदि प्राण आते जाते हों तो जीवित और यदि न आते जाते हों तो मृतक जाना जाता है।

(२) आत्मा चैतन्य कहा है, सो प्राण भी चैतन्य हैं; क्योंकि वेद विषे ब्रह्माजी के पास प्राणों का विवाद स्पष्ट है।

(३) अहंता प्रतीति प्राणों में है। मैं खाता हूं, मैं पीता हूं; खाना पीना प्राणों का धर्म होने से प्राणों में ही अहंता होती है।

(४) मुख्य प्रीति भी प्राणों में है; क्योंकि स्त्री, पुत्र, धन, आदि सबसे प्यारे हैं। इस लिये प्राण ही आत्मा हैं।

उत्तरः—चौ०—(१) जोतैं कह्यो प्राण के गये। देहआदिक मृतकसब भये ॥

ताको उत्तर करूं बखान । सावधान मन भीतर आन ।
परलोक गमन हेतू उर मान । प्राण रचे प्रत्यक भगवान ॥
तासों मिल जावे परलोक । बन्धूजन सबकर हैं शोक ॥

जीव रहे तन जीवत होई। गये मृतक भाखै सब कोई ॥
ताते प्राण तुरङ्ग* सम हैये। याते भिन्न आत्मा पैये ॥ *घोड़े।
(२) वेद कही प्राणन की बानी। सुण है प्राण देवता भानी ॥
प्राणन का अभिमानी जोई। भाखे सगल देवता सोई ॥

भाव–हे प्यारे! वेद में प्राणों का विवाद नहीं, किन्तु प्राणों के अभिमानी देव जाति ईशान, कपिल, आदि देवताओं का विवाद है। इसलिये प्राण जड़ हैं :–

दो०– सोवत में भूषण हरत, जानत नाहिन कोइ।
प्राण होहिं चैतन्य तो, चोरहिं पकरत सोइ ॥
प्राण अनातम हैं जड़ रूप। भौतिकत्व[1] यहि हेतु अनूप ॥

पुनः इन्द्रियों के स्वामी को वेद आत्मा कहे हैं और प्राणों को स्वामीपना बने नहीं :–

चौ०– अरु पुनि कर्ण सुआमी जोई। वेद बखाने आतम सोई ॥
जाग्रत स्वप्न भोग श्रम पाइ। जीव जबै सुषुपति में जाइ ॥
घनानन्द[2] परमातम लीना। विशेष वृत्ति ते होवे हीना[3] ॥
प्राण विशेष वृत्ति को पावे। मुख नासिका सो आवे जावे ॥
करण[4] विराम[5] कहु कितु होई। ताको देव जबै नहिं सोई ॥

अस्वामीपना स्पष्टकर्ता दृष्टान्त कहे हैं :–

भूपति करमें खड़ग ठठाई[6]। युद्ध करे वैरिन सों जाई ॥
सैनिक नहिं भव करे विराम[7]। स्वामी सहित करें संग्राम ॥
करण[8] लीन देखे सब कोइ। तांते प्राण पती नहिं होइ ॥
जीवसङ्ग होवै तेहिलीन। प्राण भिन्न स्वामी वह[9] चीन ॥

प्रश्नः–प्राण भिन्न जो स्वामी हैये। और सो सब सैना सम पैये ॥
जहि ठौर वह स्वामी जावै। प्राण सो काहि न ताहिं सिधावै ॥

उत्तरः–यह आशङ्का तुम्हरी जोई। वेद निरास करे सुन सोई ॥
प्राणहिं राखे अवर[10] कुलाइ। खोले आपु सुपन में जाइ ॥

दृष्टान्त से प्राणों का संग न जाना स्पष्ट करे हैं:–

राजभार मंत्रीसिर देवै। राजा भव अनन्त[11] सुख लेवै ॥

१–भूतों का कारज होने से। २–एक रस आनन्द स्वरूप। ३–चक्षु आदिकों द्वारा रूप आदिकों की प्राप्ति से रहित। ४–इन्द्रियां। ५–विश्राम। ६–उठाकर। ७–विश्राम। ८–इन्द्रियां। ९–सो जीव। १०–जीव रूप पक्षी के घोंसले की प्राणों करके रक्षा करता हुआ। ११–अन्तःपुर में।

त्योंही देह धरे यहि प्रान । स्वप्न रमो प्रत्यक्* भगवान ॥ साची*
ऐसे वेद बखाने बानी । प्राण भिन्न मानो तिहि ज्ञानी ॥
प्राण सदा चलते ही रहें । अचल आपको सब जन कहें ॥

अनुभव से सक्रिय प्राणोंके निष्क्रिय जीव को भिन्न सिद्ध करे हैं:-

चौ०- नहिकल*नहि क्रिया श्रुति बखाने । प्राण भिन्न ताते जन माने ॥ *क्लेश
(३) प्राणन माहिं हंता अभिमान । भाख्यो सो व्यभिचारी मान ॥
कदाचित सब जन ऐसे कहें । मेरे प्राण दुखी बहु रहें ॥
मम प्रतीति गोचर है जोई । सदन समान अनातम सोई ॥
दीपतमान हंस इक न्यारो । सो आतम उर अन्तर धारो ॥
(४) देह पियारी इन्द्रिय जैसे । प्राण प्रेम जानो सब तैसे ॥
चिदानन्द को यह अध्यास । तहाँ होइ यह प्रेम प्रकास ॥

भाव-जैसे घोड़े से सवार भिन्न होता है, तैसे प्राणों से जीवात्मा भिन्न होता है । पुनः जैसेमन्दिर का द्रष्टा मन्दिर से भिन्न है तैसे प्राणों का द्रष्टा प्राणों से भिन्न है । इसलिये द्रष्टा चेतन आत्मा है और दृश्य प्राण जड़ अनात्मा हैं । स्त्री पुत्र आदिकों से स्थूल देह में अधिक प्रेम है, तिस देह से इन्द्रियों में अधिक प्रेम है, इन्द्रियों से प्राणों में अधिक प्रेम है और प्राणों से मन बुद्धिमें अधिक प्रेम है । इसलिये सबसे अधिक प्रेम न होने से प्राण अनात्मा हैं ॥

प्रश्न नं० ४-हे भगवन् जी ! आपकी कृपासे मैंने जानलिया है कि प्राण अनात्मा हैं; परन्तु प्राणोंको जानने वाला मनही आत्मा है:-

(१) आपने सबके जानने वाला आत्मा कहा है सो सब को जानने वाला मन है । पुनः आत्मा स्वतन्त्र कहा है, सो मन ही संघात में स्वतंत्र है और सब मन के आधीन हैं; क्योंकि जब मन सावधान होता है तब सब इन्द्रियों द्वारा ज्ञान होता है, जब मन सावधान न हो तो किसी इन्द्रिय द्वारा ज्ञान होता ही नहीं ।

(२) श्रुति में कहा है कि प्राणों से अन्तर आत्मा मन है ॥

(३) मैं शुभाशुभ सङ्कल्प करताहूं । सो मनका धर्म संकल्प विकल्प आत्मा में प्रतीत होता है । इसलिये मन में अहंता होने से भी मन आत्मा है ॥

उत्तरः-[१] मन अधीन जो भाख्यो ज्ञान। ताही ते वह नैन समान॥
नैन करण जैसे भव हेरे। तिउं मन करण वेद ही टेरे॥
चाक्षुष ज्ञान नैन बिन नाहीं। वृत्ति रूप त्यों मन बिन नाहीं॥
असाधारण करणनैन ज्यों गायो। मनसाधारण त्योंदिखलायो॥

प्रश्न—हे भगवन् जी! आपने नेत्रों को असाधारण करण कहा है और मनको साधारण करण। कृपया इसको सदृष्टान्त वर्णन करें।

उत्तर—हे प्यारे! जैसे मकान के अंदर एक इञ्जन लगा हुआ है और उसमें कोई आटा पीसने की, कोई दाल दलने की, कोई धान निकालने की, कोई तेल निकालने की, कोई कपास ओटने (वेलने) की, इत्यादिक मशीनें लगी हुई हैं। हर एक मशीन असाधारण करण है, अर्थात् हर एक अपना अपना काम करने का करण है; परन्तु जबतक इंजन नहीं चलता और पटा नहीं लगाया जाता तब तक वह अपना २ काम नहीं कर सकतीं; और इंजन साधारण करण है, क्योंकि सब मशीनें उसके सम्बन्ध से चलती हैं। जिस मशीन का पटे द्वारा सम्बन्ध नहीं होता वह अपना काम नहीं कर सक्ती। परन्तु इंजन भी करण है; उससे भिन्न उसके जानने और चलाने वाला चेतन मिस्त्री है।

तैसे ही देह रूपी मकान है, मन रूपी इञ्जन है और दस इन्द्रिय रूपी मशीनें हैं। हर एक इंद्रिय असाधारण करण है अर्थात् अपना २ काम ही कर सकती हैं; परन्तु जबतक मन के साथ सम्बन्ध न हो तब तक कोई इन्द्रिय काम नहीं कर सकती। इसलिये मन इंजन वत् साधारण करण है। इसके जानने वाला इससे भिन्न चेतन आत्मा है।

इस रीति से अन्तःकरण वृत्ति रूप भिन्न २ ज्ञान को मन के आधीन कहकर जीव भूत स्वरूप साक्षीमनको प्रकाशता है सो कहे हैं:-

चौ०— स्वरूप ज्ञान अखंडहिं जोई। मनो अधीन न होवै सोई॥
मन की गतागती को जानै। स्वप्रकाश तहि श्रुति बखानै॥

पुनः, जो शुद्ध या अशुद्ध होता है सो अनात्मा होता है, यह नियम है। इसलिये मन अनात्मा है, जलवत् शुद्ध अशुद्ध होने से:-

चौ०- अरु पुनि शुद्ध अशुद्ध है जोई । नीर समान अनातम होई ॥
मन यह शुद्ध अशुद्ध स्वरूप । कैसे होइ सो आतम रूप ॥
आहार शुद्ध ते मन सोइ शुद्ध । आहार अशुद्ध ते होइ अशुद्ध ॥
आतमा सुनयो शुद्ध स्वरूप । सो नहिं होवे याहि स्वरूप ॥
शुद्ध अपाप या विधि उदारे । ऐसो आतम श्रुती उचारे ॥
मन अनातम आतमा नाहीं । विकारत्व हेतु ता माहीं ॥
होइ विकारी भव में जोई । क्षीर समान न आतम सोई ॥
सो आतम मन को उपजावै । ऐसे वेद प्रगट पुनि गावै ॥
उतपतिवान जगत में जोई । घट ज्यों अहे अनातम सोई ॥
ज्यों इन्द्रिय हैं करण स्वरूप । त्यों मनकरण नहि आतम रूप ॥
स्वतन्त्रता जो करी बखान । करण साधारण ते बहुमान ॥
(२) प्राण भिन्न अंतर कर गायो । जोमन आतम श्रुति दिखरायो ॥
अरुंधति दरशन न्याय उदार । ताहि श्रुती उर अंतर धार ॥
अंतर आतम करे बखान । ऐसो निज उर अंतर मान ॥
याही ते मन अंतर ज्ञान । माता श्रुती यह करे बखान ॥
मन अनुभव दिखलायो जोई । देहादिक सम जानो सोई ॥
दो०-आतम को अध्यास सुन, जा भीतर पुनि होइ ।
मूरख लोग अजान सब, आतम मानें सोइ ॥
(३) चौ०-अरु पुनि ममता मन में होई । तातें जान अनातम सोई ॥
मेरो मन गंगा में गयो । शब्द तुम्हारो सुनत न भयो ॥
अब करि किरपा उचरो बैना । ऐ सुख दाते करुणा ऐना ॥
ऐसे सब जन बैन उचारे । मम धी गोचर मनं निहारे ॥

भाव–जो अहंता प्रतीति मन की आत्मता की साधक कही सो बने नहीं, क्योंकि आत्मा का अध्यास जिस जिसके भीतर होवे तिस-तिस को विचारसे रहित मूर्ख पुरुष आत्मा मानते हैं । जैसे गेंहू, चने आदिकों में गुड़ का मिलाप होता है तो उन में मूर्ख पुरुषों को मधुरता का अध्यास होता है, सुजान पुरुषों को नहीं । अर्थात् मूर्ख ही कहते हैं कि

यह चावल आदि मधुर हैं; तैसे देह से आदि जिस जिस विषे आत्माका सम्बन्ध होवे तिस तिस में विचार से रहित पुरुषों को आत्म भ्रान्ति होवे है, परन्तु विद्वानों को देहसे आदि किसीमें भी आत्म प्रतीति होवे नहीं।

पुनः जैसे घटपट का द्रष्टा घटपट से भिन्न है, तैसे मन का द्रष्टा मन से भिन्न है। ताते सिद्ध हुआ कि मन अनात्मा है॥

प्रश्न नं० ५—हे भगवन् जी! आपकी कृपा से मैंने यह जान लिया है कि मन अनात्मा है। परन्तु बुद्धि ही आत्मा है:—

(१) मनके अन्तर बुद्धि आत्मा है, ऐसा श्रुति ने कहा है।

(२) अहंवृत्ति विज्ञान में है, क्योंकि कहा जाता है कि मैं निश्चय करता हूं; इस अहं प्रतीति से बुद्धि आत्मा है।

उत्तर:—हे प्यारे! विज्ञान अर्थात् बुद्धि को ही विज्ञानवादी 'बोधी' ऐसा कहते हैं कि मनका व्यापार (क्रिया) बुद्धि के आधीन है। काहेते कि बुद्धि का ही आकार मन होवे है। याते क्षणिक विज्ञान रूप बुद्धि ही आत्मा है, मन नहीं, यह तिनका आशय है:—

(१) सम्पूर्ण पदार्थ विज्ञान के ही आकार हैं। (२) सो विज्ञान प्रकाश रूप है। (३) क्षण २ में विज्ञान का उत्पत्ति नाश होवे है। पूर्व विज्ञान के समान अन्य विज्ञान की उत्पत्ति हुए से पूर्व विज्ञान का नाश होवे है; तैसे ही तृतीय विज्ञान की उत्पत्ति और द्वितीय विज्ञानका नाश, चतुर्थ की उत्पत्ति और तृतीय का नाश होवे है। इस रीति से नदी के प्रवाह की नाईं विज्ञान की धारा बनी रहे है। सो विज्ञान की धारा दो प्रकार की है—एक 'आलय विज्ञान धारा' और दूसरी 'प्रवृत्ति विज्ञान धारा'। 'अहं अहं,' ऐसी विज्ञान धारा को आलय विज्ञान धारा कहे हैं; तिसी को बुद्धि कहे हैं। 'यह घट है, यह पट है, यह शरीर है,' ऐसी विज्ञान धारा को प्रवृत्ति विज्ञान धारा कहे हैं। आलय विज्ञान धारा से प्रवृत्ति विज्ञान धारा की उत्पत्ति होवे है। और मन का स्वरूप भी प्रवृत्ति विज्ञान धारा में है, याते मन 'आलय विज्ञान धारा' रूप बुद्धि का कार्य है; सो बुद्धि ही कारण होने से आत्मा है॥

इस मत विषे सिद्धान्ती का विकल्प है। कि तेरें मत विषे क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा है अथवा अक्षणिक (स्थिर) रूप ? यदि क्षणिक रूप मानें तो जैसे बादलों विषे बिजली निमिषमात्र होवे है तिसके समान तेरा आत्मा होवेगा; और ऐसा होने से पूर्वकाल वृत्ति आत्मा के उत्तर काल न होने से 'सोई मैं हूं' यह प्रतिभिग्या ज्ञान दूर होवेगा, अर्थात् 'जो मैं बाल्यावस्था में था वह ही अब युवावस्था के समय हूं' ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिये; और होवे है, याते क्षणिक विज्ञान आत्मा नहीं। यदि दुर्जन तोष न्याय से क्षणिक विज्ञान को ही आत्मा मानो तो क्षणिक विनाशी आत्मा के भय से लौकिक व्यवहार तथा वैदिक कर्मों में कोई भी पुरुष प्रवृत्त न होगा, जब कोई भी प्रवृत्त न होगा तो सब पुरुषार्थ से भ्रष्ट होवेंगे; ताते क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा नहीं है। और श्रुति में लिखा है कि आत्मा अविनाशी है, इस कारण भी क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा नहीं है। दूसराअक्षणिक रूप मानें तो सुनोः—

चौ०— दुतीय* सो आतम नहिं होय। मनो समान जानिये सोइ॥
अन्तःकरण की दोनों वृत्ति। काल पाइके होवे निवृत्ति॥
अरुपुनि अंतःकरण है जोई। मन विज्ञान पछानो सोई॥
निश्चय ते वह बुद्धि कहावे। करे संकल्प मन हो जावे॥
विज्ञान अनात्म नीके जानों। जाते काठक × श्रुती बखानों॥

प्रश्नः— ताहि अनातम भाख्यो काहा।
उत्तरः— रथ रूपक दिखलायो जाहा॥
प्रश्नः— रथ रूपक वह भाख्यो कैसे।
उत्तरः— प्रगट कह्यो सुनिये अब तैसे॥

आतम को तुम रथी पछानों। शरीर एक रथ तांको जानों॥
बुद्धि सारथी ता रथ माहीं। मन ही डोरी धर उर माहीं॥
इन्द्रिय गण सब तुरंग कहावें। विषय पंथ जिहि माहिं सिधावें॥
आतम इन्द्रिय मन संयुक्त। भोग विषे होवे अनुरक्त॥
या विधि एक श्रुती है जोई। आतम बन्ध बखाने सोई॥

* तेरे क्षणिक मत की हानि। × कठवल्ली उपनिषद।

भाव—आत्मा असंग है याते इन्द्रिय सम्बन्ध बिना भोग की योग्यता न होने से इन्द्रिय मन संयुक्त हुआ ही आत्मा भोगों में प्रीतिवाला होवे है। इस प्रकार की जो श्रुति है सो आत्मा में बंध कहे है।

उ०—चौ०—दुष्ट इन्द्रिय दुष्ट विज्ञान। आतम बन्धन हेतु पछान॥
पुनि द्वितीय श्रुति है जोई। आतम मुक्त बखानै सोई॥
विज्ञान सारथी जाके हैये। मन डोरी कर जाके पैये॥
सो नर मारग पारहिं जावै। विष्णु परम पदवी को पावै॥
शुद्ध सारथी हैये जोई। मुक्ति हेतु पहिचानों सोई॥
या विधि आतम रथी बताए। विज्ञान सारथी ताके गाए॥
आतम ते न्यारो है जोई। नीके होइ अनातम सोई॥
अपंचीकृत पंच मय भूत। अंतःकरण ताहि को पूत॥
ताकी अंश एक है जोई। विज्ञान कहावे भव में सोई॥
पूरब सिद्धि भूत पहिचानों। आतम ताको काहे न मानों॥
ताते तेरो जो विज्ञान। ताहि अनातम नीके मान॥
मन अन्तर जो ताको गायो। मन अपेच्छ ना अवध दिखायो॥

भाव—जैसे रथी ते रथवाही भिन्न है तैसे आत्मा ते विज्ञान भिन्न होने से अनात्मा है; और यदि मनका कारण होने से विज्ञान को आत्मा मानो तो विज्ञान का कारण अंतःकरण और अन्तःकरण का कारण सूक्ष्म भूतों को आत्मा क्यों नहीं मानते हो? मन से अन्तर विज्ञान को जो श्रुति ने आत्मा कहा है सो मन की अपेक्षा करके कहा है, अवधि रूप अन्तर कथन नहीं किया है; क्योंकि विज्ञान से अंतर आत्मा आनन्दमय कोष श्रुतिने कहाहै ताते सिद्ध हुआ कि विज्ञान अनात्माहै॥

प्रश्न नं० ६—हे भगवन्! आपके कथनानुसार आनन्दमय कोष ही आत्मा सिद्ध हुआ।

उत्तरः—चौ०—सो आनन्द मय आतम नाहीं। ताकी गणना कोषन माहीं॥
पूरब चार कोष ज्यों हैये। पञ्चम कोष तथा वह पैये॥
इन सभनों ते न्यारो आहि। मनीषी आतम भाखै ताहि॥

भावः—आनन्द मय कोष अनात्मा है, जड़ और कोष होने से और ज्ञान द्वारा निवृत्त होने से। हे प्यारे! इस प्रकार पांचों कोषों से

आत्मा को न्यारा जानो :-

सवैया०- पंच कोष ते आतम न्यारो, जान सुजानहु ब्रह्मस्वरूप।
तातें भिन्न जु दीखे सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रमरूप॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारे, स्वप्न भीख न दरिद्री भूप।
सब कुछ कर्ता तऊ अकर्ता, तव अस अद्भुत रूप अनूप॥

भाव-हे शिष्य ! पंचकोष से आत्मा को न्यारा जानके "सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है," यह जानो॥

शङ्का:-आत्मा पुण्य पाप करे है ताते स्वर्ग, नर्क और मृत्युलोक में नाना प्रकार के सुख दुःख भोगे है; ताकी ब्रह्म से एकता बने नहीं॥

समाधान:-'ताते भिन्न जो दीखै,' इत्यादि तीन पादों में जो कहे हैं ता ब्रह्मरूप आत्मा से भिन्न जो दीखे है और शास्त्र से सुनिये है, स्वर्ग, नर्क, पुण्य, पाप, सो सम्पूर्ण मिथ्या भ्रम है, ऐसा मानो। और मिथ्या वस्तु अधिष्ठान को बिगाड़े नहीं। जैसे स्वप्न की मिथ्या 'भीख' कहिये भिक्षा मांगने से भूप दरिद्री नहीं होवे है, और मरुस्थलके मिथ्या जल से भूमि गीली होवे नहीं, और मिथ्या सर्प से रज्जु विष सहित होवे नहीं, याते 'सब कुछ कर्ता' अर्थात् सम्पूर्ण मिथ्या शुभाशुभ क्रिया का कर्ता है 'तऊ' कहिये तो भी अकर्ता यानी परमार्थ से कर्ता नहीं। ऐसा 'तव' कहिये तेरा अद्भुत अर्थात् आश्चर्य रूप 'अनूप' कहिये उपमा से रहित स्वरूप है। इसका भाव यह है कि ब्रह्म से अभिन्न तेरे स्वरूप विषे स्थूल सूक्ष्म शरीर और तिनकी शुभाशुभ क्रिया और ताका फल जन्म मरण, स्वर्ग-नर्क, सुख दुःख, सम्पूर्ण अविद्या से कल्पित हैं। ता कल्पित सामग्री से तेरा ब्रह्म भाव बिगड़े नहीं। ताते हे प्यारे ! पंचकोष तीन शरीरों से भिन्न अपने आपको ब्रह्म रूप निश्चय करो॥

प्रश्न नं० ७-हे भगवन् जी ! अरुन्धती न्याय किसको कहते हैं ? क्योंकि पूर्व आपने कथन किया है कि अरुन्धती दर्शन न्याय को श्रुति ने हृदय में रखकर अन्तर से अन्तर आत्मा कथन किया है। पहले ही साक्षी आत्मा का कथन क्यों नहीं किया, इसका क्या कारण है ?

उत्तरः--हे प्यारे ! जैसे विवाह के समय माता ने अपनी कन्या को शिक्षा दी हे पुत्री ! तुम पतिव्रत धर्म का ऐसे पालन करना जैसे अरुन्धती ने पालन किया है । तब कन्या ने पूछाः–

हे माता ! अरुन्धती किसकी पत्नी है ? ऐसे सुनकर माता बोली हे पुत्री ! अरुन्धती वसिष्ठ मुनि की पत्नी है । कन्या–हे माता ! मैं अरुन्धती को कैसे देखूँ ? ऐसा सुन कर बुद्धिमान् माता ने अपने मनमें विचार किया कि यदि मैं विक्षिप्त मन वाली अपनी पुत्री को केवल अरुन्धती ही दिखाऊंगी तो यह नहीं देख सकेगी; इस लिये क्रम पूर्वक अरुन्धती को दिखाऊं । ऐसा मन में विचार करके माता बोली हे पुत्री ! जो आकाश मण्डल है सोई अरुन्धती है । कन्या–यह आकाश कैसे अरुन्धती हो सकता है, क्योंकि इसमें पतिव्रत बने नहीं ? माता– जो तारा मण्डल है सो अरुन्धती है । कन्यां–यह सम्पूर्ण तारा मण्डल अरुन्धती नहीं है । माता– जो सप्त नक्षत्र हैं सो अरुन्धती है। इसमें भी कन्या की असंतुष्टता को देख कर माता ने कहा कि जो सप्त नक्षत्रों में पीछे के तीन नक्षत्र हैं सो अरुन्धती है। इससे भी उस को असंतुष्ट देखकर फिर बोली कि तीन नक्षत्रों के मध्य में जो एक नक्षत्र है सो अरुन्धती है। फिर भी उसको असंतुष्ट देखकर माता बोली कि उस नक्षत्र के समीप जो सूक्ष्म सा नक्षत्र है सो अरुन्धती है । इस प्रकार से विवाह काल में माता ने कन्या को सूक्ष्म अरुन्धती के नक्षत्र का क्रमपूर्वक प्रत्यक्ष करा दिया । तैसे माता के समान सर्व पुरुषार्थ के देने हारी श्रुति भगवती है और कन्या के समान जिज्ञासु और अरुन्धती की नाईं आत्मा है प्रथम श्रुति ने कहा कि यह पुरुष आत्मज्ञान करके अजर अमर होता है । तब जिज्ञासु ने मनमें विचारा कि यदि आत्म ज्ञान ही अजर अमर होने का कारण है तो प्रथम आत्मा का निर्णय करना ही कर्तव्य है । ऐसा विचार करके श्रुति से अथवा श्रुति के ज्ञाता पिता समान ब्रह्मनिष्ठ गुरु से पूछाः–

हे भगवन् ! आत्मा का क्या स्वरूप है ? तब गुरु ने मनमें विचार

किया कि यदि अद्वितीय शुद्ध अजर अमर आत्मा को ही प्रथम कहूंगा तो जिज्ञासु के मनमें एक शुद्ध अजर अमर आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकेगा; क्योंकि आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म है। इस कारण से श्रवण, मनन और निदिध्यासन की कर्तव्यता पुनः पुनः कथन करी है। इसलिये जिज्ञासु को शनैः शनैः स्थूल रीति से आत्मा का स्वरूप कहना योग्य है। ऐसा मनमें विचार कर गुरु ने कहा कि यह जो स्थूल शरीर है सो आत्मा है। जिज्ञासु—हे भगवन्! यह शरीर तो उत्पत्ति और नाशवान् प्रसिद्ध है, इसलिये स्थूल शरीर आत्मा नहीं होसकता। गुरु—अन्नमय कोष से अंतर आत्मा प्राण हैं। जिज्ञासु—आत्मा अचल और उत्पत्ति नाश से रहित है और प्राण चल, उत्पत्ति और नाशवान् होने से अनात्मा हैं। गुरु—प्राण से अन्तर आत्मा मन है। जिज्ञासु—मन तो अशुद्ध और विकारी होने वाला है और आत्मा शुद्ध तथा निर्विकार है इसलिये मन भी आत्मा नहीं है। गुरु—मनसे अंतर आत्मा विज्ञान है। जिज्ञासु—विज्ञान तो सुषुप्ति तथा प्रलयमें लीन होजाने से अनात्मा ही है। गुरु—विज्ञान से अन्तरात्मा आनन्दमय है। जिज्ञासु—अज्ञान तो जड़ और ज्ञानसे निवृत्त हो जाने वाला है। गुरु—अज्ञान को सत्तास्फूर्ति दाता चेतन आत्मा है। सो चेतन आत्मा ब्रह्मरूप है। भाव—जैसे मनोमय आदिकों से आत्मा भिन्न है तैसे आनन्दमय कोष से भी आत्मा भिन्न है। इस प्रकार से अरुन्धती न्याय करके तैत्तिरीय श्रुति अन्तर से अन्तर आत्माको कहती है। सो हे प्यारे! आत्मा नाम 'अपने आप' का है, सो तू है। ताते सिद्ध हुआ कि पाँच कोषों से भिन्न इनका प्रकाशक साक्षी आत्मा ब्रह्म तू ही है॥

प्रश्न नं० ८—हे भगवन् जी! अब आप कृपा करके तीनों देहों का निर्णय वर्णन करें।

उत्तरः—हे प्यारे! एकाग्र चित्त होकर श्रवण करो। पाँच कोषों में इनका निर्णय तो हो चुका है परन्तु अब अन्वय-व्यतिरेक से इनका उत्तर कहते हैं:—

सवैया— स्थूल देह का भान न होवे, स्वप्नमाहि लखि आतम ज्ञान।
सूक्ष्म ज्ञान सुषपति समय नाहिं, सुखस्वरूप ह्वै आतम भान॥
भासे भये समाधि अवस्था, निरावरण आतम न अज्ञान।
ऐसे तीनि देह व्यभिचारी, आतम अनुगत न्यारो जान॥ [विचार सागर]

भाव–स्वप्नावस्था में स्थूल देह का भान होवे नहीं, आत्मा का भान होवे है; सुषुप्ति अवस्था में सूक्ष्म शरीर का ज्ञान होवे नहीं और सुख स्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाश रूप से भान (प्रतीत) होवे है। यदि सुख का ज्ञान सुषुप्तिमें न होवे तो "मैं सुख से सोया" ऐसी स्मृति जागने पर नहीं होनी चाहिये; और होवे है, इसलिये सुख का ज्ञान सुषुप्ति में होवे है। सो सुख विषय जन्य–स्त्री पुत्रादिक का तो सुषुप्ति में है नहीं, किंतु आत्म स्वरूप ही है। सो आत्मा स्वयं प्रकाश है। इसलिये सुख स्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाश रूप सुषुप्तिमें भासे है और निदिध्यासन के फल रूप निर्विकल्प समाधि अवस्था विषे निरावरण कहिये अज्ञानकृत आवरण रहित आत्मा भासे है और 'न अज्ञान' कहिये कारण शरीर अज्ञान नहीं भासे है। ऐसे तीन देह व्यभिचारी हैं–एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था में भासे नहीं। आत्मा अनुगत है–सर्व अवस्था में है, इसलिये व्यापक है। इस विवेक द्वारा तीनों शरीरों से आत्मा को न्यारा जान।

पुनः, देह षड्विकारवान्, षड् उर्मीवान्, देश, काल, वस्तु परिच्छेद वाली है और आत्मा देश, काल, वस्तु परिच्छेद से रहित व्यापक, सत्, चित्, आनन्द रूप है। जैसे एक स्वर्ण की तार पर पहिले लाल फूल पिरोया गया, तार फूल के साथ अन्वय है। उसी तार पर दूसरा फूल पीले रंग का पिरोया गया; पहिले फूल का व्यतिरेक होगया, तार दूसरे फूल के साथ भी अन्वय है। उसी तार पर तीसरा फूल काले रंग का पिरोया गया; दूसरे फूल का व्यतिरेक होगया, तार तीसरे फूल के साथ भी अन्वय है। फूलों का व्यतिरेक हुआ है, इसलिये दृष्टान्त में फूल असत्य हैं और तार तीनों फूलों का आधार रूप होने से अन्वय अर्थात् एक रस रहने से सत्य और असंग है। तैसे सत्य स्वरूप आत्मा के आश्रित लाल फूल की नाईं जाग्रत अवस्था है, सत्य स्वरूप आत्मा

जाग्रत अवस्था के साथ अन्वय है और सब क्रिया का प्रकाशक है। पीले फूल की नाईं स्वप्नावस्था में वही का वही सत्य स्वरूप आत्मा स्वप्नावस्था के साथ अन्वय होने से स्वप्न सृष्टि का प्रकाशक है; स्वप्नावस्था में जाग्रत का व्यतिरेक है। काले फूल की नाईं सुषुप्ति अवस्था है, सत्य स्वरूप आत्मा वही का वही सुषुप्ति अवस्था के साथ अन्वय होने से सुख और बेखबरी को प्रकाशता है; सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न अवस्था का व्यतिरेक है। पुनः जाग्रत होने से सुषुप्ति अवस्था का व्यतिरेक है। परन्तु सत्यस्वरूप आत्मा का हरकाल, हर अवस्था के साथ मौजूद होना सत्य का लक्षण है और प्रकाशना अर्थात् जानना चेतन का। तीनों देहोंका तीनों अवस्था में व्यतिरेक होने से असत्य हैं और न आपको जानती हैं न दूसरे को, इससे जड़ सिद्ध हैं। पुनः जैसे अधिष्ठान रूप शरीर तीन वस्त्रों से आच्छादित होता है-कुर्ती, कमीज़ और कोट; जब तक तीनों को न उतारा जावे शरीर का प्रत्यक्ष भान नहीं होता। तैसे ही अधिष्ठान रूप आत्मा के आश्रित तीनों देह हैं-कुर्ती की नाईं कारण देह, कमीज़ की नाईं सूक्ष्म देह और कोट की नाईं स्थूल देह है। जब तक इन तीनों देहों का अन्वय व्यतिरेक से विवेक न किया जावे, आत्मा नहीं जाना जाता।

पुनः दो०= कारण लिंग स्थूल तन, मन बुद्धि इन्द्रिय प्राण।
ये जड़ तोहि लहें नहीं, तू चेतन परमाण॥

भाव—कारण शरीर, 'लिंग' कहिये सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण और स्थूल शरीर जड़ हैं; न कोई अंग आपको जान सकता है न किसी दूसरे अंग को, और ना ही तेरे को जान सकते हैं। तू चेतन अपने आपको और तीनों देहों के अंग-अंग तथा उनके धर्मों को जानता है। इसलिये तू ही चेतनहै।

चौ०- भूतन को है पूत१ अमू तन। जड़ परिणामि नाश समृदजन२॥
चेतन इकरस अव्यय३ आतम। ताबिन जड़ संघात अनातम॥

१-यह शरीर पञ्च भूतों का पूत अर्थात् पुतला है। २-घट। ३-विनाश रहित।

सतो अंश भूतन की जो है । ताते अन्तःकरण भयो है ॥
राग द्वेष को घोष१ सुजाते । सोऽपि रावरो२ रूप न ताते ॥ १–घर
कारय द्वारा जिह३ अनुमाना । नातर सो प्रत्यच्छ अमाना ॥ २–तुम्हारा
बिब उपाधि को कारण जोहै । कारण देह न आतम सो है ॥ ३–जिसकारण
तीन उपाधि विहीनों जोऊ । रूप तुम्हारो निश्चय सोऊ ॥ देह का ।

हे प्यारे ! इसप्रकार तू आपको तीनों देहोंसे भिन्न ब्रह्मरूप निश्चयकर ।

प्रश्न नं० ६–हे भगवन् ! बन्ध की निवृत्ति तथा मोच्च की प्राप्ति के लिये जिज्ञासु को क्या कर्तव्य है ?

उत्तर:–हे प्यारे ! सन्सार में आत्मा और अनात्मा दो वस्तु हैं; तिनके स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं सो सुनो । आत्मा द्रष्टा, व्यापक, सत्, चित, आनन्दस्वरूप अवाङ्मनसगोचर तथा अनात्मा दृश्य, परिच्छिन्न, असत्, जड़, दुःखरूप और वाङ्मनसगोचर है । यह नियम है कि आत्मा अनात्मा और अनात्मा आत्मा नहीं हो सकता, तम प्रकाशवत् विरोधी स्वभाव वाले होने से; अर्थात् द्रष्टा दृश्य, व्यापक परिच्छिन्न, सत् असत्, चित जड़, आनन्द दुःखरूप, अवाङ्मनसगोचर वाङ्मनसगोचर तथा दृश्य द्रष्टा, परिच्छिन्न व्यापक, असत् सत्, जड़ चेतन, दुःख आनन्दस्वरूप, और वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर नहीं होसकता; जैसे घट का द्रष्टा पुरुष घट नहीं हो सकता । दोनों में से किसी एक में तुझे अवश्य ही अहंभाव करना होगा क्योंकि तीसरी वस्तु का अभाव है किसी न किसी पदार्थ विषे अहंभाव किये बिना मन माने नहीं । यदि तू आपको आत्मा माने तो अनात्म कारण-कार्य रूप संघात तथा तिसके धर्म–जन्म-मरण, पुण्य-पाप, आदि तुझ द्रष्टा आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते, और यदि तू अनात्मा है तो अनेक यत्न करने पर भी जन्ममरण के बन्धन दूर नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों के स्वभाव स्वतः सिद्ध हैं । बन्ध की निवृत्ति तथा मोच्च की प्राप्ति के लिए अनेक साधनों का कर्तव्य निष्फल है । जैसे कहा है:–

दो०– यही चिन्ह अज्ञान को, जो माने कर्तव्य ।
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहिं जाको भवितव्य ॥

अब तू सम्यक् विचार करके कहो कि दोनों में से तू कौन है ?

शिष्य–हे गुरो ! आत्मा अनात्मा आदि के विचार का निश्चय, मनन, चिन्तन और अहंभाव करना अन्तःकरण का धर्म है । मैं चेतन आत्मा तो इस अनात्म मन वाणी संघात के धर्मों से रहित अवाच्य, स्वयं प्रकाश स्वरूप हूं, मुझ चेतन का किंचित् मात्र भी बन्ध निवृत्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिये कर्तव्य नहीं; यह मेरा निश्चय है । अब मैं वाङ्मनसगोचर आदि विशेषणों सहित मन आदि दृश्य तथा तिनके संकल्पादि धर्मों को अपने 'द्रष्टा स्वरूप' विषे नहीं मानूंगा ॥

प्रश्न नं० १०--हे भगवन् ! गृहस्थियों की मुक्ति का साधन कृपया वर्णन कीजिये ।

उत्तरः-हे प्यारे ! इसमें गृहस्थी और त्यागी का विचार नहीं; यह नियम है कि सर्व की मुक्ति ज्ञानसे ही होवेहै, अन्य उपाय से नहीं; जैसे जिसके पांव में जूता होता है उसके लिये कंटक जन्य दुःख दूर हो जाता है, तैसे जिसको ब्रह्म ज्ञान होता है उसी के जन्म-मरण रूपी दुःख दूर हो जाते हैं । पूर्व अनेक गृहस्थ ज्ञानवान् हुए हैं । देखो, राजा जनक राज्य व्यवहार करते हुए भी जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं और वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हुए हैं; इस कलिकाल में भी गुरु नानकदेव जी से आदि दस पातशाहियां और श्री कबीर जी, रविदास, नामदेव आदिक अनेक ज्ञानी भक्त हुए हैं । इसलिये गृहस्थियों को चाहिये कि एकता की धारणा अवश्य करें । क्योंकि जीव ईश्वर की एकता बिना ज्ञान नहीं होता यदि कहो कि कैसे धारण करें ? तो श्रवण करो :—

प्रथम तो गृहस्थ इस निश्चय को दृढ़ करे कि 'आप सहित सर्व गोविन्द ही हैं' अर्थात् सर्व में आत्म दृष्टि करे; प्राण जावें तो जावें, परन्तु यह निश्चय न जावे, प्रह्लाद वत् और सर्व का सुखदायी होकर रहे । सर्व को अपना आप जाने, किसी के साथ छल कपट न करे, सत्य

संभाषण तथा शुद्ध व्यवहार करे। शास्त्रानुसार धर्म की कमाई करके जो कुछ प्राप्त होवे उसीमें (अपना प्रारब्ध भोग समझकर) शान्ति पूर्वक जीवन निर्वाह करे। घड़ी दोघड़ी सच्चे भावसे परमात्मा का भजन स्मरण करे। भजन का स्वरूप–'आप सहित सर्व गोविन्द ही है, मुझसे परमात्मा भिन्न नहीं और मैं भी परमात्मा से भिन्न नहीं; परमात्मा महाकाश के समान सर्वत्र परिपूर्ण है और सर्वका आत्मा है' ऐसा जानकर वासना रहित होकर निश्चय करे। यही भजन है, इसी का नाम एकता है; जाति वर्ण आदिकों से खान पान व्यवहार को एकता का नाम एकता नहीं है। जब सर्व आत्मा ही है तो जिस जाति तथा वर्ण में कर्मानुसार जन्म होवे उसीमें आनन्द पूर्वक रहे। घड़ी दो घड़ी एकता के प्रचार वाले सत्संग में अवश्य जावे। अभ्यागत, अनाथ, गौ, दीन, विद्वान्, ब्राह्मण, गुरु, महात्मा, इन सब की यथा योग्य सेवा भी अवश्य करे। माता पिता की सेवा करे, उनकी आज्ञा माने, उनका निरादर कभी न करे और माता पिता का भी यही धर्म है कि जहाँ तक हो सके पुत्र को विद्या पढ़ावें तथा जीवन निर्वाह का गुण भी सिखावें और कुसंग से बचाकर उसे भगवद्भजनमें लगावें, फिर युवावस्थामें उसका विवाह करें।

स्त्री का धर्म है कि पति की सेवा करे, उसकी आज्ञा में रहे तथा पतिव्रत धर्म का पूर्ण रूप से पालन करे और यदि कर्म वश पति का वियोग हो जावे तब भी पतिव्रत धर्म पर ही आरूढ़ रहे। जिनका पतिव्रत धर्म निर्विघ्न सम्पूर्ण हो जाता है उनके लिये शास्त्रों में लिखा है कि वह स्त्रियां विद्वान् संन्यासी के तुल्य गति को प्राप्त होती हैं। यदि पतिव्रत धर्म पालन करनेकी सामर्थ्य न हो तो पुनर्विवाह करलेवें क्योंकि पर पुरुषों के साथ व्यभिचार करने से पुनर्विवाह करना श्रेष्ठ है, यह भी शास्त्र का लेख है। यह गृस्हथ के धर्म संक्षेप से कहे हैं। इन्हीं को धारण करने से गृहस्थ की सद्गति है। परलोक में सुखी होने का और कोई उपाय नहीं जैसे इस लोक में राजा भी चोर, जार, ठग, अधर्मी, अन्याई को ही दण्ड देता है, सत्यवादी, शुद्ध व्यवहार करने वाले

भले पुरुषों को नहीं; तैसे ईश्वर भी पापियोंको ही दण्ड देता है, पुण्यात्माओं को नहीं क्योंकि राजा भी ईश्वर का अंश होता है ॥

किसी न किसी व्यवहार बिना धन प्राप्त नहीं हो सकता और बिना धन के गृहस्थी को सुख प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि धन करके ही उसका चित्त स्थिर रहता है। स्थिर चित्त में थोड़ा-सा भी भजन महान् फल को देता है। यदि ईश्वर गृहस्थ के थोड़े काल में अहङ्कार रहित सच्चे भावसे किये हुए भजन तथा सत्यव्यवहार मात्रसे ही मोक्षके साधन को अंगीकार न करेगा तो उसका संसार खाता कदापि समाप्त न होगा, और ऐसा भी कहीं नहीं लिखा कि धर्म पूर्वक व्यवहार करते हुए गृहस्थी नर्क को जावे; केवल अन्यायी व अधर्मी ही जाते हैं, ऐसा लिखा है। पूर्व भी जो ऋषि, मुनि तथा सद्गृहस्थ हुए हैं क्या वह देखना, सूंघना, स्पर्श करना, रस लेना, सुनना; चलना, बोलना, मल-मूत्र त्यागना, लेन देन आदि व्यवहार नहीं करते थे क्या धर्म सम्पादन नहीं करते थे? किन्तु सब कुछ करते थे। क्या सन्तान उत्पन्न नहीं करते थे अथवा उनको स्त्री, पुत्र आदि सम्बन्धी अप्रिय लगते थे? क्या अब कलिकाल के समय मन इन्द्रियों के स्वभाव में पूर्व से परिवर्तन हो गया है? ऐसा भी नहीं। क्या उनको विषय इन्द्रिय सम्बन्ध-जन्य सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता था अथवा विलक्षण होता था? नहीं, नहीं, हम लोगों के सदृश ही होता था। भाव—जो रीति पूर्व थी सोई अब है।

जो पूर्वोक्त सद्व्यवहार करते हुए सद्गति को प्राप्त हुए हैं तो अब वर्तमान् गृहस्थी लोग भी सद्व्यवहार करते हुए, विषय इन्द्रिय सम्बन्धजन्य सुख-दुःख का अनुभव करते हुए तथा स्वधर्म पालनपूर्वक भगवद्भजन करते हुए अवश्य सद्गति को प्राप्त होंगे।

नोट—और प्रश्न ग्रन्थ बढ़ने के कारण नहीं लिखे गये ॥

* तृतीय काण्ड समाप्तम् *

श्री १०८ स्वामी जी महाराज से

हुकमचन्द जी चीचावतनी वाले का मिलाप

श्रीमान् स्वामीजी महाराज चीचावतनी कई वार जाया करते थे और वहाँ पर सत्संग कराते थे। हुक्मचन्दजी ने भी जब महाराज जी के वचन श्रवण किये तो मन आकर्षित होगया और उपदेश मंत्रलिया। उस समय उनकी आयु १५ वर्ष के लगभग थी, परन्तु चाव बड़ा था; इसलिये छोटी अवस्था में ही प्रेम से अभ्यास किया.। शीघ्र ही अन्तःकरण शुद्ध होने से सत्-असत् का विचार भी जल्दी ही कर लिया। प्रेम अधिक था, इसलिये एक वार चीचावतनी से साईकिल पर कोट-नक्का पहुँचे। इसी प्रकार जब समय मिलता, सत्संग करते। जब श्रावण १९९२ में चीचावतनी में व्यासपूजा हुई तब उस अवसर पर हमारे पास यह प्रश्न किया सो लिखा जाता है:-

प्रश्नः-हे भगवन् जी ! स्त्री को पतिसे भिन्न गुरु धारण करना चाहिये या नहीं, क्योंकि अधिकतर लोग कहते हैं कि स्त्री के लिये गुरु धारण करना पाप है ?

उत्तरः-हे प्यारे ! हमारे पास पहिले भी कई मनुष्य इस प्रश्न को कर चुके हैं और हम यथा योग्य उत्तर भी दे चुके हैं। परन्तु अब यह अच्छा हुआ, जो तुमने फिर वही प्रश्न किया क्योंकि इसके उत्तर देने से कई अनेकों श्रद्धालुओं की शङ्का निवृत्त हो जावेगी। सो श्रवण करोः-

शास्त्रकारों ने दो प्रकार के धर्म वर्णन किये हैं। एक असाधारण जो भिन्न भिन्न जाति के लिये और भिन्न भिन्न वर्णाश्रम के लिये है। जहाँ भिन्न भिन्न जाति के धर्म वर्णन किये हैं वहां पर स्त्री जाति

का धर्म भी भिन्न ही वर्णन किया है। दूसरा साधारण धर्म है जो सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिये है; वहाँ पर स्त्री भी मनुष्य जाति में सम्मिलित है। इसी आशय पर गुरुजी कथन करते हैं:-

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राह्मणह।
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं पराकृतह॥
सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ।
नानक्कु ताका दासु है सोई निरंजन देउ॥

[आसादीवार म० २ पृ० ४६६]

भाव-'जोग' कहिये योगी का धर्म ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति है, ब्राह्मणों का धर्म वेदों का पढ़ना और पढ़ाना है, क्षत्रियों का धर्म शूरवीर होना है, वैश्यका धर्म खेतीबाड़ी करना है, शूद्रकाधर्म तीनोंवर्णों की सेवा करना है; 'सर्व सबदं'कहिये सर्व मनुष्य जातिकाधर्म 'एक सबदं'कहिये एक जो अद्वितीय ब्रह्म है उसको जानना है। जो कोई इस भेद को जानता है वह ब्रह्मरूप है। गुरुजी कथन करते हैं कि मैं उसका दास हूं, वह माया से रहित प्रकाशक ब्रह्म है। भाव-जैसे जहां पर पशु पक्षी कहा जाता है वहांपर नर मादा दोनों का ग्रहण होताहै, ऐसेही जहाँ 'मनुष्य जाति' का प्रयोग है वहां स्त्री पुरुष दोनों का ग्रहण है। और स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा है, इसलिये पूरा मनुष्य तभी हो सकता है जब स्त्री संग में हो। और उपदेश चिदाभास को है न कि जड़ शरीर को। सो चिदाभास में स्त्री-पुरुष भाव नहीं। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब कोई दुःखों की निवृत्ति चाहता है सो दुःखों की निवृत्ति ज्ञान के बिना नहीं हो सकती और गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। इस पर गुरु प्रमाणः-

भाई रे गुरु बिन ज्ञान न होइ॥पूछहु ब्रह्मै नारदै बेदबिआसै कोइ। [श्रीराग म०१ पृ०५६]

इससे जाना जाता है कि स्त्री को भी उपदेश की आवश्यकता है और चारों वर्ण उपदेश के अधिकारी हैं। इस पर गुरु प्रमाणः-

बीज मंत्रु सरब को गिआनु॥ चहुवरना महि जपै कोऊ नामु॥
जो जो जपै तिसकी गति होइ॥ साध सङ्ग पावै जनु कोइ॥

[गउड़ी सुखमनी म० ५ पृ० २७४]

जब सर्व को ज्ञान है तब स्त्री भी सर्व में सम्मिलितहै। अब देखना इस बात को है कि यदि स्त्री का पति ज्ञानवान् है तब तो पति से भिन्न गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं; यदि पति ज्ञानवान् न हो तब पति से भिन्न गुरु धारण करना आवश्यक है। अब इस विषे महा पुरुषों के अनुभवी विचार और शास्त्रों के उदाहरण श्रवण करें:-

उपनिषद् में गार्गी और महाभारत में सुलभादिकों के गुरु धारण करने के इतिहास हैं और वासिष्ठ में लिखा है कि चुड़ाला रानी और शिखिरध्वज राजाने गुरु धारण करके ज्ञान और योग कला को सीखा। परन्तु रानी को तो दोनों कला प्राप्त होगई और राजा को एक भी नहीं हुई। पश्चात् रानी ने गुरु रूप होकर राजा को ज्ञान कला सिखलाई। यदि स्त्री को भिन्न गुरु धारण करने से पाप होता तो तिन स्त्रियों को भी पाप लिखा होता, उलटा गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्ति से उनका महत्त्व कथन किया है॥

प्रश्नः-उपनिषद् में लिखा है कि मैत्री ने अपने पति याज्ञवल्क्य से भिन्न कोईगुरु नहीं किया। इसलिये पतिही स्त्रीका गुरु होसकता है।

उत्तरः-हे वादी! (१) व्याकरण रीति से पति का अर्थ है कि स्त्री की सर्व प्रकार से रक्षा करनी, और कल्याण के लिये जो उपदेश करे उसका नाम गुरु है। यह दोनों लक्षण जिसमें होवें वह अपनी स्त्री का अन्न वस्त्रादिकों से रक्षा करने से पति और सत्य मार्ग तथा ज्ञान का उपदेश देने से गुरु भी है।

(२) जो पति शास्त्र संस्कार रहित होने से उपदेश करने में असमर्थ है और आप मन्द कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता और स्त्रीकी अन्न वस्त्रादिकों से रक्षा भी करता है वह पति तो पूरा कहा जावेगा, परन्तु वह आधा गुरु है। क्योंकि पति का खोटे मार्ग में न जाना भी स्त्री को खोटे मार्ग से रोकने का उपदेश है। इसलिये वह अपनी स्त्री का आधा गुरु है।

(३) जो पति स्त्री का अन्नादिकों से पालन तो करे है परन्तु

आप पर स्त्री गमनादि में प्रवृत्त होवे है वह पति तो कहा जावेगा किन्तु गुरु नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पति को पाप कर्म में प्रवृत्त हुआ देख कर स्त्री भी व्यभिचार कर्म में प्रवृत्त होगी, तब स्त्री का पाप तिस पति को होगा; क्योंकि पति का धर्म था कि आप सन्मार्ग में चलता और स्त्री को भी चलाता। जो स्त्री पति के उपदेश करते हुए भी पाप कर्मों में प्रवृत्त होती है तो उसका पाप पति को नहीं होता किन्तु स्त्री को ही होता है; परन्तु जब पति आपही पाप करता है तब स्त्री का किया हुआ पाप भी पतिको लगता है। पति को पाप कर्मों में प्रवृत्त हुए देख कर भी जो स्त्री अपने धर्म में स्थित रहती है वह पुण्य स्त्री को ही होता है; परन्तु पति भी ताकी अन्नादिकों से रक्षा करे है, इसलिये आधे पुण्य का पति भी भागी है; परन्तु पति के पाप कर्म की भागी स्त्री नहीं, पति की सेवा करने से ताके आधे पुण्य की भागी तो स्त्री हो सकती है।

(४) जो मूढ़ पति सर्वथा ही वैश्या गमनादि कुकर्म करते हैं और न तो स्त्री को धर्म का उपदेश करते हैं और ना ही अन्नादिकों से रक्षा, वह कुकर्मी होने से न तो स्त्री के पति हैं और ना ही गुरु। ऐसे पति की स्त्री जो अपने धर्म में स्थित रहे तो तिस धर्म की भागी वह आपही है, पति नहीं; क्योंकि पतिको तो स्व स्त्री के त्याग तथा पर स्त्री गमन का पाप जो शास्त्रों में वर्णन किया है सो प्राप्त है, सो तिसका भागी वही होगा। कदाचित् त्याग करी हुई स्त्री से कोई पाप हो जावे तो उसके पापका भागी भी पति ही होगा; परन्तु यदि स्त्री यह जानकर पाप कर्म में प्रवृत्त होगी कि मेरे पाप का भागी पति होगा तब पतिव्रत धर्म न पालन करने के कारण वह स्त्री अधो गति को प्राप्त होगी॥

प्रश्नः–हे सिद्धान्ती! जो पति स्त्री का त्याग कर के सन्त हो जावे उसके पुण्य पाप के सम्बन्ध में क्या विचार है?

उत्तरः–हे वादी! जिस स्त्री का पति संत होकर यदि वह संतों के धर्म वैराग्य, विचार, भजन, स्मरणादि में स्थित है तब शास्त्रोंमें जो

कहा है कि जिस कुल में ईश्वर भक्त सन्त हो जावे उस सन्त के इक्कीस कुलों (ननसार, ददिसार, ससुराल) की उच्च गति होवे है, इस वचन से उस सन्त पति की स्त्री भी उसके पुण्य की भागी होवे है और वह स्त्री जो पुण्य पाप करे तिस की भागी वह आपही होवे है, सन्त पति ता के पुण्य पाप का भागी होवे नहीं; काहे ते कि सन्त पति अपने धर्म में स्थित है सोई उसका स्त्री को धर्म का उपदेश है। जो पति स्त्री का त्याग करके साधु हुए पीछे कुकर्म करे है वह अपने मन्द कर्म का पाप, धर्मात्मा स्त्री के त्याग का पाप, स्त्री के किये हुए मन्द कर्मों का पाप, भजन का त्याग रूप पाप, इत्यादि जो कोई पाप है उन सब पापों तथा अपने वैराग्य विवेक रूप धर्मरहित होनेके पाप का भागी होता है।

प्रश्नः—हे सिद्धान्ती ! शास्त्रों में लिखा है कि पति चाहे चोर, वैश्यागामी, ज्वारी, आदि कैसा भी कुकर्मी क्यों न हो तो भी स्त्री ने उसकी परमेश्वर तथा गुरु रूप जान कर सेवा ही करनी है ग्लानि नहीं करनी। इसलिये जाना जाता है कि स्त्री को पति के अतिरिक्त और कोई गुरु करना योग्य नहीं है।

उत्तरः—हे वादी ! वेश्या गमनादिक पाप कर्मों से शास्त्र नर्क की प्राप्ति कहे है; और ऐसे कुकर्मी के संग करने से विष आदिक खाकर मरजाना कहे है। ता कुकर्मी पति की सेवादि को जो शास्त्र ने आज्ञा की है उसमें शास्त्र का यह आशय जाना जाता है कि पति किसी प्रकार का भी होवे स्त्री को मरण जैसा दुःख सहकर भी पर-पुरुष से प्रीति नहीं करनी चाहिये। भाव—शास्त्र का तात्पर्य पतिव्रत धर्म रखने में है। अपने कल्याण के लिये गुरु उपदेश श्रवण करना, या न करना इसमें शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। स्त्री को गुरु धारण करना यह पूर्व सिद्ध कर आये हैं। और भी मीरा बाई आदिकों की भगवत् विषे पूर्ण प्रेमा भक्ति होने से पति की सेवा आदि नहीं की तो भी, तिनको पाप नहीं कहा। और कुकर्मी पति की भी स्त्री को अवश्य सेवा करनी, चाहिये इस वचन से तिस पति को भी उपदेश है कि हे मूढ़। जब तेरी

स्त्री पतिव्रत धर्ममें स्थित है तब तू किस वास्ते कुकर्मी होकर नर्क जाने का मार्ग बनाता है ? तातें जैसे और मतों वाले स्त्री तथा पुरुष अपने अपने गुरु से वचन सुनते हुए देखने में आते हैं तैसे आप लोगों को भी श्रवण करना उचित है ॥

प्रश्नः-(१) हे सिद्धान्ती ! गुरु का लक्षण क्या है ? (२) यदि हम किसी को अपनी बुद्धि अनुसार गुरु बना लेवें और पीछे वह पापाचार में लग जावे तो हमें क्या करना चाहिये, जिससे हम कल्याण से वंचित न रहजावें ? कृपया उत्तर प्रदान करें ।

उत्तरः-(१) गुरु का लक्षण-'गु' नाम अंधेरे का है और 'रु' नाम प्रकाश का है, अर्थात् अज्ञान रूप अंधेरे के नाश करने वाले को 'गुरु' कहते हैं । (२) गुरु के लक्षणों से रहित प्राणी को यदि गुरु बना भी लिया जावे और तत्पश्चात् वह साधन मार्गसे पतित हो जावे तो उस का त्याग करके ब्रह्मनिष्ठ तथा ब्रह्मश्रोत्रिय गुरु की शरण को प्राप्त होकर अपना कल्याण करले, ऐसा सत्शास्त्रों का विधान है । इसमें कोई दोष नहीं । पूरे गुरु से ही कल्याण होता है । यथा गुरु प्रमाणः-

पूरे गुरु का सुनि उपदेसु ॥ पारब्रह्म निकटि करि पेखु ॥ [सुखमनी मं०५ पृ० २९५]

अपूरण गुरु का खंडन, यथाः-

कबीर माइ मूंडउ तिह गुरु की जाते भरमु न जाइ ॥ [पृ० १३७०]

गुरु शिष्य दोनों की अपूर्णता दोष युक्त है । यथा रामायणः-

चौ०- गुरु शिष अन्ध बधिर कर लेखा । एक न सुने एक नहिं देखा ॥
हरे शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नर्क महं परई ॥

प्रश्नः-दम्पति शब्द का अर्थ स्त्री तथा ता का पति है । तिन दोनों को एक गुरु धारण करना चाहिये या नहीं ? यदि कहो कि दोनों एक ही गुरु धारण कर सकते हैं तो इस पक्ष को हम नहीं मानते क्योंकि बिन्दी बहिन भाई और नादी बहिन भाई, इस भेद से दो प्रकार के बहिन भाई होते हैं-भाव- एक पिता के वीर्य रूप बिन्दु से जो उत्पन्न होवें सो बिन्दी बहिन भाई होते हैं और जो एक गुरु से नाद कहिये

शब्द रूप मंत्र को धारण करें सो नादी बहिन भाई होते हैं। ताते एक गुरु से जब शब्द रूप मंत्र दम्पति ने लिया तब नादी बहिन भाई होने से दोनों को संसारी सम्बन्ध करने में पाप की प्राप्ति होगी।

उत्तरः-हे वादी ! तेरे मत में पति ही स्त्री का गुरु है। इस वचन से पति ही गुरु रूप होने से वह अपनी स्त्री का पिता भी कहा जावेगा; और अपनी स्त्री द्वारा पुत्र रूप से उपजै है, इस श्रुति वचन से स्त्री माता के समान कही जावेगी। तब भी संसारी सम्बन्ध का होना दोनों का पाप रूप होवेगा।

प्रश्नः-हे सिद्धान्ती ! जैसे हमने दोष कथन किया तैसे ही आपने श्रुति स्मृति वचन से दोष दिखलाया। परन्तु इससे कुछ सिद्ध न हुआ। ताते कृपा करके आपको योग्य उत्तर देना चाहिये।

उत्तरः-हे मित्र ! तेरी शंका ही दोष रूप हैं। परन्तु तेरे संतोष के लिये हम कुछ कहते हैं। जैसे एक ही शरीर विषे दस इन्द्रियां देखना सुनना आदि अपने अपने कार्य को करे हैं; एक इन्द्रिय का काम दूसरी करे नहीं। तैसे दम्पति भाव तो स्थूल देह का धर्म होने से व्यवहार कोटि में है और गुरु उपदेश को सुन कर धारण करना यह मनका धर्म होने से परमार्थ कोटि में है। परमार्थ और व्यवहार की एकता कहीं होवे नहीं। जैसे श्री गुरु नानक देवजी के हिन्दू तथा मुसलमान कई शिष्य हुए हैं। यदि व्यवहार और परमार्थ की एकता होती तो मुसलमान को हिन्दू होना चाहिये था और गुरु के धन का भाग भी उनको लेना चाहिये था; सो तो है नहीं। पुनः, जैसे एक ही नगर को जाने हारे दम्पति ने किसी राही से मार्ग पूछा तो राही ने एक वचन में दोनों को मार्ग बता दिया; तब तेरे मत में वह दम्पति बहिन भाई होने चाहिये, क्योंकि वह एक ही पुरुष के बताये हुए रास्ते से नगर में पहुँचे हैं; परन्तु वह बहिन भाई होते नहीं। तैसे गुरु के एक ही मन्त्र उपदेश से भगवत् प्राप्ति के बताये हुए मार्ग से वह दम्पति बहिन भाई होते नहीं। और सुनो, जो एक ही गुरु के उपदेश से दम्पति बहिन

भाई हो जाते तो चुड़ाला और शिखरध्वज को एक ही गुरु के उपदेश धारण से शास्त्र उन्हें बहिन भाई कहता; परन्तु कहा नहीं। और रघुवंशी कुल की स्त्रियों और पुरुषों के एक ही गुरु वसिष्ठ जी हुए हैं। यदि दम्पति को एक ही गुरु के धारण करने से पाप होता तो सर्व अर्थ के ज्ञाता वसिष्ठजी भी दम्पति के गुरु न बनते और इसको पापभी कहते; परन्तु कहा नहीं। वर्तमान समय में दम्पति गुरु नानकदेवजी के शिष्य कहलाते हैं। वह आपस में बहिन भाई नहीं होते और ना ही पाप समझते हैं। और एक ही परमेश्वर के सब पुत्र होने से आपसमें बहिन भाई का सम्बन्ध हो सकता है। तेरे मत के अनुसार तो सबको पाप होना चाहिये; परन्तु ऐसे तो कोई भी मानता नहीं, क्योंकि व्यवहार परमार्थ एक नहीं हो सकते। इसलिये दम्पति को एक गुरु धारण करने से पारमार्थिक प्रीति भी बनती है; और दो गुरु के धारण करने से परस्पर गुरुओं में अरुचि तथा दोनों का एक मत न होने से घरमें विक्षेप भी होगा। इसलिये दम्पतिको अपने कल्याणके अर्थ एक ही गुरु से उपदेश मन्त्र लेना चाहिये; क्योंकि यह सनातन आचार्यों का मार्ग है, इसी मार्ग में चलना ठीक है; वर्तमान काल के कानूनी जीवों की दलीलें विचार रहित और दोष सहित होने से निष्फल हैं॥

प्रश्नः—हे सिद्धान्ती! हमारे मत में तो स्त्री को विद्या पढ़नी चाहिये क्योंके विद्या के बिना मनुष्य मूर्ख होता है। आप अपना मत कहो, स्त्री को विद्या पढ़नी चाहिये या नहीं?

उत्तरः—हे वादी! जो सनातन विद्या है और जिस विद्याके पढ़ने से पतिव्रत धर्म तथा पति, सास, ससुर आदिक वृद्धोंकी सेवा और दया, क्षमा, व्रत, नियम, ईश्वर भक्ति, आत्मा परमात्मा का निर्णय, इत्यादिक, कीर्ति और मुक्ति के देने हारे गुरु प्राप्त होवें वह विद्या पढ़नी चाहिये; परन्तु जिस विद्या के पढ़ने से पति को नौकर के समान जानकर तिरस्कारके साथ बुलावें व सास ससुर आदि वृद्धोंकी मर्यादा और आज्ञा को त्यागकर निर्भय हो जावें और मन माने पुरुषों के साथ एकान्त देश

में व जन समुदाय में वार्तालाप करें या तांगे आदि में बैठकर वायु सेवन करने जावें, मनमाने खाने खावें और सूटबूट पहिनें, रेश्मी रूमाल हाथ में रक्खें और अंगों की चपलता के कारण कसरतें करें या जवान पुरुषों के समुदाय में गायन करें, इत्यादिक जो वैश्याओं के कर्म हैं तिनको दृढ़ करने हारी और लोक परलोक में अपयश और दुर्गति करने हारी विद्या के पढ़ने से तो स्त्री को मूर्ख रहना ही अति उत्तम है। काहे ते कि तिस मूर्खता से लोक लज्जा और परलोक के भय से पतिव्रत धर्म का तो पालन करेगी; क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि सन्तोष रहित ब्राह्मण, सन्तोषी राजा, लज्जा करने वाली गणिका और निर्लज्ज कुलीन स्त्री, यह चारों नाश को प्राप्त होते हैं। इसलिये अपना अधिकार पहिचानना चाहिये। ताते सिद्ध हुआ कि स्त्री सनातन विद्या अर्थात धार्मिक विद्या को पढ़े जिससे उसको शुभ गुणों की प्राप्ति होवे ॥

॥ दोहा ॥

सब सन्तन को वन्दना, बार बार मम होइ।
दास जान मोहि बख्शिओ, भूल चूक होइ जोइ ॥ १ ॥
ईश्वर वा गुरु कृपा से, पुनि किरपा सब सन्त।
अपनो कारज जानिके, कर्यो पूर्ण भगवन्त ॥ २ ॥

*** जय सच्चिदानन्द ***

नोट—इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण गुरुमुखी भाषा में श्री अमृतसर में १९९५ संवत् में छपा। अब दूसरा संस्करण हिन्दी में गुप्ता यन्त्रालय हाथरस जि० अलीगढ़ (यू० पी०) संवत् २०१२ में मुद्रित हुआ।



॥ ॐ सप्त रत्न ॥

(१) प्रत्येक प्राणी को प्रभु मन्दिर, श्मशान, मृतक के समीप, ब्रह्म मुहूर्त, महात्मा के पास, जाप समय, इन छः स्थानों में सावधानी से रहना चाहिये। इन स्थानों पर जो पुरुष संसार सम्बन्धी वार्ता तथा प्रमाद करते हैं उनका तीन वर्ष का किया हुआ पुण्य कर्म नष्ट हो जाता है। यह याद रक्खो।

(२) माया, कुटुम्ब, मधुर रसादिक, स्त्री, अति निद्रा, संसारी ऐश्वर्य, इन छः पदार्थों में पापी पुरुषों का प्रेम होता है। सज्जन इनमें कदापि प्रेम न करें,। क्योंकि इनमें प्रेम करने से हानि होती है।

(३) सज्जन पुरुष निर्धनता में प्रसन्न होकर सन्तुष्ट रहें, क्योंकि विचार हीन पुरुष धन प्राप्ति पर अभिमान से बुरे मार्गों पर पड़कर पाप कर्म सम्पादन करते हुए महा अधोगति के अधिकारी होते हैं। संसार समुद्र से पार जाने के लिये केवल प्रभु-शरण, परलोक का साथी धर्म, श्मशान भूमिसे उपदेश, महात्मा का सत्संग, इन छः बातोंको सदैव याद रक्खे। इनके स्मरण द्वारा अनुष्ठान करके मनुष्य कल्याणको प्राप्तहोता है।

(४) राजा और रङ्क, मूर्ख और पण्डित, रूपवान् और कुरूप, मनुष्य और पक्षी, शत्रु और मित्र में समता होना। सर्व में सम भाव होने से चित्त की राग द्वेषादि मलिनता नाश होकर स्वच्छता होती है। वह पुरुष धिक्कार के योग्य हैं जो ग़रीब को धनादि से हीन समझ कर उसका निरादर और धनी का आदर करते हैं।

(५) कपट का त्याग करे, अर्थात् बाहर भीतर मन, वाणी, शरीर से एक जैसा होना चाहिये। कपट पूर्वक व्यवहार करने का दण्ड शास्त्रों में यह बतायाहै कि कपटी मनुष्य की परलोकमें दो जिह्वा होंगी, आगे पीछे उन दोनों से कोढ़ चूएगा तथा रुधिर का प्रवाह चलेगा। अतः किसी से कपट का व्यवहार कदापि न करो।

(६) संसार में सर्वोत्तम निम्नलिखित पांच वस्तुएं हैं; कल्याण इच्छुक पुरुष इनको ग्रहण करके कल्याण सम्पादन करें:-

१-स्त्रियों में सत्कार का भाव होना आवश्यक है और बोलने में

लज्जा का भाव । कपड़े पहिनने में प्रत्येक अंग दीखे, ऐसा कपड़ा न पहिनें और पतिका मान रखने में उस की योग्यतानुसार वस्त्राभूषण आदि का प्रश्न उठावें और पतिपर भारीविपत्ति आनेपर अपने आभूषण आदि देनेमें संकोच न करें; और विवाहादि के समय अनुचित गायन न करें । विधवा स्त्रियां शृंगारादि करने में लज्जा करें । निर्लज्जता से स्वतंत्र व्यवहार करने वाली स्त्रियों को शास्त्र में यह दण्ड बतलाया है कि वह सहस्रों वर्ष घोर नर्क में यम यातना भोगकर निर्जल देशमें राक्षस योनि को प्राप्त हो कर पुनः चाण्डाल योनि में जन्म लेती है। स्त्री बिना लज्जा के नमक बिना भोजन जैसी फीकी होती है ।

२–पण्डित में भजन होना भली वस्तु है । भजन बिना पण्डित शोभा नहीं देता, जैसे फल रहित वृक्ष ।

३–धनवानों में उदारता होनी आवश्यक है । उदारता के बिना कृपणता से दोनों लोकों के सुख से वंचित रहता है । इसलिये धन को शुभ कार्य में लगा कर पुण्य के फल रूप सुख को प्राप्त करना चाहिये। धनी पुरुष उदारता के बिना जल रहित सरोवर जैसा है ।

४–युवावस्था में वैराग्य मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि वैराग्य के बिना कामादि विकारों से पाप परायण होकर मनुष्य अपने कल्याण मार्ग को बिगाड़ लेता है । इसलिये वैराग्य की आवश्यकता है । मनुष्य युवावस्था में बिना वैराग्य के वर्षा रहित बादल जैसा शोभा हीन है ।

५–कुटुम्ब और मित्रों में परस्पर प्रीति होनी भली बात है । कुटुम्ब के परस्पर कलह से महा अनर्थ होता है, जैसे कौरव पांडवों का हुआ था। इसलिये कुटुम्ब का परस्पर प्रेम रहित होना प्राण रहित देह जैसा है ।

(७) विचार शील होना परमावश्यक है, क्योंकि विचार के बिना कार्य करनेके उपरान्त पश्चाताप होता है । इससे विचार पूर्वक कार्य करना चाहिये । विचारसे व्यवहार और परमार्थ दोनों सुधरते हैं इसलिये भगवान् व्यासजीने परमार्थ अर्थात् मोक्ष प्राप्ति केलिये (अथातो ब्रह्म जिज्ञासा) इस सूत्र से ब्रह्मज्ञानका जनक विचारही मुख्य कहा है । सारांश यह कि मनुष्य अपने जीवन में इन सप्त रत्नों को धारण करके अपना कल्याण करे ॥



॥ आरती श्री गुरुदेवजी की ॥

ॐ जय गुरुदेव हरे, स्वामी जयगुरु देव हरे ॥ ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म अजन्मा, नित सुख वेद ररे ॥ ॐ जय० ॥
शीतल शान्त सदा इकरस, मन वाणी से परे, स्वामी० ।
कृपा कर वर दीजै, द्वितीया भाव जरे ॥ ॐ जय० ॥
सबके प्रेरक सब के भीतर, सर्व रूप सदा, स्वामी० ।
नेति नेति श्रुति गावत, पावत नहिं भेदा ॥ ॐ जय० ॥
तुम्हरो ध्यान धरत नित, ब्रह्मा विष्णु हरे, स्वामी० ।
सहसर नाम उचारत, उपमा शेष करे ॥ ॐ जय० ॥
पूजा पूजक पूज्य, रूप सब आप धारे, स्वामी० ।
तुम हो सब में व्यापक, सब से हो न्यारे ॥ ॐ जय० ॥
जो उपकार तुम्हारे, हमसे जाय न वरें, स्वामी० ।
तपत तेल से निकास्यो, ऐसी कृपा करे ॥ ॐ जय० ॥
सब ज्योतिन की ज्योति सूर्य चन्द्र तारे, स्वामी० ।
लै प्रकाश तुम्हारा, सब प्रकाश करें ॥ ॐ जय० ॥
की कुछ भेंट तुम्हारी, मिलकर दास करें, स्वामी० ।
तुम्हरी भेटा तुम्हरे माहीं, हमसे कछु न सरे ॥ ॐ जय० ॥
दासन दास तेरी आरती, चरणोंके बीच करें, स्वामी० ।
कृपा दृष्टि निहारो, सिर पर हाथ धरें ॥ ॐ जय० ॥



❋॥ स्तुति ॥❋

दो०— सत्गुरु पूर्ण ब्रह्म हैं, पूर्ण गुरु अवतार।
जावूं सत्गुरु ऊपरों, वार वार बलिहार ॥ १ ॥
सत्गुरु दीन दयाल हैं, दीनों के सिरताज।
शरण तुम्हारी आयऊ, राखो सत्गुरु लाज ॥ २ ॥
सत्गुरु महिमा बहुत है, गावत वेद पुरान।
मुखछोटा प्रभुता बड़ी, किस विधि करूं बयान ॥ ३ ॥
क़लम न उपमालिख सके, वाणी कहे न सार।
शेष सरस्वती शारदा, पाव न जाका पार ॥ ४ ॥
सब धरती काग़ज़ करूँ, क़लम करूँ वनराय।
सब सिंधु स्याही करूं, उपमा लिखी न जाय ॥ ५ ॥
धन धन राजा जनक हैं, सिमरन किया विवेक।
एक घड़ी के सिमरने, पापी तरे अनेक ॥ ६ ॥
ऐसा सिमरन जान के, संतां पकड़ी टेक।
नानक सिमरन सार है, विसरो घड़ी न एक ॥ ७ ॥
ब्रह्म विद्या है ब्रह्मबली, ब्रह्म विद्या है सार।
बिना सत्गुरु की कृपा, होय न तत्त्व विचार ॥ ८ ॥
सत्गुरु ही लुटावंदे, हीरे मोती लाल।
मूरख मन तू ग्रहणकर, सत्गुरु संदे लाल ॥ ९ ॥
आतम रूपी लाल से, बिछुरत भयो अनाथ।
फिर पीछे पछतायगा, फेर न आवे हाथ ॥ १० ॥
पाँच चोर लूटें तुझे, लूटें दिन अरु रात।
बिन सत्गुरां न छूटसें, चौरासी के गात ॥ ११ ॥
मन तू शाहन्शाह हैं, बन बैठों कंगाल।
श्री सत्गुरु की शरण में, अपना आप सम्हाल ॥ १२ ॥
मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
दसों इन्द्रियें देहुरा, इसमें ज्योति पछान ॥ १३ ॥

* कल्याणार्थ शिक्षा *

॥ [illegible] ॥

इक तो सत्यनाम का सिमरन ।
लिवलगाइ नहिं त्यागे निशि दिन ॥
द्वितीय आज्ञा प्रभु का माने ।
प्रभु कृपा ते उर हर्ष सु ठाने ॥
तृतीय तन हंता को त्यागे ।
तब करो सब पर अनुरागे ॥
इन तीनों में परिपक्व होइ ।
ब्रह्मज्ञान अधिकारी सोइ ॥
बहुरि ब्रह्म को निर्णय जहां ।
सूक्ष्म बुद्धि कर सुनिये तहां ॥

मुद्रक—[illegible] गुप्ता, गुप्ता प्रिंटिंग प्रेस, [illegible]।